भूमिका

भविष्य पुराण—जैसा कि इसके नाम से ध्वनित होता है। भावी घटनाओं के वर्णन मे अपेक्षाकृत अधिक भाग लेने वाला है। वैसे तो इसमे भी पुराण के पाँचो लक्षणो का आरम्भ मे ही निर्देश कर दिया गया है और तदनुसार सर्ग, प्रतिसर्ग, वश, मन्वन्तर और वशानुचरित्र का नियमानुसार भली प्रकार वर्णन किया गया है। पर लोगो में यह भावी घटनाओ की विशेषता के कारण ही अधिक प्रसिद्ध है। इसमे ये 'भावी' घटनायें कहाँ से आई और उसका क्या उपयोग है, इस सम्बन्ध मे शका अथवा विवाद उठाना निरर्थक-सा है। जैसा हम इससे पहले कई बार स्पष्ट कर चुके हैं, पुराण-साहित्य तर्क अथवा प्रमाण द्वारा जाँचने का विषय नही है। इसका निर्माण अल्प शिक्षित या अशिक्षित समुदाय को धर्म, ज्ञान, नीति, चरित्र, मर्यादा, सद्व्यवहार सम्बन्धी प्रेरणायें प्रदान करने के निमित्त किया गया है। जिन लोगो को सामाजिक या आर्थिक कारणो से न तो पढने-लिखने का अवसर मिलता है और न जो उच्च लोगो के सत्सङ्ग का लाभ ही प्राप्त कर सकते हैं, उनके लिये सद्प्रेरणायें प्राप्त करने का एक-मात्र मार्ग इस प्रकार की धार्मिक कथायें श्रवण करना ही होता है। विशेषतया मध्य-काल मे, जब वर्ण-व्यवस्था पर अधिक जोर दिया जाता था और 'चतुर्थ वर्ण' वालो को 'श्रुति' के अन्तर्गत आने वाला समस्त जीवनोपयोगी साहित्य पढ सकने अथवा सुन सकने का भी द्वार बन्द कर दिया गया था, उस समय उस निम्न वर्ग के हितार्थ विशेष रूप से पुराण-साहित्य की रचना की गई थी। "भविष्य-पुराण" के आरम्भ मे ही इस तथ्य को स्पष्ट शब्दो मे प्रकट कर दिया है—

भवंति द्विज शार्दूल श्रुतानि भुवनत्रये।
विशेषत: चतुर्थस्य वर्णास्य द्विज सत्तम: ॥३५॥

ब्राह्मणादिषु वर्णेषु त्रिषु वेद. प्रकल्पिता ।
मन्वादीनि च शास्त्राणि तथागानि समततः ।।३६।।

शूद्राश्चैव भृश दीना. प्रतिभाति द्विज प्रभो ।
धमार्थ काम मोक्षस्य शक्ता स्युरवने कथम् ।।३७।।

अर्थात्—"राजा जनमेजय के पुत्र राजा शतानीक के यहाँ जब समस्त मुनिगण आये तो उन्होने उनसे प्रार्थना कि—हे ब्रह्मन् ! तीनो भुवनो मे जो ज्ञान है वह सब "श्रुत" है, पर चतुर्थ वर्ण (शूद्र) की तो इस सम्बन्ध मे भी विशेष स्थिति है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य—इन तीन वर्णों के लिए तीन वेदो की रचना की गई है और मनुस्मृति आदि अनेक शास्त्र भी उनके अङ्ग स्वरूप निर्मित किये गये हैं। पर विचारे शूद्रो की स्थिति तो बहुत ही हीन जान पड़ती है। हे भगवन् ! ये शूद्रगण धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की प्राप्ति म किस प्रकार समर्थ हो सकते हैं ?'

इसमे कोई सन्देह नहीं किया जा सकता कि प्राचीन युग में जब पुस्तकों का अभाव था, कभी कोई बहुत आवश्यक रचना भोजपत्र या ताड पत्र आदि पर बड़े परिश्रम से लिखी जाती थी और अलभ्य वस्तु की भाँति गुप्त रखी जाती थी, तो शूद्र तथा अन्य श्रमजीवी समुदाय, जिसका पूरा समय कृषि कार्य तथा अन्य सामाजिक सेवा के कार्यों म लग जाता था, मनुष्योपयोगी ज्ञान कैसे प्राप्त कर सकते थे ? प्रथम तो उनको शारीरिक श्रम के कार्यों से अवकाश ही बहुत कम मिलता था, फिर उनके पास ज्ञान वृद्धि के कुछ साधन भी नहीं होते थे। ऐसी दशा यदि लोक कल्याण के व्रत धारी ऋषि-मुनि, उनके लिये कोई विशेष व्यवस्था न करते तो उनका मानव जन्म एक प्रकार से व्यर्थ ही था। वे भी अन्य प्राणियों की तरह केवल भूख, प्यास, निद्रा की किसी प्रकार पूर्ति करके निरन्तर भवसागर म गोते ही खाते रहते। इसलिए समाज के कर्णधार महर्षियों ने उनके उत्थान के लिये पुराणों की रचना की। राजा शतानीक की प्रार्थना के उत्तर मे व्यास-शिष्य महर्षि सुमन्तु ने जो कुछ कहा

उसका सार यही है कि अल्प विकसित व्यक्तियों का उत्थान पौराणिक, धर्म-कथाओं से ही हो सकता है, क्योंकि वे उनको सुन और समझ सकते हैं—

साधु साधु महाबाहो पृष्टोस्मि मानद।
शृणु मे वदतो राजन् पुराणं नवमं महत् ॥
इदं तु ब्रह्मणा प्रोक्तं धर्मशास्त्रमनुत्तमम्।
विदुषा ब्राह्मणेनेदमध्येतव्यं प्रयत्नतः।
शिष्येभ्यश्चैव वक्तव्यं चातुर्वर्ण्येभ्य एव हि ॥

सुमन्त मुनि ने राजा शतानीक का कथन सुनकर उसकी प्रशंसा करते हुये कहा—"हे महाबाहो ! आपने यह अत्यन्त श्रेष्ठ प्रश्न किया है। इसके लिये अब मैं तुमको नवम पुराण श्रवण कराता हूं। इस सर्वश्रेष्ठ शास्त्र को ब्रह्माजी ने प्रकट किया है और समस्त विद्वानों को उसका प्रयत्नपूर्वक अध्ययन मनन करके चारों वर्णों के शिष्यों में इसका प्रचार करना चाहिये।'

सत्साहित्य का लक्षण यही है कि उससे जन साधारण का हितसाधन हो सके। केवल ज्ञान सम्बन्धी ऊँची-ऊँची बातें कर लेना या बुद्धि-कौशल दिखलाकर लोगों को चमत्कृत कर देना ही प्रशंसा की बात नहीं। आरम्भ में पुराण-साहित्य की रचना का उद्देश्य यही था कि सृष्टि रचना, दैवी शक्तियाँ, आध्यात्मिक क्षेत्र के जिन गूढ़ रहस्यों को सामान्य मनुष्यों की बुद्धि ग्रहण नहीं कर सकती, उनको कथा, दृष्टान्त रूपक, उपमा आदि की शैली में वर्णन करके बोधगम्य बनाया जाय। इसलिए पुराणों में समाविष्ट घटनायें सत्य, अर्ध सत्य और कल्पना प्रसूत सभी तरह की हो सकती हैं। बाल-बुद्धि वाले व्यक्तियों के लिए विषय को रोचक बनाने के लिये अतिशयोक्तियों का प्रयोग करना भी पुराणकारों के लिये सामान्य बात है। भविष्य पुराण के रचयिता के लिये यह प्रशंसा की बात है कि उन्होंने अपना उद्देश्य उदारता और अशक्त वर्ग की कल्याण भावना से चुना और उसे स्पष्ट रूप से प्रकट भी कर दिया।

संसार में अपनी विद्वता की धाक जमाने के लिये अन्य विद्वानों द्वारा अपनी योग्यता के सम्बन्ध में प्रशंसात्मक उद्गार प्राप्त करने के लिए, महत्त्व-पूर्ण तथ्यों का कठिन और दुरूह भाषा में विवेचन करने की अभिलाषा होना कोई नई बात नहीं है। अधिकांश ग्रन्थकार अपनी कीर्ति को दीर्घकाल व्यापिनी बनाने की भावना से इसी मार्ग का अनुसरण करते आये हैं। पर हमारी सम्मति में उन से भी बढ़ कर प्रशंसा के पात्र वे लेखक हैं जो अपने नाम तथा कीर्ति के स्थायित्व की चिंता न करके सामान्य जनता के हित को दृष्टिगोचर रख कर अपनी कलम उठाते हैं। पुराणों का मूल स्वरूप ऐसा ही था और उस समय उन्होंने अनेक भ्रम और शङ्काओं में ग्रस्त जन समुदाय का उपयोगी ढङ्ग से मार्ग दर्शन भी किया था। इसी पुराण साहित्य से ज्ञान प्राप्त करके दादू, रैदास, नामदेव, तुकाराम आदि अनेक संत कवियों ने शूद्र कही जाने वाली जातियों के लिए भी ब्रह्मज्ञान को सुलभ बना दिया। यह बात दूसरी है कि अधिक समय व्यतीत हो जाने पर जैसे प्रत्येक व्यक्ति और संस्था में निर्बलतायें उत्पन्न हो जाती हैं और अनेक चलतेपुर्जा लोग उनको स्वार्थ साधन का जरिया भी बना लेते हैं उसी प्रकार सैकड़ों वर्षों के बीच में विभिन्न कथा वाचकों ने पुराणों में भी अपनी बुद्धि और सुविधा के अनुसार बहुसंख्यक नये अंश सम्मिलित कर दिये, जिनमें उपयोगी अनुपयोगी उत्तम मध्यम निकृष्ट, भला-बुरी सभी तरह की बातें हैं।

फिर भी जब हम पुराणों का विचार पूर्वक मनन करते हैं तो हमको उनमें बहुत-सी ऐसी प्रेरणा दायक कथायें, ज्ञानवर्द्धक सूक्तियाँ और सदुपदेश-पूर्ण कथोपकथन मिलते हैं जिनका प्रचार सामान्य जनता में किया जाना धर्म भी अभीष्ट माना जायगा। हरिश्चन्द्र की सत्यनिष्ठा, भीष्म का प्रतिज्ञा-पालन राम का दुष्टों का दमन, अभिमन्यु की अद्भुत वीरता, कृष्ण की राजनीति—ये सब ऐसे पौराणिक वर्णन हैं जिनसे सब तरह के व्यक्ति लाभ उठाकर श्रेष्ठ मार्ग के पथिक बन चुके हैं। इसलिए यदि अन्धविश्वास और साथ ही निरर्थक आलोचना की प्रवृत्ति का त्याग कर पौराणिक सामग्री का उचित उपयोग किया जाय तो उससे पुस्तक प्रेमी पाठकों का पर्याप्त हित

साधन हो सकता है। हमारे द्वारा प्रकाशित पुराणों के संशोधित संस्करणों को जिन सज्जनों ने ध्यान पूर्वक देखा होगा वे यह भली प्रकार समझ गये होंगे कि उनके कुछ अनावश्यक, अप्रासंगिक और पुनरुक्ति वाले अंशों को छोड़ देने पर जो संशोधित-संस्करण प्रस्तुत किये गये हैं वे वास्तव में सर्वोपयोगी और शिक्षाप्रद हैं। उनसे मनोरंजक कथाओं के रूप में धार्मिक सिद्धान्तों और कल्याणकारी उपदेशों का जो लाभ मिलता है उसके महत्त्व से इनकार नहीं किया जा सकता।

वर्ण व्यवस्था का आधार चरित्र पर—

जब हम 'भविष्य पुराण' के उपदेशों और विवेचनों पर इस दृष्टि से विचार करते हैं, तो उसमें अनेक बहुत महत्वपूर्ण नवीनतायें पाते हैं। उसमें आरम्भ में ही समाज के दीन-हीन वर्ग के प्रति जो सहानुभूति प्रकट की गई है, यह आगे चल कर घनीभूत होती गई है और 'षष्टी-कल्प' के विवेचन में उसने स्पष्ट कह दिया है कि वर्ण और जाति का अन्तर जन्म से नहीं वरन् कर्म, गुणों और आचार-व्यवहार से मान्य है और इस दृष्टि से जो शूद्र जाति में जन्म लेने पर भी शुद्ध आचार-विचार रखता है और परमार्थमय जीवन व्यतीत करता है वह ब्राह्मण ही है और उसे वेद पढ़ने का अधिकार है—

वेदाध्ययनमप्येत ब्राह्मण्य प्रतिपद्यते।
विप्रवद्वैश्यराजन्यौ राक्षसा रावणा दया॥
श्वाद चाडाल दासाश्च लुब्धकाभीर धीवरा।
येन्येऽपि वृषला केचित्तोपि वेदानधीयते॥
शूद्रा देशान्तर गत्वा ब्राह्मण्य श्रिता।
व्यापाराकार मापद्य विप्रतुल्यै. प्रकल्पितै.॥

अर्थात्—"ब्राह्मण की भाँति क्षत्रिय और वैश्य भी वेदों का अध्ययन करके ब्राह्मणत्व को प्राप्त कर लेते हैं। रावण आदि राक्षस, श्वाद, चाण्डाल, दास, लुब्धक, आभीर, धीवर आदि के समान वृषल (वर्णसङ्कर) जाति वाले

भी वेदों का अध्ययन कर लेते हैं। शूद्र लोग दूसरे देशों में जाकर और ब्राह्मण-क्षत्रिय आदि का आश्रय प्राप्त करके ब्राह्मणों के व्यापार, आचार और भाषा आदि का अभ्यास करके ब्राह्मण ही कहलाने लगते हैं।"

लेखक का आशय यह है कि ब्राह्मणत्व की पहिचान वेदाध्ययन को ही मान लेना भूल है। सभी जातियों के प्रतिभाशाली व्यक्ति वेदों का अध्ययन कर सकते हैं और अपने निवास स्थान में नहीं तो दूर देश में जाकर अपनी योग्यता के आधार पर ब्राह्मणत्व का दावा कर सकते हैं। इसकी पुष्टि करते हुए वे आगे लिखते हैं—"समस्त वेदों दो वेद या एक ही वेद का यथाक्रम अध्ययन करके मनुष्य शुद्ध ब्राह्मण से उत्पन्न होने वाली कन्या से विवाह कर लेते हैं। इसी प्रकार से दाक्षिणात्य और गौड़-पूर्वा ब्राह्मण जातियाँ बन गईं। इस कारण वेदों के अध्ययन के आधार पर जाति का भेद नहीं जाना जा सकता।"

"फिर छैओ अङ्गों के सहित वेदों का अध्ययन कर लेने पर भी मनुष्य सच्चा ब्राह्मण नहीं बन सकता, क्योंकि जो आचारहीन है उन्हें वेद पवित्र नहीं बनाया करता। इस प्रकार वेदों का अध्ययन कर लेना तो द्विजों के लिए एक शिल्प कला की भाँति है। ब्राह्मण का वास्तविक लक्षण तो चरित्र ही कहा गया। चारों वेदों का अध्ययन करके भी यदि कोई ब्राह्मण चरित्र-पालन नहीं रहता, तो उसके द्वारा कोई कर्म नहीं किया जाना चाहिये। जिस प्रकार स्त्री को रत्न कहा गया है, किन्तु नपुंसक व्यक्ति उसका कुछ भी उपयोग नहीं कर सकता। शिखा, प्रणव, संस्कार, सन्ध्योपासन मेखला-धारण, दण्ड, अजिन और पवित्रा आदि को शूद्र भी बिना किसी बाधा के ग्रहण कर सकते हैं। इस कारण मेखला, चूलिका आदि से मनुष्यों में विलक्षणता नहीं मानी जा सकती। तप और सत्य आदि से देवता की सिद्धि और मंत्र की शक्ति भी सब मनुष्यों को प्राप्त हो सकनी सम्भव है।

"शाप या वरदान देना भी ब्राह्मणत्व का शक्ति का प्रमाण नहीं हो सकता, क्योंकि चोर, जार तथा अन्य अपराधियों द्वारा राजाओं (सरकारी

अधिकारियो) को प्राय इसी प्रकार शाप दिया जाया करता है। पापो का उदय होने पर जो कष्ट मिलता है उससे शूद्र अपने को नही बचा सकता और ब्राह्मण भी इस कार्य मे असमर्थ सिद्ध होता है। अनुष्ठान योग्य गुण जिनम सम्पूर्ण हैं वे शूद्र भी द्विजो के ही समान है। इस प्रकार विचार किया जाय तो 'द्विज' और 'शूद्र' मे जो अन्तर है वह न तो आध्यात्मिक है और न बाह्य-निमित्तक है। ब्राह्मण और शूद्र के बीच न वीर्य मे, न आकृति में, न व्यापार म, न अक्ष मे, न आयु मे, न अङ्गो मे, न पुष्टि म, न दुर्बलता मे, न स्थिरता मे और न चपलता मे कोई विभेद जान पडता है। प्रज्ञा, वैराग्य, धर्म, पराक्रम त्रिवर्ग, नैपुण्य, रूपादि और भेषज मे भी कोई भेद नही रहता। ब्राह्मण चन्द्रमा की किरणो के समान शुभ्र नही होते, न क्षत्रिय ढाक के फूल की तरह लाल होते हैं, न वैश्य हरताल के समान पीत वर्ण के होते हैं, और न शूद्र कोयले के समान काल रङ्ग के होते है। पैरो से चलना शरीर का वर्ण, केश, सुख और दु ख तथा रक्त, त्वचा, मास मेद और अस्थि की दृष्टि से ये चारो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र समान ही होते हैं, तब इनमे भेद कैसे हो गया ?'

'देवता' किसे कहते हैं—

कुछ आगे चल कर 'देवताओ के सम्बन्ध म भी श्री कृष्ण और उनके पुत्र साम्ब के सम्वाद के रूप मे ऐसी ही युक्ति सङ्गत बातें कही गई है, जो अन्यत्र बहुत कम मिलती हैं। साम्ब ने कहा—'हे जनार्दन ! बहुत से लोगो को तो देवताओ के अस्तित्व मे कुछ भी सन्देह नही होता और अन्य कहते हैं कि कोई देवता होना ही नही। अब इस सम्बन्ध कोई विशिष्ट सम्मति दीजिये।

इस पर भगवान कृष्ण ने कहा—बहुत से आगमो म देवताओ के अस्तित्व को स्वीकार किया गया है और जिसका प्रमाण आगम मे होता है उसका अस्तित्व अवश्य ही होना है। अनुमान द्वारा भी उसका अस्तित्व सिद्ध किया जाता है और प्रत्यक्ष प्रमाण भी उसके लिए दिये जाते हैं।' साम्ब ने कहा—"यदि देवता प्रत्यक्ष प्रमाण द्वारा सिद्ध हो जायें तो फिर आगमो और अनुमान का प्रयोजन ही क्या है ? आप मुझे प्रत्यक्ष देवताओ का ही परिचय दीजिये।'

श्री कृष्ण कहने लगे—"प्रत्यक्ष देवता भगवान् सूर्य है जो समस्त जगत के नेत्र हैं और दिन का सृजन करने वाले हैं। इनसे अधिक निरन्तर प्रकट होने वाला और कोई देवता नहीं है। जिनसे यह जगत उत्पन्न हुआ है और जिनमें अन्त में लय होगा जिनके द्वारा सत्युग, त्रेता आदि चारों युग होते हैं, वे भगवान दिवाकर ही हैं। इन्हीं की इच्छा से यह चर और अचर से युक्त जगत उत्पन्न हुआ है स्थिर रहता है और कर्म में भी प्रवृत्त हुआ करता है। इन्हीं के प्रसाद से यह लोक चेष्टाशील होता हुआ दिखलाई दिया करता है। इनके उदय होने पर सभी का उदय होता है और अस्त होने पर सब अस्तङ्गत हो जाया करते हैं। इस प्रकार सूर्य का देवत्व प्रत्यक्ष ही सिद्ध है। इनसे अधिक न कोई है, न हुआ और न भविष्य में होगा। इन्हीं को समस्त वेदों में 'परमेश्वर' के नाम से पुकारा जाता है। इतिहास पुराणों में इन्हीं को 'अन्तरात्मा' के नाम से गाया जाता है। इसलिए यह दिवाकर देव ही सबके ईश, सबके कर्त्ता, सबके भरण करने वाले और अव्यय हैं। जो इनके मण्डल का उपस्थान किया करता है और इनकी उपासना प्रातःकाल, मध्याह्न-काल और सायंकाल करता रहता है, वह परम गति को प्राप्त होता है।"

इस प्रकार पुराणकार ने 'देववाद' का सच्चा स्वरूप प्रकट किया है। 'देव' वही है जो दूसरों का उपकार करे, उन्हें सुख प्रदान करे, कल्याणकारी मार्ग पर चलने में सहायक हो। सूर्य में ये सभी गुण मौजूद हैं और प्रत्यक्ष दिखलाई पड़ते हैं। इसलिये अब आधुनिक विज्ञान भी इसी निष्कर्ष पर पहुँचा है कि यह संसार सूर्य का ही एक अंश है। किसी समय में—संभवतः आज से दस बीस अरब वर्ष पहले उससे एक पृथक पिण्ड के रूप में आया और शायद कुछ अरब वर्ष पश्चात् फिर उसी में मिल जाय। इस बीच में इसमें जितने भी ज्ञात और अज्ञात परिवर्तन हो रहे हैं और छोटे-बड़े अगणित प्राणियों की उत्पत्ति होकर विकास की गति [illegible] मनुष्य तक पहुँच चुकी है, इन सबका मूल स्रोत सूर्य ही है। सूर्य से पृथक किसी संसार की कल्पना ही नहीं की जा सकती। इसलिए भगवान् कृष्ण ने जो यह कहा कि प्रत्यक्ष देवता सूर्य नारायण ही हैं, इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं है। आगे चल कर पुराण रचयिता ने यह

भी कह दिया है कि सूर्य ही एक मात्र देव हैं और अन्य सब देवता उन्हीं के रूपान्तर या पर्यायवाची हैं—

"आदित्य के आदि देव और अज्ञात (अज-मा) होने से वह 'अज' कहा गया है। देवो मे सबसे बडा देव है इसलिए 'महादेव' के नाम से प्रसिद्ध हैं। लोक का सर्वेश और अधीश होने के कारण उसे 'ईश्वर' का नाम दिया गया है। वृहत् होने से उसे 'ब्रह्मा' पुकारा गया है और भवत्व होने से उसका 'भव' नाम पडा है। वही समस्त प्रजा की रक्षा और पालन करता है इसलिये उसे 'प्रजापति' कहा गया है। कही से उत्पन्न न होने और अपूर्व होने से 'स्वयम्भू' के नाम से प्रसिद्ध हैं। हिरण्य-अण्ड मे रहने वाला है और ग्रहो का स्वामी है इससे 'हिरण्यगर्भ' नाम पडा। देवो का भी देव होने से 'दिवाकर' कहा गया। तत्वदर्शी महर्षियो ने जल का एक नाम 'नारा' कहा है, वही जल उनका निवास स्थान होने से वह 'नारायण' कहे गये। वह सहस्त्रशीर्षो, सहस्र नेत्रो वाला और सहस्र पैरो वाला है। वही आदित्य के वर्ण वाला इस भुवन का रक्षक और पुराण पुरुष है।'

धर्म की प्रधानता—

भारतीय धर्म शास्त्रो मे मानव जीवन का लक्ष्य पुरुषार्थ चतुष्टय अर्थात् धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष को बतलाया गया है। इनमे धर्म का सबसे पहले उल्लेख करने का उद्देश्य यही है कि बिना धर्म का विचार किये जो धन, वैभव प्राप्त किया जाता है वह कभी कल्याणकारी नही होता। 'भविष्य-पुराणकार' ने स्पष्ट कहा है—

परित्येजदर्थकामौ यौ स्याताम् धर्मवर्जितौ।
सर्व लोक विरुद्ध च धर्ममप्याचरेन्न तु॥

अर्थात्—"धर्म से रहित जो अर्थ और काम है उनको त्याग देना चाहिये और जो समस्त लोक के विरुद्ध धर्म है उसको भी स्वीकार नही करना चाहिये।" इस प्रकार 'भविष्य पुराण' का निर्णय यही है कि मनुष्य को सबसे पहले और सबसे अधिक ध्यान धर्म पर ही देना चाहिये। जो धर्माचरण करेगा उसे अन्य वस्तुयें उचित और न्याययुक्त रूप मे स्वयम् मिल जायेंगी। पुराणकार कहते हैं—

"धर्म से अर्थ प्राप्त होता है और धर्म से ही काम भी उपलब्ध होता है। धर्म से ही अपवर्ग हुआ करता है, इसलिए धर्म का आश्रय ग्रहण करना आवश्यक है। धर्म अर्थ, काम इनका त्रिवर्ग माना गया है, इनके गुण क्रमश सत्त्व, रज, तम होते है। जो सत्त्व मे स्थित होते हैं वे ऊर्ध्व भाग मे जाते है राजस वाले मध्य मे और तमोगुणी अधोगति मे जाया करते है। जो व्यक्ति धर्म का पालन करता है उसे अर्थ और काम की प्राप्ति स्वयम् हो जाती है, और इस लोक के जीवन को सुख-सतोष के साथ व्यतीत करके वह देहान्त के पश्चात् ईश्वर के सान्निध्य को प्राप्त होता है। इसलिए अर्थ और काम से युक्त धर्म का सेवन करना ही बुद्धिमत्ता है। धर्म से काम और अर्थ स्वय ही प्राप्त होते हैं।'

विज्ञजनो ने सदा से यही उपदेश दिया है कि धर्म से ही मनुष्य का कल्याण होता है और सब प्रकार का सुख भी प्राप्त होता है। पर आज जिसे देखो उसकी मति इसके विपरीत ही दिखाई पडती है। आज किसी को यह कहते सकोच नही जान पडता--"अजी, धर्म मे क्या रखा है। धर्म वाले तो सदा दु ख ही उठाते हैं और अधर्मी स्वार्थी लोग मौज, शौक का जीवन बिताते हैं।" बाह्य दृष्टि से देखने पर उनका कथन कुछ ठीक भी जान पडता है। क्योकि वर्तमान समय मे जो लोग कोठियो और बगलो मे रहते है, मोटरो मे चलते हैं, बढिया पोशाक और कीमती खाद्य सामग्रियो का उपयोग करते हैं, उनमे से ज्यादातर धर्म' की तरफ से उदासीन ही रहते है और अधिकाश भ्रष्टाचार अथवा अनैतिक ढङ्ग से धनोपार्जन करने वाले भी होते हैं। इसी दृश्य को देख कर सामान्य बुद्धि के लोग यही समझ लेते है कि 'अधार्मिक' लोग सुखी और धर्म का पालन करने वाले दुरवस्थाग्रस्त रहते हैं।

पर इस गलतफहमी का कारण उनका धर्म के स्वरूप और सृष्टि के नियमो को न समझ सकना ही है? वे लोग सुख और दु ख की वास्तविकता से भी अनजान होते हैं और इतनी ही बुद्धि रखते है कि पास में काफी रुपया रहने से हर एक इच्छित वस्तु प्राप्त की जा सकती है, और यही सुख का

साधन है। पर वे यह नहीं देखते कि हजारों व्यक्ति लखपती, करोड़पती होने होने पर भी रोते, कलपते रहते हैं और गृह-कलह से दुःखी होकर अनेक बार आत्महत्या भी कर लेते हैं। फिर अधिकांश धनी लोगों का स्वास्थ्य भी ठीक नहीं रहता, कोई न कोई रोग उनको लगा ही रहता है और उनकी शरीर-यात्रा डाक्टरों के भरोसे ही चलती है। और अंतिम बात यह है कि जो धर्म का ध्यान छोड़कर अर्थ और काम की खोज में ही रहेगा उसे कभी मानसिक शांति नहीं मिल सकती और उसके बिना सच्चे सुख के दर्शन कभी नहीं हो सकते।

वृक्षारोपण का महत्व—

इस पुराण में धार्मिक अनुशासन के अतिरिक्त गृहस्थों के अनेक कर्तव्यों का भी निरूपण किया है जो सामाजिक उन्नति और व्यक्तिगत सुख शांति की दृष्टि से बहुत उपयोगी हैं। धर्म कर्तव्यों का पालन भी समाजोन्नति और जन कल्याण की दृष्टि से किया जाता है पर जिन कार्यों का धर्म से कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं है, पर जो समाज और व्यक्ति की दृष्टि से हितकारी है, उनको भी यहाँ के मनीषियों ने धर्म का ही एक अङ्ग बना दिया है जिससे लोग उनके पालन में उदासीनता न करें। इस दृष्टि से विचार करते हुये 'भविष्य पुराण' में वृक्षारोपण का जो माहात्म्य बतलाया है वह ध्यान देने योग्य है—

'*जो वृक्ष छाया देता है पुष्प देता है फल दिया करता है,* और मार्ग में या देवालय में रहता है वह पितृगण को पाप से तार दिया करता है। ऐसे *स्थान में समारोपित छाया, पुष्प एवं फलों के देने वाला वृक्ष इस लोक में कीर्ति* देता है और शुभ फल प्राप्त कराता है। जो पितृगण हो चुके हैं और जो आगे होने वाले हैं उन सब पितरों को वह वृक्षों का रोपण करने वाला तार देता है इसलिए वृक्षारोपण प्रत्येक बुद्धिमान व्यक्ति के लिये आवश्यक है। इस लोक में जो मनुष्य पुत्रहीन हो उसको ये समारोपित वृक्ष पुत्रवान कर देते हैं। इस-लिए मनुष्यों को प्रयत्न पूर्वक वृक्ष लगाना चाहिए। सैकड़ों और सहस्रों पुत्रों से भी ऐसा एक वृक्ष अधिक विशेषतायुक्त होता है। इसलिए मनुष्य को एक,

दो या तीन वृक्ष अवश्य लगाने चाहिये। अश्वत्थ वृक्ष का समारोपण मुक्ति प्रदान करने वाला होता है। लाखों और करोड़ों की सम्पत्तिवान बनाने वाला होता है।

'जो अशोक का वृक्ष लगाता है उसके शोक-सन्ताप दूर हो जाते हैं। प्लक्ष (पाकर) के वृक्ष के आरोपित करने से भार्या की प्राप्ति होती है। बिल्व का वृक्ष दीर्घायु प्रदान करने वाला होता है। जामुन का वृक्ष धन प्रदान करने वाला होता है तिन्दुक के लगाने से कुल की वृद्धि होती है, दाड़िम से भी पत्नी की प्राप्ति होती है और बकुल (मौलसिरी) तथा बञ्जुल के वृक्ष पापों के हनन करने वाले तथा बल बुद्धि के प्रदाता होते हैं। धातकी का वृक्ष स्वर्ग प्रदाता और वट वृक्ष मोक्ष देने वाला होता है। आम का वृक्ष कामना पूर्ण करने वाला, गुवाक का सिद्धि प्रदायक बल्वज, मधूक और अर्जुन के वृक्ष अन्न की वृद्धि करने वाले होते हैं। कदम्ब के आरोपण से विपुल कीर्ति की प्राप्ति होती है। जीवन्ती के वृक्ष से रोग शान्ति और केशर के लगाने से शत्रु नाश होता है। शिंशपा अर्जुन जयन्ती, हयमारक, श्रीवृक्ष, किंशुक (ढाक) के वृक्षों के लगाने से स्वर्ग की प्राप्ति हुआ करती है।

वृक्षारोपण समाज के लिए कल्याणकारी है और इस प्रवृत्ति को बढ़ाना प्रत्येक समाजहितैषी का कर्तव्य है। वर्तमान समय मे भी देश में वृक्षों का अभाव देख कर राज्य की तरफ से वृक्षारोपण समारोहों की प्रथा प्रचलित की गई थी। फल फूल पत्ते लकड़ी, छाया—ये सब जीवन निर्वाह के लिए आवश्यक हैं, मनुष्यों का ही नहीं पशु और पक्षियों का पालन भी इन्हीं के आधार पर होता है। इसलिए पुराणकर्ता ने विविध वृक्षों के लाभों का और अनेक अप्रत्यक्ष सद्परिणामों का भी मनोरञ्जक शैली में वर्णन करके लोगों को जहाँ जैसा सम्भव हो वृक्ष लगाने की प्रेरणा दी है।

सामाजिक कर्तव्यों का पालन—

आज संसार में धर्म, राजनीति समाजनीति आदि को एक दूसरे से पृथक मानने की मनोवृत्ति बढ़ती जाती है। अनेक प्रसिद्ध नेता और समाज में आदरणीय

माने जाने वाले व्यक्ति भी व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन मे हानिकारक अन्तर रहने को बुरा नहीं समझते और मद्य, मास, व्यभिचार आदि को निजी (प्राइवेट) विषय बतलाकर सर्व साधारण के सम्मुख दूषित आदर्श उपस्थित किया करते हैं। पर प्राचीन भारत का आदर्श इससे सर्वथा भिन्न था। उस समय मानव-जीवन की समस्त प्रवृत्तियो का एक ही लक्ष्य माना जाता था और वह था सद्वृत्तियो और सद्विचारो की वृद्धि। जब तक मनुष्य अपने आन्तरिक भावो को शुद्ध और श्रेष्ठ रख कर तदनुसार व्यवहार नहीं करेगा तब तक केवल मुख से उत्तम उपदेश करना अथवा बडे-बडे आध्यात्मिक सिद्धान्तो का प्रचार करना महत्वहीन है। सच्ची आध्यात्मिकता और धार्मिकता तो यही है कि जो कुछ कहा जाय उसका स्वयम् परिपूर्ण निष्ठा के साथ पालन भी किया जाय। ऐसा करने से जो थोडा-सा भी उपदेश दिया जायगा उसका पूर्णतया प्रभाव पडेगा और सामान्य व्यक्ति स्वय धर्म की ओर प्रवृत्त होते जायेंगे। इसी तथ्य को दृष्टिकोण मे रख कर 'पुराण' मे कहा गया है—

"यज्ञ करते समय जो आनन्द और प्रसन्नता से रहित होता है और क्रोध से युक्त होकर निकृष्ट वस्तुयें प्रदान करता है वह 'कृपण' सम्पूर्ण धर्मों से बहिष्कृत होता है। बिना किसी दोष के शुभ कर्मों का त्याग करने वाला पुण्य कर्मों का बेचने वाला बन जाता है। माता-पिता और गुरु का त्याग कर देने वाला तथा शौच और आचार से वर्जित रहने वाला घोर पापी माना गया है। जिसने जीवित माता-पिता की सेवा से मुख मोड लिया है वह दूसरा पापी है। हवन का त्याग करने वाला तीसरा पापी है। जो ऊपर से मूठ-मूठ साधु का-सा आचरण करने का ढोंग करता है, उसे भ्रष्ट समझना चाहिये। इसी प्रकार जो धन देकर विषय-सेवन करता है वह भी नष्ट है। इन दो के अतिरिक्त देव पूजा की कमाई से पेट भरने वाला, स्त्री की कमाई अथवा कन्या को बेचकर अथवा स्त्री-धन द्वारा जीवन निर्वाह करने 'नष्ट' माने गये हैं। शास्त्र के मतानुसार में स्वर्ग और मोक्ष के भागी नहीं हो सकते। जिसका मन सदा क्रोध से भरा रहता है, जो मरने मे निम्न स्थिति के व्यक्ति को देख कर बड़ा

गुस्सा दिखलाता है जिसकी भृकुटियां सदैव तिरछी ही रहती हैं और क्रुद्ध रहता है, आदि पांच प्रकार के 'रुद्र' बतलाये गये हैं। ये सदा निरर्थक बातों में लगे रहते हैं और धर्म कर्म में ध्यान नहीं दे पाते। रात दिन निद्रा में रहने वाला व्यसनों में आसक्ति रखने वाला मद्यपान करने वाला स्त्रियों को भ्रष्ट करने वाला और दुष्ट पुरुषों से वार्तालाप करने वाला अकेला ही मिष्ट पदार्थों को खाने वाला सज्जन पुरुषों की अकारण निन्दा करने वाला—ये सात प्रकार के 'दुष्ट' होते हैं। जो द्विज, निगम आगम एवं शास्त्रों को न पढ़ता है न पढ़ाता ही है न कभी इनको श्रवण ही करता है वह भी दुष्ट कहा जाता है।

यों तो सभी व्यक्ति जीवित रहते हैं और अपने अपने भावानुसार अपना महत्त्व भी समझते हैं पर वास्तविक जीवन उसी का है जो समाज की वृद्धि और समृद्धि में योगदान दे सके। जिसका आचार विचार ही ठीक नहीं, जो जिह्वा और इंद्रिय के भोगों की लालसा से अपने कर्तव्य पालन से हट जाता है, वह समाज का क्या हित कर सकता है? ऐसा निम्नस्तर का स्वार्थी तो सदा अपना पेट भरने, विषय वासना की तृप्ति करने में ही संलग्न रहेगा और उसकी पूर्ति में यदि निन्दनीय, गर्हित उपायों से काम लेने की आवश्यकता पड़ेगी तो उनके करने में भी न हिचकिचायेगा। ऐसे व्यक्ति समाज के उपयोगी सदस्य होने की बजाय उसमें तरह-तरह के दोष, दुर्गुणों को फैलाने वाले सिद्ध होते हैं और उनका अंतिम परिणाम सदैव शोचनीय ही होता है।

राजवंश वर्णन—

इस पुराण के 'मध्यम-पर्व' में जो चारों युगों के राजाओं की वंशावली दी है वह भी अपने ढङ्ग की अनोखी है। अन्य सब पुराणों की में जहाँ सूर्य वंश और चन्द्रवंश के प्रमुख राजाओं की चरित्र-सम्बन्धी विशेष घटनायें दी गई हैं वहाँ इसमें सैकड़ों राजाओं के केवल नाम और उनका शासन काल दिया हुआ है। इसमें राजा इक्ष्वाकु और पुरुरवा आदि से उत्पन्न सूर्य और

चन्द्रवंश के अतिरिक्त और भी अनेक ऐसे वंशों का वर्णन दिया है जिनको हम अन्यदेशीय और विधर्मी मानते हैं। उदाहरण के लिए इसमें हजरत नूह (न्यूह) का वर्णन 'म्लेच्छ' के नाम से दिया है और लिखा है कि वे भगवान विष्णु के भक्त थे और उन्हीं की आज्ञा तथा कृपा से जल-प्रलय से बचकर उन्होंने नवीन मानव-वंश की स्थापना की थी। 'आदम' और 'हव्वा' (हव्यवती) को भी उन्होंने विष्णु-भक्त लिखा है और बतलाया है कि उन्होंने कलियुग के बहकाने से भगवान द्वारा वर्जित पेड़ के फल खाकर नई सामाजिक मर्यादा का प्रारम्भ किया—

''जो 'आत्मा' के ध्यान में ही परायण है, उसने इन्द्रियों का 'दमन' करके 'आदम' नाम को प्राप्त किया। उसकी पत्नी हव्यवती (हव्वा) नाम वाली कही गई। 'प्रदान' (अदन) नगर के पूर्व भाग में 'महावन' नाम का एक उद्यान परम सुन्दर और चार कोस विस्तार वाला कहा गया है। उसी उद्यान में पाप-वृक्ष के तले वह अपनी पत्नी के दर्शन में तत्पर था। कलि वहाँ शीघ्र आ गया, जो सर्प का रूप धारण किये हुये था। उस धूर्त ने उसे बहकाकर विष्णु की आज्ञा भङ्ग करने वाला बना दिया। आदम ने उस वृक्ष के 'लोक-मार्गप्रद' फल खाये। आदम नौ सौ तीस वर्ष जीवित रहा और उसके जितने पुत्र-पौत्र हुये वे सब म्लेच्छ हो गये। आदम अपनी आयु के अन्त में फलों का हवन करता हुआ पत्नी सहित दिव्य लोक को चला गया।''

बहुत से पाठकों को यह वर्णन अजीब-सा जान पड़ेगा, पर जो लोग यह जानते हैं कि संसार के समस्त धर्म और सम्प्रदायें आर्य-धर्म और भारतीय संस्कृति से ही निकली हैं, उन्हें इसमें कुछ आश्चर्य नहीं होगा। प्राचीन इतिहास की खोज करने वालों को कहना है कि वैदिक धार्मिक क्रियाओं और शिक्षा से भी पारस्परिक मतभेद के कारण बहुसंख्यक भारतवासी, जो असुर, दैत्य, पणि आदि कहलाते थे समुद्री मार्ग से इराक, फैलस्टाइन, मिश्र आदि चले गये और वहाँ उन्होंने नवीन सम्प्रदायों को जन्म दिया।

इन्हीं में से असुरों ने 'असीरिया और पणियों ने 'फिनीशिया' आदि राज्यों की स्थापना की थी । कुछ भी हो इसमें सन्देह नहीं कि इन समुद्र पार के देशों से भारत का सम्बन्ध हजारों वर्षों से चला आया है और कभी मेल जोल और कभी लड़ाई झगड़ा द्वारा उनसे हमारा आदान-प्रदान होता रहा है। वेदों में भी ऐसे संघर्षों का वर्णन पाया जाता है। सम्भवत. ऐसी ही किसी जाति द्वारा एक आर्य नरेश का पुत्र 'भुज' समुद्र के मध्य में आक्रान्त किया गया था, जहां से उसकी रक्षा 'अश्विनी कुमारों' ने की थी। ऐसी दशा में जब तक यहूदी धर्म (जो ५००० वर्ष पूर्व चलाया गया है), ईसाई धर्म (जिसे १९६८ वर्ष हुये हैं) और मुसलमानी धर्म (जो केवल १३८८ वर्ष पुराना है) नहीं थे, तो उस समय वहां के निवासी भारतीय धर्म की ही एक शाखा के रूप में रहे हों, इसमें असम्भव क्या है ?

भारत का मध्यकालीन इतिहास–

क्षत्रियों को दण्ड देने के लिये ही भेजा था। इसी से ऊदल का नाम 'कृष्णांश' लिखा गया है। आल्हा और मलखान भी प्रमुख देवताओ के अंश थे। एक अन्य अध्याय मे यह भी कहा गया है कि महाभारत कालीन सभी पाण्डवो ने आल्हा-ऊदल के पक्ष मे जन्म लिया था और कौरव पृथ्वीराज (धृतराष्ट्र) के पक्ष मे उत्पन्न हुये थे। इस बार भी इन दोनो पक्षो ने महाभारत के समान घोर गृह-युद्ध करके युग-परिवर्तन का मार्ग उन्मुक्त कर दिया।

जैसा भारतीय इतिहास के पाठक जानते हैं पृथ्वीराज, जयचन्द्र और आल्हा ऊदल की कलह के फल स्वरूप ही भारत की रक्षा-शक्ति अधिकाश मे नष्ट हो गई और उसी से विदेशी मुसलमान आक्रमणकारियो को भारतवर्ष मे अपनी जड जमाने का अवसर प्राप्त हो सका। इसलिए अधिकाश व्यक्ति इन कलहशील क्षत्रिय राजाओ को और विशेषकर जयचन्द्र को कोसा करते हैं कि उसने पारस्परिक द्वेष के कारण भारत को विदेशियों का गुलाम बनाने मे सहयोग दिया। पर आध्यात्मिक जगत की गतिविधियो को जानने वाले और उनको प्रत्यक्ष कारणो से अधिक महत्व देने वाले पुराणकार बुराई में भी किसी छुपी हुई भलाई को देखते हैं। उनके विचारानुसार इस समस्त लीला के सूत्रधार भगवान ही होते हैं और वे किसी दूरवर्ती उद्देश्य की पूर्ति के लिए कुछ ऐसा विधान भी रचते हैं, जो चाहे आरम्भ मे हानिकारक जान पडे पर जिसका अन्तिम परिणाम शुभ होता है।

ऐसे लोगो के मतानुसार देश के छोटे छोटे सैकडो राज्यो मे बँट जाने और उनके परस्पर लडते-झगडते रहने से सामाजिक और राष्ट्रीय विकास की गति रुद्ध हो गई थी। जहाँ अन्य देश अपना राष्ट्र-व्यापी सुदृढ सङ्गठन बनाकर प्रगति पथ पर अग्रसर हो रहे थे, अरब जैसा 'जाहिल' देश सौ-दो सौ वर्ष के भीतर ही स्पेन से जावा सुमात्रा तक अपना प्रभाव फैला चुका था, वहाँ भारत की शक्ति मूर्खतापूर्ण झूठे झगडों मे नष्ट हो रही थी। देश में कोई ऐसी केन्द्रीय सत्ता न थी जो विभिन्न भागो को एकता के सूत्र मे बाँध कर अन्य राष्ट्रो के मुकाबले में आगे बढ़ाती। इसलिये ऐसी विचारानुसार भारत का हित इसी में

था कि प्रथकता और द्वेष की प्रवृत्तियाँ विनष्ट होकर लोगों को सङ्गठन और सहयोगयुक्त जीवन यापन का महत्त्व विदित हो। यह तब तक सभव न था जब तक कि अहंकारी और संसार की गति विधि से अनजान राजाओं को एक गहरी ठोकर न लगती और उनकी हठधर्मी को बलपूर्वक दूर न किया जाता। भविष्य पुराण' के म्लेच्छ वंशों के उदय और उनका राज्य स्थापन होने का वृत्तान्त पढ़कर पाठक यही अनुभव करेंगे कि यह जो कुछ हुआ उसका पूरा विधान दैवी शक्ति ने पहले ही बना रखा था।

आधुनिक युग की झलक—

'भविष्य पुराण' में कलियुगी राजवंशों तथा राजाओं का जो वर्णन किया है वह बहुत विस्तृत है और उनमें अधिकांश नाम ऐसे हैं जिनके विषय में हम न तो इतिहास से कुछ जान पाते हैं और न अन्य पुराणों से। यों तो इनमें मुसलमान बादशाहों के शासन तथा अंग्रेजों (गुरुण्ड) के आगमन तक का वर्णन कर दिया गया है पर वह सब ऐसा अतिशयोक्ति पूर्ण और कौतूहलवर्धक है कि उसकी जाँच ऐतिहासिक वर्णन के रूप नहीं की जा सकती। पुराणों की शैली के अनुसार रचयिता ने प्रत्येक व्यक्ति और घटना को अद्भुत रूप दिया है और उसका सम्बन्ध प्राचीन युगों के देव, असुर, दैत्य, दानव, नाग आदि समुदायों के प्रसिद्ध व्यक्तियों से जोड़ा है। उदाहरणार्थ उसने अकबर बादशाह को मुकुन्द ब्रह्मचारी का अवतार लिखा है और उसके समस्त सहयोगियों को उसका पूर्वजन्म का शिष्य बतलाया है। इस अद्भुत उपाख्यान का एक अंश इस प्रकार है—

"जब दैत्यों के राजा बलि ने यह सुना कि भगवान कृष्णचैतन्य और इनके सहयोगी अनेक सन्तों द्वारा कलियुग में धर्म की वृद्धि और देवताओं की विजय हो रही है, तो उसने 'रोपण' नाम के दैत्य को बुला कहा कि तैमूरलंग का पुत्र बाबर नाम से विख्यात है तू वहाँ जाकर दैत्यों के महान कार्य का सम्पादन कर। यह सुनकर वह दैत्य हृदय में विशेष रोष प्राप्त करके देहली नगर में आया और उसने वेद मार्ग पर चलने वालों का बहुत अधिक नाश किया।

उसका पुत्र बाबर हुआ और उसने भी अपने राज्य की नींव खूब मजबूत की। उसका पुत्र हिमायूँ हुआ, जिसने देवताओं का निरादर किया। इस कारण देवगण ने भगवान को अपनी दुःख गाथा सुनाई। इस पर हरि बहुत क्रोधित हुए और उन्होंने अपने तेज द्वारा ही उसके राज्य मे विघ्न उपस्थित कर दिया। स्वयं हिमायूँ की सेना के एक प्रधान 'शेष शाक' (शेरशाह) ने हिमायूँ को हरा कर बाहर निकाल दिया।

"ब्रह्मचारी मुकुन्द, जो शङ्कराचार्य के गोत्र मे जन्मा था प्रयाग मे अपने बीस शिष्यो सहित तप करता था। उसने यह देख कर कि म्लेच्छों के धूर्त बादशाह बाबर ने देवताओं को अर्दित कर दिया है, अपने शरीर की अग्नि में आहुति दे दी। उसके शिष्य भी म्लेच्छों का नाश करने के उद्देश्य से अग्निकुण्ड मे भस्म हो गये। गाय के दूध के साथ उसका एक रोम पेट मे चले जाने के पाप से मुकुन्द को म्लेच्छ वश मे जन्म लेना पडा। जिस समय हिमायूँ काश्मीर मे था उसी समय उसके यहाँ पुत्र-जन्म हुआ। उस पुत्र के होते ही आकाशवाणी ने कहा—यह 'अकस्मात् वर' पुत्र 'अकबर' के नाम से प्रसिद्ध होगा। यह सब प्रकार से सौभाग्यवान है। यह दारुण पैशाच मार्ग मे न कभी रहा है और न रहेगा।" आगे चलकर यह भी कहा गया है कि मुकुन्द के पूर्व-जन्म के सात प्रमुख शिष्य ही मानसिंह, बीरबल, तानसेन, बैजू बावरा, विल्व मगल, हरिदास, माधव आदि के रूप मे उसके सम्पर्क म आये और सहायक बने।

इतना ही नही कबीर, नानक, पीपाजी, गो॰ तुलसीदास, सूरदास, शिवाजी, औरङ्गजेब, नादिरशाह आदि सभी प्रसिद्ध व्यक्तियो की चर्चा इसमें की गई है और उनके पूर्व जन्मा का विवरण बतलाकर इस जन्म के कर्मों की आलोचना की गई है। यह सब वर्णन किस प्रकार किया गया है, इसके सम्बन्ध म विभिन्न व्यक्ति अपनी सम्मति पृथक-पृथक प्रकट करते हैं। गुप्त दैवी शक्तियों मे विश्वास रखने वाले तो मुनि-ऋषियो को दिव्य दृष्टि वाला मान कर इन विवरणों को प्राचीन ही मानते हैं। अन्य लोगो का कथन है कि जिस प्रकार अनेक धार्मिक ग्रन्थो में लोगो ने प्रक्षिप्त अश जोड दिये हैं—थोडे समय

और क्षत्रियों का मिल सकना अत्यन्त कठिन है। उनकी संख्या नगण्य रह गई है। अन्यथा सभी ब्राह्मण और क्षत्रिय नामधारी आज व्यापार-व्यवसाय (वैश्यकर्म) या नौकरी, कारखानों का काम, मजदूरी (शूद्र कर्म) कर रहे हैं। यन्त्रों का प्रचार जैसा बढ़ रहा है वह तो प्रत्यक्ष ही है। खेत जोतने से से लेकर कपड़ा धोने तक का काम इञ्जिन या बिजली की शक्ति से चलने वाले यन्त्रों से होने लग गया है। 'वर्णशङ्कर' होना या कहा जाना आजकल कुछ भी अर्थ नहीं रखता। एक-एक वर्ण में सैकड़ों प्रकार की जातियाँ, उपजातियाँ होने का कारण 'वर्ण सङ्करता' की वृद्धि ही है। आज अपने को केवल ब्राह्मण या वैश्य कहने वाले व्यक्ति तो नाम मात्र को मिलेंगे। जिससे पूछा जायगा वही अपनी उपजाति का ही नाम लेकर परिचय देगा। इस दृष्टि से पुराण रचयिता द्वारा भावी जगत की रूप रेखा के सम्बन्ध में निकाला गया निष्कर्ष प्रायः ठीक ही मानना पड़ेगा।

गर्भावस्था निरूपण–

जीवात्मा की अमरता और पुनर्जन्म का सिद्धान्त भारतीय धर्म का मेरुदण्ड है। इसका समस्त आचार-विचार, मर्यादा, संयम, नियम, परोपकार, दया, क्षमा, आदि सद्गुण इसी पर आधारित हैं, जिन धर्मों ने इनके तत्व को ठीक प्रकार से नहीं समझा है, वे शीघ्र ही भौतिकवाद की तरफ झुक जाते हैं। पर पुनर्जन्म में आस्था रखने के कारण भारतवासी इस विपरीत काल में भी आध्यात्मिक जीवन को किसी न किसी रूप में अपनाये हैं। 'भविष्य पुराण' में 'उत्तर-पर्व' में भगवान कृष्ण ने जीवात्मा की गर्भावस्था का दिग्दर्शन कराके यही उपदेश दिया है कि यदि मनुष्य अपना कल्याण चाहता है तो उसे भगवान का ध्यान और सत्कर्म का त्याग कभी नहीं करना चाहिये—

"यह प्राणी शुभ कर्मों के द्वारा ही देवत्व की प्राप्ति किया करता है और जो कर्म शुभ तथा अशुभ से मिश्रित होते हैं उनसे मानवता को प्राप्त किया करता है। जब सर्वथा अशुभ कर्म हों तो तिर्यक् योनियों में उत्पन्न होता है।

श्रौर क्षत्रियो का मिल सकना ग्रत्यन्त कठिन है। उनकी सख्या नगण्य रह गई है। ग्रन्यथा सभी ब्राह्मण ग्रौर क्षत्रिय नामधारी ग्राज व्यापार-व्यवसाय (वैश्यकर्म) या नौकरी, कारखानो का काम, मजदूरी (शूद्र कर्म) कर रहे हैं। यन्त्रो का प्रचार जैसा बढ रहा है वह तो प्रत्यक्ष ही है। खेत जोतने से से लेकर कपडा धोने तक का काम इञ्जिन या बिजली की शक्ति से चलने वाले यन्त्रो से होने लग गया है। 'वर्णशङ्कर' होना या कहा जाना ग्राजकल कुछ भी ग्रर्थ नही रखता। एक एक वर्ण मे सैकडो प्रकार की जातियाँ, उपजातियाँ होने का कारण 'वर्ण सङ्करता' की वृद्धि ही है। ग्राज ग्रपने को केवल ब्राह्मण या वैश्य कहने वाले व्यक्ति तो नाम मात्र को मिलेंगे। जिससे पूछा जायगा वही ग्रपनी उपजाति का ही नाम लेकर परिचय देगा। इस दृष्टि से पुराण रचयिता द्वारा भावी जगत की रूप रेखा के सम्बन्ध में निकाला गया निष्कर्ष प्राय ठीक ही मानना पडेगा।

गर्भावस्था निरूपण—

जीवात्मा की ग्रमरता ग्रौर पुनर्जन्म का सिद्धान्त भारतीय धर्म का मेरुदण्ड है। इसका समस्त ग्राचार-विचार, मर्यादा, सयम, नियम, परोपकार, दया, क्षमा, ग्रादि सद्गुण इसी पर ग्राधारित हैं, जिन धर्मो ने इनके तत्व को ठीक प्रकार से नही समझा है, वे शीघ्र ही भौतिकवाद की तरफ झुक जाते हैं। पर पुनर्जन्म मे ग्रास्था रखने के कारण भारतवासी इस विपरीत काल मे भी ग्राध्यात्मिक जीवन को किसी न किसी रूप मे ग्रपनाये है। 'भविष्य पुराण' के 'उत्तर-पर्व' मे भगवान कृष्ण ने जीवात्मा की गर्भावस्था का दिग्दर्शन कराके यही उपदेश दिया है कि यदि मनुष्य ग्रपना कल्याण चाहता है तो उसे भगवान का ध्यान ग्रौर सत्कर्म का त्याग कभी नही करना चाहिये—

"यह प्राणी शुभ कर्मों के द्वारा ही देवत्व की प्राप्ति किया करता है ग्रौर जो कम शुभ तथा ग्रशुभ से मिश्रित होते है उनसे मानवता को प्राप्त किया करता है। जब सर्वथा ग्रशुभ कर्म हो तो तिर्यक् योनियो म उत्पन्न होता है। धर्म ग्रौर ग्रधर्म का निश्चय करने म श्रुति ही प्रमाण मानी जाती है। जघन्य

कर्म से पाप होता है, और श्रेष्ठ कर्म से पुण्य की प्राप्ति होती है। जीव अपने कर्मों से ही शुक्र बीज द्वारा स्त्री के गर्भाशय में स्थित होता है। वहाँ पर शुक्र और रक्त एकत्र होकर एक दिन में 'कलल' हो जाता है। वह कलल पाँच रात्रि में बुदबुदाकार बन जाता है। वह बुदबुद सात रात्रि में मांसपेशी के रूप में होता और फिर दो सप्ताह में दृढ़ पेशी के रूप में बदल जाता है। दो मास में ग्रीवा, शिर, स्कन्ध, पृष्ठ-वंश और उदर सब क्रम से उत्पन्न होते हैं। इसी प्रकार विकसित होते हुए सात मास में अङ्ग, प्रत्यंग से पूर्ण शिशु का रूप ग्रहण कर लेता है। नाभि-सूत्र (नाल) के निबंध से वह दिनों दिन बढ़ता और पुष्ट होता रहता है। तब वह जीवात्मा स्मृति की प्राप्ति किया करता है और सुख-दुःख को भी जानने लगता है।'

"उसे उस समय यह ज्ञान होता है कि मैं मर गया था और अब फिर जन्म ग्रहण कर रहा हूँ। मैंने इस तरह की अनेक प्रकार की सहस्रों योनियाँ देखी हैं। इस बार जन्म लेने पर ऐसे कल्याणकारी मार्ग पर चलूँगा जिससे फिर गर्भवास का कष्ट सहन न करना पड़े। इस तरह जीवात्मा गर्भ में स्थित होता हुआ, भगवान का चिन्तन किया करता है और जरायु से बँधा हुआ और गर्भोदक से भीगा हुआ अत्यन्त व्याकुल रहता है। इस प्रकार यह गर्भवास प्राणियों को अत्यधिक दुःखदायी और कष्टयुक्त होता है। इससे भी बहुत अधिक कष्ट गर्भाशय से बाहर आते समय होता है। सुनार के तार खींचने के यन्त्र के समान अवस्था को प्राप्त होकर वह घोर पीड़ा का अनुभव करता है।"

हमारे देशवासियों में से अधिकांश का यही विश्वास है कि जीवात्मा को गर्भ की 'काल कोठरी' में जो पीड़ा सहन करनी पड़ती है उससे व्याकुल होकर वह भगवान की प्रार्थना करता है कि 'इस बार इस कष्ट से मुझे छुड़ाओ, अब मैं ऐसे शुभ कर्म ही करूँगा जिससे फिर इस प्रकार का दण्ड न भोगना पड़े।' पर जब वह गर्भाशय से बाहर आ जाता है तो जन्म लेने के समय की पीड़ा से मूर्छित-सा हो जाता है और उसकी सब स्मृति नष्ट हो जाती है और अपने स्वरूप को भूल कर मोह में फँस जाता है। इस प्रकार वह बालक से युवा और फिर प्रौढ़ होकर वृद्ध हो जाता है, तब फिर काल आकर उस पर

लेता है। इस प्रकार वह माया-मोह मे ग्रस्त होकर आत्मा का उद्धार करने का बजाय भव बधनों मे ही अधिकाधिक बँधता चला जाता है वह समस्त भौतिक पदार्थों को अपनी सम्पत्ति मान कर उनकी रक्षा के लिये व्याकुल रहता है। वह सब पुत्र कलत्र को अपना परम स्नेही समझकर उनके भविष्य के लिए घोर चिन्ता करता है, पर मृत्यु से किसी प्रकार छुटकारा नही हो सकता। इसकी अनिवार्यता के विषय मे पुराणकार लिखते हैं—

"इस मानव देह मे एक सौ एक मृत्यु प्रतिष्ठित हैं। उनमे से एक काल से सयुक्त होता है और शेष आगुन्तक होते हैं। जो आगन्तुक मृत्यु हैं वे औषधियो से शान्त हो जाते हैं और जप, होम, दान से भी उनकी निवृत्ति होती है, पर जो काल-मृत्यु होता है वह किसी प्रकार शान्त नही होता। यदि काल-मृत्यु नही है तो विष खा लने पर भी मनुष्य का शरीरान्त नही होता। देहधारियो की मृत्यु के अनेक द्वार (कारण) होते हैं—बहुत प्रकार के रोग, शस्त्र, सर्प आदि जीवो की बाधा, विष, अङ्गम आदि सभी मृत्यु प्राप्त होने के साधन हैं। काल-मृत्यु से पीडित पुरुष की रक्षा करने की सामर्थ्य औषध, जप दान, मन्त्र और बान्धव किसी मे भी नही होती।"

जन्म और मृत्यु का यह वर्णन अवश्य ही प्रभावपूर्ण है और यदि मनुष्य इसका हार्दिक रूप से मनन करता रहे तो उसके विचारो मे सुधार होना भी सभव है। गर्भ काल मे भौतिक मस्तिष्क की तो कुछ सोचने, समझ सकने स्थिति नही होती, पर जीवात्मा तो प्रत्येक अवस्था मे सकल्प विकल्प करता ही रहता है। स्वर्ग में या प्रेत लोक मे जब उसको स्थूल शरीर सर्वथा नहीं होता तब भी वह सब प्रकार की भावनायें, अच्छे-बुरे विचार और सङ्कल्प किया करता है। इस दृष्टि से गर्भकाल मे यदि उसे अपने गत जन्मों के कर्मों पर परिताप करते चित्रित किया गया है तो यह कोई अनुचित बात नही है। इस प्रकार की प्रेरणा मनुष्य के लिए कल्याणकारी ही होती है। वैसे भी आत्मा पर पडने वाले गूढ सस्कारो के विषय मे कोई स्पष्ट नियम अभी तक ज्ञात नही हो सका है, इसलिये भारतीय मनीषियो ने उसके जन्म-जन्मान्तर के उत्थान और पतन का जो वर्णन किया है उसे असम्भव नही कहना चाहिये।

'एकदेववाद' का प्रतिपादन—

पुराणों पर प्रायः यह आक्षेप भी किया जाता है कि उन्होंने एक परमात्मा के बजाय छोटे-बड़े अनेक देवों की पूजा का प्रचार किया है और इसके फल स्वरूप इस देश के निवासी पचासों सम्प्रदायों में विभक्त हो गये हैं। प्रत्यक्ष में तो यह ठीक ही जान पड़ता है, क्योंकि विभिन्न पुराणों में ब्रह्मा, विष्णु, शङ्कर, गणेश, देवी, इन्द्र, अग्नि, राम, कृष्ण, हनुमान, नाग शेष आदि अनेक देवताओं की पूजा का विधान और माहात्म्य बतलाया गया है। पर जब हम पुराणों की अन्तरङ्ग परीक्षा करते हैं तो मालूम होता है कि अनेक देव-देवियों की महिमा कथन करते हुए साथ-साथ यह भी कह दिया गया है कि ये सब एक ही परमात्मा के स्वरूप हैं। 'भविष्य-पुराण' का दृष्टिकोण इस सम्बन्ध में बहुत स्पष्ट है। उसने जोरदार शब्दों में देवताओं के एकत्व की घोषणा करते हुए कहा है—

ब्रह्मा विष्णुर्वृषाकश्च त्रयो देवाः सतां मता।
नाम भेदः क्रियाभेदैर्भिद्यन्ते नात्मना स्वयम्॥

अर्थात्—"ब्रह्मा, विष्णु और शिव ये तीन देवता सज्जनों द्वारा माने जाते हैं। ये नाम और कर्म के भेद से पृथक जान पड़ते हैं, पर स्वरूप की दृष्टि से इनमें कोई भिन्नता नहीं है।"

आदित्यश्चादिदेवत्वा तत्राभूः त्रिगुणात्मकः।
प्रातः प्रजापति रसौ मध्याह्ने विष्णुरिष्यते।
रुद्रोऽपराह्ने समो स एवैकस्त्रिधामत.॥

अर्थात्—"आदित्य (सूर्य) ही आदि देव हैं, जो त्रिगुणात्मक हो जाते हैं। यह प्रातःकाल में ब्रह्मा, मध्याह्न में विष्णु और दोपहर के बाद (अपराह्न) में रुद्र हो जाते हैं। इस प्रकार वे एक ही तीन स्वरूपात्मक होते हैं।"

इस प्रकार पुराणकार ने देववाद की वास्तविकता को प्रकट करके यह उपदेश दिया है कि बौद्धिक स्तर अथवा मनोभावना के कारण मनुष्य दैवी शक्ति की किसी भी रूप में उपासना क्यों न करे पर उसे यह सदैव ध्यान

रखना चाहिये कि मूल तत्त्व मे कोई अन्तर नही है। इसी भावना के कारण भारतवासियो ने कभी किसी बाहरी धर्म या उसके देवता का भी अपमान नही किया। वरन् सबको उसी एक परमात्मा का स्वरूप मान कर नमस्कार ही किया, खेद है कि कुतर्की व्यक्तियो को पुराणो मे 'कृष्ण की रास-लीला', 'विष्णु द्वारा वृन्दा का सतीत्व भङ्ग', 'ब्रह्मा का मस्तक छेदन', 'शिवजी का लिङ्ग पूजन' आदि बातें तो बहुत जल्दी दिखाई पड जाती हैं, पर इन देवताओ के तात्त्विक स्वरूप और उनकी कथाओ में निहित गूढ आशय पर उनकी दृष्टि कभी नही गई। जैसा हम पहले भी बतला चुके हैं, पुराणो मे वेद, उपनिषद्, दर्शनो के ऊँचे से ऊँचे आध्यात्मिक सिद्धान्त प्रकट किये गये हैं पर सामान्य स्तर की जनता उसे सुन और समझ सके इस उद्देश्य से उनको प्राय मनोरञ्जक और शिक्षाप्रद कथाओ का रूप दे दिया गया है।

व्रत और पर्व–

पुराण के अन्तिम भाग मे जिन अनेक व्रतो और पर्वों का वर्णन किया गया है, वे हिन्दू धर्म के अभिन्न अङ्ग हैं और सामान्य जनसमुदाय मे उन्ही के द्वारा धार्मिक भावना की वृद्धि होती रही है। इनसे हमको अपनी प्राचीन सस्कृति और इतिहास का स्मरण होता रहता है और जातीय एकता की भावना भी दृढ हुआ करती है। कितने ही व्रत तो स्पष्ट रूप से समाजोपयोगी तथ्यो से समन्वित है। उदाहरण के लिए हम अश्वत्थ (पीपल), वट (बरगद), अशोक, आँवला, आम, तुलसी आदि वृक्षो की पूजा सम्बन्धी व्रतो को ले सकते हैं। ये सब पेड मानव-स्वास्थ्य और अन्य समाजोपयोगी कार्यों की दृष्टि मे महत्त्वपूर्ण है और व्रतो के नाम पर ही इनकी रक्षा करना तथा उनके सम्पर्क मे रहना सब प्रकार से लाभकारी है। यह अवश्य है कि दान दक्षिणा के लोभी धर्म व्यवसायी लोगो ने उनके स्वरूप और विधानो को बहुत कुछ विकृत कर दिया है, पर फिर भी इसका प्रभाव 'भविष्य-पुराण' के वर्णना मे अपेक्षाकृत कम है। कुछ भी हो हमको अपनी इस प्राचीन परम्परा को स्थिर रखना चाहिये और समयानुकूल सशोधनो द्वारा उसे अधिक उपयोगी बनाना चाहिए।

व्रत और पर्वों का जो विधान प्राचीन ग्रन्थो मे दिया गया है, वह व्यक्तिगत लाभ और आत्म विकास की दृष्टि से विशेष उपयोगी है। उदाहरणार्थ मनुष्य के स्वास्थ्य का बहुत कुछ आधार खाये हुए आहार के ठीक तरह पचकर उसका शुद्ध रस और रक्त बनने पर है। पर आहार विहार म गडबडी हो जाने से अनेक व्यक्तियो की पाचन क्रिया मे त्रुटियाँ उत्पन्न हो जाती है और उसके परिणाम स्वरूप स्वास्थ्य पर कुप्रभाव पडने लगता है। व्रतो मे प्राय थोडा बहुत उपवास करना ही पडता है अथवा भोजन अल्प मात्रा मे और हल्का किया जाता है। यदि इन नियमो का समझदारी के साथ पालन किया जाय तो विभिन्न व्रतो से हम स्वास्थ्य का ठीक रखने मे काफी सहायता पा सकते हैं। यह बात दूसरी है कि हम अर्थ का अनर्थ करके मेवा, मिठाई पक्वान आदि पदार्थ अधिक मात्रा मे खा जायें और इस तरह लाभ के स्थान पर उल्टा हानि उठायें। इसी प्रकार व्रत और पर्वों के अवसर पर जप, भजन, कीर्तन, हवन आदि का उपयोगी रूप मे आयोजन करके हम मानसिक और आध्यात्मिक क्षेत्र मे भी प्रगति कर सकते हैं और व्यक्तिगत कुप्रवृत्तियो तथा दोषो का दमन करने म काफी हद तक सफल हो सकते हैं।

अनेक व्रत और पर्व सामूहिक रूप से भी मनाये जा सकते है और उससे समाज म सहयोग, सदव्यवहार और उदारता की प्रवृत्तियों की वृद्धि हा सकती है। पर ये सभी लाभ तभी सभव है जब व्रत और पर्वों को बुद्धिमत्ता पूर्वक और शुद्ध भावना से मनाया जाय। जो लोग इस सम्बन्ध म केवल लकीर पीटते रहते हैं अथवा खान पान दान की निगाह से उनम हानिकारक प्रवृत्तियाँ सम्मिलित कर देते हैं, उनका तो इनसे पृथक रहना ही अच्छा। आशा है पाठक इस पुराण म दिये गये व्रत के विधाना स लाभकारी निष्कर्ष ही निकालेंगे।

× × ×

भारत का पौराणिक-साहित्य बहुत विशाल और बिखरा हुआ है और आज उसे जो रूप प्राप्त हो गया है उसे पूर्णतया समाजोपयोगी नहीं कहा जा सकता। पिछले दिनों में अनेक लोगों ने अपने स्वार्थ के लिये उसका जो दुरुपयोग किया है, उससे बहुसंख्यक व्यक्तियों, विशेषतया नवशिक्षित लोगों में उनके प्रति विरोधी-भावना उत्पन्न हो गई है। अनेक व्यक्ति उन पर तरह-तरह के आक्षेप करने लगे हैं और उनको भी सामाजिक पतन का एक कारण बतलाते हैं।

अनेक लेखकों ने तो अपना उद्देश्य ही पुराणों का खण्डन करते रहना बना लिया है, और वे इधर-उधर से कुछ अंश लेकर उनकी आलोचना करने लग जाते हैं। ऐसी आलोचना में अनेक बार निरर्थक वितण्डावाद ही अधिक होता है, क्योंकि उन लोगों ने कभी पुराणों का मनोयोग पूर्वक अध्ययन किया ही नहीं होता। इस प्रकार की मनोवृत्ति अवश्य ही शोचनीय है, पर इसके लिए हम उनको अधिक दोषी नहीं कह सकते। हमने इतने समय तक पुराणों को ऐसे रूप में प्रकाशित ही नहीं किया जिससे वे सर्व साधारण के सामने पहुँचने लायक बनते और उनका ध्यान इनकी विशेषताओं की तरफ आकर्षित होता। पुराणों में प्राचीन इतिहास, संस्कृति, सामाजिक व्यवस्था, अर्थ व्यवस्था, कला, शिक्षा सम्बन्धी बहुत सी उपयोगी सामग्री भरी पड़ी है। पर वह केवल हमारी उपेक्षा और अज्ञान के कारण नष्ट हो रही है। यदि उसे सुन्दर, सुचारु रूप में भारतीय पाठकों के हाथों में पहुँचाया जाता तो निस्सन्देह उसका पर्याप्त प्रचार हो सकता था और लोग उससे लाभान्वित हो सकते थे। इस उद्देश्य से गत दो वर्षों में हमने जिन पुराणों के संशोधित, सुलभ सस्करण निकाले हैं उनके प्रति पाठकों की सद्भावनाओं और आग्रह को देख कर हमको दृढ़ विश्वास होता है कि हमारा यह प्रयास सफल और लोकरुचि के अनुकूल सिद्ध हुआ है। यदि पाठकों का ऐसा ही सहयोग मिलता रहा तो शेष पुराण भी शीघ्रातिशीघ्र उनकी सेवा में उपस्थित करने का उद्योग करेंगे।

मथुरा
दीपावली, १९६८

—श्रीराम शर्मा आचार्य

विषय-सूची



※ मध्यम-पर्व ※

※ प्रतिसर्ग-पर्व ※

भविष्य पुराण

ब्राह्मपर्व

★

॥ कथा प्रस्तावना ॥

नारायण नमस्कृत्य नर चैव नरोत्तमम् ।
देवी सरस्वती चैव ततो जयमुदीरयेत् ॥१॥
जयति पराशरसूनु सत्यवतीहृदयनन्दनो व्यास ।
यस्यास्यकमलगलित वाङ्मयममृतजगत्पिबति ॥२॥
मूक करोति वाचाल पगु लघयते गिरिम् ।
यत्कृपा तमह वन्दे परमानन्दमाधवम् ॥३॥
पाराशर्यवच सराजममलगीतार्थगधोत्कट
नानाख्यानककेसर हरि कथासबोधनाबोधितम् ।
लोके सज्जनषट्पदैरहरह पपीयमान मुदा
भूयाद्भारत पङ्कज कलिमलप्रध्वसि न श्रेयसे ॥४॥
यो गोशत कनक शृङ्गमय ददाति
प्रियाय वेदविदुषे च बहुश्रुताय ।
पुण्या भविष्यसुकथा शृणुयात्समग्रा
पुण्य सम भवति तस्य च तस्य चैव ॥५॥
कृत्वा पुराणानि पराशरात्मज सर्वाण्यनेकानि शुभावहानि ।
तथापि सौख्याय भविष्यधर्मान् कलौयुगे भावि जिनाग सर्वम् ॥६॥

तत्रापि सर्वेऽपि वरप्रमुख्यः पराशराद्यै मुनिभिः प्रणीतान् ।
स्मृत्युक्तधर्मागमसहितार्थान् व्यास. समासादवदद्भविष्यम् ॥७॥
अल्पायुषो लोकजनान्समीक्ष्य विद्याविहीनान्पशुवत्सुचेष्टान् ।
तेषा सुखार्थं प्रतिबोधनाय व्यास. पुराण प्रथित चकार ॥८॥

प्रारम्भ मे शिष्टाचारानुमत मङ्गलाचरण किया जाता है । सर्व प्रथम भगवान् नारायण को नमस्कार करे इसके अनन्तर नरो मे श्रेष्ठ नर को और फिर भगवती सरस्वती देवी को प्रणाम करके 'जय' शब्द का उच्चारण करना चाहिए ॥१॥ माता सत्यवती के हृदय को आनन्द प्रदान करने वाले पराशर मुनि के पुत्र व्यासदेव की जय हो जिन के मुख रूपी कमल से निसृत इस वाङ्मय अमृत का समस्त ससार पान किया करता है ॥२॥ जिसकी कृपा गूगे को बहुभाषी बना देती है और पंगले के द्वारा पर्वत का लङ्घन करा दिया करती है, उन परम आनन्दस्वरूप माधव की मैं वन्दना करता हू ॥३॥ पराशर मुनि के पुत्र व्यास के वचन रूपी सरोज अमल हैं जिसमे गीता के अर्थ का उत्कट गन्ध विद्यमान है । इस कमल मे अनेक आख्यान ही इसके केसर हैं और यह हरि कथा के सम्यक् बोधन से प्रबोधित होता है । लोक में सत्पुरुष रूपी भ्रमरो के द्वारा प्रतिदिन बड़े ही आनन्द के साथ इसके मकरन्द का पुन पुन पान किया जाया करता है । ऐसा यह भारत पङ्कज इस कलिकाल के मल को नष्ट करने वाला हमारे कल्याण के लिए होवे ॥४॥ जो वेदार्थ के ज्ञाता बहुश्रुत विप्र के लिये सुवर्ण से मण्डित सीगो वाली एक सौ गौओं का दान किया करता है और जो परम पवित्र इस भविष्य पुराण की सुन्दर एव समस्त कथा को सुनता है उन दोनो का समान ही पुण्य हुआ करता है ॥५॥ पराशर महर्षि के पुत्र व्यासजी ने अनेक पुराणो की रचना करके, जोकि परमपुण्य प्रदान करने वाले होते हैं, पश्चात फिर उन्होंने अपने सौम्य के लिये कलियुग मे होने वाले धर्मों को तथा आगे शुद्ध होगा उन सब को लिखा था ॥६॥ उनमे भी समस्त श्रेष्ठ ऋषियो मे प्रमुखो के द्वारा, जिनमे कि पराशर आदि अनेक मुनिगण हैं, प्रणीत किये गये स्मृतियों मे वर्णित धर्म-आगम और सहिता के अर्थो को व्यासदेव ने इस

भविष्य मे सक्षेप से बताया है ॥७॥ व्यास महर्षि ने लोक मे मनुष्यो को बहुत थोडी उम्र वाले देखकर तथा लोगो को विद्या से हीन एव पशुओ की भाँति चेष्टा करने वाले विचारकर उनके सुख सम्पादन करने के लिये तथा उन्हे ज्ञान प्राप्त कराने के लिये इस भविष्य महापुराण को लोक मे प्रथित किया था ॥८॥

जयति भुवनदीपो भास्करो लोककर्त्ता
जयति च शितिदेह शार्ङ्गधन्वा मुरारि ।
जयति च शशिमौली रुद्रनामाभिधेया
जयति च म तु देवो भानुमाश्चित्रभानु ॥९॥
श्रियावृत तु राजान शतानीक महाबलम् ।
अभिजग्मुर्महात्मान सर्वे द्रष्टु महर्षय ॥१०॥
भृगुरत्रिर्वसिष्ठश्च पुलस्त्य पुलह क्रतु ।
पराशरस्तथा व्यास सुमन्तुर्जैमिनिस्तथा ॥११॥
मुनि पैलो याज्ञवल्क्योगौतमस्तु महातपा ।
भारद्वाजो मुनिर्धीमास्तथा नारदपर्वतौ ॥१२॥
वशम्पायनो महात्मा शौनकश्च महातपा ।
दक्षागिरास्तथा गर्गो गालवश्च महातपा ॥१३॥
तानागतानृपीन्दृष्ट्वा शतानीको महीपति ।
विधिवत्पूजयामास अभिगम्य महामति ॥१४॥
पुरोहित पुरस्कृत्य अर्घ गा स्वागतेन च ।
पूजयित्वा तत सर्वान्प्रणम्य शिरसाभृशम् ॥१५॥

इस समस्त भुवन को प्रकाश प्रदान करने वाले दीपक के स्वरूप तथा लोको के कर्त्ता भास्कर भगवान की जय हो। शार्ङ्ग नामक धनुष को धारण करने वाले श्याम शरीर मुरारि की जय हो। मस्तक मे चन्द्रमा के आभूषण वाले रुद्र नामधारी की जय हो और भानुमान् चित्रभानु देव की जय हो ॥९॥ श्री से परिपूर्ण महान् बल वाले शतानीक नामक राजा के समीप मे महान् आत्मा वाले समस्त महर्षि गण उनके दर्शन करने के लिये गये थे ॥१०॥

उन मुनियो मे से कतिपय नामो को प्रदर्शित किया जाता है--भृगु, अत्रि, वसिष्ठ, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, पराशर, व्यास, सुमन्तु जैमिनी, पल, याज्ञवल्क्य, गौतम, महा-तपस्वी भारद्वाज मुनि, धीमान् नारद, पर्वत वैशम्पायन, महात्मा शौनक, महा-तपस्वी दक्ष, अङ्गिरा, गग और महान् तप वाले गालव ये सब महर्षि गण थे जो कि शतानीक राजा क पास गये थे ॥११-१३॥ उनके समीप मे समागत महान् महर्षियो के मण्डल को देख कर अधिक बुद्धिमान् राजा शतानीक न उठकर आगे आकर उन सबकी विधि के साथ पूजा की थी ॥१४॥ राजा शतानीक ने अपने पुरोहित को आगे लेकर अर्घ पाद्यादि के सहित पूर्ण स्वागत क द्वारा सबकी समर्चा की और फिर शिर चरणो मे रख कर बार बार प्रणाम किया था ॥१५॥

सुखासीनास्ततो राजा निरातङ्कान्गतक्लमान् ।
उवाच प्रणतो भूत्वा बाहुमुद्धृत्य दक्षिणम् ॥१६॥
इदानी सफल जन्म मन्येऽह भुवि सत्तमा ।
आत्मनो द्विजशार्दूलास्तथा कीर्तियशोबलम् ॥१७॥
धन्योऽह पुण्यकर्मा च यतो मा द्रष्टुमागता ।
येषा स्मरणमात्रेण युष्माक पूयते नर ॥१८॥
श्रोतुमिच्छाम्यह किचिद्धर्मशास्त्रमनुत्तमम् ।
आनृशस्य समाश्रित्य कथयध्व महाबला ॥१९॥
येनाह धर्मशास्त्र तु श्रुत्वा गच्छे परा गतिम् ।
यथा गतो मम पिता श्रुत्वा वै भारत पुरा ॥२०॥
तयोक्तास्तेन राजा वै ब्राह्मणास्ते समन्तत ।
समागम्य मिथस्ते तु विमृश्य च भृश तदा ॥२१॥
पूजयित्वा ततो व्यासमिद वचनमब्रुवन् ।
व्यास प्रसादय विभो एष ते कथयिष्यति ॥२२॥
तिष्ठत्यस्मिन्महाबाहो वय वक्तु न शक्नुम ।
तिष्ठमाने गुरौ शिष्य कथ वक्ति महामते ॥२३॥

इसके अनन्तर जब वे सब सुखपूर्वक बैठ गये और निरातङ्क होकर सब ने अपना श्रम दूर कर दिया तब राजा ने अपना दाहिना हाथ उठाकर प्रणत होते हुए कहा—॥१६॥ हे द्विजो मे शार्दूल के समान श्रेष्ठ गण ! मैं इस भू-मण्डल मे आज इस समय अपना जन्म, कीर्ति, यश और वन सभी सफल मानता हूँ ॥१७॥ मैं बहुत ही अधिक पुण्य कर्मों वाला हूँ और परम भाग्यशाली हूँ कि आप सब लोग मुझे दर्शन देने के लिये मेरे यहाँ पधारे है जिन आप लोगो के केवल स्मरण कर लेने भर से ही मनुष्य पवित्र हो जाया करता है ॥१८॥ मैं अब कुछ सर्वश्रेष्ठ धर्म शास्त्र का श्रवण करने की इच्छा करता हूँ। अत आप लोग महान् बलशाली हैं, अत्यन्त सरलता का समाश्रय करके कहने की कृपा करे ॥१९॥ जिससे धर्मशास्त्र को सुनकर परा गति को प्राप्त हो जाऊँ। जिस तरह पहिले मेरे पिता भारत का श्रवण करके परम गति को प्राप्त हुए थे ॥२०॥ इस प्रकार स उस राजा शतानीक के द्वारा कहे गय उन ब्राह्मणो न सब ओर मे इकट्ठे होकर और आपस मे उस समय भली भाँति विचार किया ॥२१॥ इसके अनन्तर वे सब व्यास देव की पूजा करके उन म यह बोले—हे विभो ! आप महर्षि व्यास जी को प्रसन्न कर लो। यह आपको धर्म शास्त्र श्रवण करायेंगे ॥२२॥ हे महा बाहो ! इन महर्षि चरण के यहाँ विद्यमान होने पर हम लोग कुछ भी कहने मे असमर्थ हैं। हे महामते ! जब गुरुवर उपस्थित होते है तो शिष्य किस तरह कह सकता है ॥२३॥

अञ्जलि शिरसा ब्रह्मन्कृतोऽयं पादयोस्तव ।
ब्रूहि मे धर्मशास्त्रं तु येनाहं पूततां व्रजे ॥२४॥
समुद्धर भवादस्मात्कीर्तयित्वा कथां शुभाम् ।
यथा मम पिता पूर्वं कीर्तयित्वा तु भारतम् ॥२५॥
तस्यैतद्वचनं श्रुत्वा व्यासो वचनमब्रवीत् ।
एष शिष्य सुमन्तुर्मे कथयिष्यति ते प्रभो ॥२६॥
यदिच्छसि महाबाहो प्रीतिदं चाद्भुतं शुभम् ।
श्रव्यं भरतशार्दूल सर्वपापभयापहम् ॥२७॥

यथा वैशंपायनेन पुरा प्रोक्तं पितुस्तव ।
महाभारतव्याख्यानं ब्रह्महत्याव्यपोहनम् ॥२८॥
अथ तमूचुः सर्वे राजानमिदमब्रुवन् ।
साधु प्रोक्तं महाबाहो व्यासेनामितबुद्धिना ॥२९॥
सुमंतुं पृच्छ राजर्षे सर्वशास्त्रविशारदम् ।
अस्माकमपि राजेन्द्र श्रवणे जायते मतिः ॥३०॥

राजा शतानीक ने कहा—हे ब्रह्मन् ! मैं शिर के सहित यह अञ्जलि आपके चरणों में रखता हूँ। आप मुझे कृपा कर धर्म शास्त्र का श्रवण कराइये जिससे मैं पवित्र हो जाऊँ ॥२४॥ शुभ कथा का वर्णन करके मुझे इस संसार से पार कर दीजिए। जिस तरह भारत का कीर्त्तन करके पहिले मेरे पिता का उद्धार किया था ॥२५॥ उस राजा के इस विनम्र वचन को सुनकर महर्षि व्यासजी ने कहा—हे प्रभो ! यह सुमन्तु मेरा ही एक शिष्य है। यह तुमको धर्मशास्त्र कहेगा ॥२६॥ हे महान् बाहुओं वाले ! जो तुम प्रीति का देने वाला परम अद्भुत और शुभ सुनना चाहते हो तो हे भरत वंशज ! समस्त प्रकार के पाप और भयों के अपहरण करने वाला शास्त्र सुनना चाहिए ॥२७॥ पहिले जिस प्रकार वैशम्पायन मुनि ने तुम्हारे पिता को सुनाया था वह महाभारत का व्याख्यान ब्रह्म हत्या दूर करने वाला था ॥२८॥ इसके पश्चात् समस्त उन ऋषियों ने उस राजा से कहा—हे महाबाहो ! अपरिमित बुद्धि वाले व्यासदेव ने बहुत ही समुचित कहा है। हे राजर्षे ! समस्त शास्त्रों के महान पण्डित सुमन्तु मुनि से आप पूछिए। हे राजेन्द्र ! हम लोगों की भी श्रवण करने की इच्छा उत्पन्न हो रही है ॥२९-३०॥

पुण्याख्यानं मम ब्रह्मन्पावनाय प्रकीर्तय ।
श्रुत्वा यद्ब्राह्मणश्रेष्ठ मुच्येऽहं सर्वपातकात् ॥३१॥
नानाविधानि शास्त्राणि मुनिः पुण्यानि मानद ।
यानि श्रुत्वा नरा राजन्मुच्यन्ते सर्वकिल्बिषैः ॥३२॥
किमिच्छसि महाबाहो श्रोतुं यत्ते ब्रवीमि वै ।
भारतादीनि शास्त्राणि धर्मादीनि [illegible] ॥३ ॥

चतुर्णामिह वर्णाना श्रेयसे यानि सुव्रत ।
भवति द्विजशार्दूल श्रुतानि भुवनत्रये ॥३४॥
विशेषतश्चतुर्थस्य वर्णस्य द्विजसत्तम ॥३५॥
ब्राह्मणादिषु वर्णेषु त्रिषु वेदा प्रकल्पिता ।
मन्वादीनि च शास्त्राणि तथागानि समतत ॥३६॥
शूद्राश्चैव भृश दीना प्रतिभाति द्विजप्रभो ।
धर्मार्थकाममोक्षस्य शक्ता स्युरवने कथम् ॥३७॥

राजा शतानीक ने कहा—हे ब्रह्मन् ! आप मुझे पवित्र करने के लिये किसी पुण्यतम आख्यान का वर्णन करें। हे ब्राह्मणो मे श्रेष्ठ ! जिसका श्रवण करके मैं सब तरह के पातको से मुक्त हो जाऊँ ॥३१॥ सुमन्तु ने कहा—हे भारत ! अनेक प्रकार के परम पुण्य शास्त्र हैं जिनको सुनकर हे राजन् ! मनुष्य सब पापो से छुटकारा पा जाया करता है ॥३२॥ हे महाबाहो ! आप क्या सुनना चाहते हैं जिसको कि मैं तुमको सुनाऊँ ? भारत आदि की बहुत-सी कथाएँ हैं जिनमे कि धर्म आदि सबका वर्णन रहता है ॥३३॥ हे सुव्रत ! तीनो भुवनो मे चार वर्णों के कल्याण के लिये जो भी हैं वे सब श्रुत हैं ॥३४॥ खास करके चतुर्थ वर्ण के विषय मे भी श्रुत है ॥३५॥ ब्राह्मण आदि तीन वर्णों मे वेद बताये गये हैं और मनु आदि शास्त्र और उनके बहुत से सभी अङ्ग शास्त्र भी हैं ॥३६॥ विचारे शूद्र बहुत ही हीन मालूम होते हैं। हे द्विज प्रभो ! ये शूद्र धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति करने में कैसे समर्थ हो सकते हैं ॥३७॥

साधुसाधु महाबाहो साधु पृष्टोऽस्मि मानद ।
शृणु मे वदतो राजन्पुराण नवम महन् ॥३८॥
यच्छ्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते मानवो नृप ।
अश्वमेधफल प्राप्य गच्छेद्ब्रह्मानी न सशय ॥३९॥
इद तु ब्रह्मणा प्रोक्त धर्मशास्त्रमनुत्तमम् ।
विदुषा ब्राह्मणेनेदमध्येतव्य प्रयत्नत ॥४०॥

शिष्येभ्यश्चैव वक्तव्य चातुर्वर्ण्येभ्य एव हि ।
अध्येतव्य न चान्येन ब्राह्मण क्षत्रिय विना ।
श्रोतव्यमेव शूद्रेण नाध्येतव्य कदाचन ॥४१॥
देवार्चा पुरतं कृत्वा ब्राह्मणैश्च नृपोत्तम ।
श्रोतव्यमेव शूद्रैश्च तथान्यैश्च द्विजातिभि ॥४२॥
श्रौत स्मार्त हि वै धर्म प्रोक्तमस्मिन्नृपोत्तम ।
तस्माच्छूद्रं विना विप्रान श्रोतव्य कथञ्चन ॥४३॥

सुमन्तु मुनि ने कहा—हे मानद ! हे महाबाहो ! यह तुमने बहुत ही अच्छा प्रश्न किया है। अब मैं तुमको बताता हूँ और तुम महान् मवम पुराण का श्रवण करो ॥३८॥ हे नृप ! यह ऐसा पुराण है जिसको सुनकर मानव समस्त पापो से छूट जाता है और अश्वमेध यज्ञ करने का फल प्राप्त करके वह सूर्य लोक म चला जाता है—इसमे कुछ भी सशय नहीं है ॥३९॥ इसको, जोकि सर्वोत्तम धर्मशास्त्र है ब्रह्माजी ने कहा था। विद्वान् ब्राह्मण को इसका प्रयत्न के साथ अवश्य ही अध्ययन करना चाहिए ॥४०॥ और चारो वर्णों के शिष्यो के लिये इसको कहना चाहिए। ब्राह्मण तथा क्षत्रिय को छोड कर अन्य किसी भी वर्ण वाले को इसका अध्ययन नही करना चाहिए। शूद्र को तो इसे सुनना ही चाहिए उसे इसका अध्ययन कभी नही करना चाहिए ॥४१॥ हे नृपोत्तम ! पहले देव पूजन करके ब्राह्मणो के द्वारा तथा अन्य द्विजातियो के द्वारा और शूद्रो के द्वारा इसे सुनना चाहिए ॥४२॥ हे नृपो म उत्तम ! इस पुराण मे श्रौत अर्थात् श्रुति से प्रतिपादित और स्मार्त अर्थात् स्मृतियो से प्रतिपादित धर्म कहा गया है। इससे विप्रो के बिना शूद्रो के द्वारा किसी प्रकार से भी नही श्रवण करना चाहिए ॥४३॥

इद शास्त्रमधीयानो ब्राह्मण शंसितव्रत ।
मनोवाग्देहजैर्नित्य कर्मदोषैर्न लिप्यते ॥४४॥
शृण्वन्ति चापि ये राजन्भक्त्या वै ब्राह्मणादय ।
मुच्यन्ते पातकै सर्वैर्यान्ति च दिव प्रभो ॥४५॥

श्रावयेच्चापि यो विप्र सर्वान्वर्णान्नृपोत्तम ।
स गुरु प्रोच्यते तात वर्णानामिह सर्वश ॥४६॥
स पूज्य सर्वकालेषु सर्ववर्णैर्नराधिप ।
पृथिवी च तथैवेमा कृत्स्नामेकोपि सोऽर्हति ॥४७॥
इद स्वस्त्ययन श्रेष्ठमिद बुद्धि विवर्धनम् ।
यशस्य सततमिद नि श्रेयस परम् ॥४८॥
अस्मिन्धर्मोऽखिलेनोक्तो गुणदोषौ च कर्मणाम् ।
चतुर्णामपि वर्णानामाचारश्चापि शाश्वत ॥४९॥

इस शास्त्र का अध्ययन करने वाला संशित व्रत ब्राह्मण मन-वाणी और शरीर से उत्पन्न होने वाले कर्मों के दोषों से वह लिप्त नहीं हुआ करता है ॥४४॥ हे राजन् ! जो ब्राह्मण आदि इसको भक्ति पूर्वक श्रवण करते है वे सब पातकों से छूट जाया करते हैं और अन्त में स्वर्ग की प्राप्ति करते हैं ॥४५। हे नृप श्रेष्ठ ! जो विप्र समस्त वर्णों को इसका श्रवण कराता है वह इस संसार में सब प्रकार के वर्णों का गुरु कहा जाता है ॥४६॥ हे नराधिप ! वह सब समयों में समस्त वर्णों के द्वारा पूजा के योग्य होता है। और उसी प्रकार से इस समस्त पृथ्वी के लिये वह एक ही योग्य होता है ॥४७॥ यह कल्याण का आधार है, परम श्रेष्ठ है और बुद्धि का बढ़ाने वाला है। यश देने वाला और सदा परम श्रेय सम्पादन करने वाला है ॥४८॥ इसमें पूर्ण धर्म कहा गया है और कर्मों के गुण तथा दोष भी बताये गये है और इसमें चारों वर्णों का शाश्वत आचार भी वर्णित किया गया है ॥४९॥

॥ सृष्टि वर्णन ॥

शृणुष्वेद महाबाहो पुराण पचलक्षणम् ।
यच्छ्रुत्वा मुच्यते राजन्पुरुषो ब्रह्महत्यया ॥१॥
पर्वाणि चात्र वै पच कीर्तितानि स्वयभुवा ।
प्रथम कथ्यते ब्राह्म द्वितीय वैष्णव स्मृतम् ॥२॥
तृतीय शैवमाख्यात चतुर्थं त्वाष्ट्रमुच्यते ।
पचम प्रतिसर्गाख्य सर्वलोकैं सुपूजितम् ॥३॥
एतानि तात पर्वाणि लक्षणानि निबोध मे ।
सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वशो मन्वतराणि च ॥४॥
वशानुचरित्त चैव पुराण पचलक्षणम् ।
चतुर्दशभिर्विद्याभिर्भूषित कुरुनन्दन ॥५॥
अगानि चतुरो वेदा मीमासा न्यायविस्तर ।
पुराण धर्मशास्त्र च विद्या ह्येताश्चतुर्दश ॥६॥
आयुर्वेदो धनुर्वेदो गान्धर्वश्चैव ते त्रय ।
अर्थशास्त्र चतुर्थं तु विद्या ह्यष्टादशैव ता ॥७॥

सुमन्तु ने कहा—हे महाबाहो ! अब हम पाँच लक्षण वाले पुराण का तुम श्रवण करो जिसको सुनकर पुरुष ब्रह्महत्या से मुक्ति पा जाया करता है ॥१॥ स्वयम्भू ने इसमें पाँच पर्व कहे हैं । उनमें प्रथम पर्व ब्राह्म कहा जाता है । दूसरे पर्व का नाम वैष्णव कहा गया है ।२॥ तीसरे पर्व का नाम शैव कहा गया है और चतुर्थ का नाम त्वाष्ट्र कहा जाता है । पञ्चम का नाम प्रतिसर्ग है जो कि समस्त लोकों के द्वारा पूजित होता है ॥३॥ हे तात ! ये पाँच पर्वों के नाम हैं अब इनके लक्षणों को समझ लो जिन्हें मैं बतलाता हूँ । पुराण के पाँच लक्षण होते हैं इनमें सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर और वंशानुचरित होते हैं । हे कुरुनन्दन ! यह चौदह विद्याओं से भूषित हुआ करता है । ॥४-५॥ चार वेद—उन वेदों के षडङ्ग शिक्षादि छै अङ्ग—मीमांसा, न्याय का विस्तार, पुराण और धर्मशास्त्र ये कुल चौदह विद्याएँ होती हैं ॥६॥ आयुर्वेद,

धनुर्वेद और गान्धर्व ये तीन हैं और चौथा अर्थशास्त्र है। इन चारों को मिला कर अठारह विद्याएँ हो जाती हैं ॥७॥

प्रथमं कथ्यते सर्गो भूतानामिह सर्वश ।
यच्छ्रुत्वा पापनिर्मुक्तो याति शांतिमनुत्तमाम् ॥८॥
जगदासीत्पुरा तात तमोभूतमलक्षणम् ।
अविज्ञेयमतर्क्यं च प्रसुप्तमिव सर्वश ॥९॥
तत स भगवानीशो ह्यव्यक्तो व्यजयन्निदम् ।
महाभूतानि वृत्तौजा प्रोत्थितस्तमनाशन ॥१०॥
योऽसावतीन्द्रियोऽग्राह्य सूक्ष्मोऽव्यक्त सनातन ।
सर्वभूतमयोऽचिन्त्य स एष स्वयमुत्थित ॥११॥
योऽसौ षड्विंशको लोके तथा च पुरुषोत्तम ।
भास्करश्च महाबाहो पर ब्रह्म च कथ्यते ॥१२॥
सोऽभिध्याय शरीरात्स्वात्सिसृक्षुर्विविधा प्रजा ।
अप एव ससर्जादौ तासु वीर्यमवासृजत् ॥१३॥
यस्मादुत्पद्यते सर्वं सदेवासुरमानुषम् ।
बीज शुक्रं तथा रेत उग्रं वीर्यं च कथ्यते ॥१४॥

सर्व प्रथम यहाँ संसार में भूतों के सर्ग को कहा जाता है जिसका श्रवण करके मनुष्य पाप से निर्मुक्त हो जाता है और सर्वोत्तम शांति को प्राप्त किया करता है ॥८॥ हे तात ! पहिले यह जगत् तमोभूत अर्थात् अन्धकार पूर्ण और लक्षणहीन था। जोकि विशेष रूप से जानने के अयोग्य और तर्क न करने के योग्य था जैसा कि सब प्रकार से सो रहा हो। ९॥ इसके पश्चात् यह भगवान् ईश अव्यक्त इसको प्रकट करते हुए महाभूत वृत्तौजा तम का नाश करने वाला उत्थित हुआ ॥१०॥ वह यह अतीन्द्रिय अर्थात् इन्द्रियों के द्वारा न ग्रहण किये जाने वाला—अग्राह्य, सूक्ष्म, अव्यक्त, सनातन, सर्व भूतमय और अचिन्त्य है। वह यह स्वयं उत्थित हुआ ॥११॥ जो यह लोक में षड्विंशक है तथा जो पुरुषोत्तम है और भास्कर है। हे महाबाहो ! यह परब्रह्म कहा जाया करता है ॥१२॥ अपने शरीर से विविध प्रकार की प्रजा के सृजन करने

की इच्छा वाले उसने प्रकट होकर आदि मे जल की ही सृष्टि की थी और उसमें वीर्य का अब सृजन किया था ॥१३॥ जिससे देवता, असुर और मनुष्य सब उत्पन्न होते हैं वह बीज, शुक्र, रेत, उग्र और वीर्य नाम से कहा जाता है ॥१४॥

वीर्यस्यैतानि नामानि कथितानि स्वयंभुवा ।
तदण्डमभवद्धेम ज्वालामालाकुलं विभो ॥१५॥
यस्मिञ्जज्ञे स्वयं ब्रह्मा सर्वलोकपितामह ।
सुरज्येष्ठश्चतुर्वक्त्र परमेष्ठी पितामह. ॥१६॥
क्षेत्रज्ञ पुरुषो वेधा. शम्भुर्नारायणस्तथा ।
पर्यायवाचकै शब्दैरेव ब्रह्मा प्रकीर्त्यते ॥१७॥
सदा मनीषिभिस्तात विरञ्चिः कंजजस्तथा ।
आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः ॥१८॥
ता यदस्यायन पूर्वं तेन नारायण स्मृत ।
अरमित्येव शीघ्राय नियना कविभि. कृता. ॥१९॥
आप एकार्णवीभूत्वा मुनीश्वास्तेन ता नरा. ।
यत्तत्कारणमव्यक्तं नित्यं सदसदात्मकम् ॥२०॥
तद्विसृष्ट स पुरुषो लोके ब्रह्मेति कीर्त्यते ।
एव स भगवानण्डे तत्त्वमेव निरूप्य वै ॥२१॥

स्वयम्भू ने वीर्य के ये नाम कहे हैं। वह ज्वाला मालाओं से आकुल सुवर्ण का अण्ड हो गया था ॥१५॥ जिसमें स्वयं समस्त लोकों के पितामह ब्रह्मा ने जन्म ग्रहण किया था। परमेष्ठी पितामह समस्त देवों में श्रेष्ठ और चार मुख वाले हैं ॥१६॥ क्षेत्रज्ञ, पुरुष, वेधा, शम्भु, नारायण इन पर्याय-वाचक शब्दों के द्वारा इस ब्रह्मा को कहा जाया करता है ॥१७॥ हे तात ! सर्वदा मनीषियों के द्वारा विरञ्चि, कंजज कहा जाता है। जलों को नार कहे गये हैं वे आप (जल) नर सूनु हैं ॥१८॥ वह जल जिसका पहिले अयन अर्थात् निवास का स्थान है। इसी से उसका नाम नारायण कहा गया है। परन्तु यहाँ कवियों ने शीघ्र के लिये नियम किये हैं ॥१९॥ आप अर्थात् जल ही

अर्णव होकर सुशीघ्र होते हैं। इससे वे नर हैं। जो उसका कारण अव्यक्त है वह नित्य और सद्-असद् स्वरूप वाला होता है ॥२०॥ उसके द्वारा विसृष्ट वह पुरुष है जो लोक में ब्रह्मा इस नाम से कहा जाया करता है। इस प्रकार से अण्ड में तत्व का ही निरूपण करके वह भगवान् होते हैं ॥२१॥

ध्यानमास्थाय राजेन्द्र तदण्डमकरोद्द्विधा ।
शकलाभ्यां च राजेन्द्र दिवं भूमिं च निर्ममे ॥२२॥
अन्तर्व्योम दिशश्चाष्टौ वारुणं स्थानमेव हि ।
ऊर्द्ध्वं महान्गतो राजन्समतालोकभूतये ॥२३॥
महतश्चाप्यहङ्कारस्तस्माच्च त्रिगुणा अपि ।
त्रिगुणा अतिसूक्ष्मास्तु बुद्धिगम्या हि भारत ॥२४॥
उत्पत्तिहेतुभूता वै भूतानां महतां नृप ।
तेषामेव गृहीतानि शनैः पञ्चेन्द्रियाणि तु ॥२५॥
तथैवावयवा सूक्ष्मा षण्णामप्यमितौजसाम् ॥२६॥
सन्निवेश्यात्ममात्रासु स राजन्भगवान्विभुः ।
भूतानि निर्ममे तात सर्वाणि विधिपूर्वकम् ॥२७॥
यन्मूर्त्यं वयवा सूक्ष्मास्तस्येमान्याश्रयाणि षट् ।
तस्माच्छरीरमित्याहुस्तस्य मूर्तिं मनीषिणः ॥२८॥

ध्यान में आस्थित होकर हे राजेन्द्र! उस अण्ड का दो प्रकार का किया था। उन खण्डों के द्वारा दिव और भूमि का निर्माण किया था ॥२२॥ अन्तर्व्योम—आठ दिशाएँ और वारुण स्थान की रचना की। हे राजन्! सब ओर से इस लोक की विभूति के लिये महान् ऊर्ध्व को गया ॥२३॥ महत्तत्व से अहङ्कार उत्पन्न हुआ और अहङ्कार से सत्त्व, रज और तम इन तीन गुणों की उत्पत्ति हुई। हे भारत! ये त्रिगुण अत्यन्त सूक्ष्म हैं जो कि केवल बुद्धि से ही गम्य होते हैं ॥२४॥ हे नृप! ये महान् भूतों की उत्पत्ति के कारण हुआ करते हैं। उनको ही धीरे से ये पाँच इन्द्रियाँ गृहीत होती है ॥२५॥ उसी प्रकार से अमित ओज वाले छैओं के सूक्ष्म अवयव होते हैं ॥२६॥ हे राजन्! व्यापक भगवान् ने आत्म मात्राओं में अर्थात् उनकी अपनी पञ्च तन्मात्राओं में सन्निविष्ट

करके फिर विधि के साथ इन समस्त प्राणियों का निर्माण किया था ॥२७॥ जिस मूर्त्ति के ये सूक्ष्म अवयव हैं उसके ये छै आश्रय होते है। इसी हेतु से मनीषी लोग उसकी मूर्त्ति को शरीर इस नाम से कहते है ॥२८॥

महांति तानि भूतानि आविशंति ततो विभुम् ।
कर्मणा सह राजेन्द्र सगुणाश्चापि वै गुणा ॥२९॥
तेषामिदं तु सप्ताना पुरुषाणा महौजसाम् ।
सूक्ष्माभ्यो मूर्तिमात्राभ्य संभवत्यव्ययाद्व्ययम् ॥३०॥
भूतादिमहतस्तात येन व्याप्तमिद जगत् ।
तस्मादपि महाबाहो पुरुषा पंच एव हि ॥३१॥
कश्चिदेव परा तात सृष्टिमिच्छति पंडिता ।
अन्येऽप्येव महाबाहो प्रवदंति मनीषिण ॥३२॥
योऽसावात्मा परस्तात कल्पादौ सृजते तनुम् ।
प्रजनश्च महाबाहो सिसृक्षुर्विविधा प्रजा ॥३३॥
तेन सृष्ट पुद्गलस्तु प्रधान विशते नृप ।
प्रधान क्षोभित तेन विकारान्सृजते बहून् ॥३४॥
उत्पद्यते महास्तस्मात्ततो भूतादिरेव हि ।
उत्पद्यते विशाल च भूतादे कुरुनन्दन ॥३५॥

हे राजेन्द्र ! वे भूत महान् हैं और विभु में आविष्ट हो जाया करते है। कर्म के साथ गुण और सगुण भी आविष्ट हो जाते हैं ॥२९॥ उन सात महान् ओज वाले पुरुषों की सूक्ष्म मूर्त्ति मात्राओं से अव्यय से व्यय का सम्भव होता है ॥३०॥ हे तात ! भूत आदि महत् है जिससे कि यह समस्त जगत् व्याप्त है। हे महाबाहो ! उससे भी पाँच ही पुरुष होते हैं ॥३१॥ हे तात ! इस प्रकार से कुछ विद्वान् परा सृष्टि की इच्छा करते हैं। अन्य मनीषीगण भी इसी प्रकार से कहते हैं ॥३२॥ हे तात ! जो यह आत्मा पर है वह कल्प के आदि मे तनु का सृजन किया करता है और प्रजन करता है। यह अनेक प्रकार की प्रजाओं के सृजन करने की इच्छा वाला होता है ॥३३॥ हे नृप ! उसके द्वारा सृजन किया हुआ पुद्गल प्रधान में प्रवेश करता है। उसके द्वारा प्रधान

क्षोभित हो जाता है और फिर वह बहुत से विकारों का सृजन करता है ।।३४।। उनसे फिर महन् उत्पन्न होता है और उससे भूतादि उत्पन्न होते हैं । हे कुरुनन्दन ! फिर भूतादि का यह विशाल स्वरूप होता है ।।३५।।

विशालाच्च हरिस्तात हरेश्चापि वृकास्तथा ।
वृकैर्मुण्णति च बुधास्तस्मात्सर्वं भवेन्नृप ।।३६।।
तथैषामेव राजन्द्र प्रादुर्भवति वेगत ।
मानाणा कुरुशार्दूल विबोधस्तदनतरम् ।।३७।।
तस्मादपि हृषीकाणि विविधानि नृपोत्तम ।
तथेय सृष्टिराख्याताऽऽराघ्यत कुरुनन्दन ।।३८।।
भूयो निबोध राजेन्द्र भूतानामिह विस्तरम् ।
गुणाधिकानि सर्वाणि भूतानि पृथिवीपते ।।३९।।
आकाशमादित कृत्वा उत्तरोत्तरमेव हि ।
एक द्वौ च तथा त्रीणि चत्वारश्चापि पच च ।।४०।।
तत स भगवान्ब्रह्मा पद्मासनगत प्रभु ।
सर्वेषा तु स नामानि कर्माणि च पृथक्पृथक् ।।४१।।
वेदशब्देभ्य एवादौ पृथक्संस्थाश्च निर्ममे ।
कर्मोद्भवाना देवाना सोसृजद्देहिना प्रभु ।।४२।।

उस विशाल से हरि और हरि से वृक तथा वृकों से बुध होते हैं तथा उनसे फिर सब हुआ करता है ।।३६।। हे राजेन्द्र ! इनका बडे वेग से प्रादुर्भाव होता है । हे कुरुशार्दूल ! *उनके अनन्तर मात्राओं का विशेष बोध हुआ करता है* ।।३७।। हे नृपों में श्रेष्ठ ! उससे विविध हृषीक अर्थात् विषयेन्द्रियाँ होती हैं । इस प्रकार से आराध्य देव से यह सृष्टि बनाई गई है ।।३८।। हे राजेन्द्र ! फिर यहाँ भूतों का विस्तार होता है उसे समझ लो । हे पृथिवीपते ! ये समस्त भूत गुणों से अधिक हुआ करते हैं ।।३९।। सबसे आदि में आकाश की रचना करके उत्तरोत्तर एक दो-तीन-चार और पाँचों को बनाया ।।४०।। इसके अन तर उन पद्मासन पर बैठ हुए भगवान् ब्रह्माजी ने सबके नाम और अलग-अलग कर्मों का निर्माण किया था ।।४१।। आदि में वेद शब्दों से ही

उस प्रभु ने पृथक् संस्था का निर्माण किया था और कर्म से उत्पन्न देहधारी देवों का उनने सृजन किया था ॥४२॥

तुषिताना गण राजन्यज्ञं चैव सनातनम् ।
ददृशा वीर समानेभ्यो गुह्यं ब्रह्म सनातनम् ॥४३॥
दुदोह यज्ञसिद्धयर्थमृग्यजुः सामलक्षणम् ।
काल कालविभक्तीश्च ग्रहानृतूंस्तथा नृप ॥४४॥
सरित सागराञ्छैलान्समानि विषमाणि च ।
काम क्रोध तथा वाच रतिं चापि कुरूद्वह ॥४५॥
सृष्टिं ससर्ज राजेन्द्र सिसृक्षुर्विविधा प्रजा ।
धर्माधर्मौ विवेकाय कर्मणा च तथासृजत् ॥४६॥
सुखदु खादिभिर्द्वन्द्वै. प्रजाश्चेमा न्ययोजयत् ।
अण्व्योमात्राविनाशिन्योदशार्धानातु या स्मृता. ॥४७॥
ताभि सर्वमिद वीर संभवत्यनुपूर्वश ।
यत्कृत तु पुरा कर्म सनियुक्तेन वै नृप ॥४८॥
स तदेव स्वय भेजे सृज्यमान पुन पुन ।
हिंस्राहिंस्रे मृदुक्रूरे धर्माधर्मे ऋतानृते ॥४९॥

हे राजन् ! तुषितो के गण को और सनातन यज्ञ को तथा सनातन गुह्य ब्रह्म को समानो के लिये दिया था ॥४३॥ हे नृप ! फिर उनने यज्ञो की सिद्धि करने के लिये ऋग्, यजु और साम लक्षण वाले का दोहन किया था। काल और काल की विभक्तियों को, ग्रहो को तथा ऋतुओ को बनाया था ॥४४॥ समस्त नदियों, समुद्र, पर्वत, सम और विषम, काम, क्रोध, वाणी और रति का सृजन किया था ॥४५॥ हे राजेन्द्र ! विविध भाँति की प्रजाओं की सृष्टि करने की इच्छा रखने वाले ने कर्मों के विवेक के लिये धर्म और अधर्म की रचना की थी ॥४६॥ फिर इस विरचित प्रजा को सुख-दुःख आदि के द्वन्द्वों से नियोजित किया था जो कि दशार्थो की अणु मात्रा विनाश वाली कही गई है ॥४७॥ हे वीर ! यह सब उनसे अनुपूर्वश. उत्पन्न होता है। जो पहिले जन्म में कर्म किया गया है उसमें सनियुक्त होकर ही सम्भव हुआ करता है ॥४८॥

वह बार-बार सृज्य मान उसी को स्वय सेवन किया करता था। हिंस्र और अहिंस्र, मृदु और क्रूर, धर्म और अधर्म तथा ऋत और अनृत इन सबका वह स्वय सेवन किया करता है ।।४६।।

यद्यथास्याभवत्सर्गे तत्तस्य स्वयमाविशत् ।
यथा च लिङ्गान्यृतव स्वयमेवानुपर्यये ।।५०।।
स्वानिस्वान्यभिपद्यन्ते तथा कर्माणि देहिन ।
लोकस्येह विवृद्ध्यर्थं मुखवाहूरुपादत. ।।५१।।
ब्रह्म क्षत्र तथा चोभौ वैश्यशूद्रौ नृपोत्तम ।
मुखानि यानि चत्वारि तेभ्यो वेदा विनि सृता ।।५२।।
ऋग्वेदसहिता तात वसिष्ठेन महात्मना ।
पूर्वान्मुखान्महावाहो दक्षिणाच्चापि वै शृणु ।।५३।।
यजुर्वेदो महाराज याज्ञवल्क्येन वै सह ।
सामानि पश्चिमात्तात गौतमश्च महाऋषि ।।५४।।
अथर्ववेदो राजेंद्र मुखाच्चाप्युत्तरान्नृप ।
ऋषिश्चापि तथा राजन्छौनको लोकपूजित ।।५५।।
यनन्मुख महावाहो पचम लोकविश्रुतम् ।
अष्टादश पुराणानि सेतिहासानि भारत ।।५६।।
निर्गतानि ततस्तस्मान्मुखात्कुरुकुलोद्वह ।
तथान्या स्मृतयश्चापि यमाद्या लोकपूजिता ।।५७।।

इसके सर्ग मे जो भी जिस प्रकार का हुआ वह उसके सर्ग मे स्वय आविष्ट होता था। जैसे लिङ्ग होते हैं वैसी ही ऋतुऐं स्वय ही एक दूसरी के बाद आ जाया करती हैं ।।५०।। यहाँ ससार मे लोक की विवृद्धि के लिये देहधारी मुख, बाहु ऊरु और पैर से अपने अपने कर्मों को प्राप्त हुआ करते हैं ।।५१।। हे नृपश्रेष्ठ ? ब्राह्मण, क्षत्रिय और दोनो वैश्य तथा शूद्र ये चार मुख हैं उनसे वेद निकले हैं ।।५२।। हे तात ! ऋग्वेद सहिता महात्मा वसिष्ठ के साथ पूर्व मुख से नि सृत हुई थी। हे महाराज ! दक्षिण मुख से याज्ञवल्क्य के साथ यजुर्वेद निकला था। पश्चिम से सामवेद की सहिता और गौतम ऋषि

प्रकट हुए। हे राजेन्द्र! उत्तर मुख से अथर्व वेद और लोक के द्वारा पूजित शौनक ऋषि निकले ॥५३॥५४॥५५॥ हे महाबाहो! पाँचवाँ जो लोक में परम प्रसिद्ध मुख है उससे इतिहास के सहित अठारह पुराण निकले थे। इसके अनन्तर अन्य लोक पूजित यमादि अनेक स्मृतियाँ भी उस मुख से निकली थीं ॥५६॥५७॥

तत स भगवान्देवो द्विधा देहमकारयत् ।
द्विधा कृत्वात्मनो देहमर्धेन पुरुषोऽभवत् ॥५८॥
अर्धेन नारी तस्या च विराजमसृजत्प्रभु ।
तपस्तप्त्वासृजद्य तु स स्वय पुरुषो विराट ॥५९॥
स चकार तपो राजन्सिसृक्षुर्विविधा प्रजा ।
पतीन्प्रजा नामसृजन्महर्षीनादितो दश ॥६०॥
नारद च भृगु तात क प्रचेतसमेव हि ।
पुलह क्रतु पुलस्त्य च अत्रिमगिरस तथा ॥६१॥
मरीचि चापि राजेन्द्र यामावाद्य प्रजापति ।
एताश्चान्याश्च राजेन्द्र असृजद्भूरितेजस ॥६२॥
अथ देवानृषीन्दैत्यान्सोऽसृजत्कुरुनन्दन ।
यक्षरक्ष पिशाचाश्च गन्धर्वाप्सरसोऽसुरान् ॥६३॥

इसके पश्चात् भगवान् देव ने अपने देह को दो भागों में कर दिया था। अपने देह के जो दो भाग किये गये थे उनमें आधे भाग में वे पुरुष हुए और आधे अपने भाग से नारी बने। उस नारी रूप में प्रभु ने विराज का सृजन किया था। तपस्या करके जिसका सृजन किया था वह स्वयं विराट पुरुष था ॥५८।५९॥ उसने तप किया क्योंकि उसे विविध प्रकार की प्रजाओं की सृष्टि करने की पूर्ण इच्छा हुई थी। आदि में दश प्रजापति महर्षियों का सृजन किया था ॥६०॥ उन दश महर्षि प्रजापतियों के नाम ये हैं—नारद भृगु वसु, प्रचेतस, पुलह क्रतु, पुलस्त्य, अत्रि अङ्गिरस और मरीचि। हे राजेन्द्र! मरीचि गर्भ प्रथम प्रजापति हुआ है। इनको और अन्य भी बहुत तेज वालों को सृजित किया था ॥६१॥६२॥ हे कुरुनन्दन! इसके पश्चात् उसने देवों को

ऋषियों की, दैत्यों की, राक्षस, यक्ष और पिशाचों की, गन्धर्व, अप्सरा तथा असुरों की सृष्टि की थी ॥६३॥

मनुष्याणां पितॄणां च सर्पाणां चैव भारत ।
नागानां च महाबाहो ससर्ज विविधान्गणान् ॥६४॥
क्षणरुचोऽशनिगणाल्लोहितेन्द्रधनूंषि च ।
धूमकेतूंस्तथाचोल्कानिर्घाताञ्ज्योतिषागणान् ॥६५॥
मनुष्यान्किन्नरान्मत्स्यान्वराहांश्च विहंगमान् ।
गजानश्वानथ पशून्मृगान्व्यालांश्च भारत ॥६६॥
कृमिकीटपतंगांश्च यूकालिक्षकमत्कुणान् ।
सर्वं च दंशमशकं स्थावरं च पृथग्विधम् ॥६७॥
एव स भास्करो देव. ससर्ज भुवनत्रयम् ।
येषां तु यादृशं कर्म भूतानामिह कीर्तितम् ॥६८॥
कथयिष्यामि तत्सर्वं क्रमयोगं च जन्मनि ।
गजा व्याला मृगास्तात पशवश्च पृथग्विधा. ॥६९॥
पिशाचा मानुषा तात रक्षांसि च जरायुजाः ।
द्विजास्तु अण्डजा.सर्पा नक्रा मत्स्या.सकच्छपा. ॥७०॥

हे भारत ! मनुष्य, पितृगण, सर्प वर्ग, नाग और विविध गणों की रचना की थी ॥६४॥ क्षणरुच, अशनिगण, रोहितेन्द्रधनुष, धूमकेतु तथा उल्का निर्घात, ज्योतिर्गण, मनुष्य, किन्नर, मत्स्य, वराह और विहङ्गमों का सृजन किया। गज, अश्व, पशु, मृग और व्यालों की सृष्टि की थी ।६५॥६६॥ कृमि, कीट, पतङ्ग, यूका, लिक्षा और मत्कुणों की रचना की थी। सब प्रकार से दंशन करने वाले मशकों का सृजन किया तथा विविध भांति के पृथक स्थावर की रचना की ॥६७॥ इस तरह से उस भास्कर देव ने इस भुवन त्रय का निर्माण किया था। यहाँ पर जिन प्राणियों के जैसे भी कर्म थे वे बतला दिये हैं ॥६८॥ अब आगे जन्म में वह सब क्रम योग बताया जायगा। हे तात ! गज, व्याल, मृग और पृथक प्रकार के पशु वर्ग, पिशाच, मानुष, राक्षस ये सब जरायुज होते हैं। पक्षी, सर्प, नक्र, मत्स्य और कच्छप ये सब अण्डज होते हैं।

बेर म उत्पन्न होने वाले जरायुज और अण्डों से उत्पत्ति रखने वाले जीव अण्डज कहे जाते हैं ।६६॥७०॥

एवंविधानि यानीह स्थलजान्यौदकानि च ।
स्वेदजं दंशमशक यूकालिक्षमत्कुणम् ॥७१॥
ऊष्मणा चोपजायन्ते यच्चान्यत्किंचिदीदृशम् ।
उद्भिज्जा स्थावरा सर्वे बीजकाण्डप्ररोहिण ॥७२॥
ओषध्य फलपाकान्ता नानाविधफलोपगा ।
अपुष्पा फलवन्तो ये ते वनस्पतय स्मृता ॥७३॥
पुष्पिण फलिनश्चैव वृक्षास्तूभयत स्मृता ।
गुच्छगुल्मं तु विविधं तथैव तृणजातय ॥७४॥
बीजकाण्डरुहाण्येव प्रताना वल्लय एव च ।
तमसा बहुरूपेण वेष्टिता कर्म हेतुना ॥७५॥
अन्त सज्ञा भवन्त्येते सुखदु खसमन्विता ।
एतादन्त्यस्तु गतय ब्राह्म्याद्या कुरुनन्दन ॥७६॥
तस्माद्वाद्दीतिमन्तौ भास्कराच्च महात्मन ।
घोरेऽस्मिन्सतत संसारे नित्य सततयायिनि ॥७७॥

इस उक्त प्रकार के जीव हैं जिनमें यहाँ कुछ तो स्थल भाग में उत्पन्न होते हैं और कुछ इनमें ऐसे प्राणी हैं जो जल भाग में जन्म धारण किया करते हैं। दंश, मशक, यूका, लिक्षा और मत्कुण ये स्वेदज कहे जाते हैं क्योंकि ये सब ऊष्मा से ही उत्पन्न हुआ करते हैं। अन्य कुछ इस प्रकार के प्राणी भी होते हैं जो उद्भिज्ज कहे जाते हैं। ये सब स्थावर सृष्टि वाले हैं और बीज काण्ड से प्ररोहण प्राप्त किया करते है ॥७१॥७२॥ इस तरह ये जरायुज, अण्डज, स्वेदज और उद्भिज्ज चार प्रकार की सृष्टि हुई। ओषधियाँ फल पाक के अन्त वाली, नाना प्रकार के फलों वाली, पुष्प रहित और फल वाली होती हैं जो कि वनस्पतियाँ कही जाती है ॥७३॥ वृक्ष दो प्रकार के होते है। कुछ तो ऐसे वृक्ष है जो पुष्प वाले ही हुआ करते हैं और कुछ ऐसे होते है जो पुष्प और फल दोनों के रखने वाले होते है। गुच्छ, गुल्म अनेक प्रकार के होते

है। इसी प्रकार से तृण की भी विभिन्न जातियाँ उत्पन्न हुआ करती हैं ॥७४॥ बीज और काण्ड से प्ररोहण प्राप्त करने वाली प्रतान तथा बल्ली होती है। बहुत प्रकार के कर्मस्वरूप हेतु क तम से सब वेष्टित हुआ करते हैं ॥७५॥ ये सब अपने अन्दर ही थोड़ा सा ज्ञान रखने वाले होने के कारण जड़ सृष्टि वाले कहे जाते हैं किन्तु उन्हें भी सुख और दुःख का अनुभव अवश्य ही होता है अतः ये सुख दुःख से समन्वित हैं। हे कुरुनन्दन ! इतनी गतियाँ प्रोद्भूत होती हैं। ये सब महान् आत्मा वाले उसी भास्कर देव से दीप्ति वाले होते हैं और निरन्तर गमनशील इस घोर संसार में प्रकट हुआ करते हैं ॥७६-७७॥

एवं सर्वं स सृष्ट्वेदं राजँल्लोकगुरुः परम् ।
तिरोभूतः स भूतात्मा कालं कालेन पीडयन् ॥७८॥
यदा स देवो जागर्ति तदेदं चेष्टते जगत् ।
यदा स्वपिति शान्तात्मा तदा सर्वं निमीलति ॥७९॥
तस्मिन्स्वपिति राजेन्द्र जन्तवः कर्मबन्धनाः ।
स्वकर्मभ्यो निवर्तन्ते मनश्च ग्लानि मृच्छति ॥८०॥
युगपत्तु प्रलीयते यदा तस्मिन्महात्मनि ।
तदायं सर्वभूतात्मा सुखं स्वपिति भारत ॥८१॥
तमो यदा समाश्रित्य चिरं तिष्ठति सेन्द्रियः ।
न नवं कुरुते कर्म तदोत्क्रामति मूर्तितः ॥८२॥
यदाहमात्रिको भूत्वा बीजं स्थास्नु चरिष्णु च ।
समाविशति संसृष्टस्तदा मूर्तिं विमुञ्चति ॥८३॥
एवं स जाग्रत्स्वप्नाभ्यामिदं सर्वं जगत्प्रभुः ।
संजीवयति चाजस्रं प्रमापयति चाव्ययः ॥८४॥

इस प्रकार से वह इस जगत् का सृजन करके काल से काल को पीडित करता हुआ वह भूतात्मा परम लोक गुरु मे तिरोभूत हो जाता है ॥७८॥ जिस समय वह देव जाग्रत रहता है उस समय यह जगत् भी चेष्टा वाला रहा करता है और जब वह शान्त आत्मा वाला होकर सो जाता है तब यह सब जगत् निमीलित हो जाया करता है ॥७९॥ हे राजेन्द्र ! उसके शयन

मरने पर कर्म के बन्धन से युक्त ये समस्त जन्तुगण अपने कर्मों से निर्वतित हो जाया करते हे और मन ग्लानि को प्राप्त होना है ।।८०।। जिस समय उस महात्मा म ये सब एक ही साथ प्रलीन हो जाया करते है तब यह समस्त भूतो का आत्मा सुख पूर्वक शयन किया करता है ।।८१।। जिस समय म तमोगुण का समाश्रय करके इन्द्रियो के सहित चिरकाल तक स्थित रहता है और कोई भी नया कर्म नही करता है उस समय मूर्ति से उत्क्रान्त हो जाता है ।।८२।। जब यह अहमात्रिक होकर स्थाणु और चरिष्णु बीज मे समाविष्ट हो जाता है उस समय ससृष्ट होता हुआ मूर्ति का त्याग देता है ।।८३।। इस प्रकार से वह प्रभु इस जगत् को जाग्रत् और स्वप्नो म सजीवित किया करता है और अव्यय वह प्रजस्त प्रमापित करता है ।।८४।।

कल्पादौ सृजते तात अन्ते कल्पस्य सहरेत् ।
दिन तस्येह यत्तात कल्पातमिति कथ्यते ।।८५।।
कालसख्या ततस्तस्य कल्पस्य शृणु भारत ।
निमेषा दश चाष्टौ च अक्षण काष्ठा निगद्यते ।।८६।।
त्रिंशत्काष्ठा कलामाहु क्षणस्त्रिशत्कला स्मृता ।
मुहूर्तमथ मौहूर्ता वदन्ति द्वादश क्षणम् ।।८७।।
त्रिश-मुहूर्तमुद्दिष्टमहोरात्र मनीषिभि ।
मासस्त्रिशदहोरात्र द्वौद्वौ मासावृतु स्मृत ।।८८।।
ऋतुत्रयमथ्ययनमयने द्वे तु वत्सर ।
अहोरात्रे विभजते सूर्यो मानुषदैविक ।।८९।।
रात्रि स्वप्नाय भूताना चेष्टायै कर्मणामह ।
पित्र्ये रात्र्यहनी मास प्रविभागस्तु पक्षयो ।।९०।।
कर्म चेष्टास्त्वह कृष्णे शुक्ल स्वप्नाय शर्वरी ।
दैव रात्र्यहनी वर्षं प्रविभागस्तयो पुन ।।९१।।
अहस्तत्रादगयन रात्रि स्याद्दक्षिणायनम् ।
ब्राह्मस्य तु क्षपाहस्य यत्प्रमाण महीपते ।।९२।।

हे तात ! वह कल्प के आदि में इस जगत् का सृजन किया करता है

और कल्प के अन्त मे इस जगत् का संहार कर देता है। यहाँ जो उसका दिन है वह कल्पान्त नाम से कहा जाता है ॥८०॥ हे भारत! इसके अनन्तर कल्प के काल की संख्या का श्रवण करो। नेत्रो के अठारह जो निमेष होते हैं वह एक काष्ठा कही जाती है। अर्थात् अठारह निमेषो की एक काष्ठा होती है। तीस काष्ठा की एक कला होती है और तीस कला का एक क्षण होता है तथा बारह क्षणो का एक मुहूर्त होता है। क्षण को मौहूर्त भी कहा जाता है ॥८६-८७॥ मनीषियो ने तीस मुहूर्त्तो का एक अहोरात्र बताया है। अहोरात्र का अर्थ एक दिन और एक रात्रि होना है। तीस अहोरात्र का एक मास होता है और दो-दो मास का एक ऋतु होता है ॥८८॥ तीन ऋतुओ का एक अयन होता है। दो अयन का एक वर्ष होता है। सूर्यदेव मानुष और दैविक अहोरात्रो का विभाजन करते हैं। अर्थात् अहोरात्र मानुष और दैविक दो प्रकार के होते है। अहोरात्र मे जो रात्रि होती है वह प्राणियो के स्वप्न (शयन) के लिये हुआ करती है तथा दिन का समय विविध कर्मों के करने की चेष्टा के लिये हुआ करता है। पितृगण की रात्रि और दिन मास होता है जिस मे पक्षो का प्रविभाग किया जाता है ॥९०॥ कर्मों की चेष्टाओ मे कृष्ण पक्ष दिन होता है और मास का शुक्ल पक्ष रात्रि है जोकि स्वप्न के लिय होती है। दैविक रात्रि और दिन वर्ष होता है। उसका भी विभाग किया जाता है। वर्ष मे जो उत्तरायण होता है वह देवो का दिन होता है और दूसरा जो दक्षिणायन होता है वही देवो की रात्रि हुआ करती है। ब्राह्म दिन रात्रि का प्रमाण बताया जाता है सो हे महीपते! उसका श्रवण करो ॥९१॥९२॥

एकैकशो युगाना तु क्रमशस्तन्निबोध मे ।
चत्वार्याहु सहस्राणि वर्षाणा तत्कृत युगम् ॥९३॥
तस्य तावच्छती सन्ध्या सन्ध्यांशश्च तथाविध ।
त्रेता त्रीणि सहस्राणि वर्षाणि च विदुर्बुधा ॥९४॥
शतानि षट् च राजेन्द्र सन्ध्यासन्ध्यांशयो पृथक् ।
वर्षाणा द्वे सहस्रे तु द्वापरे परिकीर्तित ॥९५॥

चत्वारि च शतान्याहुः सन्ध्यासन्ध्यांशयोर्बुध ।
सहस्रं कथितं तिष्ये शतद्वयसमन्वितम् ॥९६॥
एषा चतुर्युगस्यापि संख्या प्रोक्ता नृपोत्तम ।
यदेतत्परिसंख्या तमादावेव चतुर्युगम् ॥९७॥
एतद्द्वादशसाहस्रं देवानां युगमुच्यते ।
दैविकानां युगानां तु सहस्रपरिसंख्यया ॥९८॥

युगों में एक एक युग का क्रम से ब्रह्मा का दिन और रात्रि समझनी चाहिए। ब्रह्मा के चार सहस्र वर्षों का कृत युग होता है। उसकी उतनी ही सन्ध्या है और उसी प्रकार का सन्ध्यांश होता है। कुछ लोग त्रेता युग को तीन सहस्र वर्षों का बताया करते हैं ॥९३-९४॥ हे राजेन्द्र! छः सौ छः सौ इसके पृथक् सन्ध्या तथा सन्ध्यांश होते हैं। दो सहस्र वर्षों का त्रेता के पश्चात् द्वापर युग होता है ॥९५॥ इसके सन्ध्या और सन्ध्यांश चार सौ होते हैं। तिष्य में एक सहस्र वर्ष कहे गये हैं जो कि दो सौ सन्ध्या-सन्ध्यांश से युक्त होता है ॥९६॥ हे नृपोत्तम! यह चारों (सतयुग-त्रेता-द्वापर-कलियुग) की संख्या बताई गई है। इसकी जो परिसंख्या है वह आदि में ही चतुर्युग बताई गई है ॥९७॥ यह बारह सहस्र देवताओं का एक युग होता है। इस प्रकार से दैविक युगों की जब एक सहस्र परिसंख्या होती है तब ब्रह्मा का एक दिन होता है ॥९८॥

ब्राह्ममेकमहर्ज्ञेयं तावती रात्रिरुच्यते ।
एतद्युगसहस्रान्तं ब्राह्मं पुण्यमहर्विदुः ॥९९॥
रात्रिं च तावतीमेव तेऽहोरात्रविदो जनाः ।
ततोऽसौ युगपर्यन्ते प्रसुप्तः प्रतिबुध्यते ॥१००॥
प्रतिबुद्धस्तु सृजति मनः सदसदात्मकम् ।
मनः सृष्टिं विकुरुते चोद्यमानं सिसृक्षया ॥१०१॥
विकुर्वन् आपो तस्मात्तस्य शब्दं गुणं विदुः ।
विगुत्रान् विकुर्वाणात्सर्वगन्धवहः शुचिः ॥१०२॥
बलवाञ्जायते वायुः स वै स्पर्शगुणो मतः ।
वायोरपि विकुर्वाणाद्विरोचिष्णु तमोनुदम् ॥१०३॥

उत्पद्यते विचित्रांशुस्तस्य रूप गुण विदु ।
तस्मादपि विकुर्वाणादापो जाता स्मृता बुधै ॥१०४॥
तासा गुणो रसो ज्ञेय सर्वलोकस्य भावन ।
अद्भ्यो गधगुणा भूमिरित्येषा सृष्टिरादित ॥१०५॥

ब्रह्मा का जैसा दिन होता है उतने ही परिमाण की ब्रह्मा की रात्रि हुआ करती हैं। यह युग के सहस्र का अन्त ब्राह्म पुण्य दिन कहा गया है ॥९९॥ उतनी ही दिन के बराबर रात्रि होती है। ऐसे दिन और रात्रि का एक अहोरात्र जानना चाहिए। इस तरह से एक युग पर्यन्त वह प्रसुप्त रहकर फिर जागते है ॥१००॥ जब यह ब्रह्मा प्रतिबुद्ध हो जाते हैं तो फिर जगकर सद् और असद् स्वरूप वाले मन का सृजन किया करते हैं। सृजन करने की इच्छा से प्रेरणा प्राप्त करने वाला यह मन सृष्टि किया करता है ॥१०१॥ उनसे विपुल अर्थात् नभ उत्पन्न होता है उसका गुण शब्द होता है। विपुल से जब वह विकुर्वाण होता है तो सबगन्धों का वहन करने वाला वायु उत्पन्न होता है ॥१०२॥ वायु बलवान् उत्पन्न हो जाता है तो उसका गुण स्पर्श कहा गया है। विकुर्वाण वायु से फिर तम का नाशन करने वाला विरोचिष्णु उत्पन्न होता है ॥१०३॥ इस उत्पन्न हुए विचित्रांशु का गुण रूप होता है। जब यह भी विकुर्वाण अर्थात् विकार युक्त होता है तो इससे जल उत्पन्न होते हैं। इन जलों का गुण रस होता है जो कि समस्त लोक को प्रिय लगने वाला होता है। इन जलों से गन्ध के गुण वाली भूमि उत्पन्न होती है। यह इस प्रकार से आदि में सृष्टि का क्रम होता है ॥१०४-१०५॥

यत्प्राग्द्वादशसाहस्रमुक्त सौमनस युगम् ।
तदेकसप्ततिगुण मन्वतरमिहोच्यते ॥१०६॥
मन्वतराण्यसख्यानि सर्ग सहार एव च ।
तथा सृष्टा सदा ब्राह्म मनवस्तु चतुर्दश ॥१०७॥
गम्यते कुरुशार्दूल सख्यया परिते सदा ।
मनो स्वायम्भुवस्येह षड्वश्या मनवोऽपरे ॥१०८॥

सृष्टवत प्रजा स्वा स्वा महात्मानो महौजस ।
सावर्ण्यस्तथा पचभौत्यो रौच्यस्तथापर ॥१०९॥
एते भविष्या मनव सप्त प्रोक्ता नृपोत्तम ।
स्वेस्वेन्तरे सर्वमिद पालयति चराचरम् ॥११०॥
एवविध दिन तस्य विरिंचेस्तु महात्मन ।
तस्याते कुरुते सर्गं यथेद कथित तव ॥१११॥
क्रीडन्निवैतत्कुरुते परमेष्ठी नराधिप ।
चतुष्पात्सकलो धर्म सत्य चैव कृते युगे ॥११२॥

जो बारह सहस्र वाला देवो का युग पभी बताया गया है उसको इकहत्तर से गुणित करने पर एक मन्वन्तर कहा जाता है ॥१०६॥ इस तरह असख्य मन्वन्तर होते हैं और उनका सर्ग और सहार भी होता है। तो भी ब्राह्म दिन मे अर्थात् ब्रह्मा के दिन में चौदह मनु हुआ करते हैं ॥१०७॥ हे कुरुशार्दूल ! पण्डितो के द्वारा सदा सख्या इस प्रकार से कही जाती है। यहाँ पर स्वायम्भुव मनु के दूसरे वश म होने वाले छै मनु है ॥१०८॥ ये महान् आत्मा वाले और महान् ओज से युक्त अपनी अपनी प्रजाओ की सृष्टि करने वाले थे। सावर्णेय, पञ्चभौत्य तथा अपररौच्य मनु है। हे नृपोत्तम ! ये सात आगे होने वाले मनुगण कहे गये हैं। इतर सब अपने अपने इस चराचर का पालन किया करते है ॥१०९॥११०॥ इस प्रकार का महात्मा विरञ्चि का दिन होता है। उसके अन्त म सर्ग को किया करता है जैसा कि तुम्हारे सामने मैंने कहा है ॥१११॥ हे नरो के अधिप ! परमेष्ठी पितामह इस जगत् का सृजन क्रीडा की भाँति किया करते हैं। पूरा धर्म चार पाद वाला होता है और सत्य भी होता है जो कि कृतयुग म था ॥११२॥

भूताना प्राणिन श्रेष्ठा प्राणिना बुद्धिजीविन ।
बुद्धिमत्सु नरा श्रेष्ठा नरेषु ब्राह्मणा स्मृता ॥११३॥
ब्राह्मणेषु च विद्वासो विद्वत्सु कृतबुद्धय ।
कृतबुद्धिषु कर्तार कर्तृषु ब्रह्मवेदिन ॥११४॥

जन्म विप्रस्य राजेन्द्र धर्मार्थमिह कथ्यते ।
उत्पन्न सर्वसिद्धयर्थं याति ब्रह्मसदो नृप ॥११५॥
महर्लोकाज्जनोलोकं ब्रह्मलोकं च गच्छति ।
ब्रह्मत्वं च महाबाहो याति विप्रो न संशय ॥११६॥
ब्रह्मत्व नाम दुष्प्राप ब्रह्मलोकेषु सुव्रत ॥११७॥
ब्रह्मत्व कीदृश विप्रो ब्रह्मलोकं च गच्छति ।
नाममात्रोऽथ किं विप्रो ब्रह्मत्वं ब्रह्मण सदा ।
याति ब्रह्मन्गुणा के स्युर्ब्रह्मप्राप्तौ ममोच्यताम् ॥११८॥

जगत् के समस्त भूतो मे प्राणी श्रेष्ठ होते हैं। प्राणियो मे जो बुद्धि जीवी प्राणी होते हैं वे श्रेष्ठ होते हैं। बुद्धि से अपना जीवन यापन करने वाले प्राणी बुद्धिजीवी कहे जाया करते हैं। बुद्धिमानो मे भी नर श्रेष्ठ हैं और नरो मे भी ब्राह्मण परम श्रेष्ठ माने जाया करते हैं ॥११३॥ ब्राह्मणो मे भी जो विद्वान् होते हैं वे श्रेष्ठ होते है। विद्वानो मे भी कृत बुद्धि अर्थात् प्रतिभा वाले श्रेष्ठ है। कृत बुद्धियो मे भी कर्त्ता अर्थात् करने वाले श्रेष्ठ हैं और कर्त्ताओ मे भी ब्रह्म के ज्ञाता श्रेष्ठ होते हैं ॥११४॥ हे राजर्षे ! यहाँ संसार मे ब्राह्मण का जन्म धर्म के लिये ही कहा जाता है। समस्त सिद्धि के लिये उत्पन्न होकर ब्रह्म पद को वह प्राप्त होता है। ११५॥ महर्लोक से जनलोक को और ब्रह्म लोक को जाया करता है। हे महाबाहुओ वाले ! विप्र अन्त मे ब्रह्मत्व को अर्थात् ब्रह्म के स्वरूप को प्राप्त हो जाता है इसमे तनिक भी संशय नहीं है ॥११६॥ हे सुव्रत ! शतानीक ने कहा—ब्रह्म लोको मे ब्रह्मत्व बहुत कठिन और दुष्प्राप्य होता है तो वह ब्रह्मत्व किस प्रकार का होता है जिसको विप्र ब्रह्म लोक मे जाकर भी फिर बाद मे प्राप्त किया करता है? क्या नाम मात्र का विप्र सदा ब्रह्मा के ब्रह्मत्व को प्राप्त किया करता है। हे ब्रह्मन् ! वे कौनसे गुण हुआ करते हैं जो कि ब्रह्म की प्राप्ति मे होने चाहिए। आप कृपा कर मुझे यह सब बताइये ॥११७॥११८॥

साधुसाधु महाबाहो शृणु मे परम वच ॥११९॥

ये प्रोक्ता वेदशास्त्रेषु संस्कारा ब्राह्मणस्य तु ।
गर्भाधानादयो ये च संस्कारा यस्य पार्थिव ॥१२०॥
चत्वारिंशत्तथाष्टौ च निर्वृत्ताः शास्त्रतो नृप ।
स याति ब्रह्मणः स्थानं ब्राह्मणत्वं च मानद ।
संस्काराः सर्वथा हेतुर्ब्रह्मत्वे नात्र संशयः ॥१२१॥
संस्काराः के मता ब्रह्मन्ब्रह्मत्वे ब्राह्मणस्य तु ।
शंस मे द्विजशार्दूल कौतुकं हि महन्मम ॥१२२॥
साधुसाधु महाबाहो शृणु मे परमं वचः ।
ये प्रोक्ता वेदशास्त्रेषु संस्कारा ब्राह्मणस्य तु ।
मनीषिभिर्महाबाहो शृणु सर्वानशेषतः ॥१२३॥
गर्भाधानं पुंसवनं सीमन्तोन्नयनं तथा ।
जातकर्मान्नप्राशनं च चूडोपनयनं नृप ॥१२४॥
ब्रह्मव्रतानि चत्वारि स्नानं च तदनंतरम् ।
सधर्मचारिणीयोगो यज्ञानां कर्म मानद ॥१२५॥
पञ्चानां कार्यमित्याहुरात्मनः श्रेयसे नृप ।
देवपितृमनुष्याणां भूतानां ब्रह्मणस्तथा ॥१२६॥

सुमन्तु ने कहा—हे महाबाहो ! बहुत अच्छा प्रश्न तुमने पूछा है । अब तुम मेरा वचन सुनो । वेद शास्त्रों में ब्राह्मण के जो संस्कार बताये गये हैं और जो गर्भाधान आदि संस्कार होते हैं वे कुल ४८ संस्कार ब्राह्मण के होते हैं । जिसके शास्त्र की विधि से ये सब पूरे-पूरे किये गये हैं वह ब्राह्मण ब्रह्मा के पद को प्राप्त करता है और हे मानद ! वह ब्रह्मत्व को भी प्राप्त किया करता है । ये संस्कार सब प्रकार से ब्रह्मत्व की प्राप्ति में हेतु हुआ करते हैं । इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥११९।१२०॥१२१॥ राजा शतानीक ने कहा—हे ब्रह्मन् ! ब्राह्मण के ब्रह्मत्व का स्वरूप प्राप्त करने में कौन से संस्कार माने गये हैं ? हे द्विजों में शार्दूल ! मुझे हृदय में इसके जानने का बड़ा कुतूहल हो रहा है । आप कृपाकर मुझे समझाइये ॥१२२॥ महर्षि सुमन्तु ने शतानीक राजा के प्रश्न का उत्तर देते हुए कहा—हे महाबाहो ! बहुत

अच्छा प्रश्न है, अब तुम मेरे परम वचन इस विषय मे श्रवण करो । वेदो म और शास्त्रो म ब्राह्मण के जो भी सस्कार कहे गये हैं और मनीषियो ने उनको भली भाँति बताया है उन सबको पूर्णतया अब तुम मुझसे श्रवण करो ॥१२३॥ वे सस्कार क्रम से ये होते हैं—सबसे प्रथम गर्भाधान सस्कार होता है फिर पुंसवन होता है सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, अन्नप्राशन चूडोपनयन, चार ब्रह्मव्रत और उनके अनन्तर स्नान सहधर्मचारिणी के साथ योग अर्थात् विवाह पाँच यज्ञो के कर्म का कार्य हे नृप । ये समस्त सस्कार आत्मा के श्रेय के लिये ही होते है । देव पितृगण और मनुष्यो के तथा भूतो के और ब्रह्म के कल्याण के लिये होते हैं ॥१२४॥१२५॥१२६॥

एतेषा चाष्टकाकर्म पार्वणश्राद्धमेव हि ।
श्रावणी चाग्रहायणी चैत्री चाश्वयुजी तथा ॥१२७॥
पाकयज्ञास्तथा सप्त अग्न्याधान च सत्क्रिया ।
अग्निहोत्र तथा राजन्दर्श च विधुसक्षये ॥१२८॥
पौर्णमास च राजेन्द्र चातुर्मास्यानि चापि हि ।
निरूपण पशुवध तथा सौत्रामणीति च ॥१२९॥
हविर्यज्ञास्तथा सप्त तेषा चापि हि सत्क्रिया ।
अग्निष्टोमोत्यग्निष्टोमस्तथोक्थ्य षोडशी विदु ॥१३०॥
वाजपेयोतिरात्रश्च आप्तोर्यामेति वै स्मृत ।
सस्कारेषु स्थिता सप्त सोमा कुरुकुलोद्वह ॥१३१॥
इत्येते द्विजसस्काराश्चत्वारिंशन्नृपोत्तम ।
अष्टौ चात्मगुणास्तात शृणु तानपि भारत ॥१३२॥
अनसूया दया क्षान्तिरनायास च मगलम् ।
अकार्पण्य तथा शौचमस्पृहा च कुरूद्वह ॥१३३॥

इनका अष्टका कर्म, पार्वण श्राद्ध, श्रावणी आग्रहायणी, चैत्री, आश्वयुजी, सात पाक यज्ञ अग्न्याधान सत्क्रिया तथा हे राजन् ! अग्नि होत्र, दर्श, विधु सक्षय मे पौर्णमास और चातुर्मास्य, निरूढ पशु बन्ध सौत्रामणी सात हविर्यज्ञ और उनकी सत्क्रियाएँ, अग्निष्टोम अत्यग्निष्टोम, उक्थ्य, षोडशी,

मन-वचन और शरीर मे उत्पादिन दु ख से भी जो क्रोध नही किया करता है और न अप्रीति का भाव ही रखना है उसे क्षमा कहा गया है ॥१३७॥ जो भक्षण करने के योग्य नही है उसका परिहार रखना तथा जो अनिन्दित अर्थात् सत् पुरुष है उनके साथ संसर्ग रखना तथा आचार मे व्यवस्थित रहना, इसी को शौच कहा गया है ॥१३८॥ जिस शुभ कर्म से भी शरीर को पीडा उत्पन्न होती है उस कर्म को अत्यन्त रूप से नही करना ही अनायास कहा गया है ॥१३९॥ प्रशस्त कार्यों का करना और नित्य ही अप्रशस्त कर्मों का त्याग कर देना, इसी को मङ्गल कहा गया है। इसे समस्त मुनिगण ब्रह्मवादियो ने मङ्गल नाम से पुकारा है ॥१४०॥

एतद्धि मगल प्रोक्तं मुनिभिर्ब्रह्मवादिभि ॥१४१॥
स्तोकादपि प्रदातव्यमदीनेनान्तरात्मना ।
अहन्यहनि यत्किञ्चिदकार्पण्य तदुच्यते ॥१४२॥
यथोत्पन्नेन सतुष्ट स्वल्पेनाप्यथ वस्तुना ।
अहिंसया परस्वेषु साऽस्पृहा परिकीर्तिता ॥१४३॥
वपुर्यस्य तु दृश्येतं सस्कारं सस्कृत द्विज. ।
ब्रह्मत्वमिह सप्राप्य ब्रह्मलोक च गच्छति ॥१४४॥
वैदिकै कर्मभि पुण्यैर्निषेकाद्यै द्विजन्मनाम् ।
कार्य शरीरसस्कार. पावन. प्रेत्य चेह च ॥१४५॥
गर्भशुद्धि तत प्राप्य धर्म चाश्रमलक्षणम् ।
याति मुक्ति न सदेह पुराणेस्मिन्नृपोत्तम ॥१४६॥

अपनी स्वल्प वस्तु मे से भी अन्तरात्मा को दीन न करते हुए जो प्रदान कर देना है और ऐसा दिन-प्रतिदिन थोडा बहुत किया जाता है उसे ही अकार्पण्य कहा गया है ॥१४१॥१४२॥ जो कुछ भी उत्पन्न हो अर्थात् लब्ध हो उसी मे सन्तुष्ट रहते हुए चाहे वह बहुत ही थोडा भी क्यों न हो, पराये धन मे हिंसा भाव का न रखना ही अस्पृहा कही जाती है। इन संस्कारो से जिसका शरीर संस्कृत किया गया हो वह द्विज यहाँ ब्रह्मत्व को प्राप्त करके निश्चय ही ब्रह्मलोक को जाया करता है ॥१४३॥१४४॥ निषेकादि वैदिक

पुण्य कर्मों के द्वारा द्विजन्मापन के शरीर का संस्कार करना चाहिए। वह पर पावन हो जाता है और अन्त में मरकर सद्गति को प्राप्त होता है ॥१४५
हे नृपोत्तम ! इससे सब की शुद्धि प्राप्त करके और प्राश्रय के लक्षण वाले ध को प्राप्त कर मुक्ति को प्राप्त करता है। इस पुराण में कुछ भी सन्देह नः है ॥१४६॥

॥ सर्व संस्कार वर्णन ॥

जातकर्मादिसंस्कारान्वर्णानामनुपूर्वशः ।
आश्रमाणां च मे धर्म कथयस्व द्विजोत्तम ॥१॥
गर्भाधानं पुंसवनं सीमंतोन्नयनं तथा ।
जातकर्मान्नप्राशश्च चूडा मौंजीनिबंधनम् ॥२॥
वैजिकं गार्भिकं चैनो द्विजानामपमृज्यते ।
स्वाध्यायेन व्रतैर्होमैस्त्रैविद्येनेज्ययाश्रुतैः ॥३॥
महायज्ञैश्च ब्राह्मीयं यज्ञैश्च क्रियते तनुः ।
शृणुष्वैकमना राजन्यथा गा क्रियते तनुः ॥४॥
प्राङ्नाभिवर्धनात्पुंसो जातकर्मविधीयते ।
मन्त्रवत्प्राशनं चास्य हिरण्यमधुसर्पिषाम् ॥५॥
नामधेयं दशम्यां तु केचिदिच्छन्ति पार्थिव ।
द्वादश्यामपरे राजन्मासि पूर्णे तथा परे ॥६॥
अष्टादशेऽहनि तथान्ये वदन्ति मनीषिणः ।
पुण्ये तिथौ मुहूर्ते च नक्षत्रे च गुणान्विते ॥७॥

प्राशन, चूडा, मौञ्जी निबन्धन वर्जित और गार्भिक ये द्विजों के मन को अपभृष्ट किया करते है। स्वाध्याय से, व्रतों से, होमो स, इज्या से, श्रुत से और महा-यज्ञा स तथा यज्ञा से तनु ब्राह्मीय किया जाता है। हे राजन् ! तुम एक मन वाले होकर श्रवण करो। जिस प्रकार से यह तनु ब्राह्मीय किया जाया करता है ।।२।।३।।४।। नाभि के नाल के काटने से पूर्व ही पुरुष का जात कर्म किया जाता है। और इसका मन्त्र वाला हिरण्य-मधु और घृत का प्राशन होना है ।।५।। हे पार्थिव ! कुछ विद्वान् नामकरण संस्कार दशमी तिथि अर्थात् दशवें दिन चाहते हैं, अन्य लोग बारहवें दिन मे और कुछ लोग मास के पूर्ण होने पर नामकरण करना ठीक समझते है ।।६।। अन्य मनीषी लोग अठारवें दिन में इस संस्कार का करना उचित बतलाते है। जबकि पुण्य तिथि हो, अच्छा मुहूर्त हो और गुणों से युक्त नक्षत्र हो, तभी नामकरण करना चाहिए ।।७।।

मङ्गल्यं तात विप्रस्य शिवशर्मेतिपार्थिव ।
राजन्यस्य विशिष्टं तु इन्दुवर्मेति कथ्यते ।।८।।
वैश्यस्य धनसंयुक्तं शूद्रस्य च जुगुप्सितम् ।
धनवर्धनेति वैश्यस्य सर्वदासेति हीनजे ।।९।।
मनुना च तथा प्रोक्तं नाम्नो लक्षणमुत्तमम् ।
शर्मवद्ब्राह्मणस्य स्याद्राज्ञो रक्षासमन्वितम् ।।१०।।
वैश्यस्य पुष्टिसंयुक्तं शूद्रस्य प्रेष्यसंयुतम् ।
स्त्रीणां सुखोद्यमक्रूरं विस्पष्टार्थमनोरमम् ।।११।।
मङ्गल्यं दीर्घवर्णान्तमाशीर्वादाभिधानवत् ।
द्वादशेऽहनि राजेन्द्र शिशोर्निष्क्रमणं गृहात् ।।१२।।
चतुर्थे मासि कर्तव्यं तथान्येषां मतं विभो ।
षष्ठेऽन्नप्राशनं मासि यथेष्टं मङ्गलं कुले ।।१३।।
चूडाकर्म द्विजातीनां सर्वेषामनुपूर्वशः ।
प्रथमेऽब्दे तृतीये वा कर्तव्यं कुरुनन्दन ।।१४।।

हे पार्थिव ! हे तात ! विप्र का मङ्गल सूचक शिवशर्मा ऐसा नाम होना चाहिए। क्षत्रिय का नाम वृद्ध विशिष्टता से युक्त इन्दुवर्मा जैसा नाम

किया जाता है ॥८॥ वैश्य का नाम ऐसा होना चाहिए जो धन से सयोग रखने वाला हो तथा शूद्र का नाम जुगुप्सा पूर्ण होना चाहिए। जैसे वैश्य का नाम धनवधन यह हो और शूद्र के नाम मे सवदास आदि प्रकार होना चाहिए ॥९॥ मनुमहर्षि ने उस प्रकार से कहा है कि नाम का उत्तम लक्षण होता है। ब्राह्मण का नाम शम वाला होना चाहिए, राजा अर्थात् क्षत्रिय का नाम रक्षा से समन्वित होना चाहिए ॥१०॥ वैश्य का नाम पुष्टि से सयुक्त होना चाहिए। शूद्र का नाम प्रेष्य से सयुक्त होना चाहिए। स्त्रियों के नाम सुख और उद्यम से परिपूर्ण—स्पष्ट अर्थ वाला और सु दर होना चाहिए ॥११॥ नाम मङ्गल सूचक, दीर्घ वर्ण जिनके अन्त म हो ऐसा और आशीर्वाद के अभिधान वाला होना चाहिए। हे राजेन्द्र ! बारहवें दिन मे शिशु का गृह स बाहिर निष्क्रमण कराना चाहिए ॥१२॥ इस शिशु के निष्क्रमण के विषय म अन्य विद्वानो का एसा भी मत है कि यह चौथे मास मे करना चाहिए। छठे मास म अन्न प्राशन करे और कुल गत जो भी माङ्गलिक माना जाता हो उसके अनुसार यथेच्छया इसे करे ॥१३॥ द्विजातियो का चूडा कर्म सस्कार सबका आनुपूर्व्य प्रथम वर्ष म या तृतीय वर्ष म करना चाहिए ॥१४॥

गर्भाष्टमेऽब्दे कुर्वीत ब्राह्मणस्योपनायनम् ।
गर्भादेकादशे राजन्क्षत्रियस्य विनिर्दिशेत् ॥१५॥
द्वादशेऽब्देपि गर्भात् वैश्यस्य व्रतमादिशेत् ।
ब्रह्मवर्चसकामेन कार्यं विप्रस्य पञ्चमे ॥१६॥
बलार्थिना तथा राज्ञ षष्ठेऽब्दे कार्यमेव हि ।
अर्थकामेन वैश्यस्य अष्टमे कुरुनन्दन ॥१७॥
आषोडशाद्ब्राह्मणस्य सावित्री नातिवर्तते ।
द्वाविंशते क्षत्रबन्धोराचतुर्विंशतेर्विश ॥१८॥
अत ऊर्ध्वं तु ये राजन्यथाकालमसस्कृता ।
सावित्रीपतिता व्रात्या व्रात्यस्तोमादृते मनो ॥१९॥
न चाप्येभिरपूतैस्तु आपद्यपि हि कर्हिचित् ।
ब्राह्मं यौन च सबन्धमाचरेद्ब्राह्मणै सह ॥२०॥

भवन्ति राजश्चर्माणि व्रतिना त्रिविधानि च ।
कार्ष्णारौरववास्तानि ब्रह्मक्षत्रविशा नृप ॥२१॥

ब्राह्मण का उपनयन सस्कार गर्भ से आठवें वर्ष म करना चाहिए। गर्भ से एकादश वर्ष मे क्षत्रिय का उपनयन सस्कार निर्दिष्ट किया जाता है। गर्भ से बारहवें वर्ष म वैश्य का व्रत कहा गया है। जो ब्रह्म वर्चस प्राप्त कराने की इच्छा वाला हो उसे ब्राह्मण का गर्भ से पाँचवें वर्ष मे ही उपनयन कर्म कराना चाहिए। तथा बल के चाहने वाले क्षत्रिय का छटवें वर्ष मे कराने और अर्थ की कामना वाले वैश्य का आठवें वर्ष म कराना चाहिए ॥१५॥१६॥१७॥ सोलह वर्ष तक ब्राह्मण को सावित्री का अतिवर्त्तन नही होता है, बाईस वर्ष तक क्षत्रिय का और चौबीस वर्ष तक वैश्य का अतिवर्त्तन नही हुआ करता है हे राजन्! इन बताई हुई अवस्थाओ से ऊपर जो द्विजातिगण यथासमय सस्कृत न हो वे सावित्री से पतित व्रात्य हो जाया करते है और व्रात्य स्तोम नामक क्रतु के बिना य अपूत होते हैं और कभी आपत्ति काल मे भी इन अपूतो अर्थात् अपवित्रो के साथ ब्राह्म और यौन सम्बन्ध नही करना चाहिए। ऐसे ब्राह्मण आदि ब्राह्मण ही नही रहने है। हे नृप! व्रतियो के तीन तरह के क्रम से ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यो के चर्म कार्ष्ण, रौरव और वास्त हो जाया करते है ॥१८॥१९॥२०॥२१॥

वसीरश्चानुपूर्व्येण वस्त्राणि विविधानि तु ।
ब्रह्मक्षत्रविशो राजञ्छाणक्षौमादिकानि च ॥२२॥
मौंजी त्रिवृत्समा श्लक्ष्णाकार्या विप्रस्य मेखला ।
क्षत्रियस्य च मौर्वीज्या वैश्यस्य शणतान्तवी ॥२३॥
मुञ्जालाभे तु कर्तव्या कुशाश्म तकवल्वजै ।
त्रिवृता ग्रथिनैकेन त्रिभि पञ्चभिरेव च ॥२४॥
कार्पासमुपवीत स्याद्विप्रस्योर्ध्ववृत त्रिवृत् ।
शणसूत्रमय राज्ञो वैश्यस्याविकसौत्रिकम् ॥२५॥
पुष्कराणि तथा चैषा भवति त्रिविधानि तु ।
ब्राह्मणो वैल्वपालाशौ तृतीयं प्लक्षज नृप ॥२६॥

वाटखादिरौ क्षत्रियस्तु तथान्य वेतसोद्भवम् ।
पैलवोदुम्बरौ वैश्यस्तथाश्वत्थजमेव हि ॥२७॥
दण्डानेतान्महाबाहो धर्मतोऽर्हति धारितुम् ।
केशान्तिको ब्राह्मणस्य दण्ड कार्यं प्रमाणत ॥२८॥
ललाटसमितो राज्ञ स्यात्तु नासान्तिको विश ।
ऋजवस्ते तु सर्वे स्युर्ब्राह्मणा सौम्यदर्शना ॥२९॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य क्रम से शाण और क्षौम आदि विविध प्रकार के वस्त्रो को धारण करे ॥२२॥ त्रिवृत्समा अर्थात् तीन लडो वाली मौञ्जी ब्राह्मण की होती है ब्राह्मण की मेखला श्लक्ष्णा होनी चाहिए । क्षत्रिय की मौर्वीज्या होती है और वैश्य की मेखला सन के तन्तुओ की होती है ॥२३॥ यदि मूंज की प्राप्ति न हो तो कुश अश्मन्तक और वल्वजो की मेखला बनानी चाहिए । वह त्रिवृता हो, उसमे एक ग्रन्थि तीन या पाँच हो सकती हैं ॥२४॥ विप्र का उपवीत कपास के सूत का होना चाहिए जोकि ऊर्ध्ववृत और त्रिवृत् होता है । क्षत्रिय का उपवीत सन के धागो के द्वारा निर्मित होना चाहिए और वैश्य का उपवीत आविक के धागा द्वारा निर्मित होना चाहिए ॥२५॥ इन ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यो के पुष्कर (दण्ड) भी तीन प्रकार के हुआ करते हैं । ब्राह्मण का पुष्कर या तो बिल्व वृक्ष का होना चाहिए या पलाश (ढाक) का होता है । ये दोनो यदि प्राप्त न हो तो तीसरा प्लक्ष का होता है ॥२६॥ क्षत्रिय का वटवृक्ष या खदिर का होता है और तीसरा वेतस का भी हुआ करता है । वैश्य का पुष्कर पैलव और गूलर का या तीसरा पीपल के वृक्ष का होता है ॥२७॥ हे महाबाहो ! तीन वर्ण वाले उक्त प्रकार के दण्डो को धारण करने के योग्य होते हैं । ब्राह्मण का दण्ड केशो के समीप तक पहुँचने वाला प्रमाण से बनाना चाहिए ॥२८॥ क्षत्रिय का दण्ड ऊँचाई मे ललाट तक पहुँचने वाला और वैश्य का दण्ड नाक तक पहुँचने वाला लम्बा होना चाहिए । ये सभी दण्ड बिल्कुल सीधे होने चाहिए । ब्राह्मण के दण्ड देखने मे बहुत सुन्दर होने चाहिए ॥२९॥

अनुद्वेगकरा नृणां सत्वचो नाग्निदूषिता ।
प्रगृह्य चेप्सितं दडमुपस्थाय च भास्करम् ॥३०॥
सम्यग्गुरुं तथापूज्य चरेद्भैक्ष्यं यथाविधि ।
भवत्पूर्वं चरेद्भैक्ष्यमुपनीतो द्विजोत्तम ॥३१॥
भवन्मध्यं तु राजन्यो वैश्यस्य भवदुत्तरम् ।
मातरं वा स्वसारं वा मातुर्वा भगिनीं निजाम् ॥३२॥
भिक्षेत भैक्ष्यं प्रथमं या चैनं नावमानयेत् ।
सुवर्णं रजतं चान्नं सा पात्रेऽस्य विनिर्दिशेत् ॥३३॥
समाहृत्य ततो भैक्ष्यं यावदर्थममायं ।
निवेद्य गुरुवेऽश्नीयादाचम्य प्राङ्मुख शुचि ॥३४॥
आयुष्यं प्राङ्मुखो भुङ्क्ते यशस्यं दक्षिणामुख ।
श्रियं प्रत्यङ्मुखो भुङ्क्ते ऋतं भुङ्क्ते उदयङ्मुख ॥३५॥

ये दण्ड मनुष्यों के हृदय में उद्वेग करने वाले नहीं होने चाहिए। इन दण्डों की छाल भी उनके साथ रहनी चाहिए और अग्नि से ये दूषित नहीं होने चाहिए अर्थात् कहीं भी अग्नि से जल-भुन न हो। इस प्रकार के दण्ड को ग्रहण करके भास्कर भगवान् का उपस्थान करना चाहिए ॥३०॥ अपने गुरु की भली भाँति समर्चा करके उपनयन संस्कार के समय में विधि पूर्वक भिक्षा चरण करना चाहिए। उपनीत अर्थात् उपनयन संस्कार किये जाने वाले ब्राह्मण को भिक्षा चरण करने के समय में 'भवत्' शब्द का पहिले प्रयोग करना चाहिए अर्थात् 'भवति भिक्षां देहि' ऐसा प्रयोग करे ॥३१॥ क्षत्रिय इस "भवत्" शब्द का मध्य में प्रयुक्त करे अर्थात् "भिक्षां भवति देहि"—इस तरह से कहे। वैश्य इसी भवत् शब्द का अन्त में प्रयोग करे अर्थात् 'भिक्षां देहि भवति'—ऐसा उसे कह कर भिक्षा की याचना करनी चाहिए। भिक्षा माता से अथवा भगिनी से या माता की निज भगिनी से माँगनी चाहिए। माता को 'भो मातः!' इस प्रकार से सम्बोधन करे तथा अन्य का भी ऐसे ही सम्बोधित करके भिक्षा की याचना करनी चाहिए ॥३२॥ सर्वप्रथम जिससे भिक्षा की याचना करे उसे इस ब्रह्मचारी का अपमान नहीं करना चाहिए। उसे चाहिए

कि वह इस बटु के पात्र मे सुवर्ण, चाँदी या अन्न भिक्षा के रूप मे देवे ॥३३॥ जो भी भिक्षा प्राप्त हो और जितनी भी आवश्यक हो तथा उस भिक्षा पात्र मे आ सके उसे लाकर अपने आचार्य श्री गुरुदेव को निवेदित कर देना चाहिए। गुरु की आज्ञा प्राप्त कर पूर्व की ओर मुख करके तथा पवित्र होकर और आचमन करके उसे खावे ॥३४॥ पूर्वमुख होकर जो खाता है वह आयुष्य की प्राप्ति करता है। दक्षिण मुख वाला यश का लाभ करता है। पश्चिम मुख श्री का लाभ प्राप्त करता है। जो उदङ्मुख होकर भोजन करता है वह सत्य का भोजन किया करता है ॥३५॥

उपस्पृश्य द्विजो राजन्नन्नमद्यात्समाहित ।
भुक्त्वा चोपस्पृशेत्सम्यगद्भि खानि च सस्पृशेत् ॥३६॥
तथान्न पूजयेन्नित्यमद्याच्चैतदकुत्सयन् ।
दर्शनात्तस्य हृष्येद्वै प्रसीदेच्चापि भारत ॥३७॥
अभिनन्द्य ततोऽश्नीयादित्येव मनुरब्रवीत् ।
पूजित त्वशन नित्य बलमोजश्च यच्छति ॥३८॥
अपूजित तु तद्भुक्तमुभय नाशयेदिदम् ।
नोच्छिष्ट कस्यचिद्दद्यान्नाद्याच्चैतत्तथातरा ॥३९॥
यस्त्वन्नमन्तरा कृत्वा लोभादत्ति नृपोत्तम ।
विनाश याति स नर इह लोके परत्र च ।
यथाभवत्पुरा वैश्यो धनवर्द्धनसज्ञित ॥४०॥

हे राजन् ! द्विज को उपस्पर्शन करके समाहित होते हुए अन्न को खाना चाहिए। जब भोजन समाप्त कर ले तब भी आचमन करना चाहिए और जल से भली-भाँति आकाश की ओर छींटे देवे ॥३६॥ नित्य ही अन्न का पूजन करना चाहिए और इस अन्न की कोई भी बुराई नही करते हुए ही इसका भोजन करे। हे भारत ! अन्न के दर्शन करके ही प्रसन्न होना चाहिए और मन मे अधिक हर्ष करना चाहिए ॥३७॥ महर्षि मनु ने कहा है पहिले अन्न का विशेष अभिनन्दन करके फिर इसका भोजन करना चाहिए। जो अन्न नित्य ही इस प्रकार से पूजित एवं सत्कृत होकर खाया जाता है वह बल और ओज

दोनो प्रदान किया करता है ॥३८॥ जो पूजित न होकर ही खाया जाता है वह बल और ओज दोनो को नष्ट कर दिया करता है। उच्छिष्ट (झूठा) अन्न कभी किसी का नहीं खाना चाहिए और इसको तथान्तर नहीं खाना चाहिए ॥३९॥ हे नृपोत्तम ! जो अन्तरा करके लोभ से अन्न को खा लेता है वह मनुष्य इस लोक में और परलोक मे दोनो ही जगह विनाश को प्राप्त होता है। जिस तरह पहिले समय मे धनवर्द्धन नाम वाला वैश्य विनष्ट हो गया था ॥४०॥

स कथमतरं पूर्वमन्नस्य द्विजसत्तम ।
किमन्तर तथान्नस्य कथ वा तत्कृत भवेत् ॥४१॥
पुरा कृतयुगे राजन्वैश्यो वसति पुष्करे ।
धनवर्धननामावै समृद्धो धनधान्यतः ॥४२॥
निदाघकाले राजेन्द्र स कृत्वा वैश्वदेविकम् ।
सपुत्रभ्रातृभि. सार्धं तथा वै मित्रबन्धुभिः ।
आहार कुरुते राजन्भक्ष्यभोज्यसमन्वितम् ॥४३॥
अथ तद्धुक्ततस्तस्य अन्न शब्दो महानभूत् ।
करुण. कुरुशार्दूल अथ त म प्रधावितः ॥४४॥
त्यक्त्वा स भोजन यावन्निष्क्रान्तो गृहवाह्यत. ।
अथ शब्दस्तिरोभूत. स भूयो गृहमागतः ॥४५॥
तमेव भाजन गृह्य आहार कृतवान्नृप ।
भुक्तशेषं महाबाहो आहार स तु भुक्तवान् ॥४६॥
भुक्त्वा स शतधा जातस्तस्मिन्नेव क्षणे नृप ।
तस्मादन्न न राजेन्द्र अश्नीयादतरा क्वचित् ॥४७॥
न चैवात्यशनं कुर्यान्न चोच्छिष्ट. क्वचिद्व्रजेत् ।
रसो भवत्यत्यनशनाद्रमाद्रोग प्रवर्तते ॥४८॥

शतानीक राजा ने कहा—हे द्विजश्रेष्ठ ! पहिले अन्न का अन्तर कैसे उमने किया था और अन्न का अन्तर क्या होता है तथा वह किस प्रकार से उसके द्वारा किया हुआ होता है ? ॥४१॥ सुमन्तु महर्षि ने कहा—प्राचीन समय में कृतयुग मे धनवर्द्धन नाम वाला वैश्य जो कि धन-धान्य से पूर्ण समृद्ध

था, पुष्कर में रहता था ॥४२॥ हे राजेन्द्र ! ग्रीष्म काल में उसने वैश्वदेविक किया था और फिर वह अपने पुत्र भाइयों के तथा मित्र और बन्धुओं के साथ भक्ष्य भोज्य से युक्त भोजन कर रहा था ॥४३॥ इसके अनन्तर जब कि वह अन्न को खा रहा था तब एक महान् शब्द हुआ था। हे कुरुशार्दूल ! उस शब्द के पीछे वह परण्य से भरा हुआ दौड़ा ॥४४॥ भोजन का त्याग करके जैसे ही घर से बाहिर निकला था कि वह शब्द तिरोहित हो गया था। वह फिर घर में आ गया था ॥४५॥ हे नृप ! उस ही पात्र को लेकर उसने अपना आहार किया अर्थात् भोजन किया था। जो आहार पहिले खाने से बचा हुआ था उसी आहार को उसने खा लिया था ॥४६॥ हे नृप ! उस आहार को खाकर वह उसी क्षण में सौ टुकड़ों में नष्ट हो गया था। इसलिए हे राजेन्द्र ! इस तरह अन्तरा वाले अन्न को कभी नहीं खाना चाहिए ॥४७॥ कभी अत्यधिक भोजन भी नहीं करे और उच्छिष्ट होकर अर्थात् भूठे मुँह वाला होकर कहीं भी नहीं जाना चाहिए। अत्यशन से रस हो जाता है और रस से रोग की प्रवृत्ति हो जाया करती है ॥४८॥

स्नानं दानं जपो होमः पितृदेवाभिपूजनम् ।
न भवति रसे जाते नागाणां भरतर्षभ ॥४९॥
अनारोग्यमनायुष्यमस्वर्ग्यं चातिभोजनम् ।
अपुण्यं लोकविद्विष्टं तस्मात्तत्परिवर्जयेत् ॥५०॥
यक्षभूतपिशाचानां रक्षसां च नृपोत्तम ।
गम्यो भवति वै विप्र उच्छिष्टो नात्र संशयः ॥५१॥
शुचित्वमाश्रयेत्तस्माच्छुचित्वान्मोदते दिवि ।
शुचिना चेह रमते द्वितीये वैदिकी श्रुतिः ॥५२॥

वह यक्ष, भूत, पिशाच और राक्षसों के गम्य होता है—इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥५१॥ इस कारण से सर्वदा शुचिता का ही आश्रय लेना चाहिए अर्थात् पवित्र रहना चाहिए शुचित्व रखने से स्वर्ग में सुख एवं प्रसन्नता प्राप्त किया करता है। शुचिता शील पुरुष यहाँ लोक में भी सुख के साथ रमण किया करता है-यह वैदिकी श्रुति है अर्थात् ऐसा वेद ने कहा है ॥५२॥



॥ सावित्री-माहात्म्य ॥

केशान्तः षोडशे वर्षे ब्राह्मणस्य विधीयते ।
राजन्यबधोर्द्वाविंशे वैश्यस्य ह्यधिके ततः ॥१॥
अमन्त्रिका सदा कार्या स्त्रीणां चूडा महीपते ।
सस्कारहेतोः कायस्य यथाकालं विभागशः ॥२॥
वैवाहिको विधिः स्त्रीणां संस्कारो नैगमः स्मृतः ।
निवसेद्वा गुरोर्वापि गृहे वाग्निपरिक्रिया ॥३॥
एष ते कथितो राजन्नौपनायनिको विधिः ।
द्विजातीनां महाबाहो उत्पत्तिव्यंजकः परः ॥४॥
कर्मयोगमिदानीं ते कथयामि महाबल ।
उपनीय गुरुः शिष्यं प्रथमं शौचमादिशेत् ॥५॥
आचारमग्निकार्यं च सन्ध्योपासनमेव च ।
अध्यापयेत्तु सच्छिष्यान्सदाचात उदङ्मुखः ॥६॥
ब्रह्माजलिकरो नित्यमध्याप्यो विजितेन्द्रियः ।
लघुनामास्तयंत्वाद्य सुमनाः सुप्रतिष्ठितः ॥७॥

इस अध्याय में प्रसंग के अर्थ से वर्णन के साथ सावित्री के माहात्म्य का वर्णन तथा उपनयन संस्कार की विधि का वर्णन किया जाता है। सुमन्तु महर्षि ने कहा—ब्राह्मण का केशान्त सोलहवें वर्ष में किया जाता है। क्षत्रिय का केशान्त बाईसवें वर्ष में तथा वैश्य का पच्चीसवें वर्ष में करना चाहिए ॥१॥ हे महीपते ! स्त्रियों की चूडा मन्त्रों से रहित ही सर्वदा करनी चाहिए। शरीर

के संस्कार के कारण समय के अनुसार विभाग करके इसे कर लेना चाहिए ॥२॥ स्त्रियों के विवाह करने की जो विधि होती है वह निगम के अनुकूल अर्थात् वैदिक होती है। या तो गुरु के समीप में ही निवास करना चाहिए या घर में ही अग्नि परिक्रिया करे ॥३॥ हे राजन्! यह उपनयन सम्बन्धित विधि तुमको बतादी है। हे महाबाहो! यह द्विजातियों का पर उत्पत्ति की व्यञ्जक होती है ॥४॥ हे महा बलवान्! अब मैं तुम से कर्मयोग की विधि को बतलाता हूँ। गुरु का कर्तव्य है कि पहले अपने शिष्य का उपनयन करा कर शौच रखने का उसे आदेश देना चाहिए ॥५॥ आचार उसे सिखाय, अग्नि कार्य बतावे और दोनों तीनों सन्ध्याओं में उपासना करने की विधि को पढ़ा देवे। जो सत् शिष्य हो उनका आचान्त और उत्तर की ओर मुख वाला होकर ब्रह्माञ्जलि करने वाला और इन्द्रियों के जीतने वाला शिष्य नित्य ही पढ़ाना चाहिए। हल्के और थोड़े वस्त्र धारण करने वाला, एकाग्र मन वाला, सुन्दर मन की इच्छा वाला एवं सुप्रतिष्ठित होकर अध्ययन करना चाहिए ॥६। ७॥

ब्रह्मारम्भेऽवसाने च पादौ पूज्यौ गुरोः सदा।
संहत्य हस्तावध्येयं स हि ब्रह्माञ्जलिः स्मृतः ॥८॥
व्यत्यस्तपाणिना कार्यमुपसंग्रहणं गुरोः।
सव्येन सव्यः स्प्रष्टव्यो दक्षिणेन तु दक्षिणः ॥९॥
अध्यष्यमाणं तु गुरुर्नित्यकालमतन्द्रितः।
अधीष्व भो इति ब्रूयाद्विरामोऽस्त्विति चारमेत् ॥१०॥
ब्रह्मणः प्रणवं कुर्यादादावन्ते च सर्वदा।
स्रवत्यनोङ्कृतं पूर्वं परस्ताच्च विशीर्यते ॥११॥
श्रूयतां चापि राजेन्द्र यथाकारं द्विजोऽर्हति।
प्राक्कूलान्पर्युपासीनः पवित्रैश्चैव पावितः ॥१२॥
प्राणायामैस्त्रिभिः पूतस्तत ओङ्कारमर्हति।
ओङ्कारलक्षणं चापि शृणुष्व कुरुनन्दन ॥१३॥
अकारं चाप्युकारं च मकारं च प्रजापतिः।
वेदत्रयान्निरदुहद्भूर्भुवः स्वरितीति च ॥१४॥

त्रिभ्य एव तु वेदेभ्य पादपादमदूदुहत् ।
तदित्यृचोऽस्या सावित्र्या परमेष्ठी प्रजापति ॥१५॥

वेदाध्ययन के आरम्भ मे और अध्ययन के अन्त मे सदा गुरु के चरणो की पूजा करनी चाहिए। दोनो अपने हाथो को सहत करके अध्ययन करना चाहिए। इस प्रकार हाथो के रखन ही को ब्रह्माञ्जलि कहा गया है ॥८॥ व्यत्यस्त हाथो वाले के द्वारा गुरु का उप सग्रहण करना चाहिए। सव्य के द्वारा सव्य (बाँया) चरण स्पर्श करना चाहिए और दाहिने हाथ स दक्षिण चरण को छूना चाहिए ॥९॥ नि य ही प्रत्येक समय मे गुरु त द्रा से रहित होकर पढने वाले अर्थात् जिसको पढाया जावे उस शिष्य म यह कहे— पढना आरम्भ करो। जब पढाना बन्द करे तब यह कहना चाहिए कि अब विराम कर दो' इस प्रकार स पढना निवारित करना चाहिए ॥१०॥ ब्रह्म अर्थात् वेद के अध्ययन के आरम्भ में और अन्त मे सवदा प्रणव का उच्चारण करना चाहिए। जो आरम्भ म ओंकृत नही है अर्थात् जिसक आरम्भ मे प्रणव नही कहा जाता है वह स्रवित होता है और परस्तात् मे विशीर्ण हो जाता है ॥११॥ हे राजन्द्र ! जिस प्रकार से द्विज ओङ्कार के योग्य होता है उसका श्रवण कर लो। प्राक्कूलो को पयु पासना करने वाला पवित्रो के द्वारा पावित हो जाता है ॥१२॥ तीन प्राणायामा क द्वारा पूत हो जाता है और फिर वह ओङ्कार क योग्य ह ता है। ह कुरुनन्दन ! अब ओङ्कार का लक्षण भी श्रवण करो ॥१३॥ प्रजाप त न तीनो वेदो से आकार उकार और मकार का सग्रह करके और भू भुव स्व इनका सग्रह करके इसकी रचना की है ।१४॥ तीनो वेदो से परम पितामह परमेष्ठी प्रजापति न इस सावित्री ऋचा के पाद पाद का दोहन किया था ॥१५॥

एतदक्षरमेनां च जपन्व्याहृतिपूर्विकाम् ।
सन्ध्ययोरुभयोर्विप्रो वद पुण्येन युज्यत ॥१६॥

सहस्रकृत्वस्त्वभ्यस्य बहिरेतत्त्रिक द्विज ।
महतोऽप्यनसो मासात्त्वचेवाहिर्विमुच्यते ॥१७॥

एतदृचा विसयुक्त काने च क्रियया स्वया ।
विप्रक्षत्रियविड्योनिगर्हणा याति साधुषु ॥१८॥

शृणुष्वैकमना राजन्परमं ब्रह्मणो मुखम् ।
ॐकारपूर्विकास्तिस्रो महाव्याहृतयोऽव्यया ॥१९॥

त्रिपदा चैव सावित्री विज्ञेया ब्रह्मणो मुखम् ।
योऽधीतेऽहन्यहन्येता त्रीणि वर्षाण्यतन्द्रित ॥२०॥

स ब्रह्म परमभ्येति वायुभूत खमूर्तिमान् ।
एकाक्षरं परं ब्रह्म प्राणायाम परतप ॥२१॥

इस प्रणव का और व्याहृतियो से सम्पन्न इस सावित्री का दोनो सन्ध्याओ म जप करने वाला विप्र वेद के पाठ स पुण्य स युक्त होता है ॥१६॥ इस त्रिक का एक सहस्र बार ब्राह्मण अभ्यास करके एक मास मे महान् पाप से छूट जाता है जिस प्रक र अपनी कांचली से सप छूट जाया करता है ॥१७॥ इसकी अर्चा से विसयुक्त और समय पर क्रिया से रहित होने वाले ब्राह्मण क्षत्रिय और वश्य साधु पुरुषो म नि दा को प्राप्त हुआ करते हैं ॥१८॥ हे राजन् ! तुम एक निष्ठ मन वाले होकर ब्रह्म के परम मुख का श्रवण करो । जिनके पूव म ओङ्कार होता है एसी तीनो महा व्याहृतियाँ अव्यय होती हैं ॥१९॥ तीन पदा वाली त्रिपदा सावित्री ब्रह्मा का मुख समझनी चाहिए। जो इसका प्रतिदिन तीन वष तक अतन्द्रित होकर पढता है वह वायुभूत आकाश की मूर्ति वाला होकर परम ब्रह्म को प्राप्त होता है। एक अक्षर अर्थात् ओम् यह एक अक्षर परब्रह्म होता है और प्राणायाम सब से बडा तप होता है ॥२०॥२१॥

सावित्र्यास्तु पर नास्ति मौनात्सत्य विशिष्यते ।
तप क्रिया होमक्रिया तथा दानक्रिया नृप ॥२२॥
अक्षयाता सदा राजन्यथाह भगवान्मनु ।
अक्षर त्वक्षर ज्ञेय ब्रह्मा चैव प्रजापति ॥२३॥
विधियज्ञात्सदा राजञ्जपयज्ञो विशिष्यते ।
[illegible] ॥२४॥

उपांशु स्याल्लक्षगुण साहस्रो मानस स्मृत ।
ये पाकयज्ञाश्चत्वारो विधियज्ञेन चान्विता ॥२५॥
सर्वे ते जपयज्ञस्य कला नार्हन्ति षोडशीम् ।
जपादेव तु ससिध्येद्ब्राह्मणो नात्र सशय ॥२६॥
कुर्यादन्यन्न वा कुर्यान्मैत्रो ब्राह्मण उच्यते ।
पूर्वा सध्या जपस्तिष्ठेत्सावित्रीमार्कदर्शनात् ॥२७॥
पश्चिमा तु समासीन सम्यगृक्षविभावनात् ।
दिनस्यादौ भवेत्पूर्वा शर्वर्यादौ तथा परा ॥२८॥
सनक्षत्रा परा ज्ञेया अपरा सदिवाकरा ।
जपस्तिष्ठन्परा सध्या नैशमेनो व्यपोहति ॥२९॥

सावित्री से पर कुछ भी नही है । मौन से सत्य विशिष्ट होता है । तप की क्रिया, होम की क्रिया अर्थात् होम करने का कर्म और दान की क्रिया ये सब अक्षय फल वाले होते हैं जैसा कि भगवान् मनु ने कहा है । प्रवर अक्षर जानना चाहिए ऐसा प्रजापति ब्रह्मा ने कहा है ॥२२॥२३॥ हे राजन् ! विधि यज्ञ से जप यज्ञ सदा विशेषता वाला होता है । यह जप यज्ञ नाना प्रकार के गुणोद्देश से सूक्ष्म एव आख्यात से युक्त होता है ॥२४॥ जो उपांशु जप होता वह लाख गुना होता है । जो मानस जप होता है वह सहस्र गुना फल वाला होता है । जो चार पाक यज्ञ होते हैं वे विधि यज्ञ से युक्त हुआ करते हैं ॥२५॥ ये सभी जप यज्ञ की सोलहवी कला के योग्य भी नही हुआ करते हैं । ब्राह्मण जप से ही ससिद्धि को प्राप्त होता है, इसमे तनिक भी सशय नही है ॥२६॥ जप यज्ञ के करने वाला ब्राह्मण अन्य कुछ भी करे या न करे । ऐसा ब्राह्मण मैत्र कहा जाता है जो सूर्य दर्शन से पूर्व सन्ध्या मे सावित्री का जप करता हुआ स्थित रहा करता है ॥२७॥ पश्चिम सन्ध्या नक्षत्र और तारागण के दर्शन होने से पूर्व भली भाँति समासीन होकर करनी चाहिए । दिन के आदि मे अर्थात् सूर्योदय के पूर्व पहिली अर्थात् प्रातःकालीन सन्ध्या करनी चाहिए और रात्रि होने से परा सन्ध्या अर्थात् सायङ्कालीन सन्ध्योपासना करनी चाहिए ॥२८॥ नक्षत्रों के सहित होने वाली परा और दिवाकर के सहित किये जाने

अपरा जाननी चाहिए। परा सन्ध्या का जप करता हुआ पुरुष जो अवस्थित होता है वह रात्रि में किये हुए पाप को दूर भगा दिया करता है ॥२६॥

अपरा तु समासीनो मल हृति दिवाकृतम् ।
नोपतिष्ठति य पूर्वा नोपास्ते पश्चिमा नृप ॥३०॥
स शूद्रवद्बहिष्कार्य सर्व स्माद्विजकर्मण ।
अपा समीपे नियतो नैत्यक विधिमास्थित ॥३१॥
सावित्रीमप्यधीयीत गत्वाऽरण्य समाहित ।
वेदोपकरणे राजन्स्वाध्याये चैव नैत्यके ॥३२॥
नात्र दोषोस्त्यनध्याये होममन्त्रेषु वा विभो ।
नैत्यके नास्त्यनध्यायो ब्रह्मसत्र हि तत्स्मृतम् ॥३३॥
ब्रह्माहुति हुत पुण्यमनध्यायवषट्कृतम् ।
ऋगेका यस्त्वधीयीत विधिना नियतो द्विज ॥३४॥
तस्य नित्य क्षरत्येषा पयो मेध्य घृत मधु ।
अग्निशुश्रूषण भैक्षमध शय्या गुरोर्हितम् ॥३५॥
आसमावर्तनात्कृतोपनयनो द्विज ।
आचार्यपुत्रशुश्रूषा ज्ञानदो धार्मिक शुचि ॥३६॥

अपरा सन्ध्या की उपासना म समासीन होने वाला पुरुष दिन के किये हुए मल का हनन कर देता है। हे नृप ! जो पूर्वा सन्ध्या की और पश्चिमा सन्ध्या की उपासना नहीं किया करता है वह एक शूद्र की भाँति समस्त द्विजो के कर्मों से बहिष्कृत कर देना चाहिए। जल के समीप म नियत होकर जो नित्य की जाने वाली विधि से आस्थित होता है, किसी वन मे जाकर जो समाहित होकर सावित्री का अध्ययन करता है हे राजन् ! वेद के उपकरण मे और नैत्यिक स्वाध्याय म अनाध्याय के समय में भी कोई दोष नही होता है तथा होम म वह जाने वाले मन्त्रों के पठन म भी अनाध्याय को कोई दोष नहीं हुआ करता है। हे विभो ! किसी भी नित्य किये जाने वाले कर्म म कोई अनाध्याय नही हुआ करता है। यह ब्रह्म सत्र कहा गया है ॥३०॥३१॥३२॥३३॥ जो विप्र विधिपूर्वक नियत होकर केवल एक ही ऋचा का अध्ययन करता है उसने

अनाध्याय वषट् कृत पुण्य ब्रह्माहुति का हवन कर लिया है ॥३४॥ यह अधीत् ऋचा उसको मेध्य पय—घृत और मधु का नित्य क्षरण किया करती है। अग्नि की शुश्रूषा उसका भैक्ष है और अध शय्या गुरु का हित होता है। समावर्त्तन तक उपनयन किया हुआ द्विज जो आचार्य पुत्र की शुश्रूषा करता है वह ज्ञान देने वाला धार्मिक और शुचि होता है ॥३५॥३६॥

आप्त शक्तोऽब्रद साधु स्वाध्यायो दश धर्मत ।
नापृष्ट कस्यचिद्ब्रूयान्न चान्यायेन पृच्छत ॥३७॥
जानन्नपि हि मेधावी जडवल्लोक आचरेत् ।
अधर्मेण च य प्राह यश्चाधर्मेण पृच्छति ॥३८॥
तयोरन्यतर प्रैति विद्वेष वा निगच्छति ।
धर्मार्थौ यत्र न स्याताता शुश्रूषा चापि तद्विधा ।
न तत्र विद्या वक्तव्या शुभ बीजमिवोषरे ॥३९॥
विद्ययैव सम काम मतव्य ब्रह्मवादिना ।
आपद्यपि हि घोराया न त्वेनामीरिणे वपेत् ॥४०॥
विद्या ब्राह्मणमित्याह शेवधिस्तेऽस्मि रक्ष माम् ।
असूयकाय मा प्रादास्तथा स्या वीर्यवत्तमा ॥४१॥
शेव सुखमुशन्तीह केचिज्ज्ञान प्रचक्षते ।
तौ धारयति वै यस्माच्छेवधिस्तेन सोच्यते ॥४२॥

आप्त (यथार्थ वक्ता) शक्तोनह और साधु दश धम से युक्त स्वाध्याय करने के योग्य होना है। बिना पूछे हुए किसी स भी कुछ नही बोलना च हिए और यदि कोई अन्याय पूर्वक पूछे तो भी कुछ नही कहना चाहिए ॥३७॥ जो मेधावी पुरुष होता है वह सभी कुछ का ज्ञान रखता है किन्तु सब जानते हुए भी उसे इस लोक मे एक जड पुरुष की भाँति आचरण करना च हिए। जो अधम स युक्त कुछ बोलता है या जो अधर्म स युक्त कुछ पूछता है उन दोनो म स अन्य तर नष्ट होता है अथवा विद्वेष को प्राप्त हाता है। जहाँ धर्म और अर्थ ये दोनो नहीं होत हैं और उस प्रकार की शुश्रूषा भी नही होती है वहाँ विद्या का वपन नही करना चाहिए अर्थात् ऐसे व्यक्तियो को विद्या नही बतानी

चाहिए। ऐसे पुरुषो को विद्या का दान उसी प्रकार का होता है जैसे अच्छे बाज का ऊपर भूमि म बोना निष्फल हुआ करता है ॥३८॥३६॥ ब्रह्मवादी पुरुष को अपनी विद्या को अपने ही साथ लेकर मरना चाहिए किन्तु घोर आपत्ति म भी इस विद्या को अयोग्य को नही देवे ॥४०॥ विद्या न ब्राह्मण से कहा था कि मैं तेरा खजाना हू, मेरी तू रक्षा कर, जो कोई असूया करने वाला हो उस मुझे कभी मत देना, तभी मैं अधिक वीर्य वाली होकर रहूगी ॥४१॥ शेव सुख को यहाँ कहते है, कुछ विद्वान् ज्ञान को कहा करते है। उन दोनो का वह धारण किया करती है इसी कारण से वह शेवधि–इस नाम से पुकारी जाया करती है ॥४ ॥

यमेव तु शुचि विद्यान्नियत ब्रह्मचारिणम् ।
तस्मै मा ब्रू हि विप्राय निधिपायाप्रमादिने ॥४३॥
ब्रह्म यस्त्वननुज्ञातमधीयानादवाप्नुयात् ॥४४॥
लौकिक वैदिक वापि तथाध्यात्मिकमेव च ।
स याति नरक घोर रौरव भीमदर्शनम् ॥४५॥
अणुमात्रात्मक देह षोडशार्धमिति स्मृतम् ।
आददीत यतो ज्ञान त पूर्वमभिवादयेत् ॥४६॥
सावित्रीसारमात्रोऽपि वरो विप्र सुयन्नित ।
नायन्नितस्त्रिवेदोऽपि सर्वाशी सर्वविक्रयी ॥४७॥
शय्यासनेध्याचरिते श्रयसा न समाविशेत् ।
शय्यासनस्थश्चैवैन प्रत्युत्थायाभिवादयेत् ॥४८॥
ऊर्ध्वं प्राणा ह्युत्क्रामति यून स्थविर आगते ।
प्रत्युत्थानाभिवादाभ्या पुनस्तान्प्रतिपद्यते ॥४९॥

जो कोई परम शुचि (पवित्र) हो नियत हो और ब्रह्मचर्य धारण करने वाला तुम उसे जान लो, उसी पुरुष को मुझे बताना। ऐसे ही विप्र को विद्या कहती है कि मुझे देना चाहिए जो मुझ निधि की रक्षा करने वाला और प्रमाद से रहित हो ॥४३॥ जो ब्रह्म अनुज्ञात नही है उसे जो अधीयान पुरुष हो उस से प्राप्त करना चाहिए ॥४४॥ लौकिक अथवा वैदिक और आध्यात्मिक

ज्ञान भी उस ही अधीयान नाना से प्राप्त करना चाहिए। अन्यथा ऐसा पुरुष अति भयानक दिखाई देने वाले घोर रौरव नरक को वह जाया करता है ॥४५॥ यह अणुमात्र स्वरूप देह षोडशाध कहा गया है। जिससे ज्ञान की प्राप्ति करे उसका पहिले अभिवादन अर्थात् प्रणाम करना चाहिए ॥४६॥ केवल सावित्री के सार का जानने वाला सुयंत्रित रहने वाला विप्र श्रेष्ठ होता है। जो भली भाँति यन्त्रित नहीं है वह चाहे तीनो वेदो का ज्ञाता भी क्या न हो सब कुछ का अशन करने वाला और सबका विक्रय करने वाले के समान माना जाता है ॥४७॥ शय्या और आसन पर श्रेष्ठ पुरुष के साथ कभी नहीं बैठना चाहिए। शय्या और आसन पर स्थित हो तो भी उससे तुरन्त उठ कर ऐसे श्रेष्ठ पुरुष को अभिवादन करना चाहिए ॥४८॥ जब कोई स्थविर अर्थात् वय और ज्ञान में वृद्ध पुरुष आता है तो उसके सामने आते ही युवक के प्राण ऊपर की ओर क्रमण करने लगते हैं। जब वह उन्हें देखकर प्रत्युत्थान और अभिवादन करता है तभी इन दोनो के करने के पश्चात् उन ऊर्ध्व क्रमण करने वाले प्राणो को यथा स्थान प्राप्त किया करता है ॥४९॥

अभिवादनशीलस्य नित्य वृद्धोपसेविन ।
चत्वारि सम्यग्वधते आयु प्रज्ञा यशो बलम् ॥५०॥
अभिवादपरो विप्रो ज्यायासमभिवादयेत् ।
असौ नामामस्मीति स्वनाम परिकीतयेत् ॥५१॥
नामधेयस्य ये केचिदभिवाद न जानते ।
तान्प्राज्ञोऽहमिति ब्रूयात्स्त्रिय सर्वास्तथैव च ॥५२॥
भो शब्द कीतयेदते स्वस्य नाम्नोभिवादने ।
नाम्न स्वरूपभावो हि भो भाव ऋषिभि स्मृत ॥५३॥
आयुष्मा भव सौम्यति वाच्योविप्रोऽभिवादने ।
अकारश्चास्य नाम्नोऽते वाच्य पूर्वाक्षर प्लुत ॥५४॥
यो न वेत्त्यभिवादस्य विप्र प्रत्यभिवादनम् ।
नाभिवाद्य स विदुषा यथा शूद्रस्तथैव स ॥५५॥

अभिवादे कृते यस्तु न करोत्यभिवादनम् ।
आशीर्वा कुरुशार्दूल स याति नरकं ध्रुवम् ॥५६॥

जो नित्य ही अपने से बड़ों के लिये अभिवादन करने के स्वभाव रखने वाला होता है और सदा बड़ों की सेवा-शुश्रूषा करने वाला रहता है उसके आयु, प्रज्ञा, यश और बल ये चार बढ़ा करते हैं ॥५०॥ जो विप्र अभिवादन करने में परायण हो उसे अपने से बड़ों का अभिवादन करना चाहिए और अभिवादन करने के समय में अमुक नाम वाला मैं हूँ जो कि आप को प्रणाम कर रहा हूँ, इस तरह से अपने नाम का उच्चारण करना चाहिए ॥५१॥ जो कोई अभिवादन करने वाले के नाम को नहीं जानते हैं उनके आगे मैं प्राज्ञ हूँ, ऐसा ही बोलना चाहिए। इसी प्रकार से समस्त स्त्रियों को भी करना चाहिए ॥५२॥ अपने नाम के अभिवादन में अन्त में 'भो' – इस शब्द का उच्चारण करना चाहिए। ऋषियों ने भो भाव को नाम का स्वरूप भाव कहा है ॥५३॥ "हे सौम्य, आयुष्मान् भव" अर्थात् तू बड़ी आयु वाला हो ऐसा अभिवादन में ब्राह्मण को बोलना चाहिए। इसके नाम के अन्त में अकार बोलना चाहिए और पूर्व का अक्षर प्लुत स्वर वाला कहना चाहिए ॥५४॥ जो ब्राह्मण अभिवादन का प्रत्यभिवादन करना नहीं जानता है ऐसे के लिये विद्वान् पुरुष को कभी भी अभिवादन नहीं करना चाहिए क्योंकि वह तो जैसा एक शूद्र होता है वैसा ही हुआ करता है ॥५५॥ अभिवादन करने पर जो अभिवादन नहीं किया करता है अथवा आशीर्वाद के वचन नहीं कहता है, हे कुरुशार्दूल ! वह पुरुष निश्चय ही नरक में जाया करता है ॥५६॥

अभीति भगवान्विष्णुर्वदियामीति शंकरः ।
द्वावेव पूजितौ तेन यः करोत्यभिवादनम् ॥५७॥
ब्राह्मणं कुशलं पृच्छेत्क्षत्रबंधुमनामयम् ।
वैश्यं क्षेमं समागम्य शूद्रमारोग्यमेव तु ॥५८॥
न वाच्यो दीक्षितो नाम्ना यवीयानपि यो भवेत् ।
भो भवत्पूर्वकत्वेन इति स्वायंभुवोऽब्रवीत् ॥५९॥

परपत्नी तु या राजानसवद्धा तु योनित ।
वक्तव्या भवतीत्येव सुभगे भगिनीति च ॥६०॥
पितृव्यान्मातुलाञ्राजञ्छ्वशुरानृत्विजो गुरून् ।
असावहमिति ब्रूयात्प्रत्युत्थाय जघन्यज ॥६१॥
मातृष्वसा मातुलानी श्वश्रूरथ पितृष्वसा ।
सपूज्या गुरुपत्नी च समास्ता गुरु भार्यया ॥६२॥
ज्येष्ठस्य भ्रातुर्या भार्या सवर्णाहन्यहन्यपि ।
पूजयन्प्रयतो विप्रो याति विष्णुसदो नृप ॥६३॥

अभिवादन शब्द म 'अभि —यह भगवान् विष्णु का स्वरूप है और 'वादयामि —यह शङ्कर का स्वरूप होता है। उसने इन दोनो का पूजन कर लिया है जो कि अभिवादन किया करता है ॥५७॥ ब्राह्मण से मिलने पर कुशल पूछना चाहिए। जो क्षत्रिय हो उससे अनामय पूछे और वैश्य से क्षेम तथा समागम कर के शूद्र से केवल आरोग्य ही पूछना चाहिए ॥५८॥ जो दीक्षित हो चाहे वः अपने से छोटा ही हो उसे नाम लेकर नहीं बुलाना या बोलना चाहिए। उससे भो भवत् पूर्वकत्व के द्वारा बोलना चाहिए, ऐसा स्वायम्भुव ने कहा है ॥५९॥ हे राजन्! जो कोई दूसरे की पत्नी हो और योनि से सम्बद्ध न हो उससे–भवति, सुभगे और भगिनी–इस प्रकार के शब्दो द्वारा सम्बोधित करके ही बोलना चाहिए ॥६०॥ जो पितृव्य हो अर्थात् पिता क भाई चाचा ताऊ हो मातुल हो, श्वशुर हो, ऋत्विज हो और गुरु हो उनके सामने उठकर यह मैं हूँ–ऐसा छोटे को बोलना चाहिए ॥६१॥ मातृष्वसा (मौसी), मातुलानी (मामी), श्वश्रू (सास अर्थात् पत्नी की माता), पितृष्वसा (भूआ) और गुरुपत्नी ये सब गुरु की भार्या के तुल्य ही पूज्य होती हैं ॥६२॥ अपने बडे भाई की जो भार्या हो और सवर्ण भार्या हो उसका प्रतिदिन प्रयत होकर पूजन करने वाला विप्र विष्णु लोक को जाया करता है ॥६३॥

प्रवासादेत्य सपूज्या ज्ञातिसबधि योषित ।
पितुर्या भगिनी राजन्मातुश्चापि विशापते ॥६४॥

आत्मनो भगिनी या च ज्येष्ठा कुरुकुलोद्वह ।
सदा स्वमातृवद्वृत्तिमातिष्ठेद्भारतोत्तम ॥६५॥
गरीयसी ततस्ताभ्यो माता ज्ञेया नराधिप ।
पुत्रमित्रभागिनेया द्रष्टव्या ह्यात्मना समा. ॥६६॥
दशाब्दाख्य पौरसख्य पचाब्दाख्य कलाभृताम् ।
अब्दपूर्वं श्रोत्रियाणा स्वल्पेनापि स्वयोनिषु ॥६७॥
ब्राह्मण दशवर्षं च शतवर्षं च भूमिपम् ।
पितापुत्रौ विजानीयाद् ब्राह्मणस्तु तयो. पिता ॥६८॥
इत्येव क्षत्रियपिता वैश्यस्यापि पितामह ।
प्रपितामहश्च शूद्रस्य प्रोक्तो विप्रो मनीषिभि ॥६९॥
वित्त बन्धुर्वय. कर्म विद्या भवति पचमी ।
एतानि मान्यस्थानानि गरीयो यद्यदुत्तरम् ॥७०॥

हे विशांपते ! जब कोई प्रवास से वापिस आवे तो उसे ज्ञाति से सम्बन्ध रखने वाली स्त्रियो का पूजन करना चाहिए। जो पिता की भगिनी हो उसका और माता का भी पूजन करे ॥६४॥ हे भारतोत्तम ! जो अपनी बडी बहिन हो उसके साथ सर्वदा अपनी माता के तुल्य व्यवहार करना चाहिए ॥६५॥ हे नराधिप ! उन सबमे बडी माता को जानना चाहिए। पुत्र, मित्र और भागिनेयो को सदा अपनी ही आत्मा के समान देखना चाहिए ॥६६॥ पौरसख्य दश वर्ष के नाम वाला होता है, जो कलाभृत् होते हैं उनका पञ्चाब्दाख्य सख्य होता है, श्रोत्रियो के एक वर्ष पहिला सख्य होता है और अपनी योनियो मे स्वल्प समय मे ही सख्य हुआ करता है ॥६७॥ ब्राह्मण दश वर्ष की अवस्था वाला हो और क्षत्रिय राजा चाहे सौ वर्ष की उम्र वाला हो क्यो न हो ये दोनों पिता और पुत्र के समान जानने चाहिए। उन दोनों मे ब्राह्मण पिता के तुल्य होता है ॥६८॥ इसी प्रकार से क्षत्रिय वैश्य का पिता के समान होता है। मनीषियों ने विप्र को शूद्र का पितामह और प्रपितामह बताया है ॥६९॥ धन, बन्धुता, अवस्था, कर्म और पाँचवी विद्या ये मान्यता के स्थान हुआ करते हैं। इनमे जो उत्तर है वही अधिक मान्यता का स्थान माना जाता है ॥७०॥

पचाना त्रिषु वर्गेषु भूयांसि गुणवन्ति च ।
यस्य स्युः सोऽत्र मानार्हः शूद्रोपि दशमी गतः ॥७१॥
चक्रिणो दशमीस्थस्य रोगिणो भारिणः स्त्रिया ।
स्नातकस्य तु राज्ञश्च पथा देयो वरस्य च ॥७१॥
एषां समागमे तात पूज्यौ स्नातकपार्थिवौ ।
आभ्यां समागमे राजन्स्नातको नृपमानभाक् ॥७३॥
अध्यापयेद्यस्तु शिष्यं कृत्वोपनयनं द्विजः ।
सरहस्यं सकल्पं च वेदं भरतसत्तम ।
तमाचार्यं महाबाहो प्रवदंति मनीषिणः ॥७४॥
एकदेशं तु वेदस्य वेदांगान्यपि वा पुनः ।
योऽध्यापयति वृत्त्यर्थमुपाध्यायः स उच्यते ॥७५॥
निषेकादीनि कार्याणि यः करोति नृपोत्तम ।
अध्यापयति चान्येन स विप्रो गुरुरुच्यते ॥७६॥
अग्न्याधेयं पाकयज्ञानग्निष्टोमादिकान्मखान् ।
यः करोति वृतो यस्य स तस्यर्त्विगिहोच्यते ॥७७॥

तीनों वर्गों में पाचों के बहुत से गुण वाले होते हैं। जिसको भी ये होते हैं वह यहाँ लोक में मान के योग्य होता है। दशमी को प्राप्त हुआ शूद्र भी मान के योग्य है ॥७१॥ मार्ग में जब जा रहे हो तो चक्री को, दशमीस्थ को, रोगी को, भार वहन करने वाले को, स्त्री को, स्नातक को, राजा को और वर को मार्ग छोड़ देना चाहिए अर्थात् जाने के लिये मार्ग पहिले दे देना चाहिए ॥७२॥ हे तात ! इन सबके समागम होने पर स्नातक और राजा पूजने के योग्य हुआ करते हैं। इन दोनों के समागम होने पर हे राजन् ! स्नातक राजा के मान का भाजन होता है ॥७३॥ हे भरत सत्तम ! जो ब्राह्मण शिष्य का उपनयन संस्कार करके उस रहस्य और कल्प के सहित वेद का अध्यापन किया करता है, हे महाबाहो ! मनीषी लोग उसको आचार्य कहा करते हैं ॥७४॥ जो वेद का एक भाग अथवा वेदों के अङ्गों का वृत्ति के प्राप्त करने के लिये पढ़ाया करता है वह उपाध्याय नाम से कहा जाता है ॥७५॥ हे नृपोत्तम !

जो निषेक आदि कार्यों को किया करता है और किसी अन्य के द्वारा अध्यापन कराता है वह गुरु कहा जाया करता है ॥७६॥ अग्न्याधेय-पाकयज्ञ और अग्निष्टोम आदि मखो को जिसका वृत होकर जो किया करता है वह उसका यहाँ पर ऋत्विक् कहा जाया करता है ॥७७॥

य आवृणोत्यवितथं ब्रह्मणा श्रवणावुभौ ।
स माता स पिता ज्ञेयस्तं न द्रुह्येत्कथंचन ॥७८॥
उपाध्यायाद्दशाचार्य आचार्याणां शतं पिता ।
सहस्रेण पितुर्माता गौरवेणातिरिच्यते ॥७९॥
उत्पादकब्रह्मदात्रोर्गरीयान्ब्रह्मदः पिता ।
ब्रह्मजन्म हि विप्रस्य प्रेत्य चेह च शाश्वतम् ॥८०॥
कामान्माता पिता चैनं यदुत्पादयतो मिथः ।
संभूतिं तस्य तां विद्याद्यद्योनावभिजायते ॥८१॥
आचार्यस्त्वस्य या जातिं विधिवद्वेदपारगः ।
उत्पादयति सावित्र्या सा सत्या साऽजरामरा ॥८२॥
उपाध्यायमादितः कृत्वा ये पूज्याः कथितास्तव ।
महागुरुर्महाबाहो सर्वेषामधिकः स्मृतः ॥८३॥

जो दोनों कानो को ब्रह्म के द्वारा सत्य को आवृत करता है वह माता और पिता जानना चाहिए और उनसे किसी भी भाँति द्रोह नहीं करना चाहिए ॥७८॥ दश उपाध्यायों के समान एक आचार्य और सौ आचार्यों के तुल्य एक पिता तथा एक सहस्र पिताओं के समान माता गौरव में अधिक होती है ॥७९॥ उत्पादक अर्थात् उत्पन्न करने वाला और ब्रह्मदाता इन दोनो में ब्रह्म का ज्ञान देने वाला पिता बड़ा होता है। ब्राह्मण का ब्रह्म जन्म यहाँ और मर कर शाश्वत रहा करता है ॥८०॥ माता और पिता परस्पर काम से अर्थात् काम वासना से इनको उत्पन्न किया करते हैं उसको उस संभूति अर्थात् उत्पत्ति को जोकि योनि में होती है, जाने ॥८१॥ वेद का पारगामी आचार्य उसकी विधिपूर्वक उस जाति को उत्पन्न किया करता है जोकि सावित्री के द्वारा की

वस्त्रवेषैस्तथान्यैस्तु हीनः स्याद्गुरुसन्निधौ ।
उत्तिष्ठेत्प्रथमं चास्य जघन्यं चापि संविशेत् ॥९६॥
प्रतिश्रवणसम्भाषे तल्पस्थो न समाचरेत् ।
न चासीनो न भुञ्जानो न तिष्ठन्न पराङ्मुखः ॥९७॥
आसीनस्य स्थितः कुर्यादभिगच्छंश्च तिष्ठतः ।
प्रत्युद्गन्ता तु व्रजतः पश्चाद्धावंश्च धावतः ॥९८॥
पराङ्मुखस्याभिमुखो दूरस्थस्यैत्य चान्तिकम् ।
नमस्कृत्य शयानस्य निदेशे तिष्ठ सर्वदा ॥९९॥

हे महाव्रत हो ! ब्राह्मण का जो क्रम कहा गया है हे गुरु नन्दन ! पण्डितों ने क्षत्रिय और वैश्य का यह नहीं कहा है ॥९२॥ प्रेरित किया गया हो या गुरु के द्वारा प्रेरणा नहीं की गई हो नित्य ही अध्ययन में योग करना चाहिए और अपने आचार्य के हितों में योग देना चाहिए ॥९३॥ ज्ञानेन्द्रियों को मन से नियन्त्रित करके तथा अपने शरीर और वाणी का नियमन करके गुरु के मुख को देखता हुआ प्राञ्जलि होकर अवस्थित होना चाहिए ॥९४॥ नित्य ही उद्धृत पाणि होकर रहना चाहिए साधु आचार वाला और संयत रहना चाहिए । जब यह कहा जावे कि बैठ जाओ तो गुरु के मुख के सामने ही बैठ जाना चाहिए ॥९५॥ अपने गुरु की सन्निधि में अर्थात् समीप में वस्त्र वेषों से और अन्यों से हीन होकर रहना चाहिए । जब अपने गुरु उठें तो उनसे पहिले ही स्वयं उठ जाना चाहिए तथा गुरु से नीचे के स्थान में सदा बैठना चाहिए ॥९६॥ गुरु की बात का प्रतिश्रवण तथा उनके साथ सम्भाषण तल्प पर बैठे हुए कभी नहीं करना चाहिए । बैठे हुए भोजन करते हुए, खड़े होते हुए और पराङ्मुख होकर भी गुरु की बात का श्रवण या उनके साथ भाषण न करे । जब गुरु बैठ जावें तो स्वयं भी स्थित हो जावे वे चलें तो चलना चाहिए और स्थित होवें तो स्वयं भी स्थित हो जावे । जब गुरु गमन करें तो स्वयं प्रत्युद्गमन करने वाला हो जावे और वे दौड़ें तो उनके पीछे दौड़ जानी चाहिए ॥९७॥९ ॥ यदि गुरु पराङ्मुख हों तो उनके अभिमुख हो जाना चाहिए । यदि गुरु दूर में स्थित हों

वस्त्रवेषैस्तथान्नैस्तु हीनः स्याद्गुरुसन्निधौ ।
उत्तिष्ठेत्प्रथमं चास्य जघन्यं चापि संविशेत् ॥९६॥
प्रतिश्रवणसंभाषे तल्पस्थो न समाचरेत् ।
न चासीनो न भुञ्जानो न तिष्ठन् पराङ्मुखः ॥९७॥
आसीनस्य स्थितः कुर्यादभिगच्छंश्च तिष्ठतः ।
प्रत्युद्गन्ता तु व्रजतः पश्चाद्धावंश्च धावतः ॥९८॥
पराङ्मुखस्याभिमुखो दूरस्थस्यैत्य चान्तिकम् ।
नमस्कृत्य शयानस्य निदेशे तिष्ठेत्सर्वदा ॥९९॥

हे महाबाहो ! ब्राह्मण का जो कर्म कहा गया है, हे कुरु नन्दन ! पण्डितों ने क्षत्रिय और वैश्य का यह नहीं कहा है ॥९२॥ प्रेरित किया गया हो या गुरु के द्वारा प्रेरणा नहीं की गई हो नित्य ही अध्ययन में योग करना चाहिए और अपने आचार्य के हित में योग देना चाहिए ॥९३॥ ज्ञानेन्द्रियों को मन से नियन्त्रित करके तथा अपने शरीर और वाणी का नियमन करके गुरु के मुख को देखता हुआ प्राञ्जलि होकर अवस्थित होना चाहिए ॥९४॥ नित्य ही उद्धृत पाणि होकर रहना चाहिए, साधु आचार वाला और संयत रहना चाहिए। जब यह कहा जावे कि बैठ जाओ तो गुरु के मुख के सामने ही बैठ जाना चाहिए ॥९५॥ अपने गुरु की सन्निधि में अर्थात् समीप में वस्त्र वेषों से और अन्नों से हीन होकर रहना चाहिए। जब अपने गुरु उठें तो उनसे पहिले ही स्वयं उठ जाना चाहिए तथा गुरु से नीचे के स्थान में सदा बैठना चाहिए ॥९६॥ गुरु की बात का प्रतिश्रवण तथा उनके साथ सम्भाषण तल्प पर बैठे हुए कभी नहीं करना चाहिए। बैठे हुए, भोजन करते हुए, खड़े होते हुए और पराङ्मुख होकर भी गुरु की बात का श्रवण या उनके साथ भाषण न करे। जब गुरु बैठ जावें तो स्वयं भी स्थित हो जावे, वे चलें तो चलना चाहिए और स्थित होवें तो स्वयं भी स्थित हो जावे। जब गुरु गमन करें तो स्वयं प्रत्युद्गमन करने वाला हो जावे और वे दौड़ें तो उनके पीछे दौड़ लगानी चाहिए ॥९७॥९८॥ यदि गुरु पराङ्मुख हो तो उनके अभिमुख हो जाना चाहिए। यदि गुरु दूर में स्थित हो

वस्त्रवेषैस्तथान्यैस्तु हीनः स्याद्गुरुसन्निधौ ।
उत्तिष्ठेत्प्रथमं चास्य जघन्यं चापि संविशेत् ॥९६॥
प्रतिश्रवणसंभाषे तल्पस्थो न समाचरेत् ।
न चासीनो न भुञ्जानो न तिष्ठन् पराङ्मुखः ॥९७॥
आसीनस्य स्थितः कुर्यादभिगच्छंश्च तिष्ठतः ।
प्रत्युद्गन्ता तु व्रजतः पश्चाद्धावंश्च धावतः ॥९८॥
पराङ्मुखस्याभिमुखो दूरस्थस्यैत्य चान्तिकम् ।
नमस्कृत्य शयानस्य निदेशे तिष्ठेत्सर्वदा ॥९९॥

हे महाबाहो ! ब्राह्मण का जो कर्म कहा गया है, हे कुरु नन्दन ! पण्डितों ने क्षत्रिय और वैश्य का यह नहीं कहा है ॥९२॥ प्रेरित किया गया हो या गुरु के द्वारा प्रेरणा नहीं की गई हो नित्य ही अध्ययन में योग करना चाहिए और अपने आचार्य के हितों में योग देना चाहिए ॥९३॥ ज्ञानेन्द्रियों को मन से नियन्त्रित करके तथा अपने शरीर और वाणी का नियमन करके गुरु के मुख को देखता हुआ प्राञ्जलि होकर अवस्थित होना चाहिए ॥९४॥ नित्य ही उद्धृत पाणि होकर रहना चाहिए साधु आचार वाला और संयत रहना चाहिए। जब यह कहा जावे कि बैठ जाओ तो गुरु के मुख के सामने ही बैठ जाना चाहिए ॥९५॥ अपने गुरु की सन्निधि में अर्थात् समीप में वस्त्र वेषों से और अन्यों से हीन होकर रहना चाहिए। जब अपने गुरु उठें तो उनसे पहिले ही स्वयं उठ जाना चाहिए तथा गुरु से नीचे के स्थान में सदा बैठना चाहिए ॥९६॥ गुरु की बात का प्रतिश्रवण तथा उनके साथ सम्भाषण तल्प पर बैठे हुए कभी नहीं करना चाहिए। बैठे हुए, भोजन करते हुए, खड़े होते हुए और पराङ्मुख होकर भी गुरु की बात का श्रवण या उनके साथ भाषण न करे। जब गुरु बैठ जावें तो स्वयं भी स्थित हो जावे, वे चलें तो चलना चाहिए और स्थित होवें तो स्वयं भी स्थित हो जावे। जब गुरु गमन करें तो स्वयं प्रत्युद्गमन करने वाला हो जावे और वे दौड़ें तो उनके पीछे दौड़ लगानी चाहिए ॥९७॥९८॥ यदि गुरु पराङ्मुख हो तो उनके अभिमुख हो जाना चाहिए। यदि गुरु दूर में स्थित हो

पुरुष हैं तथा जो श्रद्धा से समन्वित होते हैं उन्हीं के घरा मे प्रतिदिन ब्रह्मचारी को प्रयत होकर भैक्ष करना चाहिए ॥८४॥८५॥ गुरु के कुल मे तथा अपनी जाति-कुल और बन्धुओं मे भिक्षा चरण नही करना चाहिए। जब अन्य गोत्र वालो के यहाँ से इसका लाभ न हो तो क्रम से पूर्व-पूर्व का वर्जन करना चाहिए ॥८६॥ हे महाबाहो। ऊपर बताये गये व्यक्तियो के सम्भव न होने पर सम्पूर्ण ग्राम मे भिक्षा चरण करे किन्तु ग्राम मे जो अन्त्यज हो उनका त्याग कर देना चाहिए, ऐसा भगवान विभु ने आदेश दिया है ॥८६॥ हे कुरुनन्दन! बाणी का नियमन करके प्रयत होते हुए अग्नि और शस्त्र को त्याग देवे। जब लाभ न हो तो चारो वर्णों के यहाँ भैक्ष कर लेना चाहिए ॥८७॥ समीप से समिधाएँ लाकर गृह के ऊपर रख देवे फिर उन समिधाओं से तन्द्रा रहित होकर सायङ्काल और प्रात काल हवन करना चाहिए ॥८८॥ भिक्षाचरण और उस अग्नि का हवन न करके स्वस्थता की दशा मे सात रात्रि तक अवकीर्णि व्रत करना चाहिए। रुग्णावस्था मे कोई प्रायश्चित्त नहीं होता है ॥८६॥ मनीषी गण भिक्षा से इस ब्रह्मचारी के वर्तन के विषय मे कहते है कि उस भैक्ष से एक ही अन्न को न खाने वाला व्रती होता है ॥९०॥ भिक्षा के द्वारा जो व्रती की वृत्ति होती है वह उपवास के तुल्य ही कही गई है। दैवत्य कर्म मे और पित्र्य कर्म मे व्रत की भाँति तथा ऋषि की तरह यदि अभ्यर्थना द्वारा बुलाया गया हो तो इच्छा पूर्वक भोजन करे। यह भी व्रत के ही तुल्य माना जाता है। इससे ब्रह्मचारी के व्रत का लोप नही होता है ॥९१॥

ब्राह्मणस्य महाबाहो कर्म यत्समुदाहृतम्।
राजन्यवैश्ययोर्नैतत्पडितैं कुरुनन्दन ॥९२॥
चोदितोऽचोदितो वापि गुरुणा नित्यमेव हि।
कुर्यादध्य ने योगमाचार्यस्य हितेषु च ॥९३॥
बुद्धीन्द्रियाणि मनसा शरीरं वाचमेव हि।
नियम्य प्राजलिस्तिष्ठेद्वीक्षमाणो गुरोर्मुखम् ॥९४॥
नित्यमुद्धृतपाणि स्यात्साध्वाचारस्तु सयत.।
आम्यतामिति चोक्त मन्नासीताभिमुख गुरो ॥९५॥

वस्त्रवेषैस्तथान्यैस्तु हीन. स्याद्गुरुसन्निधौ ।
उत्तिष्ठेत्प्रथम चास्य जघन्य चापि सविशेत् ॥६६॥
प्रतिश्रवणसभाषे तल्पस्थो न समाचरेत् ।
न चासीनो न भुञ्जानो न तिष्ठन पराङ्मुख ॥६७॥
आसीनस्य स्थित. कुर्यादभिगच्छश्च तिष्ठत ।
प्रत्युद्गन्ता तु व्रजत पश्चाद्धावश्च धावत ॥६८॥
पराङ्मुखस्याभिमुखो दूरस्यस्यैत्य चान्तिकम् ।
नमस्कृत्य शयानस्य निदेशे तिष्ठेत्सर्वदा ॥६६॥

हे महाबाहो ! ब्राह्मण का जो धर्म कहा गया है, हे कुरु नन्दन ! पण्डितो ने क्षत्रिय और वैश्य का यह नही कहा है ॥६२॥ प्रेरित किया गया हो या गुरु के द्वारा प्रेरणा नही की गई हो नित्य ही अध्ययन मे योग करना चाहिए और अपने आचार्य के हितो मे योग देना चाहिए ॥६३॥ ज्ञानेन्द्रियो को मन से नियन्त्रित करके तथा अपने शरीर और वाणी का नियमन करके गुरु के मुख को देखता हुआ प्राञ्जलि होकर अवस्थित होना चाहिए ॥६४॥ नित्य ही उद्धृत पाणि होकर रहना चाहिए, साधु आचार वाला और सयत रहना चाहिए। जब यह कहा जावे कि बैठ जाओ तो गुरु के मुख के सामने ही बैठ जाना चाहिए ॥६५॥ अपने गुरु की सन्निधि मे अर्थात् समीप म वस्त्र वेषो से और अन्नो से हीन होकर रहना चाहिए। जब अपने गुरु उठें तो उनसे पहिले ही स्वय उठ जाना चाहिए तथा गुरु से नीचे के स्थान मे सदा बैठना चाहिए ॥६६॥ गुरु की बात का प्रतिश्रवण तथा उनके साथ सम्भाषण तल्प पर बैठे हुए कभी नही करना चाहिए। बैठे हुए, भोजन करते हुए, खडे होते हुए और पराङ्मुख होकर भी गुरु की बात का श्रवण या उनके साथ भाषण न करे। जब गुरु बैठ जावें तो स्वय भी स्थित हो जावे, वे चलें तो चलना चाहिए और स्थित होवें तो स्वयं भी स्थित हो जावे। जब गुरु गमन करे तो स्वय प्रत्युद्गमन करने वाला हो जावे और वे दौडें तो उनके पीछे दौड लगानी चाहिए ॥६७॥६८॥ यदि गुरु पराङ्मुख हो तो उनके अभिमुख हो जाना चाहिए। यदि गुरु दूर मे स्थित हो

तो उनके समीप में आकर नमस्कार करे और शयन करते हों तो उनके निदेश मे सदा रहना चाहिए ॥९९॥

नीचं शय्यासनं चास्य सर्वदा गुरुसन्निधौ ।
गुरोश्च चक्षुर्विषये न यथेष्टासनो भवेत् ॥१००॥
नामोच्चारणमेवास्य परोक्षमपि सुव्रत ।
न चैनमनु कुर्वीत गतिभाषणचेष्टितैः ॥१०१॥
परीवादस्तथा निन्दा गुरोर्यत्र प्रवर्तते ।
कर्णौ तत्र पिधातव्यौ गन्तव्य वा ततोऽन्यतः ॥१०२॥
परीवादाद्रासभः स्यात्सारमेयस्तु निन्दकः ।
परिभोक्ता कृमिर्भवति कीटो भवति मत्सरी ॥१०३॥
दूरस्थो नार्चयेदेनं नक्रुद्धो नान्तिके स्त्रियाः ।
यानासनगतो राजन्नवरुह्याभिवादयेत् ॥१०४॥
प्रतिकूले समाने तु नासीत गुरुणा सह ।
अशृण्वति गुरौ राजन्न किंचिदपि कीर्तयेत् ॥१०५॥

अपने गुरु की सन्निधि मे सर्वदा इसका अर्थात् शिष्य का शय्यासन नीचा ही होना चाहिए। गुरु के चक्षु के विषय मे अर्थात् दृष्टि जहाँ तक जाती हो वहाँ तक अपनी इच्छा के अनुसार आसन वाला नही होना चाहिए ॥१००॥ हे सुव्रत ! परोक्ष मे भी गुरु के नाम का उच्चारण नही करना चाहिए। गुरु की गति, भाषण और चेष्टा का कभी अनुकरण नहीं करना चाहिए। तात्पर्य यह है कि उनकी गत्यादि की नक्ल नही करे ॥१०१॥ गुरु का परीवाद तथा निन्दा जहाँ पर कोई भी करता हो वहाँ उसे नही सुने और अपने दोनों कानों को बन्द कर लेवें अथवा उस स्थान का त्याग कर के दूसरे स्थान पर चले जाना चाहिए ॥१०२॥ गुरु के परीवाद करने से रासभ (गधा) की योनि मिला करती है। जो गुरु की निन्दा करने वाला कुत्ता होता है। गुरु के भाग का परिभोग करने वाला कृमि होता है और गुरु का मत्सरी होता है वह कीट हुआ करता है ॥१०३॥ जब दूर मे स्थित होवे तो गुरु का अर्चन न करे। क्रुद्ध अवस्था में रहने वाला और स्त्री के समीप स्थित भी गुरु अर्चन न करे। किसी यान में

स्थित तथा आसन पर बैठा हुआ भी गुरु का प्रवचन न करे। हे राजन् ! रुक कर गुरु को अभिवादन करना चाहिए ॥१०४॥ प्रतिकूल और समान आसन पर कभी भी गुरु के साथ नहीं बैठे। जब गुरु श्रवण नहीं कर रहे हों तो कुछ भी नहीं कहना चाहिए ॥१०५॥

इत्येष कथितो धर्मः प्रथमं ब्रह्मचारिणः ।
गृहस्थस्यापि राजेन्द्र शृणु धर्ममशेषतः ॥१०६॥
काले प्राप्य व्रतं विप्र ऋतुयोगेन भारत ।
प्रलापयन्व्रतं याति ब्रह्मसालोक्यतां विभो ॥१०७॥
सदोपनयनं शस्तं वसन्ते ब्राह्मणस्य तु ।
क्षत्रियस्य ततो ग्रीष्मे प्रशस्तं मनुरब्रवीत् ॥१०८॥
प्राप्ते शरदि वैश्यस्य सदोपनयनं परम् ।
इत्येष त्रिविधः कालः कथितो व्रतयोजने ॥१०९॥

अब तक पहिले ब्रह्मचारी के धर्मों को बता दिया गया है। हे राजेन्द्र ! अब गृहस्थ के भी समस्त धर्मों का श्रवण करो ॥१०६॥ हे भारत ! ब्राह्मण समय पर व्रत की प्राप्ति कर ऋतु के योग से व्रत का प्रलापन करता हुआ ब्रह्म की सालोक्यता को प्राप्त होता है ॥१०७॥ ब्राह्मण का उपनयन संस्कार सदा वसन्त ऋतु में ही प्रशस्त होता है। मनु महर्षि ने क्षत्रिय का उपनयन ग्रीष्म में अच्छा बतलाया है। शरद् ऋतु के प्राप्त होने पर वैश्य का उपनयन संस्कार श्रेष्ठ होता है। इस प्रकार से यह व्रत के योजन में तीन प्रकार का काल कहा गया है ॥१०८॥१०९॥



॥ श्री शुभाशुभ लक्षण ॥

षट्त्रिंशदाब्दिकं चर्यं गुरौ त्रैवेदिकं व्रतम् ।
तदर्धिकं पादिकं वा ग्रहणान्तिकमेव च ॥१॥
वेदानधीत्य वेदौ वा वेदं वापि नृपोत्तम ।
अविप्लुतब्रह्मचर्यो गृहस्थाश्रममावसेत् ॥२॥

त प्रतीत स्वधर्मेण ब्रह्मदायहर पितु ।
स्रग्विण तल्प आसीनमर्हयेत्प्रथम गवा ॥३॥
गुरुणा समनुज्ञात समावृत्तो यथाविधि ।
उद्वहेत द्विजो भार्या सवर्णां लक्षणान्विताम् ॥४॥
लक्षण द्विजशार्दूल स्त्रीणा वद महामुने ।
कीदृग्लक्षणसयुक्ता कन्या स्यात्सुवदा नृप ॥५॥
यदुक्त ब्रह्मणा पूर्व स्त्रीलक्षणमनुत्तमम् ।
श्रेयसे सर्वलोकाना शुभाशुभफलप्रदम् ॥६॥
तत्ते वच्मि महाबाहो शृणुष्वैकमना नृप ।
श्रुतेन येन जानीषे कन्या शोभनलक्षणाम् ॥७॥

इस अध्याय मे स्त्रियो के शुभ तथा अशुभ लक्षणो का निरूपण किया जाता है। सुमन्त महर्षि ने कहा—गुरु के समीप मे छत्तीस वर्ष तक त्रैवेदिक व्रत का आचरण करना चाहिए। उसमे आधा अथवा चौथाई ग्रहणान्तिक करना चाहिए ॥१॥ हे नृपोत्तम! तीनो वेदो को दो वेदों को अथवा एक वेद का अध्ययन करके अखण्डित ब्रह्मचर्य वाला पुरुष फिर गृहस्थाश्रम मे प्रवेश करे ॥२॥ पिता के ब्रह्मदाय के हरन वाले और अपने धर्म से पूर्णतया प्रतीति वाले उस गुरु का जो कि स्रक् धारण करने वाले तल्प पर आसीन हैं सबसे पहिले गौके द्वारा समर्चित करना चाहिए ॥३॥ गुरु के द्वारा आज्ञा प्राप्त कर विधि पूर्वक समावर्त्तन करे और समावृत्त होकर फिर ब्राह्मण को चाहिए कि सब सुलक्षणो से युक्त सवर्ण भार्या के साथ विवाह करे ॥४॥ राजा शतानीक ने कहा—हे द्विज शार्दूल! हे महामुने! आपने कहा है कि लक्षणो वाली भार्या बनावे सो आप कृपा कर स्त्रियों के लक्षणों के विषय में बताइये कि वे कौन से लक्षण होते हैं। किन लक्षणो से युक्त कन्या गार्हस्थ्य मे सुख देने वाली होती है। सुमन्तु ने कहा—ब्रह्म जी ने पहिले स्त्रियो के उत्तम लक्षण जो बताये हैं जो कि शुभ और अशुभ फलो के देने वाले होते हैं उन्हें समस्त लोगो के कल्याण के लिए अब मैं तुमको बताता हूँ। हे नृप! तुम एकाग्र मन होकर उनका श्रवण करो। जिनके सुनने से सुन्दर लक्षण वाली कन्या का तुमको ज्ञान हो जायगा। ॥५। ६। ७॥

सुखासीन सुरश्रेष्ठमभिगम्य महर्षय ।
पप्रच्छुर्लक्षरण स्त्रीणा यत्पृष्टोऽह त्वयाधुना ॥८॥
प्रणम्य शिरसा देवमिद वचनमब्रवन् ।
भगवन्ब्रूहि न सर्वं स्त्रीणा लक्षणमुत्तमम् ॥६॥
श्रेयसे सर्वलोकाना शुभाशुभफलप्रदम् ।
प्रशस्तामप्रशस्ता च जानीमो येन कन्यकाम् ॥१०॥
तेपा तद्वचन श्रुत्वा विरिचो वाक्यमब्रवीत् ।
शृणुध्व द्विजशार्दूला वच्मि युष्मास्वशेपत ॥११॥
प्रतिष्ठिततलौ सम्यग्रक्ताभोजसमप्रभौ ।
ईदृशौ चरणौ धन्यौ योषिता भोगवर्धनौ ॥१२॥
करालैरति निर्मासै रूक्षैरघशिरान्वितै ।
दारिद्रय दुर्भगत्व च प्राप्नुवति न सशय ॥१३॥
अगुल्य सहता वृत्ता स्निग्धा सूक्ष्मनखास्तथा ।
कुर्वंत्यत्यतमैश्वर्यं राजभाव च योषित ॥१४॥

एक बार समस्त महर्पियो ने सुख पूर्वक बैठे हुए सुरो म श्रेष्ठ ब्रह्माजी से पास जाकर इसी भाँति स्त्रियो के लक्षण पूछे थे जैसा कि तुमने इस समय मुझ से पूछा है ।।८।। ऋषियो ने ब्रह्माजी को शिर से प्रणाम करके यह वचन कहे थे । हे भगवन् ! आप स्त्रियो के समस्त उत्तम लक्षण कृपा कर हम बताने का कष्ट करें ।।६।। आप शुभ और अशुभ फलो के देने वाले समस्त स्त्रियो के लक्षण बताइये । इससे समस्त लोको का कल्याण होगा । इस से हम सबको यह ज्ञान हो जायगा कि कौनसे लक्षणो वाली कन्या प्रशस्त होती है और किन लक्षणो से युक्त कन्या अप्रशस्त हुआ करती है ।।१०।। उन महर्पियो के इस वचन को सुनकर ब्रह्मा जी ने कहा—हे द्विजशार्दूलो ! आप सब सुनिये, मैं आप लोगो को सभी बतलाता हूँ ।।११।। जिन स्त्रियो के पैरो के तल प्रतिष्ठित हो और रक्त कमल के समान लाल प्रभा वाले होते है ऐसे स्त्रियो के चरण धन्य हुआ करते हैं और भोग के बढाने वाले होते है ।।१२।। कराल मास रहित, रूखे और अध शिरा से युक्त चरणो वाली स्त्रियाँ दरिद्रता

और दुर्भाग्य को प्राप्त हुआ करती हैं—इसमे तनिक भी संशय नही है ॥१३॥ जिनकी अगुलियाँ संहत हो अर्थात् एक दूसरी से सटी हुई हो, वृत्त, स्निग्ध और बहुत सूक्ष्म नख वाली हो वे स्त्रियाँ अनन्त ऐश्वर्य और राजभाव को किया किया करती हैं ॥१४॥

ह्रस्वा सुजीवित ह्रस्वा विरला वित्तहानये ।
दारिद्र्य मूलमग्नासु प्रेष्य च पृथुलासु च ॥१५॥
परस्पर समारूढैस्तनुभिर्वृ त्तपर्वभि ।
बहूनपि पतीन्हत्वा दासी भवति वै द्विजा ॥१६॥
अगुष्ठोन्नतपर्वाणस्तु गाग्रा कोमलान्विता ।
रत्नकाचनलाभाय विपरीता विपत्तये ॥१७॥
सुभगत्व नखै स्निग्धैराताम्रैश्च धनाढ्यता ।
पुत्रा स्युरुन्नतैरेभि सुसूक्ष्मैश्चापि राजता ॥१८॥
पाडुरै स्फुटितै रूक्षैर्नीलैधूम्रैस्तथा खरै ।
नि स्वता भवति क्षीणा पीतैश्चाभक्ष्यभक्षणम् ॥१९॥
गुल्फा स्निग्धाश्च वृत्ताश्च समारूढशिरास्तथा ।
यदि स्युर्नृपुरान्दध्युर्वीधवाद्यै समाप्नुयु ॥२०॥
अशिरा शरकाडाभा सुवृत्ताल्पतनूरुहा ।
जघा कुर्वंति सौभाग्य यान च गजवाजिभि ॥२१॥

जो ह्रस्व अर्थात् बहुत छोटी होती हैं वे सुजीवित को किया करती हैं और विरली ह्रस्व वित्त की हानि करने वाली हुआ करती हैं, अग्राग्रो मे दारिद्र्य मूल होता है और जो पृथुल होती हैं उनम प्रेष्य होता है ॥१५॥ परस्पर में समारूढ तनु वृत्त पर्वो से युक्त जो स्त्रियाँ होती हैं वे बहुत-से पतियो का हनन करके दासी हुआ करती हैं ॥१६॥ जिनके अगुष्ठ मे उन्नत पर्व हो और अग्र भाग उन्नत हो तथा कोमलान्वित हो वे रत्न और सुवर्ण के लाभ कराने वाली स्त्रियाँ होती हैं। इनके विपरीत जिनके लक्षण होते हैं वे विपत्ति करने वाली होती हैं ॥१७॥ स्त्रियाँ अपने स्निग्ध नखों के द्वारा सुभगत्व को सूचित किया करती हैं। स्निग्ध और थोडे से ताम्रवर्ण वाले नाखूनों से धनाढ्यता को

प्रकट करती हैं। इनके उन्नत होने से पुत्र होते हैं और सुसूक्ष्म होने से राजता प्रकट होती है ॥१८॥ पाण्डुर, स्फुटित, रूक्ष, नील, धूम्र तथा खर नखों से स्त्रियाँ नि स्वता अर्थात् निधनता बतलाती हैं तथा पीत नखों से अभक्ष्य पदार्थों के भक्षण करने की सूचना देती हैं ॥१९॥ जिनके गुल्फ स्निग्ध, वृत्त और समारूढ शिरा वाले होते हैं तो वे नूपुरों को धारण किया करती हैं और बान्धव आदि के द्वारा उनका संग्रह प्राप्त करना चाहिए। बिना शिराओं वाली वारकाण्ड की आभा वाली सुवृत्त और थोड़े तनूरुहों वाली जंघाएँ स्त्रियों के सौभाग्य को किया करती हैं तथा हाथी और घोड़ों वाले यान को भी प्राप्त करने की सूचना दिया करती हैं ॥२०॥२१॥

क्लिश्यते रोम जघा स्त्री भ्रमत्युद्धतपिंडिका ।
काकजघा पति हन्ति वाचाटा कपिला च या ॥२२॥
जानुभिश्चैव मार्जारसिंहजान्वनुकारिभि ।
श्रियमाप्यसुभाग्यत्व प्राप्नुवति सुतास्तथा ॥२३॥
घटाभैरध्वगा नार्यो निर्मासै कुलटा स्त्रिय ।
शिरालैरपि हिंस्रा स्युर्विश्लिष्टैर्धनवर्जिता ॥२४॥
अत्यतकुटिलै रूक्षै स्फुटिताग्रैर्गु डप्रभै ।
अनेकजैस्तथा रोमै केशैश्चापि तथाविधै ॥२५॥
अत्यन्तपिगला नारी विपतुल्येति निश्चितम् ।
सप्ताहाभ्यन्तरे पापा पति हन्यान्न सशय ॥२६॥
हस्तिहस्तनिभैर्वृ त्तै रभाभै करभोपमै ।
प्राप्नुवत्यूरुभि शश्वत्त्विय सुखमनगजम् ॥२७॥
दौर्भाग्य वद्धमासैश्च बन्धन रोमशोरुभि ।
तनुभिवधमित्याहुर्मध्यच्छिद्रै ध्वनीशता ॥२८॥

जिस स्त्री के जाँघ पर रोम होते हैं वह स्त्री क्लेशित हुआ करती है। जिसकी पिंडिकाएँ उद्धत होती है वह स्त्री भ्रमण किया करती है। जिसकी कौए की-सी जाघें होती हैं तथा बहुत वाचाट (बोलने वाली) और कपिला होती है वह पति का हनन किया करती है। मार्जार और सिंह के जानुओं के अनुकरण

करन वाल जिनके जानु (घुटने) होते है वह स्त्री श्री की प्राप्ति कर सुभाग्य की प्राप्ति किया करती है और सुतो को प्राप्त करती है ॥२२॥२३॥ घर की आभा वाले जनुओं से युक्त स्त्री मार्ग गामिनी हुआ करती है। जिनके घुटने निर्मांस होते हैं वे कुलटा स्त्रियां होती हैं। शिराओं से भी हिंस्र होती हैं और विश्लिष्टों से धन वर्जित हुआ करती हैं ॥२४॥ अत्यन्त कुटिल रूखे, स्फुटित अग्र भाग वाले गुड के तुल्य प्रभा वाले और अनेक स्थानों पर उत्पन्न रोमों से तथा उसी प्रकार के केशों से अत्यन्त पिङ्गला स्त्री निश्चित रूप से विष के समान त्याज्य हुआ करती है। ऐसी स्त्री एक ही सप्ताह के अन्दर पापिनी पति का हनन कर देती है इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है ॥२५॥२६॥ हाथी की सूंड के समान वृत्त और कदली के तुल्य आभा वाले करभ की भाँति ऊरुओं से स्त्रियां काम से उत्पन्न सुख का प्राप्त किया करता है ॥२७॥ वद्ध मांसो से दुर्भाग्य और रोम शालओं से बन्धन तथा तनुओं से वध कहा गया है एवं मध्य छिद्रों में अनीशता होती है ॥२८॥

अरोमको भगो यस्या मम सुश्लिष्टसंस्थित ।
अपि नीचकुलोत्पन्ना राजपत्नी भवत्यसौ ॥२९॥
तिलपुष्पनिभो यश्च यद्यग्रे खुरसंनिभ ।
द्वावप्येतौ परप्रेष्य कुर्वात च दरिद्रताम् ॥३०॥
उलूखलनिभै शोक मरण विवृताननै ।
विरूपै पूतिनिर्मांसैर्गजसनिभरोमभि ।
दौःशील्य दुर्भगत्व च दारिद्र्यमधिगच्छति ॥३१॥
यपित्थफलसंकाशः पीनो वलिवर्जित ।
स्फीत प्रशस्यत स्त्रीणा निंदितश्च यथा द्विजा ॥३२॥
कुञ्जमद्रोणिक पृष्ठ रोमश यदि योषित ।
स्वप्नान्तरे सुख तस्या नास्ति हन्यात्पतिं च सा ॥३३॥
त्रिपुन्नं सुकुमारैश्च कुक्षिभि सुबहुप्रजा ।
मण्डूककुक्षिर्या नारी राजान सा प्रसूयत ॥३४॥

उन्नतैर्वलिभिर्वंध्या सुवृत्तै कुलटा स्त्रिय ।
जारकर्मरतास्ता स्यु प्रव्रज्या च समाप्नुयु ॥३५॥

हे द्विज ! सन्ध्या के वर्ण के समान सुन्दर तथा सूक्ष्म रोमो से युक्त और पृथु स्त्रियो के जघन रति के सौख्य के करने वाले प्रशसनीय होते हैं जिसका भग रोम रहित, सम और सुश्लिष्ट सस्थित होता है वह स्त्री भले ही नीच कुल मे क्यो न उत्पन्न हुई हो वह निश्चित राज पत्नी होती है ॥२६॥ जो भग तिल पुष्प के सम हो और यदि अग्रभाग मे खुर के तुल्य हो तो ये दोनो पर प्रेष्य एव दरिद्रता को किया करते हैं ॥३०॥ उलूखल के समान रोमो से शोक विवृताननो से भरण और विरूप तथा पूतिनिर्मास हाथी के तुल्य रोमो से दु शीलता, दुर्भाग्य और दरिद्रता को प्राप्त होती है ॥३१॥ हे द्विज वग ! कपित्थ के फल के तुल्य पीन (स्थूल), वलिया से रहित और स्फीत स्त्रियो का प्रशसनीय होता है और इसके विपरीत निन्दित कहा गया है ॥३२॥ यदि स्त्रियो का पृष्ठ रोमो वाला, कुब्ज और अद्रोणिक होता है तो उसका सुख स्वप्नान्तर मे नही होता है तथा वह स्त्री पति का हनन किया करती है ॥३३॥ विपुल और सुकुमार कुक्षियो से युक्त स्त्री सुन्दर बहुत सी सन्तानों को उत्पन्न करने वाली होती है और जो स्त्री मण्डूक के समान कुक्षि वाली होती है वह निश्चित रूप से राजा को जन्म देने वाली होती है ॥३४॥ जिसकी वलियाँ उन्नत होती हैं वह वन्ध्या स्त्री होती है तथा सुवृत्त वलियो वाली कुलटा होती हैं । ऐसी स्त्रिया जार के कर्म मे रत रहा करती हैं और प्रव्रज्या को प्राप्त हो जाती हैं अर्थात् घर का त्याग कर बाहिर निकल जाया करती हैं ॥३५॥

उन्नता च नतै क्षुद्रा विषमैर्विषमाशया ।
आयुरैश्वर्यसपन्ना वनिता हृदयै समै ॥३६॥
सुवृत्तमुन्नत पीनमदूरोन्नतमायतम् ।
स्तनयुग्ममिद शस्तमतोऽन्यदसुखावहम् ॥३७॥
उन्नति प्रथमे गर्भे द्वयोरेकस्य भूयसी ।
वामे तु जायते कन्या दक्षिणे तु भवेत्सुत ॥३८॥

दीर्घे तु चूचुके यस्या सा स्त्री धूर्ता रतिप्रिया ।
सुवृत्ते तु पुनर्यस्या द्वेष्टि सा पुरुष सदा ॥३६॥
स्तनै सर्पफणाकारैं श्वजिह्वाकृतिभिस्तथा ।
दारिद्र्यमधिगच्छति स्त्रिय पुरुषचेष्टिता ॥
अवष्टब्धघटीतुल्या भवति हि तथा द्विजा ॥४०॥
हिंस्रा भवति वक्रेण दौःशील्य रोमशेन तु ।
निर्मांसेन तु वैधव्य विस्तीर्णे कलहप्रिया ॥४१॥
चतस्रो रक्तगम्भीरा रेखा स्निग्धा करे स्त्रिया ।
यदि स्यु सुखमाप्नोति विच्छिन्नाभिरनीशता ॥४२॥

नलो स उन्नत और क्षुद्र तथा विषमो से विषम आशय वाली होती
जिस वनिता के हृदय सम होते हैं वह आयु और ऐश्वर्य से सम्पन्न हुआ क
हैं ॥३६॥ सुवृत्त अर्थात् गोलाकार वाला, उन्नत अर्थात् उठा हुआ, पीन (
और अदूरोन्नत एवं आयत स्तन युग्म जिस नारी का होता है वह प्र
अर्थात् बहुत ही अच्छा होता है तथा इसके विपरीत जो होता है वह शुभ
वाला नहीं होता है ॥३७॥ जिस नारी के प्रथम गर्भ मे दोनो स्तनो म ए
अधिक उन्नति होती है उसके वाम स्तन म ऊँचाई होने से कन्या और द
मे उन्नति होने पर पुत्र उत्पन्न हुआ करता है ॥३८॥ जिस स्त्री के स्तन
चूचुक अर्थात् कुचो के अग्रभाग की घुण्डी बहुत दीर्घ होते हैं वह स्त्री बहुत
धूर्त और रति से प्रेम करने वाली हुआ करती है । जिस नारी के चूचुक
होते हैं वह सदा पुरुष से द्वेष करने वाली होती है ॥३९॥ जिस नारी के
सांप के फन जैसे आकार वाले होते हैं तथा कुत्ता की जिह्वा के समान आ
वाले हुआ करते हैं वे स्त्रियां पुरुषों की चेष्टा रखने वाली दरिद्रता को
किया करती हैं और अवष्टब्ध घटी के समान हुआ करती हैं ॥४०॥ जि
वक्षस्थल वक्र होता है वह हिंस्रा अर्थात् हिंसा करने वाली होती है, जि
रोमों से युक्त वक्ष होता है वह दुःशीलता वाली होती है और जिसका वक्ष
निर्मांस अर्थात् बिना मांस वाला होता है वह विधवापन भोगने वाली
तथा जिसका वक्ष विस्तीर्ण होता है वह कलह से प्रेम करने वाली हुआ क

है ॥४१॥ जिस नारी के हाथ में रक्त से गम्भीर और स्निग्ध चार रेखाऐं होती हैं वह परम सुख को प्राप्त किया करती है ॥४२॥

रेखा यनिष्ठिकामूलाद्यस्या प्राप्ता प्रदेशिनीम् ।
शतमायुर्भवेत्तस्यास्त्रयाणामुन्नतौ क्रमात् ॥४३॥
सवृत्ता समपर्वाणस्तीक्ष्णाग्रा कोमलत्वच ।
समा ह्यङ्गुलयो यस्या सा नारी भोगवर्धिनी ॥४४॥
बन्धुजीवारुणैस्तु ङ्गैर्नखैरैश्वर्यमाप्नुयात् ।
खरैर्वक्रैर्विवर्णाभैः श्वेतपीतैरनीशता ॥४५॥
रक्तैर्मृदुभिरैश्वर्यं निश्छिद्राङ्गुलिभिर्द्विजा ।
स्फुटितैर्विषमैः रूक्षैः क्लेशः पाणिभिराप्नुयु ॥४६॥
समरेखा यवा यासामङ्गुष्ठाङ्गुलिपर्वसु ।
तासां हि विपुलं सौख्यं धनं धान्यं तथाऽक्षयम् ॥४७॥
मणिबन्धोऽव्यवच्छिन्नो रेखात्रयविभूषित ।
ददाति न चिरादेव भोगमायुस्तथाक्षयम् ॥४८॥

जिस स्त्री की रेखाऐं कनिष्ठिका अंगुलि के मूल से लेकर प्रदेशिनी अंगुलि तक प्राप्त होती हैं उस स्त्री की सौ वर्ष की आयु हुआ करती है किन्तु तीनों रेखाओं की उन्नति क्रम से होनी चाहिए ॥४३॥ सवृत्त और समान पर्वों वाली तथा जिनके अग्रभाग तीक्ष्ण हों और कोमल त्वचा वाली हों ऐसी समान अंगुलियां जिस स्त्री की होती हैं वह भोगों को बढ़ाने वाली होती हैं ॥४४॥ बन्धुजीव के समान अरुण तुङ्ग नखों से युक्त अंगुलियों से नारी ऐश्वर्य को प्राप्त किया करती है। खर, वक्र विवर्ण आभा वाले तथा श्वेत एवं पीत नखों से युक्त नारी अनीशता को प्राप्त किया करती है ॥४५॥ रक्त मृदु (कोमल) और बिना छेद वाली अंगुलियों वाले हाथों से युक्त स्त्रियां ऐश्वर्य प्राप्त करती हैं और जिनके हाथ स्फुटित हों विषम और रूखे होते हैं वे क्लेश प्राप्त करती हैं ॥४६॥ समान रेखा वाले यव जिनके अंगूठे और अंगुलियों के पर्वों में हुआ करते हैं उन नारियों का बहुत अधिक सुख, धन, धान्य अक्षय होता है ॥४७॥ जिनका मणिबन्ध अव्यवच्छिन्न और तीन रेखाओं से भूषित

हुआ करता है वे बहुत काल तक भोग, आयु, अक्षय रूप से नहीं होतें हैं ।।४८।।

—※—

।। तृतीयाकल्पविधिवर्णनम् ।।

पतिव्रता पतिप्राणा पतिशुश्रूषणे रता ।
एवंविधापि या प्रोक्ता शुचि सशोभना सती ।।१।।
सोपवासा तृतीया तु लवणं परिवर्जयेत् ।
सा गृह्णाति च वै भक्त्या व्रतमामरणान्तिकम् ।।२।।
गौरीददाति संतुष्टा रूपं सौभाग्यमेव च ।
लावण्यं ललितं हृद्यं श्लाघ्यं पुंसा मनोरमम् ।।३।।
पुंसो मनोरमा नारी भर्ता नार्या मनोरमः ।
गौरीव्रतेन भवति राजँल्लवणवर्जनात् ।।४।।
इदं व्रतं प्रति विभो धर्मराजस्य शृण्वतः ।
उमया च पुरा प्रोक्तं यद्वाक्यं तन्निबोध मे ।।५।।
मया व्रतमिदं सृष्टं सौभाग्यकरणं नृणाम् ।
मर्त्ये तु नियता नारी व्रतमेतच्चरिष्यति ।
सह भर्त्रा सामोदेत यथा भर्ता हरो मम ।।६।।
याच कन्या न भर्तारं विंदते शोभना सती ।
सा त्विदं व्रतमुद्दिश्य भवेदक्षारभोजना ।
मच्चित्ता मन्मना कुर्यान्मद्भक्ता मत्परिग्रहा ।।७।।

इस अध्याय में तृतीया कल्प विधि का वर्णन किया जाता है। सुमन्तु महर्षि ने कहा—जो स्त्री पति व्रता अर्थात् एकमात्र पति के सेवाराधन के व्रत वाली हो, पतिप्राणा अर्थात् अपने पति को प्राणों की भाँति समझने वाली हो और पति की सेवा में रति रखने वाली है इस प्रकार की भी जो पवित्र और सशोभना होती है वह सती कही गई है ।।१।। ऐसी सती स्त्री भी उपवास युक्त होती हुई तृतीया के दिन लवण का त्याग कर देवे और वह मरण पर्यन्त इस

व्र का भक्ति पूर्वक ग्रहण किया करती है ॥२॥ उस स्त्री से भगवती गौरी परम सन्तुष्ट एवं प्रसन्न होती है और उसे फिर वह देवी रूप, सौभाग्य, लावण्य जाकि पुरुषों को ललित, हृद्य,श्लाघ्य और मनोरम होना है,दिया करती है ॥३॥ हे राजन् ! व्रत के दिन इस एवं लवण के त्याग कर देने से पुरुष को मनोरम स्त्री और स्त्री को मन रमाने वाला पुरुष इस गौरी के व्रत से होता है ॥४॥ हे विभो ! इस व्रत के विषय मे पहिले श्रवण करने वाले धर्मराज से भगवती उमा देवी ने जो वाक्य कहे थे उन्हें कृपा कर मुझसे सुनिये ॥५॥ उमा ने कहा था कि मैंने यह व्रत मनुष्यों के सौभाग्य का करने वाला सृजित किया है। अपने मानव मे नियत रहने वाली नारी इस व्रत को किया करेंगी। और वे नारियाँ अपने स्वामी के साथ आनन्द का लाभ किया करेंगी जैसा कि मेरे स्वामी शिव हैं और मैं उनके साथ मुदित रहती हूं ॥६॥ जो कन्या परम शोभन और सती अपना कोई समुचित स्वामी नहीं प्राप्त करती है वह कन्या इस व्रत को करके बिना क्षार वाले भोजन करने वाली रहा करती है। मुझमे चित्त लगाने वाली और मुझ मे ही मन रखने वाली, मेरी परम भक्त और मेरे परिग्रह वाली होकर उसे यह व्रत करना चाहिए ॥७॥

गौरी सस्थाप्य सौवर्णीं गन्धालङ्कारभूषिताम् ।
वस्त्रालङ्कारसवीता पुष्पमडलमडिताम् ॥८॥
लवण गुड घृत तैल देव्यै शक्त्या निवेदयेत् ।
कटुखण्ड जीरक च पत्रशाक च भारत ॥९॥
गुडघृष्टास्तथापूपान्खडवेष्टास्तथा नृप ।
ब्राह्मणे व्रतसपन्ने प्रदद्यात्सुबहुश्रुते ॥१०॥
शुक्लपक्षे सदा देया यथा शक्त्या हिरण्मयी ।
धनहीने तु भक्त्या च मधुवृक्षमयी नृप ॥११॥
अर्च्या नित्य सनिधानात्तत्र गौरी न सशय ।
अक्षारलवण रात्रौ भुक्ते चैव सुवाग्यता ॥१२॥
गौरी सन्निहिता नित्य भूमौ प्रस्तरशायिनी ।
एव नियमयुक्तस्य देव्या यत्समुदाहृतम् ॥१३॥

तच्छृणुष्व महाबाहो कथ्यमान महाफलम् ।
भर्तार तु लभेत्कन्या य वाञ्छति मनोनुगम् ॥१४॥
सुचिर सह वै भर्त्रा क्रीडयित्वा इहैव सा ।
सतति च प्रतिष्ठाप्य सह तेनैव गच्छति ॥१५॥

सुवर्ण से निर्मित गौरी की सस्थापना करके उसे गन्ध तथा अलकारों से विभूषित करे और वस्त्र एव आभूषणों से सवीत बना कर पुष्प मण्डल से मण्डित करना चाहिए ॥८॥ लवण, गुड, घृत तैल अपनी शक्ति के अनुसार देवी के लिये निवेदित करे। हे भारत! कटुखण्ड, जीरा और पत्रशाक उसे समर्पित करना चाहिए ॥९॥ गुड से घृष्ट अथवा खांड से घृष्ट पूपों को भली भाँति बहुश्रुत एव व्रत सम्पन्न ब्राह्मण को हे नृप! दान करके देना चाहिए ॥१०॥ शुक्ल पक्ष मे अपनी शक्ति के अनुसार सवत्स हिरण्मयी का दान करना चाहिए। यदि धनहीन हो तो भक्ति के सहित मधुवृक्ष मयी का दान करना चाहिए ॥११॥ वहाँ सन्निधान से नित्य ही गौरी की पूजा करनी चाहिए और कोई भी सशय नहीं है। रात्रि मे अक्षार लवण अर्थात् क्षार और लवण से रहित भोजन जो किया करती है और सुवासिनी रहती है जो भूमि मे प्रस्तरो पर शयन किया करती है उसके नित्य ही गौरा सन्निहित रहती है। इस प्रकार से देवी के नियमो से युक्त का जो फल कहा गया है। हे महाबाहो! उसे मेरे द्वारा कहे जाने वाले महाफल का तुम श्रवण करो। इस तरह नियम से समन्वित अचलोपवास करने वाली कन्या अपने मन के अनुकूल जिस स्वामी को चाहती है उसे ही वह प्राप्त किया करती है। इस ससार मे उस अपने स्वामी के साथ चिरकाल तक आनन्दोपभोग करके और अपनी सन्तान को प्रतिष्ठापित करके अन्त मे उसी के साथ स्वर्ग लोक की प्राप्ति किया करती है। ॥१२॥१३॥१४॥१५॥



।। चतुर्थीकल्पवर्णनम् ।।

चतुर्थ्यां तु सदा राजन्निराहारव्रतान्वित ।
दत्त्वा तिलान्न विप्रस्य स्वय भु क्ते तिलौदनम् ।।१।।
वर्षद्वयेसमाप्तिर्हि व्रतस्य तु यदा भवेत् ।
विनायकस्तस्य तुष्टो ददाति फलमीहितम् ।।२।।
याति भाग्यनिवास हि क्रीडते विभवै सह ।
इह चागत्य पुण्याते दिव्यो दिव्यवपुर्यशा ।।३।।
मतिमान्धृतिमान्वाग्मी भाग्यवान्कामकारवान् ।
असाध्यान्यपि साधयेह क्षणादेव महात्यपि ।।४।।
हस्त्यश्वरथसपन्न पत्नीपुत्रसहायवान् ।
राजा भवति दीर्घायु सप्तजन्मान्यसौ नृप ।
एतद्ददाति मन्तुष्टो विघ्नहर्ता विनायक ।।५।।

इस अध्याय मे चतुर्थी व्रत के कल्प का वर्णन किया जाता है। सुमन्तु ऋषि ने कहा—हे राजन् ! चतुर्थी तिथि के दिन सदा जो निराहार रहकर व्रत से युक्त होता है वह ब्राह्मण को तिलो से युक्त अन्न का दान कर के स्वय ही तिल और ओदन का भोजन किया करता है। इस प्रकार के व्रत की समाप्ति दो वर्ष म करे। जब यह व्रत पूर्ण समाप्त हो जाता है तब भगवान् विनायक इस पर स तुष्ट हो जाते हैं और जो भी अभीष्ट फल होता है उसे प्रदान कर देते हैं ।।१।।२।। वह व्रत करने वाला भाग्य के निवास को प्राप्त होता है और वैभवो के साथ आनन्द की क्रीडा करता है। यहाँ ससार मे जन्म लेकर इस महापुण्य के अन्त हो जाने पर वह दिव्य दिव्य शरीर धारी और दिव्य यश वाला होता है ।।३।। वह मतिमान्, धृति वाला, वाग्मी, भाग्य वाला, कामकार वाला होता है तथा जो कुछ असाध्य भी काय होते हैं और महान् कार्य होते हैं उन्हें क्षण मात्र म साध्य कर लेता है ।।४।। चतुर्थी के व्रत करने वाला हाथी, घोडे और रथों से सम्पन्न हो जाता है तथा पत्नी और पुत्रों की सहायता से युक्त होता है। वह राजा होता है। हे नृप ! वह सात जन्म पर्यन्त

दीर्घायु और राजा होता है। समस्त विघ्नों के हनन करने वाले भगवान् विनायक परम सन्तुष्ट होकर यह सभी कुछ उसे दिया करते हैं ॥५॥

विघ्न कस्य कृतस्तेन येन विघ्नविनायक ।
एतद्वदस्व विघ्नेशविघ्नकारणमद्य मे ॥६॥
कौमारे लक्षणे पुंसां स्त्रीणां च सुकृते कृते ।
विघ्नं चकार विघ्नेशो गांगेयस्य विनायक ॥७॥
स तु विघ्नं विदित्वासौ कार्त्तिकेयो रुषान्वित ।
उत्कृष्य दंत तस्यास्याद्धंतु तं च समुद्यत ॥८॥
निवार्यापृच्छद्देवेशो रोष कार्यं कृतस्त्वया ।
स चाचख्यौ स पित्रे वै कृत पूरुषलक्षणम् ।
तन विघ्नकृते मह्य योषिता न च लक्षणम्॥९॥
अथोवाच महादेव प्रहसन्स्त्वसुतं किल ।
मम किं लक्षणं पुत्र पश्यसे त्वं वदस्व मे ॥१०॥
स चोवाच करे तुभ्यं कपालं द्विजलक्षितम् ।
अविचारेण सस्थाप्य कपाली तेन चोच्यसे ।
स तल्लक्षणमादाय समुद्रे प्राक्षिपद्रुषा ॥११॥
अथ देवसमाजे वै प्रवृत्ते ब्रह्मरुद्रयो ।
अहं ज्यायानहं ज्यायान्विवादोऽभूत्तयोर्द्वयो ।
तव सभूत्यभिन्नोऽस्ति मा तु वेद न कश्चन ॥१२॥

राजा शतानीक ने कहा—उसने किसका विघ्न किया था जिससे यह विघ्नों के विनायक हुए। विघ्नों के स्वामी के विघ्नो के इस कारण को आप कृपाकर मुझे बतलाइये ॥६॥ पुरुषों के कौमार लक्षण मे तथा स्त्रियों के सुकृत करने मे विनायक विघ्नेश ने गाङ्गेय का विघ्न किया था ॥७॥ स्वामी कार्तिकेय ने उस विघ्न को जान कर क्रोध से युक्त होकर उनके उनके दाँत को उखाड़ कर उनको मारने के लिये वह उद्यत हो गये थे ॥८॥ उस समय देवेश ने कार्तिकेय का निवारण किया और उनसे पूछा कि तुमने क्रोध क्यों किया है। तब कार्त्तिकेय ने अपने पिता से

कहा कि इसने पुरुष के लक्षण को विकृत कर दिया है। उस विघ्न के करने पर मुझे योषिता हो गई है और पुरुष लक्षण नहीं हैं ॥६॥ इसके अनन्तर महादेव ने हँसते हुए अपने पुत्र से कहा—हे पुत्र ! तुम मुझे बताओ कि मेरा क्या लक्षण देख रहे हो ? ॥१०॥ तब कार्त्तिकेय ने कहा—आपके हाथ में द्विज का रुधिर कपाल है जोकि अविचार से न्यस्थापित है। इसीलिये आप 'कपाली'—इस नाम से कहे जाया करते हैं। उन्होंने उस लक्षण को लेकर क्रोध से समुद्र में फेंक दिया था ॥११॥ इसके अनन्तर देवों के समाज के प्रवृत्त होने पर उन दोनों ब्रह्मा और रुद्र में बड़ा विवाद हो गया था। दोनों आप-आप को कहते थे कि मैं बड़ा हूँ। तुम्हारी सम्भूति (उत्पत्ति) का अभिज्ञ है। मुझे तो कोई नहीं जानता था ॥१२॥

एवं शिवेऽति ब्रुवति ब्रह्मणः पंचमं शिरः ।
मुक्ताट्टहासं प्रोवाच त्वामहं वेदिता भव ॥१३॥
एवं वुक्तं रुद्रेण ब्राह्मं हयशिरो महत् ।
नखाग्रेण निकृत्तं च तस्यैव च करे स्थितम् ॥१४॥
करस्थेनैव तेनासावागच्छद्यत्र वै हरिः ।
तपस्तेपे तदा मेरौ तत्रासौ भगवान्वशी ॥१५॥
कृते हयशिरे तस्मिन्स्थानात्तस्मात्तु ब्रह्मणः ।
रोमाद्विनिःसृतस्त्वन्यः पुरुषः श्वेतकुण्डली ॥१६॥
कवची सशिरस्कश्च सशरः सशरासनः ।
अनिर्देश्यवपुः स्रग्वी किं करोमि स चाब्रवीत् ॥१७॥
अथोवाच रुषा ब्रह्मा हन्यतां स सुर्मतिः ।
स तु मार्गेण रुद्रस्य आगच्छद्रोपतो द्रुतम् ॥१८॥
रुद्रोऽपि विष्णुतेजोभिः प्रविष्टः स त्वधिष्ठितः ।
स प्रविश्य तदापश्यत्तपतं चोत्तमं तपः ।
हरो नारायणं देवं वैकुण्ठमपराजितम् ॥१९॥
हरं दृष्ट्वाथ सम्प्राप्तं कार्यं चास्य विचिन्त्य च ।
उवाच शूलिनं देवो भिन्धि शूलेन मे भुजम् ॥२०॥

स विभेद महातेजा भुजं शूलेन तं हरः ॥२१॥

इस प्रकार शिव के बोलने पर ब्रह्मा का जो पाँचवाँ शिर था वह बड़ा भारी अट्टहास करते हुए बोला—हे भव ! तुमको मैं जानता हूं ॥१३॥ इस प्रकार से बोलने वाले ब्रह्मा के महान् हुए शिर को रुद्र ने अपने नख के अग्रभाग से कुतर लिया और वह फिर उनके ही हाथ मे स्थित है ॥१४॥ उस काटे हुए शिर को हाथ मे लिये हुए ही वह वहाँ चले गये जहाँ हरि थे। उस समय वहाँ पर मेरु पर्वत मे इनवशी भगवान् ने तपस्या की थी ॥१५॥ उस हय शिर के कट जाने पर उस ब्रह्मा के स्थान से रोष से एक अन्य श्वेत कुण्डलो वाला पुरुष निकला था ॥१६॥ वह पुरुष कवचधारी, शिर के सहित, शर से युक्त, धनुष लिये हुए, अनिर्देश्य शरीर वाला तथा माला धारण किये हुए था और उसने कहा—क्या करूँ ? ॥१७॥ इसके पश्चात् ब्रह्माजी ने क्रोध से कहा—उस दुष्ट बुद्धि वाले को मार दो। वह रुद्र के मार्ग से शीघ्र क्रोध मे आया था। रुद्र भी विष्णु के तेज से प्रविष्ट था। वह अधिष्ठित हो गया। तब उसने प्रवेश करके उसको उत्तम तप करते हुए देखा। हर ने नारायण देव को और अपराजित वैकुण्ठ को देखा ॥१८॥१९॥ सम्प्राप्त हर को देख कर और इसके कार्य का विचार करके देव शूली से बोले कि मेरी भुजा को शूल से काट दो ॥२०॥ उस महान् तेजस्वी हर ने उस भुजा को शूल से भिन्न कर दिया था ॥२१॥

शूलभेदादसृक्चोर्ध्वं जगामावृत्य रोदसी ।
विनिवृत्य ततः पश्चात्कपाले निपपात ह ॥२२॥
असृक्कपाले पतितं प्रदेशिन्या व्यवर्द्धयत् ।
यदा हि विनिवृत्तिः स्याद्देवस्य रुधिरं प्रति ॥२३॥
तदा तु व्यसृजत्तोयं कृत्वा वारुणीं तनुम् ।
तोये प्रवृत्तेऽसृग्भूते कपाले यत्र नश्चिद्‌रः ॥२४॥
कपाले तु प्रदेशिन्या रुद्रोऽसौ रुधिरेऽसृजत् ।
आमुक्तकवचं रक्तं रक्तकुण्डलिनं नरम् ॥२५॥

अथोवाच भव देव किं करोमीति मानद ।
असावपि ससर्जाथ श्वेतकुंडलिनं नरम् ॥२६॥
तावुभौ समयुध्येतां धनुष्प्रवरधारिणौ ।
यथा राजन्वलीयांसौ कुजकेतू युगात्यये ॥२७॥
तयोस्तु युध्यतोरेव सवत्सराधिको गत ।
न चादृश्यत विजय एकस्यापि तदा तयो ॥२८॥

शूल के द्वारा भेदन करने से उसका रक्त इस रोहसी को आवृत कर ऊपर की ओर चला गया था और फिर वहाँ से वापिस होकर कपाल मे गिर पडा ॥२२॥ कपाल मे पतित रक्त को प्रदेशिनी मे विवर्धित किया था । जब देवकी रुधिर के प्रति विनिवृत्ति हो गई तब वारुणी तनु करके जल को छोडा था । कपाल मे ग्रसृग्भूत (रक्तस्वरूप) तोर के प्रवृत होने पर जहाँ कि वह थिर था, कपाल मे प्रदेशिनी के द्वारा इस रुद्र ने रुधिर मे सृजन किया था । जिसका सृजन किया था वह नर आमुक्त कवच और रक्त कुण्डलो वाला तथा रक्त वर्ण का था ॥२३॥२४॥२५॥ इसके पश्चात् वह भवदेव से बोला—हे मानद ! मैं क्या करू । इसके अनन्तर इसने भी श्वेत कुण्डली नर का सृजन किया था ॥२६॥ वे दोनो धनुष्प्रवर धारी युगात्यय बलवान् कुज केतु की भाति युद्ध करने लगे ॥२७॥ इस प्रकार से उन दोनो के युद्ध करते हुए एक वर्ष से भी अधिक समय हो गया था । उस समय उन दोनो युद्ध करने वालो मे एक का भी विजय नही दिखलाई देता था ॥२८॥

अथांतरिक्षे तौ दृष्ट्वा वागुवाचाशरीरिणी ।
अनतारोऽयं भविता युवयोर्हि मया सह ॥२९॥
भारापनोदं कर्तव्यं पृथिव्यर्थे सुरै सह ।
तदाश्चर्यो हि भविता देवकार्यार्थसिद्धये ॥३०॥
भूलोकभावं निर्धूय भूयो गता सुरालयम् ।
एवमुक्त्वा तु वैकुण्ठो ददावेकं रवेस्तदा ॥३१॥
श्वेतकुंडलिनं दृप्तं तं जग्राह रविर्मुदा ।
इन्द्रस्यापि तत पश्चाद्रक्तकुंडलिनं ददौ ॥३२॥

जग्राह च मुदा युक्त इन्द्र स्वं च पुर ययौ ।
गतौ रवीन्द्रौ प्रगृह्य पुरुषौ क्रोधसंभवौ ॥३३॥
अथोवाच तदा रुद्र देव. कमलसंस्थित ।
गच्छ त्वमपि कापाले कपालव्रत चर्यया ।
अवतारो व्रतस्यास्य मर्त्यलोके भविष्यति ॥३४॥
ये च व्रत त्वदीय वै धारयिष्यति मानवा. ।
न तेषा दुर्लभ किंचिद्भुवितेह परत्र च ॥३५॥

इसके अनन्तर अन्तरिक्ष मे युद्ध करते हुए उन दोनो को देख कर बिना शरीर वाली वाणी ने कहा—तुम दोनो का मेरे साथ अवतार होगा ॥२९॥ पृथिवी के लिये देवो के सहित भार का अपनोद करना है। उस समय देवो के कार्य की सिद्धि के लिये बड़ा ही एक आश्चर्य होगा ॥३०॥ भूलोक के भाव को निवृत्त करके फिर सुरालय को चले जाओगे। इस तरह कह कर वैकुण्ठ ने उस समय एक को रवि के लिये दे दिया था ॥३१॥ रवि ने बड़ी ही प्रसन्नता से इस श्वेत कुण्डलो वाले को ग्रहण कर लिया था। इसके पश्चात् जो रक्त कुण्डली था उसको इन्द्र को दे दिया ॥३२॥ इन्द्र ने बहुत खुशी से उसको ग्रहण करके अपने पुर को प्रस्थान किया था ॥३३॥ इन्द्र और रवि दोनो इन क्रोध से उत्पन्न होने वाले पुरुषो को ग्रहण करके चले गये। इसके पश्चात् कमल पर स्थित देव रुद्र से बोले—तुम भी कपाल मे जाओ और कपाल व्रत की चर्या मे वहाँ स्थित रहो। मनुष्य लोक मे इस व्रत का अवतार होगा ॥३४। जो मनुष्य तुम्हारे इस व्रत को धारण करेंगे उनको इस लोक मे और परलोक में कुछ भी दुर्लभ नही है ॥३५॥

एव संलप्य बहुधा सुमुग्ध प्रतिनद्य च ।
आहूय च समुद्र स प्रत्युवानाभ्यचारयन् ॥३६॥
कुण्डलाभरण स्त्रीणां लक्षण यद्विलक्षणम् ।
कार्तिकेयेन यत्प्रोक्त तद्वदस्वाभ्यचारयन् ॥३७॥
स चाह मन नाम्नेद भद्रे पुरुषलक्षणम् ।
देवेन तत्प्रतिज्ञाऽपेऽस्मेऽद्भविष्यति ॥३८॥

कार्त्तिकेयेन यत्प्रोक्त तद्वदस्वाविचारयन् ॥३६॥
प्रयच्छास्य विषाण वै निष्कृष्ट यत्त्वयाऽधुना ।
अवश्यमेव तद्भूत भवितव्य तु कस्यचित् ॥४०॥
ऋते विनायक तद्वै दैवयोगान्न कामत ।
गृहाण एतत्सामुद्र यत्त्वया परिकीर्तितम् ॥४१॥
स्त्रीपु सोर्लक्षण श्रेष्ठ सामुद्रमिति विश्रुतम् ।
इम च सविषाण वै कुरु देवविनायकम् ॥४२॥

इस प्रकार से बहुत बार सचाप करके और सुमुख अभिनन्दन करके उसने समुद्र को बुलाकर कुछ भी विचार न करते हुए कहा ॥३६॥ स्त्रियो का जो विलक्षण लक्षण आभरण है वह करो। जो कार्तिकेय ने कहा है उसे विचार न करते हुए बतलाओ ॥३७॥ उसने कहा—मेरे नाम से यह पुरुष लक्षण होता है। देव ने यह प्रतिज्ञा की है। यह इसी प्रकार से होगा ॥३८॥ कार्तिकेय ने जो कहा है उसे विचार न करते हुए कहो ॥३९॥ जो तुमने अभी इसका विषाण निकाल लिया है उसे इसको देदो अवश्य ही यही हुआ जो किसी का भवितव्य होता है ॥४०॥ विनायक के बिना उसे दैव योग से, इच्छा से नहीं, ग्रहण करो यह सामुद्र है जोकि तुमने कीर्तित किया है ॥४१॥ स्त्री और पुरुष का लक्षण श्रेष्ठ सामुद्र प्रसिद्ध है। इस देव विनायक को विषाण से युक्त करदो ॥४२॥

अथोवाच च देवेश वाहुलेय समत्सरम् ।
विषाण दधि चास्याह तव वाक्यान्न सशय ॥४३॥
यदा स्वय विषाण च मुक्त्वा तु विचरिष्यति ।
तदा विषाणमुक्त सभस्म ऐत करिष्यति ॥४४॥
एवमस्त्विति त चोक्त्वा विषाण तत्करे ददौ ।
विनायकस्य देवेश कार्त्तिकेयमते स्थित ॥४५॥
सविषाणकरोद्यापि दृश्यते प्रतिमा नृप ।
भीमम्नोर्महाबाहोर्विघ्न कर्तु महात्मन ॥४६॥

एतद्रहस्य देवाना मया ते समुदाहृतम् ।
यन्न देवो न वै वेद देवाना भुवि दुर्लभम् ॥४७॥
मया प्रसन्नेन तव गुह्यमेतदुदाहृतम् ।
कथित तिथिसयोगे विनायककथामृतम् ॥४८॥
य इद श्रावयेद्विद्वान्ब्राह्मणान्वेदपारगान् ।
क्षत्रियाश्च स्ववृत्तिस्थान्विटशूद्राश्च गुणान्विलान् ॥४६॥
न तस्य दुर्लभ किंचिदिह चामुत्र विद्यते ।
न च दुर्गतिमाप्नोति न च याति पराभवम् ॥५०॥
निर्विघ्न सर्वकार्याणि साधयेन्नात्र सशय ।
ऋद्धि वृद्धि श्रिय चापि विंदेत भरतोत्तम ॥५१॥

इसके अनन्तर बाहुलेय मात्सर्य के साथ देवेश से बोले—मैं इसको अब इस विषाण को दे देता हू क्योकि जैसा भी आपका वचन है मैं उसका पालन करूँगा इसमे कुछ भी सशय नही है ॥४३॥ जिस समय भी यह इस विषाण का त्याग करके यह विचरण करेगा तभी यह इस विषाण से मुक्त होता हुआ यह इसको भस्म कर देगा ॥४४॥ इसी प्रकार से होवे—यह उससे कहकर उसके हाथ मे कार्त्तिकेय ने विषाण दे दिया था। विनायक वे देवेश कार्तिकेय के मत मे स्थित हो गये थे ॥४५॥ हे नृप! आज भी विषाण से सहित कर

प्रकार की दुर्गति को प्राप्त करता है और कभी वह कही भी कोई पराभव ही पाता है ॥५०॥ सभी कार्यों को वह पुरुष विना किमी विघ्नो की बाधा के साधन कर लेता है। इसमे कुछ भी सशय नही है। हे भरतोत्तम! वह पुरुष ऋद्धि, वृद्धि और श्री की भी प्राप्ति किया करता है ॥५१॥



॥ पचमी कल्पे नागपंचमी व्रत वर्णनम् ॥

पचमी दयिता राजन्नागाना नदिवर्धिनी ।
पञ्चम्या किल नागाना भवतीत्युत्सवो महान् ॥१॥
वासुकिस्तक्षकश्चैव कालियो मणिभद्रक ।
ऐरावतो धृतराष्ट्र कर्कोटकधनजयौ ॥
एते प्रयच्छत्यभय प्राणिना प्राणजीविताम् ॥२॥
पचम्या स्नपयन्तीह नागान्क्षीरेण ये नरा. ।
तेषा कुले प्रयच्छति तेऽभयप्राणदक्षिणाम् ॥३॥
शप्ता नागा यदा मात्रा दह्यमाना दिवानिशम् ।
निर्वापयति स्नपनैर्गवा क्षीरेण मिश्रितै ॥४॥
ये स्नापयति वै नागान्भक्त्या श्रद्धासमन्विता ।
तेषा कुले सर्पभय न भवेदिति निश्चय ॥५॥
दशति ये नर विप्र नागा क्रोधसमन्विता ।
भवेत्कि तस्य दष्टस्य विस्तराद्ब्रूहि मे द्विज ॥६॥
नागदष्टो नरो राजन्प्राप्य मृत्यु व्रजत्यध ।
अधोगत्वा भवेत्सर्पो निर्विषो नात्र सशय ॥७॥

इस अध्याय मे नाग पञ्चमी कल्प की नाग पञ्चमी के व्रत का वर्णन किया जाता है। सुमन्तु ने कहा—हे राजन्! यह पञ्चमी नागो की नन्दि वर्द्धिनी दयिता है। पञ्चमी मे नागो का निश्चय ही एक महान् उत्सव हुआ करता है ॥१॥ वासुकि तक्षक कालिय, मणिभद्रक, ऐरावत, धृतराष्ट्र कर्कोटक, धनञ्जय ये प्राणो के जीवित वाले प्राणियो को अभय देते है ॥२॥ जो मनुष्य इस पञ्चमी

तिथि म जो मनुष्य नागो को दूध से स्नपन किया करते हैं उनके कुल मे वे नाग अभय की दक्षिणा दिया करते है ॥३॥ रातदिन नाग माता के द्वारा शाप पाकर दह्य मान होते हैं तब वे गायो के दूध से मिश्रित स्नपनो से निर्वापन किया करते हैं अर्थात् शाप से प्राप्त दाह को शा त करते हैं ॥४॥ जो पुरुष श्रद्धा से समन्वित है और भक्ति से नागो का स्नपन किया करते है उन के कुल मे कभी भी सर्पों का भय नही होता है, यह परम निश्चित है ॥५॥ राजा शतानीक ने कहा—हे विप्र ! जो क्रोध से समन्वित नाग मनुष्य को काट लेत हैं उस काटे हुए मानव की क्या गति होती है। हे द्विज ! मुझे आप इसे विस्तार के साथ बता ये ॥६॥ सुम तु ने कहा—हे राजन् ! नाग से दष्ट मानव मृत्यु को पाकर अधोलोक मे जाया करता है और वहाँ जाकर वह बिना विष वाला सर्प होता है इसमे कुछ भी सशय नही है ॥७॥

नागदष्ट पिता यस्य भ्राता वा दुहितापि वा ।
माता पुत्रोथ वा भार्या किं कर्तव्य वदस्व मे ॥८॥
मोक्षाय तस्य विप्रेंद्र दान व्रतमुपोषणम् ।
ब्रूहि तद्विजशार्दूल येन तद्वै करोम्यहम् ॥९॥
उपोष्या पचमी राजन्नागाना पुष्टिवर्धिनी ।
त्वमेवमेक राजेंद्र विधान शृणु भारत ॥१०॥
मासि भाद्रपदे या तु कृष्णपक्षे महीपते ।
महापुण्या तु सा प्रोक्ता ग्राह्यापि च महीपते ॥११॥
ज्ञेया द्वादश पचम्यो हायन भरतर्षभ ।
चतुर्थ्यां त्वेकभक्त तु तस्या नक्त प्रकीर्तितम् ॥१२॥
भुवि चित्रमयान्नागानथ वा कनधौतवान् ।
कृत्वा दारुमयान्वापि अथ वा मृन्मयान्नृप ॥१३॥
पचम्यामर्चयद्भक्त्या नागानां पचक नृप ।
करवीरैः शतपत्रैर्जातीपुष्पैश्च सुव्रत ॥१४॥
तथा गधैश्च धूपैश्च पूज्य पन्नगमुत्तमम् ।
ब्राह्मण भोजयत्पश्चाद् घृतपायसमादरै ॥१५॥

शतानीक ने कहा — जिसका पिता, भाई, पुत्र, भार्या, पुत्री और माता नाग के द्वारा दष्ट हो उसे क्या करना चाहिए, यह मुझे कृपया बताइये ।।८।। हे विप्रेन्द्र ! उस के मोक्ष के लिये दान, व्रत, उपोषण क्या करना चाहिए। हे द्विजो म शार्दूल ! जिससे उसका मोक्ष हो वह मुझे बताइये, वही मैं करू ।।९।। सुमन्तु ने कहा—नागो के पुष्टि की बढाने वाली पञ्चमी तिथि का उपवास करना चाहिए। हे राजेन्द्र ! हे भारत ! तुम इस तरह का एक विधान है उसका श्रवण करो ।।१०।। हे महीपते ! भाद्रपद मास के कृष्ण पक्ष मे जो पञ्चमी तिथि है वह महान् पुण्य वाली कही गई है। उसे ग्रहणगामी करना चाहिए ।।११।। हे भरतर्षभ ! वर्ष म बारह पञ्चमी जाननी चाहिए। चौथ मे तो एक वक्त और उनम तो रात्रि का समय बताया गया है ।।१२।। हे नृप ! भूमि मे चित्रमय अथवा सुवर्ण रचित, अथवा लकडी के विरचित या मिट्टी के बने हुए नागो को बनवाना चाहिए ।।१३।। इन नागो के पञ्चक की पञ्चमी तिथि मे भक्ति के साथ अर्चना करनी चाहिए। हे सुव्रत ! नागो का पूजन करवीर के पुष्प, शतपत्र पुष्प और जाति पुष्पो से करना चाहिए ।।१४।। पूजन मे पुष्पो के अतिरिक्त गन्ध (चन्दन) और धूप भी होना चाहिए। उपर्युक्त नागो के उत्तम पञ्चक का गन्धाक्षत पुष्प धूपादि से उपचारो से पूजन करे। इस अर्चन के पश्चात् घृत मिश्रित पायस और मोदको से ब्राह्मण को भोजन कराना चाहिए ।।१५।।

अनतो वासुकि शख पद्म कबल एव च ।
तथा कर्कोटको नागो नागो ह्यश्वतरो नृप ।।१६।।
धृतराष्ट्र शखपाल कालियस्तक्षकस्तथा ।
पिंगलश्च तथा नागो मासिमासि प्रकीर्तिता ।।१७।।
वत्सराते पारण स्याद्ब्राह्मणान्भोजयेद्बहून् ।
इतिहासविदे नाग गैरिकेण कृत नृप ।
तथार्चना प्रदातव्या वाचकाय महीपते ।।१८।।
एप वै नागपञ्चम्या विधि प्रोक्तो बुधैर्नृप ।
तव पित्राकृतश्चैव पितुर्मोक्षाय भारत ।।१९।।

अन्येपि ये करिष्यति इद व्रतमनुत्तमम् ।
दष्टको मोक्ष्यते तेपा शुभ स्थानमवाप्स्यति ॥२०॥
यश्चेद शृणुयान्नित्य नर श्रद्धासमन्वित ।
कुले तस्य न नागेभ्यो भय भवति कुत्रचित् ॥२१॥

अनन्त, वासुकि, शङ्ख, पद्म कम्बल, कर्कोटक अश्वतर, धृतराष्ट्र शङ्खपाल कालिय, तक्षक, पिङ्गल ये बारह नाग एक एक मास मे बताये गय हैं ॥१६॥१७॥ जब बारह मासो म उपर्युक्त नामा वाले नागो का समचन होकर एक वप पूर्ण हो जावे तो वप के अन्त म व्रत का पारण करे और बहुत से ब्राह्मणो को भोजन कराना चाहिए । हे महीपते ! इतिहास के ज्ञाता ब्राह्मण के लिये गैरिक से विरचित नाग तथा उसकी सचना वाचन करने वाले को दान मे देने चाहिए ॥१८॥ हे नृप ! नागपञ्चमी की यह विधि विद्वानो के द्वारा कहा गई है। हे भारत ! और यही विधि पिता की मुक्ति क लिये आपके पिता के द्वारा की गई है। १९॥ और अन्य भी जो लोग इस सवश्रेष्ठ व्रत को करेंगे उनको भी दष्टक मोक्ष प्राप्त कर शुभ स्थान का लाभ प्राप्त करेगा ॥२०॥ जो कोई मनुष्य श्रद्धा से युक्त होकर इस व्रत की कथा को नित्य श्रवण करता है उसके कुल म किसी भी समय म तथा किसी भी स्थान म नागा स भय नही होता है ॥२१॥



॥ तत्तद्घातुगतविपत्तलक्षणानि वर्णयित्वा तत्तत्र देयानामौषधीना वर्णनम् ॥

भगिपा दष्टयोर्मध्य यमदूती तु यै भवेत् ।
न चिकित्सा बुधै कार्या त गतायु विनिर्दिशेत् ॥१॥
प्रहृगार्ध दिवारात्रान्तरे भुञ्जन ग्रहि ।
एतस्य च समान न द्वितीय पान्त तथा ॥२॥
नागोदयो यमुद्दिश्य हना विद्धा विदारित ।
रागदष्ट विजानीयात्तस्य वचा यथा ॥३॥

यस्मात् पतते बिंदुर्वालाग्रं सलिलोद्धृतम् ।
तस्मात् स्रवते द्रंष्ट्रा विष सर्पस्य दारुणम् ॥४॥
नाडीशते तु सम्पूर्णे देहे सक्रमते विषम् ।
यावत्सक्रामयेद्बाहुं कुञ्चितं वा प्रसारयेत् ॥५॥
अनेन क्षणमात्रेण विष गच्छति मस्तके ।
वेपते विषवेगे तु शतशोऽथ सहस्रश. ॥६॥
वर्धते रक्तमासाद्य ततो वातै. शिखी यथा ।
तैलबिंदुर्जलं प्राप्य यथा वेगेन वर्धते ॥७॥

इस अध्याय मे जिस जिस धातु मे प्राप्त होने वाले विष के लक्षणो का वर्णन कर वहाँ वहाँ पर देने के योग्य औषधो का वर्णन किया जाता है। कश्यप मुनि ने कहा—दाढो मे सविषा जो दष्ट्रा (दाढ) होती है वह तो यमदूती होती है उसकी चिकित्सा बुध लोगो को कभी नही करनी चाहिए। उस दाढ से जो काट लिया गया है उसे तो आयु के समाप्त हो जाने वाला निर्दिष्ट कर देना चाहिए ॥१॥ दिन रात म आठ प्रहर तक एक-एक को वाहिर भोग करता है उसी तरह एक के समान द्वितीय और षोडश होता है ॥२॥ नागादि जिसका उद्देश्य कर के काटते हैं वह हत-विद्ध और विदारित होता है। ऐसे पुरुष को तो काल से ही दष्ट समझना चाहिए। कश्यप मुनि का यह वचन सत्य है ॥३॥ जितना बाल के अग्रभाग जैसा सलिल से उद्धृत विन्दु गिरता है उतना ही सर्प की दाढ दारुण विष का स्रवण किया करती है ॥४॥ शत नाडी वाले सम्पूर्ण शरीर मे वह विष सक्रमण किया करता है जब तक वह विष बाहु को सक्रान्त करता है अथवा कुञ्चित को प्रसारित होता है ॥५॥ इस से एक ही क्षण मे विष मस्तक मे चला जाता है। विष के वेग म मनुष्य सैकडो और सहस्रो बार कम्पित होता है ॥६॥ वातो क द्वारा एक शिखी के समान वह विष रक्त को प्राप्त होकर बढ जाता है जिस प्रकार से तैल की बूद जल मे पडकर वेग से बढ़ा करती है वैसे ही वह भी बढ़ता है ॥७॥

शिराण्टी आश्रय प्राप्य मारुतेन समीरित ।
तत स्थानशत प्राप्य त्वचास्थान विचेष्टितम् ॥८॥

त्वचासु द्विगुण विद्याच्छोणितेषु चतुर्गुणम् ।
पित्ते तु त्रिगुण याति श्लेष्मे वै षोडश भवेत् ॥९॥
वायौ त्रिंशद्गुण चैव मज्जाषष्टिगुण तथा ।
प्राणे चैकार्णवीभूते सर्वगात्राणि सधयेत् ॥१०॥
श्रोत्रे निरुध्यमाने च याति दष्टस्त्वसाध्यताम् ।
ततोऽसौ म्रियते जन्तुर्नि श्वासोच्छ्वासवर्जित ॥११॥
निष्क्राते तु ततो जीवो भूते पञ्चत्वमागते ।
तानि भूतानि गच्छन्ति यस्ययस्य यथातथम् ॥१२॥
पृथिव्यापस्तथा तेजो वायुराकाशमेव च ।
इत्येषामेव सघात शरीरमभिधीयते ॥१३॥
पृथिवी पृथिवीं याति तोय तोयेषु लीयते ।
तेजो गच्छति चादित्य प्राणो मारुत व्रजेत् ॥१४॥
आकाश चैवमाकाशे सह तेनैव गच्छति ।
स्वस्थान ते प्रपद्य त परस्परनियोजिता ॥१५॥

मारुत के द्वारा समीरित निम्नगामी आश्रय को प्राप्त कर फिर वह सैकड़ों स्थानों को प्राप्त किया करता है वैसे ही त्वचा स्थान में इसका विचेष्टित होता है ॥८॥ त्वचा में द्विगुण जानना चाहिए और रक्त में चतुर्गुण हो जाता है। पित्त में त्रिगुना जाता है और कफ में सोलह गुना होता है ॥९॥ वायु में जब विष पहुँच जाता है तो वह तीस गुना और मज्जा में साठ गुना हो जाता है। प्राण में जो एकार्णवीभूत है पहुँचने पर समस्त गात्रों को पीड़ित करने लगता है ॥१०॥ कानों के निरुध्यमान हो जाने पर दष्ट पुरुष असाध्य दशा में पहुँच जाया करता है। इसके पश्चात् यह जीव मर जाता है और उसके उच्छ्वास (ऊपर को आने वाला साँस) और निःश्वास (नाक का बाहर जाने वाला श्वास) बन्द हो जाते हैं ॥११॥ जीवात्मा के निकल जाने पर और भूतों (पञ्चतत्वों) के पञ्चत्व प्राप्त हो जाने पर वे पाँचों भूत जिस जिस के होते हैं उनमें जाकर मिल जाया करते हैं ॥१२॥ पृथिवी, जल, तेज, वायु और आकाश—इन पाँचों का जो एकत्र संघात होता है वही शरीर इस नाम से कहा

जाया करता है ॥१३॥ पृथिवी पृथ्वी में चला जाता है, जल जलम मिल जाता है तेज सूर्य में चला जाया करता है मारुत मारुत में मिल कर चला जाता है तथा आकाश महाकाश मे मिल जाया करता है। ये सब उस जीवात्मा के साथ ही चले जाया करते हैं। ये सब परस्पर में नियोजित हैं और अपने अपने स्थान को जाकर प्राप्त हो जाते हैं ॥१४॥१५॥

न जीवेदागत कश्चिदिह जन्मनि सुव्रत ।
विपात न उपक्षेत त्वरित तु चिकित्सयेत् ॥१६॥
एकमस्ति विष लोके द्वितीय चोपपद्यते ।
यथा नानाविध चैव स्थावर तु तथैव च ॥१७॥
प्रथमे विषवेगे तु रोमहर्षोऽभिजायते ।
द्वितीय विषवेगे तु स्वेदो गात्रेषु जायते ॥१८॥
तृतीये विषवेगे तु कम्पो गात्रेषु जायते ।
चतुर्थे विषवेगे तु श्रोत्रान्तरनिरोधकृत् ॥१९॥
पञ्चमे विषवेगे तु हिक्का गात्रेषु जायते ।
षष्ठे च विषवेगे तु प्राणेभ्योऽपि प्रमुच्यते ।
सप्तधातुवहा ह्येते वैनतयेन भाषिता ॥२०॥
वच स्थाने विषे प्राप्ते तस्य रूपाणि मे शृणु ।
अगानि तिमिरायते तपते च मुहुर्मुहः ॥२१॥

हे सुव्रत ! इस जन्म में कोई भी आया हुआ यहाँ ससार में सदा जीवित नहीं रहा करता है। यह समझकर विष से आर्त्त मानव की कभी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए और शीघ्र से शीघ्र उसकी चिकित्सा अवश्य करनी चाहिए ॥१६॥ यह विष एक में होता है और दूसरे को प्राप्त हो जाया करता है। उसी प्रकार से यह विष स्थावर और नाना प्रकार का होता है ॥१७॥ प्रथम विष के वेग में रोमाञ्च हो जाता है। दूसरे विष के वेग होने पर गात्रों में पसीना आने लगता है। जब तीसरा विष का वेग होता है तो शरीर के अन्दर में कपनी होती है। चौथे विष वेग में श्रोत्रान्तर का निरोध हो जाता है ॥१८॥१९॥ पाँचवें विष के वेग होने पर गात्रों में हिचकी उत्पन्न

हो जाती है। छटे विष के वेग में तो मानव अपने प्राणो से भी विमुक्त हो जाया करता है। ये विष सातो धातुओ मे पहुचने वाले होते है ऐसा वैनतेय के द्वारा कहे गये हैं ॥२०॥ वाणी के स्थान पर विष के प्राप्त हो जाने पर उसके रूपो को मुझसे सुनो। उस समय समस्त अङ्ग तिमिरायमाण हो जाते हैं और बार-बार तपा करते है ॥२१॥

एतानि यस्य चिह्नानि तस्य त्वचि गत विषम् ।
तस्यागद प्रवक्ष्यामि येन सपद्यते सुखम् ॥२२॥
अर्कमूलमपामार्गं प्रियगुं तगर तथा ।
एतदालोड्य दातव्य तत. सपद्यते सुखम् ॥२३॥
ततस्तस्मिन्कृते विप्र निवर्तेत चेद्विषम् ।
त्वच स्थान ततो भित्त्वा रक्तस्थान प्रधावति ॥२४॥
विषे च रक्तं सप्राप्ते तस्य रूपाणि मे शृणु ।
दह्यते मुह्यते चैव शीतल बहु मन्यते ॥२५॥
एतानि यस्य रूपाणि तस्य रक्तगतं विषम् ।
तनागद प्रवक्ष्यामि येन सम्पद्यते सुखम् ॥२६॥
उशीर चन्दन कुङ्कुमुत्पलं तगर तथा ।
महाकालस्य मूलानि सिंदुवारनगस्य च ।
हिंगुल मरिच चैव पूर्ववेगे तु दापयेत् ॥२७॥
बृहती वृश्चिका धात्री इद्रवारुणिमूलकम् ।
सप्तगन्धघृत चैव द्वितीये परिकीर्तितम् ॥२८॥

जिसके ये इतने चिह्न होते हैं उसके त्वचा मे गया हुआ विष होता है। अब उसके अगद को कहता हूँ जिसके द्वारा सुख प्राप्त हो जाता है ॥ २२॥ आक की जड, अपामार्ग (औंगा), प्रियङ्गु और तगर इन सबको आलोड़ित करके दष्ट को देना चाहिए। इससे सुख उत्पन्न होता है ॥२३॥ हे विप्र ! इस प्रकार से करने पर यदि विष निवृत्त हो जाता है तो फिर त्वचा के स्थान का भेदन करके रक्त के स्थान को वह दौड़ा करता है ॥२४॥ जब विष रक्त मे पहुँच जाता है तो उस समय मे उसके जो रूप होते हैं उन्हें अब तुम मुझसे श्रवण

करो। वह दाह वाला और मोह (मूर्च्छा) वाला हो जाया करता है और बहुत शीत न मानता है ॥२५॥ ये जिसके रूप होते हैं उसको समझलो कि विष रक्तगत हो गया है। अब उस समय का अगद कहता हूं जिसके द्वारा सुख हो जाता है ॥२६॥ उशीर, चन्दन, कुष्ठ, उत्पल तगर, महाकाल तथा सिन्धुवार नग के मूल, हिंगुल, मिर्च इन सबको दिलाना चाहिए किन्तु ये पूर्व वेग में ही दिलावे। द्वितीय वेग में बृहती, वृश्चिका काली, इन्द्र वारुणी जड़ी का मूल और सप्त गन्ध घृत ये सब देना बताया गया है ॥२७॥२८॥

सिन्दुवार तथा हिंगु तृतीये कारयेद्बुध ।
तस्य पान च कुर्वीत अजन नेपन तथा ॥२६॥
एतेनैवोपचारेण तत सपद्यते सुखम् ।
रक्तस्थान ततो गत्वा पित्तस्थान प्रधावति ॥३०॥
पित्तस्थानगते विप्र विषरूपाणि मे शृणु ।
उत्तिष्ठते निपतते दह्यते मुह्यते तथा ॥३१॥
गात्रत पीतक स्याद्दं दिश पश्यति पीतिका ।
प्रचला च भवेन्मूर्च्छा न चात्मान विजानते ।
विषक्रिया तस्य कुर्याद्यया सम्पद्यते सुखम् ॥३२॥
पित्तस्थानमतिक्रम्य श्लेष्मस्थान च गच्छति ॥३३॥
पिप्पल्यो मधुक चैव मधुखण्ड घृत तथा ।
मधुसारमलाबू च जाति शवरवालुकाम् ।
इन्द्रवारुणिकामूल गवा मूत्रेण पेषयेत् ॥३४॥
गम्य तस्य प्रयुञ्जीत पानमालेपनाजनम् ।
एतेनैवोपचारेण तत सम्पद्यते सुखम् ॥३५॥

तीसरे वेग में बुध पुरुष को सिन्धुवार और हिंगु कराना चाहिए। उसका पान करे तथा अंजन और लेपन भी करे ॥२६॥ इस उपचार से ही फिर सुख उत्पन्न हो जाता है। इसके पश्चात् रक्त के स्थान को पहुंच कर फिर वह विष पित्त स्थान को दौड़ा करता है ॥३०॥ हे विप्र ! जब विष पित्त के स्थान पर पहुंचता है तब विष के जो रूप होते हैं उन्हें मुझ से

सुनो। दष्ट व्यक्ति कभी तो उठकर खड़ा होता है, कभी वह नीचे गिर पड़ता है, उसके समस्त शरीर में दाह होता है और मोह को प्राप्त हो जाता है अर्थात् बेहोश होता है ॥३१॥ वह शरीर से पीला हो जाता है और समस्त दिशाओं को भी पीली देखा करता है। उसे बड़ी भारी जबर्दस्त मूर्च्छा होती है कि स्वयं अपने आपको भी नहीं जाना करता है। उस समय उसकी विष की क्रिया करनी चाहिए जिससे सुख उत्पन्न हो जावे ॥३२॥ पित्त के स्थान का अतिक्रमण करके फिर वह कफ को प्राप्त हो जाता है ॥३३॥ पीपल, मधुक, मधुलएड, घृत, मधुसार, अलाबू जातिशङ्कर बालुका और इन्द्रवारुणी का मूल इन सबको गाय के प्रस्राव से पीसना चाहिए ॥३४॥ उसके नस्य का प्रयोग करना चाहिए तथा पान, आलेपन और अञ्जन भी करे। इतने ही उपचार से सुख उत्पन्न हो जाया करता है ॥३५॥

श्लेष्मस्थानं ततः प्राप्ते तस्य रूपाणि मे शृणु।
गात्राणि तस्य रुध्यन्ते निःश्वासश्च न जायते।
लाला च स्रवते तस्य कण्ठो घुरघुरायते ॥३६॥
एतानि यस्य रूपाणि तस्य श्लेष्मगतं विषम्।
तस्यागदं प्रवक्ष्यामि येन सम्पद्यते सुखम् ॥३७॥
त्रिकटुर्वी श्लेष्मातकी लोध्रं च मधुसारकम्।
एतानि समभागानि गवां मूत्रेण प्रेषयेत् ॥३८॥
तस्य पानं च कुर्वीत अञ्जनं लेपनं तथा।
एतेनैवोपचारेण ततः सम्पद्यते सुखम् ॥३९॥
श्लेष्मस्थानमतिक्रम्य वायुस्थानं च गच्छति।
तत्र रूपाणि वक्ष्यामि वायुस्थानगते विषे ॥४०॥
आध्मायते च जठरं बाधवाश्च न पश्यति।
ईदृशं कुरुते रूपं दृष्टिभङ्गश्च जायते ॥४१॥
एतानि यस्य रूपाणि तस्य वायुगतं विषम्।
तस्यागदं प्रवक्ष्यामि येन सम्पद्यते सुखम् ॥४२॥

जब विष श्लेष्मा (कफ) के स्थान पर पहुंच जाता है उस समय जो

उस विष के प्रभाव से रूप होते हैं उन्हें मैं अब बताता हूं उन्हें तुम श्रवण करो। उस समय दष्ट के गात्र रुद्ध हो जाते हैं और निश्वास नहीं हुआ करता है। उसके मुख से लार टपकने लगती है और उसका कण्ठ घुर्घुटाने लगता है ॥३६॥ इस प्रकार के जिसके रूप होते हैं उसके श्लेष्मा में प्राप्त होने वाला विष होता है। उसका अगद अब मैं बतलाता हूं जिसके करने से सुख होता है ॥३७॥ श्लेष्मान्तक, त्रिकुटी लोध्र मधुसारक इन सब वस्तुओं को समभाग लेकर गाय के मूत्र के साथ पीसे। उसका पान करे तथा इसका अञ्जन और लेपन भी करना चाहिए। इतने ही उपचार के करने से सुख उत्पन्न हो जाता है ॥३८॥ ॥३९॥ श्लेष्मा के स्थान का अतिक्रमण करके फिर विष वायु के स्थान में पहुंचा करता है। वायु के स्थान पर विष के पहुंचने पर जो उसके रूप हुआ करते हैं उन्हें अब बतलाया जाता है ॥४०॥ उस अवस्था में पेट आध्मायमान हो जाता है और वह व्यक्ति अपने वचनों को भी नहीं दे सकता है। इस प्रकार का रूप वह विष कर देता है और उसका दृष्टि भ्रम भी हो जाता है ॥४१॥ ये जिसकी रूप रेखाएँ बन जाती हैं उसको समझ लेना चाहिए कि विष वायु के स्थान में पहुंच गया है। अब उसका अगद भी बतलाते हैं जिसके द्वारा सुख उत्पन्न हो जाता है ॥४२॥

शोणामृत प्रियाल च रक्तं च गजपिप्पलीम् ।
भार्ङ्गी वचा पिप्पली च देवदारु मधूकवम् ॥४३॥
मधूरसार महेन्द्रदारु
हिंगु च पिष्ट्वा गुटिका च कुर्यात् ।
दद्यात् तम्रांजनलेपनानि
ह्योगदं सर्वविषाणि हन्यात् ॥४४॥
अञ्जन नैव नस्य च क्षिप्र दद्याद्विषापहृत ।
वायुस्थान ततो मुक्त्वा मज्जास्थान प्रधावति ॥४५॥
विष मज्जागत विप्र तस्य रूपाणि मे शृणु ।
दृष्टिश्च हीयते तस्य भृशाममर्माणि मुञ्चति ॥४६॥

एतानि यस्य रूपाणि तस्य मज्जागत विषम् ।
तस्यागद प्रवक्ष्यामि येन सम्पद्यते सुखम् ॥४७॥
घृतमधुशर्करान्वितमुशीर चन्दन तथा ।
एतदालोड्य दातव्य पान नस्य च सुव्रत ॥४८॥
तत प्रणश्यते दुःख तत सपद्यते सुखम् ।
अथ तस्मिन्कृते योगे विष तस्य निवर्तते ॥४९॥

शोभा का मूल, प्रियाल, रक्त, गज पिप्पली, भारङ्गी, वच पीपल, देवदारु मधूकक मधूकसार, सहसिन्धु क्षार और हींग इन सबका पेषण कर गुटिका बना लेनी चाहिए उन्हे सेवन करावे और इसका अञ्जन तथा लेपन भी करे। यह ऐसा अगद है कि सब तरह के विषो का हनन कर देता है ॥४३॥ ॥४४॥ इसका अञ्जन और नस्य विषान्वित को बहुत ही शीघ्र देना चाहिए। फिर वह विष वायु स्थान को छोड कर मज्जा मे प्रविष्ट हो जाता है ॥४५॥ हे विप्र! मज्जागत विष के हो जाने पर जो रूप प्रकट हुआ करते हैं, उन्हें मुझसे सुनो। उसकी दृष्टि तो बिलकुल ही नष्ट हो जाती है और वह बहुत अधिक अङ्गो को पटकने लगता है ॥४६॥ इस तरह की रूप रेखा जिसकी दिखाई देती है वह मज्जागत विष समझ लेना चाहिए। अब उस अवस्था मे जो अगद होता है उसका वर्णन किया जाता है जिसके करने से स्वास्थ्य का सुख प्राप्त हो जाता है ॥४७॥ घृत, मधु, शर्करा से युक्त उशीर तथा चन्दन इन सबको घोट-छान कर देना चाहिए। हे सुव्रत! उसका पान और नस्य भी देवे ॥४८॥ इसके करने से सारा दुःख नष्ट हो जाया करता है और फिर स्वस्थता का सुख उत्पन्न होता है। इस प्रकार से इस योग के करने पर उस पीडित का विष दूर हो जाया करता है ॥४९॥

मज्जास्थान ततो गत्वा मर्मस्थान प्रधावति ।
विषे तु मर्म सम्प्राप्ते शृणु रूप यथा भवेत् ॥५०॥
निश्चेष्ट पतते भूमौ कर्णाभ्या बधिरो भवेत् ।
वारिणा सिच्यमानस्य रोमहर्षो न जायते ॥५१॥

दडेन हन्यमानस्य दडराजी न जायते ।
शस्त्रेणच्छिद्यमानस्य रुधिरं न प्रवर्तते ॥५२॥
केशेषु लुच्यमानेषु नैव केशान्प्रवेदते ।
यस्य कर्णौ च पार्श्वे च हस्तपादं च सधयः ।
शिथिलानि भवतीह स गतासुरिति श्रुतिः ॥५३॥
एतानि यस्य रूपाणि विपरीतानि गौतम ।
मृतं तु न विजानीयात्कश्यपस्य वचो यथा ॥५४॥
वैद्यास्तस्य न पश्यति ये भवंति कुशिक्षिता ।
विचक्षणास्तु पश्यति मन्त्रौषधिसमन्विता ॥५५॥
तस्यागदं प्रवक्ष्यामि स्वयं रुद्रेण भाषितम् ।
मयूरपित्तं मार्जारपित्तं गन्धनाडीमूलमेव च ॥५६॥

मज्जा के स्थान से चल कर फिर वह विष मर्म स्थान की ओर दौड़ा करता है। जब वह विष मर्म स्थान में पहुँच जाता है तब उसकी जो दशा होती है उसका श्रवण करो ॥५०॥ वह व्यक्ति चेष्टा से हीन होकर भूमि में गिर जाया करता है और कानों से बहिरा हो जाता है। उस अवस्था में उसके ऊपर जल के गहरे छींटे भी दिये जावें तो भी उसे रोमाञ्च नहीं होते हैं अर्थात् उसके शरीर पर जल के पड़न पर कोई प्रतिक्रिया नहीं होती है ॥५१॥ यदि उस दण्ड से भी पीटा जाय तो उसके शरीर पर दण्डे की रेखा नहीं पड़ती है। यदि किसी शस्त्र से उसके शरीर का छेदन किया जावे तो उसके शरीर से रुधिर भी नहीं निकलता है ॥५२॥ उसके यदि केश भी लुंचित किये जावें तो भी उसे इसका कुछ भी अनुभव नहीं होता है। जिसके कान, पार्श्व, हाथ, पैर और समस्त संधियाँ शिथिल हो जाया करती हैं और यहाँ उसे मृत हो गया है ऐसा ही कहा जाता है ॥५३॥ हे गौतम ! जिसके इस तरह के बिल्कुल विपरीत रूप होते हैं उसे मृत (मरा हुआ) तो नहीं समझ लेना चाहिए क्योंकि कश्यप महर्षि के ऐसे वचन हैं ॥५४॥ वे वैद्य इस बात को नहीं समझ पाते हैं जो कुशिक्षित होते हैं। जो विचक्षण वैद्य होते हैं और मन्त्र तथा औषधियों के जानने वाले होते हैं वे इस अवस्था को भली भाँति देख

लिया करते हैं ।।५५।। अब मैं इस दशा में जो अगद होता है उसे बतलाता हूँ जिसको कि स्वयं भगवान् रुद्र ने कहा था ।।५६।।

कुंकुमं तगरं कुष्ठं कासमर्दत्वचं तथा ।
उत्पलस्य च किंजल्कं पद्मस्य कुमुदस्य च ।।५७।।
एतानि समभागानि गोमूत्रेण तु पेषयेत् ।
एषोऽगदो यस्य हस्ते दष्टो न म्रियते स वै ।
कालाहिनापि दष्टेन क्षिप्रं भवति निर्विषः ।।५८।।
क्षिप्रमेव प्रदातव्यं मृतसंजीवनौषधम् ।
अंजनं चैव नस्यं च क्षिप्रं दद्याद्विचक्षणः ।।५९।।

मयूर का पित्त मार्जार का पित्त गन्ध नाड़ी का मूल कुंकुम तगर कुष्ठ कासमर्द की छाल उत्पल का किंजल्क पद्म और कुमुद का किंजल्क इन समस्त वस्तुओं को समान भाग में लेकर गोमूत्र के साथ सबको पीसना चाहिए। यह अगद जिसके हाथ में होता है वह दशन किया हुआ भी व्यक्ति नहीं मरा करता है। च हे काल सर्प भी ऐसे क्यों न काट लेवे वह शीघ्र ही विष रहित हो जाता है। यह मृत संजीवनी औषध है उसे शीघ्र ही देना चाहिए। इसका अंजन और नस्य भी विचक्षण को शीघ्र देना चाहिए ।।५७।।५८।।५९।।

।। षष्ठीकल्पे कार्तिकषष्ठ्यां स्कन्दपूजावर्णनम् ।।

षष्ठ्यां फलाशनो राजन्विशेषात्कार्तिके नृप ।
राज्यच्युतो विशेषेण स्वं राज्यं लभते चिरात् ।।१।।
षष्ठी तिथिर्महाराज सर्वदा सर्वकामदा ।
उपोष्या तु प्रयत्नेन सर्वकालं जयार्थिना ।।२।।
कार्तिकेयस्य दयिता एषा षष्ठी महातिथिः ।
देवसेनाधिपत्यं हि प्राप्तं तस्यां महात्मना ।।३।।
अस्यां हि श्रेयसा युक्तो यस्मात्स्कंदो भवाग्रणी ।
तस्मात्षष्ठ्यां नक्तभोजी प्राप्नुयादीप्सितं सदा ।।४।।

दत्त्वार्घ्यं कार्तिकेयाय स्थित्वा वै दक्षिणामुखः ।
दध्ना घृतोदकैः पुष्पैर्मन्त्रेणानेन सुव्रत ॥५॥
सप्तर्षिदारज स्कन्द स्वाहापतिसमुद्भव ।
रुद्रार्यमाग्निज विभो गंगागर्भ नमोऽस्तु ते ।
प्रीयतां देवसेनानी सम्पादयतु हृद्गतम् ॥६॥
दत्त्वा विप्राय चात्मान्नं यच्चान्यदपि विद्यते ।
पश्चाद्भुङ्क्ते त्वसौ रात्रौ भूमिं कृत्वा तु भाजनम् ॥७॥

इस अध्याय में षष्ठी कल्प में कार्त्तिक की षष्ठी में स्कन्द की पूजा का वर्णन किया जाता है। सुमन्तु ऋषि ने कहा—हे नृप ! षष्ठी तिथि में फलों का आहार करने वाला पुरुष और विशेष रूप से कार्तिक मास में फलों का अशन करने वाला यदि अपने राज्य से भी च्युत हो गया हो तो वह शीघ्र ही राज्य की प्राप्ति कर लिया करता है ॥१॥ हे महाराज ! यह षष्ठी तिथि सर्वदा समस्त कामनाओं के देने वाली हुआ करती है। जो अपने जय की इच्छा रखता है उसे इस षष्ठी तिथि का सभी समयों में प्रयत्न पूर्वक उपवास करना चाहिए ॥२॥ यह षष्ठी महातिथी स्वामी कार्त्तिकेय की प्रिया है। इस महान् आत्मा वाले देव ने इसमें देवताओं की सेना का आधिपत्य प्राप्त किया था ॥३॥ इस तिथि में शिव का ज्येष्ठ पुत्र भगवान् स्कन्द परम श्रेय से समन्वित हुए थे इसी कारण से षष्ठी तिथि में दिन में उपवास एक बार रात्रि में भोजन करने वाला मनुष्य सदा अपने अभीष्ट की प्राप्ति किया करता है ॥४॥ स्वामी कार्त्तिकेय को अर्घ्य देकर दक्षिण दिशा की ओर मुख करके स्थित होवे और दधि, घृत, उदक और पुष्पों के द्वारा निम्नलिखित मन्त्र से स्कन्द का समर्चन करे। मन्त्र का स्वरूप यह है—'हे सप्तर्षिदारज ! हे स्कन्द ! हे स्वाहापति समुद्भव ! हे रुद्रार्यमाग्निज ! हे विभो ! हे गङ्गा गर्भ ! आपके लिये मेरा नमस्कार है। देव सेना के अधिपति आप मुझ पर प्रसन्न होइये और मेरे हृदय में मनोरथ को पूर्ण करिये ॥५॥६॥ अपने अन्न को ब्राह्मण को दान करके तथा अन्य जो कुछ भी हो उसका भी दान देकर फिर रात्रि में भूमि में पात्र को रखकर स्वयं भोजन करे ॥७॥

एव पष्ठ्या व्रत स्नेहात्प्रोक्त स्कन्देन यत्नत ।
तन्निबोध महाराज प्रोच्यमान मयाखिलम् ॥८॥
षष्ठ्या यस्तु फलाहारो नक्ताहारो भविष्यति ।
शुक्लाकृष्णासु नियतो ब्रह्मचारी समाहित ॥९॥
तस्य सिद्धि धृति तुष्टि राज्यमायुर्निरामयम् ।
पारत्रिक चैहिक च दद्यात्स्कन्दो न सशय ॥१०॥
यो हि नक्तोपवास स्यात्स नक्त न व्रती भवेत् ।
इह वामुत्र सोऽत्यत्त लभते ख्यातिमुत्तमाम् ।
स्वर्गे च नियत वास लभते नात्र सशय ॥११॥
इह चागत्य कालाते यथोक्तफलभाग्भवेत् ।
देवानामपि वद्योऽसौ राज्ञा राजा भविष्यति ॥१२॥
यश्चापि शृणुयात्कल्प पष्ठ्या कुरुकुलोद्वह ।
तस्य सिद्धिस्तथा तुष्टिर्धृति स्यात्ख्यातिसभवा ॥१३॥

इस प्रकार से इस षष्ठी तिथि मे व्रत स्कन्द ने यत्न से स्नेह के कारण कहा है। हे महाराज ! मेरे द्वारा सम्पूर्ण यह कहा जा रहा है उसे आप भली भाँति समझ लो ॥८॥ षष्ठी तिथि मे जो कोई फलो का आहार करने वाला और रात्रि मे आहार करने वाला रहेगा, वह षष्ठी कृष्ण पक्ष की और शुक्ल पक्ष की सभी है, उनमे नियत समाहित और ब्रह्मचर्य व्रत वाला होकर रहे उसकी सिद्धि तुष्टि, धृति राज्य आयु और निरामयता इन सबको उस व्रत करने वाले व्यक्ति के लिये स्कन्द देते है। स्कन्द उस इस लोक का और परलोक का दोनो ही सुख दिया करते हैं इसमे कुछ भी सशय नही है ॥९॥१०॥ जो नक्त (रात्रि) के उपवास वाला होता है वह रात्रि से व्रत वाला होता है। वह पुरुष यहाँ और परलोक म दोनो जगह अत्यन्त ही उत्तम ख्याति (प्रसिद्धि) को प्राप्त किया करता है और उसका अन्त म स्वर्ग म नियत निवास होता है इसमे कुछ भी सशय नही है ॥११॥ इस ससार मे आकर वह कालान्त मे यथोक्त फल का भोगने वाला हो जाता है। यह पुरुष देवो का भी वन्दना करने के योग्य होता है और राजाओ का भी राजा हुआ करता है। हे कुरु कुलोद्वह !

जो कोई भी इस षष्ठी के कल्प को सुनता है उसको सिद्धि, तुष्टि, धृति जोकि ख्याति से उत्पन्न होने वाली हैं, हुआ करती हैं ॥१२॥१३॥



॥ षष्ठीकल्पे ब्राह्मण्यविवेकवर्णनम् ॥

वेदाध्यनमप्येतद्ब्राह्मण्यं प्रतिपद्यते ।
विप्रवद्वैश्यराजन्यौ राक्षसा रावणादयः ॥१॥
श्वादचांडालदासाश्च लुब्धकाभीरधीवराः ।
येन्येऽपि वृषलाः केचित्तेपि वेदानधीयते ॥२॥
शूद्रा देशांतरं गत्वा ब्राह्मण्यं क्षत्रियं श्रिताः ।
व्यापाराकारभाषाद्यैर्विप्रतुल्यैः प्रकल्पितैः ॥३॥
वेदानधीत्य वेदौ वा वेदं वापि यथाक्रमम् ।
प्रोद्वहंति शुभां कन्यां शुद्धब्राह्मणजां नराः ॥४॥
अथ वाधीत्य वेदांस्तु क्षत्रवैश्यैस्तु वा नराः ।
गौडपूर्वां कृतामेयुर्जातिं वा दक्षिणात्यजाम् ॥५॥
अपरिज्ञातशूद्रत्वाद्ब्राह्मण्यं याति कामतः ।
तस्मान्न ज्ञायते भेदो वेदाध्यायक्रियाकृतः ॥६॥
शास्त्रकारैस्तथा चोक्तं न्यायमार्गानुसारिभिः ।
ते साधु मतमाकर्ण्य संतः संति विमत्सराः ॥७॥

इस अध्याय में षष्ठी कल्प में ब्राह्मण के विवेक का वर्णन किया जाता है। ब्रह्माजी ने कहा—ब्राह्मण की भाँति क्षत्रिय और वैश्य भी वेद के अध्ययन से ही इस ब्राह्मण्य को प्राप्त किया करते हैं। रावण आदि राक्षस, श्वाद, चाण्डाल, दास, लुब्धक, आभीर, धीवर जो भी अन्य कोई वृषल हैं वे भी वेदों का अध्ययन किया करते हैं ॥१॥२॥ शूद्र लोग दूसरे देशों में जाकर और क्षत्रिय का आश्रय प्राप्त करके ब्राह्मण के तुल्य व्यापार, आकार और प्रकल्पित भाषा आदि के द्वारा ब्राह्मण्य प्राप्त किया करते हैं। समस्त वेदों, दो वेद या एक ही वेद को यथाक्रम अध्ययन करके मनुष्य शुद्ध ब्राह्मण से उत्पन्न होने

वाली कन्या से विवाह किया करते हैं ॥३॥४॥ अथवा वेदों का अध्ययन करके क्षत्रिय या वैश्य जाति के मनुष्य दक्षिणात्यजा गौड पूर्वा जाति को प्राप्त हुए हैं ॥५॥ शूद्रत्व का परिज्ञान न होने से स्वेच्छया ब्राह्मण्य को प्राप्त किया करते हैं। इस कारण से वेदों के अध्ययन की क्रिया से किया हुआ भेद नहीं जाता है ॥६॥ न्याय मार्ग के अनुसरण करने वाले शास्त्रों के रचयिताओं ने इस प्रकार से कहा है। वे साधुमत का श्रवण कर सन्त पुरुष मात्सर्य से रहित हुआ करते हैं ॥७॥

आचारहीनान्न पुनन्ति वेदा यद्यप्यधीताः सह षड्भिरङ्गैः ।
शिल्पं हि वेदाध्ययनं द्विजानां वृत्तं स्मृतं ब्राह्मणलक्षणं तु ॥८॥
अधीत्य चतुरो वेदान्यदि वृत्तं न तिष्ठति ।
न तेन क्रियते कार्यं क्षीरत्नेनेव पढव ॥९॥
शिखाप्रणवसंस्कारसन्ध्योपासनमेखला ।
दण्डाजिनपवित्राद्या शूद्रेष्वपि निरङ्कुशा ॥१०॥
प्रसंगोपि हि शूद्राणां न शक्यो विनिवारितुम् ।
देवोत्तममन्त्रेणापि निवर्तते नरा स्वयम् ॥११॥
तस्मान्नैतेऽपि लक्ष्यन्ते विलक्षणतया नृणाम् ।
यज्ञोपवीतमन्त्रारमेखलाद्यूलिवादय ॥१२॥
आभिचारिकमन्त्रार्थ दुर्लभत्वादिभापगैं ।
ब्राह्मणस्यैव शक्तिश्चेत्क्वनास्य विनिहन्यते ॥१३॥
तपः सत्यादिमाहात्म्याद् व्रतासमयस्मृति ।
मन्त्रशक्तिर्गुणामपा सर्वेषामपि विद्यते ॥१४॥

यद्यपि छओं अङ्गों के सहित समस्त वेदों का अध्ययन कर लिया गया हो तो भी जो आचार से हीन होते हैं उन्हें वेद पवित्र नहीं बनाया करते हैं। वेदों का अध्ययन कर लेना तो द्विजों का एक शिल्प करना को ही भांति होता है। वस्तुतः ब्राह्मण का लक्षण तो चरित्र ही कहा गया है ॥८॥ चारों वेदों का अध्ययन करके भी यदि कोई ब्राह्मण चरित्रवान् नहीं रहता है उसके द्वारा कोई धर्म नहीं किया जाना चाहिए जिस प्रकार से क्षीर रत्न ने मगार है किन्तु

उससे कोई नपुंसक वृद्ध भी कार्य सम्पादन नहीं किया करता है ॥९॥ शिखा, प्रणव संस्कार, सन्ध्योपासना, मेखला धारण, दण्ड, अजिन और पवित्रा आदि शूद्रों में बिना किसी अंकुश के हुआ करते हैं या हो सकते हैं ॥१०॥ शूद्रों का सङ्ग भी विनिवारित नहीं किया जा सकता है। देवोत्तम त्रय से भी मनुष्य स्वयं निवृत्त हो जाया करते हैं ॥११॥ इस कारण से यज्ञोपवीत संस्कार और मेखला चूनिका आदि ये सब मनुष्यों के विलक्षणता से नहीं दिखाई दिया करते हैं ॥१२॥ अभिचारिक मन्त्र आदि के दुर्लभत्वादि भाषणों के द्वारा यदि केवल ब्राह्मण की ही शक्ति होती है तो इसकी इस शक्ति का विशेष हनन किस के द्वारा किया जाता है ॥१३॥ तप और सत्य आदि के माहात्म्य से देवता के समय की स्मृति तथा मन्त्र की शक्ति इन सभी मानवों की रहा करती है ॥१४॥

वचनं दुर्वचस्यापि क्रियते सर्वमानवैः ।
शूद्रब्राह्मणयोस्तस्मान्नास्ति भेदः कथंचन ॥१५॥
शापानुग्रहकारित्वे शक्तिभेदो न विद्यते ।
चौरचाटादिराजन्यदुर्जनाभिहते नृणाम् ॥१६॥
आत्मदुःखोदयापाय स्वेषु जंतुषु रक्षणम् ।
कर्तुं न प्रभवेच्छूद्रो ब्राह्मणस्तद्वदेव हि ॥१७॥
मा भून्युगे कलावेतद्देशे चाकार्यकृद्द्विजे ।
स्यादन्यदेशकालादौ द्विजानामतिशायिनाम् ॥१८॥
शापानुग्रहसामर्थ्यमन्यद्वाध्यात्मगोचरम् ।
ब्रह्मसाधनमेतद्धि लिंगं केचित्प्रचक्षते ॥१९॥
संसाररक्तचेतस्का मोहाधतमसावृताः ।
पतन्त्युन्मार्गगर्तेषु प्रत्यग्निं शलभा यथा ॥२०॥
जातिधर्मं स्वयं किंचिद्विशेषं श्रुतिसंगमात् ।
असिद्धः शूद्रजातीनां प्रसिद्धो विप्रजातिषु ॥२१॥

दुर्वचन बोलने वाले का वचन भी सभी मनुष्यों के द्वारा किया जाता है। इसलिये शूद्र और ब्राह्मण में कोई भी किसी भी प्रकार का भेद नहीं रह जाता है। शाप देना या अनुग्रह करना यह शक्ति का भेद नहीं होता है जबकि मनुष्यों

मे चौर चार आदि क्षत्रिय दुर्जनो के द्वारा कुछ कह दिया जाता है ।।१५।१६।। अश्रम दु:ख के उदय का अपाप और अपने जीवो मे रक्षण करना इस काय मे शूद्र समर्थ नही होता है । उसी प्रकार से ब्राह्मण भी असमथ हुआ करता है । ।।१७।। इस कलिकाल के समय मे अकार्यों के करने वाले द्विज मे यह नही होता है । इसके अतिरिक्त देश और काल मे अतिशय शक्तिशाली द्विजो मे यह हो सकता है ।।१८।। शाप देना या अनुग्रह करना—इनकी सामर्थ्य अथवा अध्यात्म विषय का ज्ञान यह ब्रह्म साधन है और कुछ विद्वान् इसको ही इसका लिङ्ग कहा करते हैं ।।१६।। ससार मे ससक्त चित्त वाले और मोह के अन्धकार से घिरे हुए लोग अग्नि मे प्रति शलभो की भाँति उन्मार्ग के गर्तों म गिरा करते हैं ।।२०।। यह जाति का धर्म स्वय श्रुति के सङ्गम स एक कोई विशेष वस्तु हुआ करती है जाकि शूद्र जाति वालो को सिद्ध नही होता है और केवल विप्र जाति म ही प्रसिद्ध होता है ।।२१।।

सस्कारो योनिसाध्यो वा सामग्री प्रभवोऽथ वा ।
शूद्र स्योऽतिशय धत्ते य साधारणतागुणा ।।२२।।
विप्राणा पचधा भेद कल्पनीयस्तु पडितै ।
न जातिजन्ययोजो वा विशेषो युक्तिबाधवान् ।
क्रमाक्रमक्रिया सति न सनातनवस्तुन ।।२३।।
नित्यो न हेतुर्निगतान्यिरवात् हेतुर्भवेद्धेदविशेषत म ।
स तत्समस्तप्रतिसन्निधानात् कार्यत्वयशिरवमयुक्तमेन ।।२४।।
स्यात शरीरवृत्तिस्य श्रुतियोगाद्वदति य ।
सा [illegible] गम्यत ।।२५।।
विशिष्टाधीतिधर्मत्व तन्निभा न्यासगति ।
मस्यास्त्यतिशयस्य नान्यो नाश्रया यदि ।।२६।।
[illegible] ।
सर्वे [illegible] ।।२७।।
[illegible] ।
[illegible] ।।२८।।

यह संस्कार योनिमात्र्य होता है अथवा सामग्री से उत्पन्न होने वाला होता है जोकि साधारणता वा गुण शूद्र से कोई विशेष अतिशय धारण किया करता है ॥२२॥ विप्र का पाव प्रकार का भेद पण्डितों के द्वारा कल्पना करने के योग्य होता है। युक्तिया के बाधक होने से जाति से उत्पन्न तथा वेदमयी से प्रभूत हान वाला भेद कुछ भी विशपता नहीं रखता है। सनातन वस्तु की कोई भी क्रम और अक्रम की क्रिया नहीं होती है ॥२३॥ विगत क्रिया के होने के कारण से हेतु नित्य नहीं है। वेद विशेष से वह हेतु होता है। वह उनके प्रतिसन्निधान होने से उसी के तुल्य है और कानात्यपेक्षित्व अयुक्त ही होता है ॥२४॥ अपने अन्तःकरण और शरीर की वृत्ति में स्थित रहने वाला जो श्रुति के याग को पाकर उदित हुआ करता है वह अन्य वेद विज्ञात स्वभाव अयों के द्वारा नहीं जाना जाया करता है ॥२५॥ विशेषता से युक्त अध्ययन करने वाले के धन होने में ब्रह्म की सङ्गति कृत्रिम होती है। जिसको उसका अतिशय है उसको यदि अन्य आश्रय नहीं करता है ॥२६॥ क्या यह दृश्य स्वभाव ही अभीष्ट माना जाता है अथवा ब्राह्मण्य कोई अदृष्ट स्वरूप वाला रूप होता है ? सबके द्वारा तो दृश्य रूप की प्रतीति हुआ करती है। उसके सिवाय अन्य प्रकार से कोई गति ही नहीं होती है ॥२७॥ सामग्री के अभाव से भूदेव के शरीर में स्थित उस परम विशेष को जो अभूमिदेव अर्थात् अब्राह्मण हैं वे स्मरण किया करते हैं। इससे आत्मा में यथा तथा पुण्य पाप है यह सब कथन अयुक्त ही है ॥२८॥

सामग्र्यनुजनगुणे समग्रा शूद्रा यत सन्ति समा द्विजानाम् ।
तस्माद्विशेषो द्विजशूद्रनाम्नो नाध्यात्मिको वाह्यनिमित्तको वा ॥२९॥
संस्कारत सोऽतिशयो यदि
स्यात्सवस्य पुसोस्त्यतिसंस्कृतस्य ।
य संस्कृतो विप्रगणप्रधानो
व्यासादिकैस्तेन न तस्य साम्यम् ॥३०॥
हेतुत्व घटते नपा जात्यादीनामसभवात् ।
जातेरकृतवत्त्वाच्च अधीते न विशेषत ॥३१॥

सस्कारातिशयाभावादंतरस्यागते परें. ।
भौतिकत्वाच्छरीरत्य समस्तानामसहतै. ॥३२॥
किं चान्यनास्तिकम्लेच्छयवनादिजनेष्वलम् ।३३॥
वेदोदितबहिर्दुष्टचरितेषु दुरात्मसु ।
धर्मादतिशयो दृष्टः क्रूरसाहसिकादिषु ।
तस्माद्विप्रेषु जात्यादिसामग्रीप्रभवो न सः ॥३४॥
तस्मान्न च विभेदोस्ति न वहिर्नांतरात्मनि ।
न सुखादौ न चैश्वर्ये नाज्ञाया नाभयेष्वपि ॥३५॥

अनुष्ठान के गुणो द्वारा जो सामग्री है वह जिनमे सम्पूर्ण है वे शूद्र द्विजो के ही समान ही हैं । इस कारण से तो द्विज और शूद्र नाम का जो कुछ भी विशेष है वह आध्यात्मिक नही है अथवा बाह्य निमित्तिक भी नहीं है ॥२६॥ सस्कार से ही यदि वह अतिशय होता है तो सभी मनुष्यो को, जिनका कि अत्यधिक रूप से सस्कार किया गया है, हो जायगा । जो विप्रगण प्रधान संस्कृत है तो व्यासादिक के द्वारा उससे उसका साम्य नही होता है ॥३०॥ जात्यादि के असम्भव होने से इनका हेतुत्व नही घटता है और जाति के अकृतक होने से विशेषता से अध्ययन नही करता है ॥३१॥ सम्कारो के अतिशय के अभाव से दूसरो के द्वारा अन्तर के आगत होन पर असहनो से समस्तो के शरीर के भौतिक होने से क्या अन्य नास्तिक, म्लेच्छ और यवन जन आदि में समाप्त है ? ॥३२॥३३॥ वेद मे कहे हुए धर्मो से बाहिर दुष्ट चरित्र वाले दुरात्माओ मे और क्रूर साहसिक आदि मे धर्म से अतिशय देखा गया है । इससे विप्रो मे वह जात्यादि सामग्री से उत्पन्न नही है ॥३४॥ इससे कोई विभेद नही होता है । न वाहिर और न अन्तरात्मा मे कोई भेद है । सुखादि मे, ऐश्वर्य मे, आज्ञा मे और अभयो मे भी कोई विशेष भेद नही है ॥३५॥

न वीर्ये नाकृतौ नाद्ये न व्यापारे न चायुषि ।
नागे पुष्टे न दौर्बल्ये न स्थैर्ये नापि चापले ॥३६॥
न प्रज्ञाया न वैराग्ये न धर्मे न पराक्रमे ।
न त्रिवर्गे न नैपुण्ये न रूपादौ न भेषजे ॥३७॥

न स्त्रीगर्भेण गमने न देहमलमप्लवे ।
नास्थिरन्ध्रे न च प्रेम्णि न प्रमाणे न लोमसु ॥३८॥
शूद्रब्राह्मणयोर्भेदो मृग्यमाणोऽपि यत्नतः ।
नेक्ष्यते सर्वधर्मेषु सहतैस्त्रिदशैरपि ॥३९॥
उक्तमात्रा विसभूतिर्विचारक्रमकारिभिः ।
वृद्धवृन्दारकाधीशैरप्रधृष्यमिदं वचः ॥४०॥
न ब्राह्मणाश्चन्द्रमरीचिशुभ्रा न क्षत्रिया किंशुकपुष्पवर्णाः ।
न चेह वैश्या हरितालतुल्या शूद्रा न चाङ्गारसमानवर्णाः ॥४१॥
पादप्रचारैस्तनुवर्णकेशैः सुखेन दुःखेन च शोणितेन ।
त्वङ्मांसमेदोस्थिरसैः समानाश्चतुष्प्रभेदा हि कथं भवन्ति ॥४२॥

न वार्य मे न आकृति में न व्यापार मे न प्रक्ष मे, न आयु मे, न अङ्ग मे न पुष्ट म और न दुबलता मे तथा न स्थिरता म और न चपलता मे ही कोई विभेद होता है ॥३६॥ प्रज्ञा वैराग्य, धम, पराक्रम, त्रिवर्ग नैपुण्य, व्यापादि और भेषज म कुछ भेद ह ता है ॥३७॥ स्त्री के गभ से कोई भेद नही है, गमन मे, देह के मल, सप्लव म स्त्री रन्ध्र मे, प्रेम मे, प्रमाण मे और लोमो म मृग्यमाण भी शूद्र और ब्राह्मण का भेद बडे यत्न से सहत हुए देवो के द्वारा भी समस्त धर्मों म नही देखा जाता है ॥३८॥३९॥ विचार के क्रम को करने वालो के द्वारा उक्त मात्रा की विसम्भूति होती है । वृद्ध देवो के अधीशो के द्वारा यह वचन अप्रधृष्य होता है ॥४०॥ ब्राह्मण चन्द्रमा की किरणो के समान शुभ्र नही होते हैं और क्षत्रिय ढाक के पुष्प के तुल्य लाल वर्ण वाले नहीं है । इस ससार मे वैश्य हरिताल की भाति पीतवर्ण के नहो हैं और शूद्र अङ्गार के समान रग वाले नही हुआ करते हैं ॥४१॥ पादो के प्रचार शरीर का वर्ण, केश सुख और दुःख तथा रक्त त्वचा, मास, मेद और अस्थि के द्वारा ये चारो ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य और शूद्र समान ही होते हैं फिर ये चार प्रभेद कैसे होते हैं ? ॥४२॥

वर्णप्रमाणाकृतिगर्भवास, वाग्बुद्धिकर्मेन्द्रियजीवितेषु ।
बलत्रिवर्गामयभेषजेषु न विद्यते जातिकृतो विशेषः ॥४३॥

स एक एवात्र पति प्रजाना कथ पुनर्जातिकृत प्रभेद ।
प्रमाणदृष्टातनयप्रवादै परीक्ष्यमाणो विघटत्वमेति ।।४४।।
चत्वार एकस्य पितु सुताश्च नेषा सुताना खलु जातिरेका ।
एव प्रजाना हि पितैक एव पित्रैकभावान च जातिभेद ।।४५।।
फलान्यथोदु बरवृक्षजातेर्यथाग्रमध्यातभवानि यानि ।
वर्णाकृतिस्पर्शरसै समानि तथैकतो जातिरतिप्रचिन्त्या ।।४६।।
ये कौशिका काश्यपगौतमाश्च कौंडिन्यमाडव्यवशिष्ठगोत्रा ।
आत्रेयकौत्सागिरस सगर्गा मौद्गल्यकात्यायनभार्गवाश्च ।।४७।।
गोत्राणि नानाविधजातयश्च भ्रातृस्नुषामैथुनपुत्रभावा ।
वैवाहिक कर्म न वर्णभेदा सर्वाणि शिल्पानि भवति तेषाम् ।।४८।।

वर्ग, प्रमाण आकृति, गर्भवास, वाणी, बुद्धि, कर्म इन्द्रिय और जीवित मे तथा बल त्रिवर्ग, आमय भेषज मे इन चारो म जाति के द्वारा किया हुआ कोई विशेष नही होता है ।।४३।। यहाँ ससार मे समस्त प्रजाओ का वह एक ही स्वामी है फिर किस प्रकार से जाति के द्वारा किया गया यह प्रभेद होता है ? प्रमाण दृष्टान्त और नय के प्रवादो के द्वारा परीक्षा किया गया यह विघटत्व को प्राप्त होता है ।।४४।। एक ही पिता के चारो पुत्र होते हैं । उन पुत्रों की एक ही सबकी जाति हुआ करती है । इसी प्रकार से प्रजाओ का जब एक ही पिता होता है तो एक पिता होने के भाव से कोई भी जाति का भेद नहीं होता है ।।४५।। उदुम्बर (गूलर) आदि जाति वाले वृक्षों के फल आगे के भाग म, मध्य म और अन्त में होने वाले जो भी होते हैं वे सब वर्ण, आकृति स्पर्श और रस आदि से समान हुआ करते हैं उसी भाँति एक ही होने वालो की भिन्न जाति का होना भी अत्यन्त चिन्ता का विषय होता है ।।४६।। जो भी कौशिक हैं तथा काश्यप और गौतम है और कौण्डिन्य माण्डव्य और वशिष्ठ गोत्र वाले होते हैं तथा आत्रेय कौत्स, अङ्गिरस, गर्ग, मौद्गल्य, कात्यायन और भार्गव आदि गोत्र होते हैं तथा अनेक प्रकार की जातियाँ होती हैं ये सब भ्रातृ स्नुषा के मैथुन म पुत्र भाव वाले हैं । वैवाहिक कर्म और वर्ण भेद नहीं है उनके सब शिल्प होते हैं ।।४७।४८।।

ये चान्ये पंडिता प्राहुर्देहब्राह्मणता नरा ।
तेषा दुर्ं ष्टितिमिरमपनीयानुकम्प्य च ॥४६॥
न्यायाञ्जनौपधैर्दिव्यै परिणामसुखावहै ।
उपनीतं प्रयत्नन सुर्दष्टि संविदध्महे ॥५०॥
मूर्तिमत्त्वाच्च नाशित्व नाशित्वाच्छेपभूतवत् ।
देहाधारनिविष्टाना ब्राह्मण्य न प्रकल्प्यते ॥५१॥
एकैकोवयवस्तेषा न ब्राह्मण्य समश्नुते ।
न चानेकसमूहेपि सर्वथातिप्रसगत ॥५२॥
पृथिव्युदकवाय्वग्निपरिणामाविशेपत ।
देहत सर्वभूताना ब्राह्मणत्वप्रसगत ॥५३॥
देहस्य ब्राह्मणत्व यैरतत्त्वज्ञैं प्रकल्प्यते ।
सस्कर्तृंणा शरीरस्य तेपा न ब्रह्मता भवेत् ॥५४॥
मृग्यमाणे प्रयत्नेन देहे तन्नोपलभ्यते ।
तस्मान देहे ब्राह्मण्य नापि देहात्मक भवेत् ॥५५॥
वर्णापसदचाडालश्वादादीना प्रसज्यते ।
यदि देहस्य विप्रत्व भवद्भिरुपगम्यते ॥५६॥
दहशक्तिगुणा क्षीणं कायभस्मादिरूपवत् ।
तस्माद्देहात्मकेनैतद्ब्राह्मण्य नापि कर्मजम् ॥५७॥

और जो अन्य पण्डित मनुष्य देह से ब्राह्मणता कहते हैं उनकी इस दुर्दृष्टि के अन्धकार को हटा कर तथा अनुकम्पा करके परिणाम मे सुख देने वाली दिव्य न्यायाञ्जन की औषधियो के द्वारा प्रयत्न से उपनीत सुदृष्टि हम देते हैं ॥४६॥५०॥ मूर्त्तिमान् होने से नाश होने वाला धर्म होता है और विनाशशीलता होने से शेष भूतो की भाँति हैं। जो देह के आधार पर निविष्ट हैं उनका ब्राह्मण्य नही प्रकल्पित किया जाता है ॥५१॥ उनका एक-एक अवयव ब्राह्मण्य का उपभोग नही करता है और सर्वथा अति प्रसङ्ग से अनेको के समूह मे भी ब्राह्मण्य नही होता है ॥५२॥ पृथिवी जल, वायु अग्नि के परिणामो में कोई भी विशेषता का भाव न होने से समस्त प्राणियो का देह से

ब्राह्मणत्व का प्रसङ्ग होता है ॥५३॥ जो तत्त्वा के ज्ञान न रखने वाले देह को ब्राह्मणत्व की प्रकल्पना किया करते हैं उनकी शरीर के सस्कार करने वालो की ब्रह्मता नही होती है ॥५४॥ बडे प्रयत्न के द्वारा खूब खोज करने पर भी देह मे वह प्राप्त नही होना है । इससे देह मे ब्राह्मण्य नही होता है और न वह देहात्मक ही होती है ॥५५॥ यदि आप सब लोग इस देह का ही विप्रत्व मान लेते हैं तो फिर वर्णापसद चाण्डाल और श्वादादि को भी यह विप्रत्व हो जाया करेगा अर्थात् फिर तो ये सभी चाण्डालादि ब्राह्मण हो जायेंगे ॥५६॥ क्षीण होने वाले देह की शक्ति के गुणा के द्वारा काम के भस्म आदि रूप की भाँति हैं । इस कारण से देहात्मक से यह ब्राह्मण्य नही होता है और न कर्मों से उत्पन्न होने वाला ब्राह्मण्य हुआ करता है ॥५७॥



॥ सप्तमी कल्प व्रत ॥

सप्तम्या सोपवासस्तु रात्रौ भुञ्जीत यो नर ।
कृतोपवास षष्ठ्या तु पञ्चम्यामेकभक्तभुक् ॥१॥
दत्त्वा सुसस्कृत शाक भक्ष्यभोज्यै समन्वितम् ।
दद्याद् ब्राह्मणेभ्यश्च रात्रौ भुञ्जीत वाग्यत ॥२॥
यावज्जीव नर कश्चिद्व्रतमेतच्चरेदिति ।
तस्य श्रीर्विजयश्चैव त्रिवर्गश्चापि वर्धते ॥३॥
मृतश्च स्वर्गमायाति विमानवरमास्थित ।
सूर्यलोके स रमते मन्वन्तरगणान्बहून् ।
इह चागत्य कालाते नृप शान्तिसमन्वित ॥४॥
पुत्रपौत्रै परिवृतो दाता स्यान्नृपतिश्चिरम् ।
भुनक्ति हि धरा राजन्निग्रहैश्चाजित पर ॥५॥
ये नरा राजशार्दूल शाकाहारेण सप्तमीम् ।
उपोष्य नक्त रात्रौ वै पूजयन्ति च भास्करम् ॥६॥

गुरुणा तव पूर्वेण शाकाहारेण सप्तमीम् ।
धर्मक्षेत्र कुरुक्षेत्र कृत तस्य विवस्वता ॥७॥

इस अध्याय मे सप्तमी कल्प के व्रतीय वासादि का निरूपण किया जाता है । सप्तमी तिथि मे जो मनुष्य उपवास करके रात्रि मे भोजन किया करता है और पहिले पचमी तिथि म एक ही समय मे खाकर फिर षष्ठी तिथि का उपवास किया करता है ॥१॥ भक्ष्य और भोज्यो से युक्त भली-भांति सत्कार किया हुआ शाक ब्राह्मणो को और देवो को समर्पित करके रात्रि मे मौन होकर खाता है और यह व्रत जब तक वह जीवित रहे बराबर किया करता है उस मनुष्य की श्रीविजय और त्रिवर्ग बढाते हैं ॥२॥३॥ वह व्यक्ति मृत होकर एक श्रेष्ठ विमान पर चढा हुआ स्वर्गलोक को चला जाता है और फिर वह बहुत से मन्वन्तरो तक सूर्यलोक में रमण किया करता है और जब यहाँ भूमण्डल म आता है तो कालान्त मे शान्ति से समन्वित नृप होता है ॥४॥ पुत्र और पौत्रो से परिवृत होकर वह नृपति चिरकालपयन्त दानशील रहा करता है । हे राजन् ! वह दूसरे शत्रुओ से अजित होकर बहुत समय तक इस पृथ्वी के सुखो का पूर्ण उपभोग किया करता है ॥५॥ हे राजशार्दूल ! जो मनुष्य शाकाहार के द्वारा सप्तमी तिथि का उपवास करते हैं उन्होने पित्र्य तीर्थ, जो कि राजसज्ञा वाला है, प्राप्त कर लिया है ॥६॥ तुम्हारे पूव कुरु ने शाकाहार से इस सप्तमी का व्रत करके उसकी विवस्वता से कुरुक्षेत्र को धर्म का क्षेत्र कर दिया है ॥७॥

सप्तमी नवमी षष्ठी तृतीया पञ्चमी नृप ।
कामदास्तिथयो ह्येता इहैव नरयोषिताम् ॥८॥
सप्तमी माघमासे तु नवम्याश्वयुजेमता ।
षष्ठीभाद्रपदे धन्या वैशाखे तु तृतीयिका ॥९॥
पुण्या भाद्रपदे प्रोक्ता पञ्चमी नागपञ्चमी ।
इत्येतास्तेषु मासेषु विशेषास्तिथय स्मृता ॥१०॥
शाक सुसस्कृत कृत्वा यश्च भक्त्या समन्वित ।
दत्त्वा विप्रे यथाशक्त्या पश्चाद्भुक्ते निशि व्रती ॥११॥

कार्तिके शुक्लपक्षस्य ग्राह्येय कुरुनदन ।
चतुर्भिर्वापि मासैस्तु पारण प्रथम स्मृतम् ॥१२॥
अगस्त्यकुसुमैश्चात्र पूजा कार्या विभावसो ।
विलेपन कु कुम तु धूपश्चैवापराजितं ॥१३॥
स्नान च पञ्चगव्येन तमेव प्राशयेत्तत ।
नैवेद्य पायस चात्र देवदेवस्य कीर्तितम् ॥१४॥

हे नृप ! सप्तमी नवमी षष्ठी तृतीया और पचमी ये तिथियाँ कामनाओ के प्रदान करने वाली होती है और इस भूमण्डल म ही ये तिथियाँ पुरुष तथा स्त्रियो की मनोकामना पूर्ण कर देती हैं ॥८॥ अब उक्त तिथियो मे विभिन्न मासो मे कुछ विशेषतायें होती हैं यह बताते हुए कहते हैं—'माघ मास की सप्तमी, आश्विन मास की नवमी भाद्रपद की षष्ठी, वैशाख मास की तृतीया तथा भाद्रपद मे ही नागपञ्चमी एक परम पुण्या पचमी कही गई है। इस तरह से ये उपयुक्त मासो की उक्त विशेष तिथियाँ बताई गई हैं ॥६॥१०॥ जो व्यक्ति शाक को भली भाँति सस्कार युक्त करके परम भक्ति से युक्त होकर पहिले यथाशक्ति ब्राह्मण को देकर पश्चात रात्रि मे व्रती भोजन करता है वह उसके पुण्य का लाभ प्राप्त करता है ॥११॥ कार्तिक मे हे कुरुनन्दन ! यह तिथि शुक्ल पक्ष की ग्रहण करनी चाहिये । चारो मासो म पारण प्रथम कहा गया है।१२॥ इसम अगस्त्य के पुष्पो से विभावसु की पूजा करनी चाहिये । कुङ्कुम का विलेपन और अपराजित धूप के द्वारा आघ्रापन करे ॥१३॥ पञ्चगव्य से स्नान कराने और उसी को फिर प्रदान करे । देवो के देव का नैवेद्य यहाँ पर पायस कहा गया है ॥१४॥

तदेव देय विप्राणा शाक भक्ष्यमथात्मना ।
शुभशाकसमायुक्त भक्ष्यपेयसमन्वितम् ॥१५॥
द्वितीये पारणे राजन्सुभगन्धानि यानि वै ।
पुष्पाणि तानि देवस्य तथा श्वेत च चन्दनम् ॥१६॥
अगुरुश्चापि धूपोऽत्र नैवेद्य गुडपूपका ।
स्नान कुशोदकेनात्र प्राशन गोमयस्य तु ॥१७॥

तृतीये करवीराणि तथा रक्तं च चन्दनम् ।
धूपाना गुग्गुलश्चात्र प्रियो देवस्य सर्वदा ॥१८॥
इत्येषा सप्तमी पुण्या शाकाह्वा गोपते सदा ।
यामुपोष्य नरो भक्तया भाग्यवांश्च प्रजायते ॥१९॥

वही शाक ब्राह्मणों को देना चाहिये जिसे पीछे आपको खाना है । शुभ शाक से समायुक्त भक्ष्य और पेय भी उसमे होना चाहिये ॥१५॥ हे राजन् ! द्वितीय पारण मे जो भी शुभ गन्ध हो उन्हे भी देवें अर्थात् सुन्दर गन्ध वाले पुष्पों को देव को समर्पित करना चाहिये । चन्दन श्वेत होना चाहिये ॥१६॥ यहाँ पर अगुरु का धूप है और गुड के बने हुये पूआ नैवेद्य होते हैं । यहाँ पर कुशोदक से स्नान करावे और गोमय का प्राशन है ॥१७॥ तृतीय पारण मे करवीर के पुष्प होते हैं और चन्दन रक्त होता है । धूप के स्थान मे गूगल होता है जो कि देव को सर्वदा प्रिय होता है । १८॥ यह सप्तमी परम पुण्या तिथि है जो कि गोपति की सदा शाक नाम वाली होती है । जिस तिथि का मनुष्य भक्ति पूर्वक व्रतोपवास करके अत्यन्त भाग्यवान् हो जाता है ॥१९॥



॥ सप्तमीकल्पवर्णने कृष्णसांवसंवादः ॥

विस्तराद्वद विप्रेंद्र सप्तमीकल्पमुत्तमम् ।
महाभाग्य च देवस्य भास्करस्य महात्मन ॥१॥
अत्रैवाहुर्महात्मान सवाद पुण्यमुत्तमम् ।
कृष्णेन सह सत्त्वेन स्वपुत्रेण महीपते ॥२॥
भक्त्या प्रणम्य विधिवद्वासुदेव जगद्गुरुम् ।
इहामुत्र हितं साव पप्रच्छ ज्ञानमुत्तमम् ॥३॥
जातो जतु वद दुर्गैर्जन्मनीह न बाध्यते ।
प्राप्नोति विविधान्कामान्वद च मधुसूदन ॥४॥
परत्र स्वर्गमाप्नोति सुखानि विविधानि च ।
अनुभूयोचित यान वद मुक्तिमवाप्नुते ॥५॥

दृष्ट्वैव मम निर्वेदो जातो व्याधिर्जनार्दन ।
दृष्ट्वेम जीविताशापि रोचते न हि मे क्षणम् ॥६॥
किं त्वेवमकृतार्थोऽस्मि यन्मे प्राणा न यान्ति हि ।
ससारे न पतिष्यामि जराव्याधिसमन्विते ॥७॥
येनोपायेन तन्मेऽद्य प्रसाद कुरु सुव्रत ।
आधिव्याधिविनिर्मुक्तो यथाहं स्यां तथा वद ॥८॥

इस अध्याय में सप्तमी कल्प के वर्णन में कृष्ण और साम्ब का संवाद, रुद्र और ब्रह्मा का सम्वाद तथा आदित्य के माहात्म्य का वर्णन किया जाता है। राजा शतानीक ने कहा—हे विप्रेन्द्र ! आप इस परमश्रेष्ठ सप्तमी कल्प को विस्तार के साथ बतलाइये और महात्मा भास्कर देव के महाभाग्य का भी वर्णन कीजियेगा ॥१॥ सुमन्तु महर्षि ने कहा—इस विषय में महात्मा लोग एक परमुत्तम सम्वाद कहा करते हैं। हे महीपते ! जो सम्वाद अपने पुत्र साम्ब के साथ कृष्ण से हुआ था ॥२॥ यहाँ एक बार साम्ब ने जगत् के गुरु वासुदेव को विधि के सहित भक्तिपूर्वक प्रणाम करके इस लोक और परलोक का उत्तम ज्ञान पूछा था ॥३॥ हे मधुसूदन ! इस संसार में उत्पन्न होने वाला जन्तु किस तरह दुःखों से इस जन्म में बाधित नहीं होता है और कौन सी रीति है जिससे यह प्राणी अनेक कामनाओं की प्राप्ति करता है ॥४॥ और किस प्रकार से यह परलोक में स्वर्ग का निवास किया करता है तथा विविध प्रकार के गुणों

देवताया प्रसादोऽन्य सर्वस्य परमो मत ।
उपाय शाश्वतो नित्य इति मे निश्चिता मति ॥६॥
अनुमानागमाद्यैश्च सम्यगुत्पादितामया ।
कदाचिदन्यथा कर्तुं धीयते केनचित्क्वचित् ॥१०॥
प्रसादो जायते तस्य सम्यगाराधनक्रिया ।
यदा ता च समुद्दिश्य कृता तद्वेदिना तथा ॥११॥
विशिष्टा देवता सम्यग्विशिष्टेनैव देहिना ।
आराधिता विशिष्ट च ददाति फलमीहितम् ॥१२॥
अस्तित्वे न च सदेह केपाचिद्देवता प्रति ।
नास्तीति निश्चयोऽन्येपा विशिष्टास्त्व कथा कुरु ॥१३॥

[भगवान् वासुदेव ने कहा—देवता का अन्य प्रसाद सबके लिये परम श्रेष्ठ माना गया है और यही एक शाश्वत एव नित्य उपाय होता है—यही मेरी निश्चित मति है ॥६॥ अनुमान और आगम आदि के द्वारा मैंने यह बुद्धि भली-भाँति उत्पन्न की है। किसी के भी द्वारा कभी भी और कहीं भी इसे अन्यथा धारण किया जा सकता है ॥१०॥ उस देवता के सम्यक् प्रकार से आराधना की क्रिया से उसका प्रसाद हो जाता है। जिस समय उसके ज्ञाता के द्वारा उस देवता का उद्देश्य करके वह क्रिया उसी तरह की जाया करती है ॥११॥ एक विशिष्ट देवता विशेषता स युक्त देहधारी के द्वारा भली-भाँति जब आराधित होता है तो वह विशिष्ट ही अभिष्ट फल दिया करता है ॥१२॥ साम्ब ने कहा—कुछ लोगो का तो देवता के प्रति उनके अस्तित्व म कुछ भी सन्देह नहीं होता है और अन्य लोगा का यह निश्चय होता है कि कोई देवता है ही नहीं। आप इस सम्बन्ध म विशिष्ट कथा कहिये ॥१३॥

सिद्ध तु देवतास्तित्वमागमेपु बहुष्वय ।
प्रमाणमागमो यस्य तस्यास्तित्व च विद्यते ॥१४॥
अनुमानेन चाप्यद्य तदस्तित्व प्रसाध्यते ।
प्रमाणमस्ति यस्येद सिद्धा यस्येह चास्तिता ॥१५॥

प्रत्यक्षेणापि चास्तित्व देवताया प्रसाध्यते ।
तत्रावश्य प्रमाण च दृष्ट सर्वशरीरिणाम् ॥१६॥
यदि नामा विविक्तास्तु तिर्यग्योनिगता अपि ।
नोत्पद्यते तथा ह्यस्तिव्यवहारो यथा स्थित ॥१७॥
प्रत्येक्षेणोपलभ्यते सम्यग्वै यदि देवता ।
अनुमानागमाभ्या च तदर्थं न प्रयोजनम् ॥१८॥
प्रत्यक्षेणोपलभ्यते न सर्वा देवता क्वचित् ।
अनुमानागमगम्या सति चान्या सहस्रश ॥१९॥
या चाक्षगोचरा काचिद्विशिष्टेफलप्रदा ।
तामेवादौ ममाचक्ष्व यथायिव्यस्यधापराम् ॥२०॥

भगवान वासुदेव ने कहा—बहुत से आगमो मे देवताओ के अस्तित्व की सिद्धि हो गई है जिसका प्रमाण आगम होता हैं उसका अस्तित्व तो प्रत्यक्ष ही होता है ॥१४॥ अनुमान के द्वारा भी उसका अस्तित्व सिद्ध किया जाया करता है । जिसका यह अनुमान भी प्रमाण होता है उसकी भी यहाँ पर आस्तिता सिद्ध होती है ॥१५॥ प्रत्यक्ष प्रमाण के द्वारा भी देवता के अस्तित्व को प्रमाणित किया जाता है । जो समस्त शरीरधारियो का देखा हुआ है वह अवश्य ही प्रमाण है ॥१६॥ यदि नाम वाला विविक्त है और तिर्यग्योनिगत भी है तो जिस प्रकार से अस्ति-व्यवहार स्थित है उस प्रकार से उत्पन्न नहीं होता है ॥१७॥ साम्ब ने कहा—यदि देवता प्रत्यक्ष प्रमाण के द्वारा ही ठीक ठीक उपलब्ध हो जाते हैं तो उसके अस्तित्व के सार के लिए अनुमान, प्रमाण और आगमों का कोई भी प्रयोजन ही नहीं रह जाता है ॥१८॥ वासुदेव ने कहा—

प्रत्यक्ष देवता सूर्यो जगच्चक्षुर्दिवाकर ।
तस्मादभ्यधिका काचिद्देवता नास्ति शाश्वती ॥२१॥
यस्मादिद जगज्जात लय यास्यति यत्र च ।
कृतादिलक्षण. काल स्मृत. साक्षाद्दिवाकर ॥२२॥
ग्रहनक्षत्रयोगाश्च राशय करणानि च ।
अदित्यावसवो रुद्रा अश्विनौ वायवोऽनल ॥२३॥
शक्र प्रजापति. सर्वे भूर्भुव स्वस्तथैव च ।
लोका. सर्वे नगा नागा सरित. सागरास्तथा ।
भूतग्रामस्य सर्वस्य स्वय हेतुर्दिवाकर ॥२४॥
अस्येच्छया जगत्सर्वमुत्पन्न सचराचरम् ।
स्थित प्रवर्तते चैव स्वार्थे चानुप्रवर्तते ॥२५॥
प्रसादादस्य लोकोऽय चेष्टमान प्रदृश्यते ।
अस्मिन्नभ्युदिते सर्वमुदेदस्तमिते सति ।
अस्त यातीत्यदृष्येन किमेतत्कथ्यते मया ॥२६॥
तस्मादत पर नास्ति न भूत न भविष्यति ।
यो वै वेदेषु सर्वेषु परमात्मेति गीयते ॥२७॥
इतिहासपुराणेषु अतरात्मेति गीयते ।
बाह्यात्मेतिसुषुम्णास्य स्वप्नस्थो जाग्रत स्थित ॥२८॥

भगवान् श्री वासुदेव ने कहा—प्रत्यक्ष देवता तो भगवान् सूर्य हैं जो इस समस्त जगत् के नेत्र हैं और दिन के सृजन करने वाले होते हैं। इनसे भी अधिक निरन्तर रहने वाला कोई भी देवता नहीं है ॥२१॥ जिससे यह जगत् उत्पन्न हुआ है और जिसमें यह जगत् अन्त समय में लय को प्राप्त होता है। कृत आदि लक्षण वाला यह काल भी साक्षात् दिवाकर ही कहा गया है ॥२२॥ जितने भी ग्रह, नक्षत्र, योग हैं तथा राशियाँ, करण आदित्यावसव, रुद्र, अश्विनी कुमार, वायु, अग्नि शक्र, प्रजापति, समस्त भूर्भुव स्व, लोक, समस्त नग, नाग, नदियाँ समुद्र और समस्त भूतों का समुदाय इन सबों का हेतु स्वयं एक दिवाकर ही हैं।

हैं॥२३॥२४॥ इसी की इच्छा से यह सम्पूर्ण जगत् जो चर और अचर युक्त है, उत्पन्न हुआ है। इसी की इच्छा की यह जगत् स्थित रहता है और अपने अर्थ मे प्रवृत्त भी इसकी इच्छा से हुआ करता है॥२५॥ इसके प्रसाद ही यह लोक चेष्टाशील होता हुआ दिखलाई दिया करता है। इसके उदय हो पर सभी का उदय होता है और इसके अस्त हो जाने पर सब अस्तङ्गत जाया करते हैं क्योकि जब यह अदृश्य होते हैं तो फिर कुछ भी यहाँ न सूझा करता है। यह मेरे द्वारा क्या कहा जावे। तात्पर्य यह है कि यह प्रत्य से सिद्ध ही है। इस कारण से इससे अधिक कोई नही हैं, न हुआ और भविष्य मे भी कोई होगा। जो कि समस्त वेदो मे 'परमात्मा'—इस नाम पुकारा जाता है ॥२६॥२७॥ इतिहास और पुराणो मे इसे 'अन्तरात्मा'—इ नाम से गाया जाता है। यह बाह्य आत्मा, सुषुम्ना स्थ, स्वप्नस्थ और जाग्र स्थित होकर जाता है॥२८॥

अस्तं यातीत्यदृष्टेन किमेतत्कथ्यते मया।
तस्मादतः परं नास्ति न भूत न भविष्यति ॥२९॥
यश्च वाह इति ख्यातः प्रेरकः सर्वदेहिनाम्।
नानेन रहित किंचिद्भूतमस्ति चराचरम् ॥३०॥
यो वेदैर्वेदविद्भिश्च विस्तरेणेह शक्यते।
वक्तुं वर्णगतैर्नासौ शक्यः सक्षेपतो मया ॥३१॥
तस्माद्गुणाकरः ख्यात. सर्वत्राय दिवाकरः।
सर्वेश. सर्वकर्तायं सर्वभर्तायमव्ययः ॥३२॥
जाता मत्स्यादयः सम्यग्गतिमन्तो महेश्वरात्।
मंडलव्यतिरिक्तं च जानामि परमार्थतः ॥३३॥
तथास्य मंडलं कृत्वा यो ह्येनमुपतिष्ठते।
प्रातः साय च मध्याह्ने स याति परमा गतिम् ॥३४॥
किं पुनर्मंडलस्थ यो जपते परमार्थतः।
विविधाः सिद्धयस्तस्य भवति न तदद्भुतम् ॥३५॥

जब यह प्रदृष्ट होता है तो वह अस्ताचल को चला जाया करता है। में मेरे द्वारा क्या कहा जावे। इससे यह सिद्ध है कि इससे परे कोई देवता ों है - न हुआ ही है और न आगे कभी भविष्य में होगा ॥२९॥ जहाँ पर र्-दस नाम से ख्यात है और जो समस्त देहधारियों को प्रेरणा देने वाला ता है। इससे रहित कुछ भी नहीं है। यह समस्त चराचर में रहने वाला ॥३०॥ यह ऐसा है कि समस्त वेदों के द्वारा और वेद के महा मनीषियों के रा यहाँ विस्तार पूर्वक सौ वर्ष में भी कहा नहीं जा सकता है। और मेरे रा तो यह संक्षेप में भी नहीं कहा जा सकता है ॥३१॥ इस कारण से यह नियाकर देव सर्वत्र गुणाकर नाम से ख्यात होते हैं। यह सबके ईश, सबके रने वाले, सबके भरण करने वाले और अव्यय हैं ॥३२॥ मत्स्य आदि सब महेश्वर से भली भाँति मनि वाले उत्पन्न हुए थे और मंडल व्यतिरिक्त मैं पर- मार्थ में नहीं जानता हूं। सो इसका मंडल करके जो कोई इसका उपस्थान किया करता है और इसकी उपासना प्रातःकाल-मध्याह्न काल और सायं काल में जो भी कोई करता है वह परम गति को प्राप्त हो जाता है ॥३३॥३४॥ जो इसको मण्डल में स्थित रहने वाले को परमार्थ से जप किया करता है उसका तो कहना ही क्या है। उसे विविध प्रकार की सिद्धियाँ हो जाया करती हैं और यह कोई अद्भुत बात नहीं है ॥३५॥

मंडले च स्थितं देवं देहे चैनं व्यवस्थितम्।
स्वगृह्यं वसमूढो य पश्यति स पश्यति ॥३६॥
ध्यायेत्रैव पूजयेद्यस्तु जपेद्यो जुहुयाद्य यः।
स सर्वान्प्राप्नुयात्कामान्गच्छेद्धर्मध्वज तथा ॥३७॥
तस्मात्त्वमिह दुःखानामतं कर्तुं यदीच्छसि।
इहामुत्र च भोगाना भुक्तिं मुक्तिं च शाश्वतीम् ॥३८॥
आराधयार्कमर्कस्थो मन्त्रैरिह तदात्मनि।
अगेहे तु वृते चैव स्थाने शास्त्रेण शोधिते ॥३९॥
सवचेन च सगुप्ते सर्वतोऽस्त्रेण रक्षिते।
एव प्राप्स्यसि यत्नेन सर्वदा फलमीप्सितम् ॥४०॥

दु.खमाध्यात्मिकं नेह तथा चैवाधिभौतिकम् ।
आधिदैविकमत्युग्र न भविष्यति ते सदा ॥४१॥
न भय विद्यते तेषा प्रपन्ना ये दिवाकरम् ।
इहामुत्र सुखं तेषामच्छिद्रं जायते सुखम् ॥४२॥
सूर्यप्रोक्त मयोद्दिष्टं साक्षाद्यज्ज्ञानमुत्तमम् ।
आराधितेन विधिवत्कालेन बहुना तथा ॥४३॥
प्राप्यते परम सथत्र यत्र धर्मध्वज. स्थित ।
एतत्सक्षिप्तमुद्दिष्ट क्षिप्रसिद्धिकरं परम् ।
यथा नान्यदतोऽस्तीति स्वय सूर्येण भाषितम् ॥४४॥
उपायोय समाख्यातस्तव सक्षेपतस्त्विह ।
यस्मात्परतरो नास्ति हितोपाय. शरीरिणाम् ॥४५॥

मण्डल मे स्थित इस देव को और इसको अपने देह मे व्यवस्थित इस प्रकार से अपनी बुद्धि से जो विद्वान देखा करता है वही वस्तुत देखता है ॥३६॥ इस प्रकार से अच्छी तरह ध्यान करके जो पूजा किया करता है, जाप किया करता है और जो हवन करता है वह मनुष्य समस्त अभीष्ट कामनाओं की प्राप्ति किया करता है और वह धर्म ध्वज को उस प्रकार से चला जाता है ।३ ॥ इस कारण से तुम यदि अपने दु खो का अन्त करना चाहते हो और इस लोक मे सुखो का उपभोग करने की इच्छा रखते हो तथा परलोक मे शाश्वती मुक्ति अर्थात् ससार के जन्म-मरण के आवागमन से छुटकारा चाहते हो तो धर्म मे स्थित होकर अर्क अर्थात् सूर्य की आराधना करो । यहाँ मन्त्रो के द्वारा तदा-त्मायें अङ्गो से व्रत करो । स्थान के वृत होने पर और शास्त्र के द्वारा शोधित हो जाने पर एव कवच के द्वारा सरक्षित करने पर और सब ओर से अस्त्र के द्वारा रक्षित होने पर आराधन करने से इस प्रकार से सर्वदा यत्न पूर्वक करने पर जो भी कोई अभीष्टफल होगा उसे अवश्य ही प्राप्त कर लोगे ॥.८॥३६॥ ४०॥ इस प्रकार की आराधना से तुमको आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधि-भौतिक दु ख सर्वदा अत्युग्र रूप मे नही होगा ॥४१॥ जो पुरुष भगवान् दिवा-

कर की शरण में प्राप्त हो गये हैं उनको कोई भी भय नहीं होता है। उन सूर्यदेव के उपासक भक्तों को इस लोक में और परलोक में दोनों जगह छिद्र रहित सुख हुआ करता है ॥४२॥ भगवान् सूर्यदेव ने यह उत्तम ज्ञान मुझे साक्षात् रूप से बतलाया था विधि के साथ बहुत काल पर्यन्त इस तरह आराधना करने से उस परम स्थान का मानव प्राप्त किया करता है जहां वि षमध्वज स्थित है। इस प्रकार से मैंने तुमको यह शीघ्र ही परम सिद्धि करने वाला विधान समेप में बतला दिया है। क्योंकि इस प्रकार का अन्य कोई भी विधान नहीं है—ऐसा भगवान् सूर्यदेव ने स्वयं मुझे बताया था ॥४३॥४४॥ इस संसार में यह उपाय मैंने अत्यन्त संक्षेप में तुमको बतला दिया है। शरीरधारियों के लिए इससे परतर अन्य कोई भी हित प्रदान करने वाला उपाय नहीं है ॥४५॥



॥ आदित्यस्य नित्याराधनविधि वर्णन ॥

अथार्चनविधिं वक्ष्ये धर्मकेतोरनुत्तमम् ।
सर्वकामप्रदं पुण्यं विघ्नघ्नं दुरितापहम् ॥१॥
सूर्यमन्त्रैः पुरः स्नातो यजेदेनैव भास्करम् ।
यतस्ततः प्रवक्ष्यामि स्नानमादौ समासतः ॥२॥
आचातस्तमुपालभ्य मुद्रया शुचिशुद्धया ।
कृत्वा नीराजनं पुत्र संशोध्य च जलं ततः ॥३॥
स्नानाद्धृदयपूतेन मन्त्रेण मत्कुलोद्वह ।
उत्थायाचम्य तेनैव वाससी परिधाय च ॥४॥
द्विराचम्याथ संप्रोक्ष्य तनुं सप्ताक्षरेण च ।
उत्थायाचम्य तेनैव रवेः कृत्वार्घ्यमेव च ॥५॥
दत्वा तेन जपं वा तं स्वकं ध्यात्वार्कवद्धृदि ।
गत्वा चायतनं शुभ्रमार्कमार्गी तनुं यजेत् ॥६॥
पूरकं कुम्भकं कृत्वा रेचकं च समाहितः ।
कृत्वाकारेण दोषास्तु ह्यात्मायादिमभवान् ॥७॥

इस अध्याय मे आदित्य के नित्य आराधन करने की विधि का वर्णन और सूर्य के माहात्म्य का वर्णन किया जाता है । भगवान् वासुदेव ने कहा — इसके अनन्तर अब हम धर्मकेतु के उत्तम अर्चना की विधि को बतलाते हैं । जो कि विधान सम्पूर्ण कामनाओ को प्रदान करने वाला, पुण्य, विघ्नो के हनन करने वाला और पापो के अपहरण करने वाला होता है ॥१॥ सबसे पहले सूर्य के मन्त्रो के द्वारा स्नान करके फिर उससे ही भास्कर का यजन करना चाहिये । आदि मे सक्षेप से जहाँ तहाँ से स्नान के विषय मे बतलाया जाता है ॥२॥ आचान्त होकर शुचि शुद्ध मुद्रा से उसको उपालब्ध करके, हे पुत्र ! नीराजन करे । इसके पश्चात् जल का संशोधन करे । हे कुरुकुलोद्वह ! स्नान से हृदय पूत मन्त्र से उठकर आचमन करे और उसी के वस्त्रो का परिधान करना चाहिये ॥३॥४॥ दो बार आचमन करके सम्प्रोक्षण करे और सात अक्षर वाले मन्त्र से शरीर का सम्प्रोक्षण करना चाहिए । फिर उठकर तथा आचमन करके उसी मन्त्र से रवि के लिए अर्घ्य देवे ॥५॥ अर्घ्य देकर उसका जप करे और अर्क वाले हृदय मे अपने आपको उसका ध्यान करे और शुभ्र आर्क आयतन मे पहुँच कर आर्कीतनु का यजन करना चाहिये ॥६॥ फिर अति समाहित होकर पूरक, कुम्भक और रेचक ये तीनो प्राणायाम की क्रियायें करे । इसे करके फिर ओङ्कार से कायादि मे होने वाले समस्त दोषो का हनन करना चाहिए ॥७॥

वायव्याग्नेयमाहेन्द्रवारुणीभिर्यथाक्रमम् ।
किल्विषं वारुणाद्भिश्च हन्यात्सिद्धयर्थमात्मनः ॥८॥
शोषण दहनं स्तभं प्लावन च यथाक्रमात् ।
वाय्वग्नीद्रजनाख्याभिर्धारणाभिः कृते सति ॥९॥
ध्यात्वा विशुद्धमात्मानं प्रणमेदर्कमास्थितम् ।
देहं तेनैव सञ्चिन्त्य पञ्चभूतमयं परम् ॥१०॥
सूक्ष्मं स्थूलं तथाक्षाणि स्वस्थानेषु प्रकल्प्य च ।
विन्यस्यांगानि खादीनि हृदाद्यानि हृदादिषु ॥११॥
खस्वाहा हृदयं भानोः खमर्काय शिरस्तथा ।
उल्का स्वाहा शिखार्कस्य यं च हुं कवचं परम् ।

खा फडस्त्र च सहारश्चादित्त प्रणव कृत ॥१२॥
स पूर्वे प्रणवस्याथो मत्रकर्मप्रसिद्धये ।
एभिर्जल त्रिधा जप्त्वा स्नानद्रव्याणि तेन च ॥१३॥
सप्रोक्ष्य पूजयेत्सूर्यं गधपुष्पादिभि शुभ ।
ततो मूर्तिषु सर्वासु रात्रावग्नौ प्रपूजयेत् ॥१४॥

इसके पश्चात् आत्मा की सिद्धि के लिए वायव्यप्राग्नेय, माहेन्द्र और वारुणी दिशाओं मे यथाक्रम वारुण जल से अपने किल्विष का नाश करे ॥८॥ वायु, अग्नि, इन्द्र और जल नाम वाली धारणाओं के द्वारा यथाक्रम शोषण, दहन, स्तम्भन और प्लावन करने पर विशुद्ध आत्मा का ध्यान करके समास्थित भगवान् अर्क को प्रणाम करना चाहिए और उसके द्वारा ही पञ्चभूतमय इस पर देह का सचिन्तन करे ॥९॥१०॥ सूक्ष्म तथा स्थूल को एव अङ्गो को अपने स्थानों पर प्रकल्पित करके हृदय आदि मे खादि और हृदादि अङ्गो का विन्यास करना चाहिये ॥११॥ भानु के हृदय को 'खस्वाहा' ऐसा न्यास करे, अर्काय शिर खम् अकस्य शिखा उल्का स्वाहा, यै हु कवचम् खं फट अस्त्रम्—इस तरह सहार करे और आदि मे प्रणव को करे ॥१२॥ प्रणव के पूर्व मे उसे करे। इसके अनन्तर मन्त्र कर्म की सिद्धि के लिए इनसे तीन बार जल को जप करके और उस मन्त्र से स्नान के द्रव्यों का सम्प्रोक्षण करके शुभ गन्धाक्षता पुष्प आदि के द्वारा सूर्य का पूजन करना चाहिये। इसके पश्चात् समस्त मूर्तियों का रात्रि मे अग्नि मे पूजन करना चाहिए ॥१३॥१४॥

प्राक्पश्चिमोदगभ्यग्रा प्रात साय निशासु वै ।
सप्ताक्षरेण सन्मत्र ध्यात्वा च पद्मकर्णिकाम् ॥१५॥
आदित्यमडलान्तस्थ तत्र देह प्रकल्पयेत् ।
प्रभामडलमध्यस्थ ध्यात्वा देह यथा पुरा ।
सवलक्षणसपूर्ण सहस्रकिरणोज्ज्वलम् ॥१६॥
रक्तगधैश्च पुष्पैश्च चरुभिर्बलिभिस्तथा ।
रक्तचदनमिश्रैर्वा वस्त्रैरावरणै शुभै ॥१७॥

आवाहनादिकर्माणि रक्षा तु हृदयेन च ॥
तच्चित्तश्च सदा कुर्याज्ज्ञात्वा कर्मक्रम बुध ॥१८॥
कृत्वा चावाहन मन्त्रैरेकन स्थापन तत ।
यावद्यागावसान तु सान्निध्य तत्र कल्प्य च ॥१९॥
दत्त्वा पाद्यादिका पूजा शक्त्या वार्घ्यं निवेद्य च ।
जपित्वा विधिवद्ध्यात्वा ततो देवी विसर्जयेत् ॥२०॥
एप कर्म क्रम प्रोक्त सर्वेपा यजनक्रमात् ।
प्रवक्ष्यामि जपस्थान पर्वशावरणे तथा ॥२१॥

प्रात काल सायङ्काल और रात्रि में पूर्व पश्चिम और उत्तराभ्यग्र पद्मकर्णिका का तथा सप्ताक्षर द्वारा सम्मन्त्र का ध्यान करे और आदित्य मण्डल के अन्दर स्थित वहाँ देह की कल्पना करे। प्रभामण्डल के मध्य मे स्थित पहिले की भाँति देह को प्रकल्पित करना चाहिए जोकि देह समस्त लक्षणो से परिपूर्ण और सहस्र किरणो से परमोज्ज्वल है ॥१५॥१६॥ जो रक्त गन्ध पुष्प चरु और वर्तियो से तथा रक्त चन्दन से मिश्रित वस्त्रो से और शुभ आवरणो से युक्त है ॥१७॥ आवाहन आदि कर्मों को और हृदय से रक्षा को उसी मे अपना चित्त लगाकर बुध को सम्पूर्ण कार्यक्रम का ज्ञान करके सदा करना चाहिये ॥१८॥ मन्त्रो से आवाहन करके फिर एक स्थान मे स्थापन करे और जब तक याग की पूर्णता हो तथा समाप्ति हो तब तक वहाँ पर उसके सन्निधान की कल्पना करे ॥१९॥ पाद्य आदि की पूजा को देकर शक्ति से अर्घ्य निवेदित करे। विधि पूर्वक जप करके और ध्यान करके इसके पश्चात् देवी का विसर्जन करे ॥२०॥ यह कर्म का क्रम मैंने बता दिया है जो कि सबका यजन के क्रम से होता है। अब पर्वेशावरण मे जप का स्थान बतलाऊँगा ॥२१॥

आदित्य कर्णिकासस्य दलेष्वगानि पूर्वश ।
सोमादीन्राहुपर्यंतान्ग्रहांश्चैवोदगादित ॥२२॥
मूर्तिमल्लोकपालांश्च क्रमादावरणष्वथ ।
तदस्त्राणि च रक्षार्थं स्वमन्त्रै पूजयेत्क्रमात् ॥२३॥

प्रणवैश्चाभिधानैश्च चतुर्थ्या ह्यभियोजितैः ।
सर्वेषां कथिता मन्त्रा मुद्राश्च कथयाम्यतः ॥२४॥
व्योममुद्रा रतिः पद्मा महाश्वेतास्त्रमेव च ।
पञ्चमुद्रा समाख्याता सर्वकर्मप्रसिद्धये ॥२५॥
उत्तानौ तु करौ कृत्वा अंगुल्यो ग्रंथिता क्रमात् ।
तर्जनी यति यावत्ता समे वाधोमुखे स्थिते ॥२६॥
तर्जन्यौ मध्यमस्यैव ज्येष्ठाग्रे वानुगोपरि ।
मुद्रेयं सर्वमुद्राणाव्योम मुद्रेति कीर्तिता ।
सर्वकर्मसु योगोयं तथा स्थान प्रकल्पते ॥२७॥
पद्मवत्प्रसृता सर्वा महाश्वेता रवेः स्मृता ।
जवसन्निहितो नित्यं रथारूढो रविः स्मृतः ॥२८॥

भगवान् आदित्य को पद्मावरण मे कर्णिका स्थित करे और उस पद्म के दलो मे अङ्गो को संस्थित करना चाहिए । पूर्व से सोम से आदि लेकर राहु पर्यन्त ग्रहो को संस्थापित करे । उत्तर से आदि लेकर मूर्तिमान लोकपालो को संस्थित करना चाहिये । क्रम से आवरणो मे उनके ग्रस्त्रो की रक्षा के लिए अपने मन्त्रो के द्वारा क्रम से पूजन करना चाहिये ॥२२॥२३॥ प्रणव और अभिधानो से युक्त चतुर्थी विभक्ति लगाकर अभियोजित किये हुए सबके मन्त्र कह दिये गये हैं । अब आगे जो मुद्रायें हैं उन्हें कहते हैं ॥२४॥ समस्त कर्मों की प्रसिद्धि के लिए व्योम मुद्रा, रति, पद्मा, महाश्वेता और अस्त्र मुद्रा ये पाँच ही मुद्रा कही गई हैं ॥२५॥ दोनो हाथो को ऊँचे करके क्रम से अगुलियो को ग्रन्थित करे । जब तक वे तर्जनी को जाती हैं । सम अथवा अधोमुख स्थित होने पर दोनो तर्जनी मध्यम की ही ज्येष्ठा के आगे या अनुप के ऊपर होती हैं । यह समस्त मुद्राओ मे व्योम मुद्रा कही गई है । सब कर्मों में यह योग होता है तथा स्थान प्रकल्पित होता है ॥२६॥२७। पद्म की भाँति जब सभी प्रसृत होती हैं यह रवि की महाश्वेता कही गई है । वेग से सन्निहित नित्य रथ पर आरूढ रहने वाला रवि बताया गया है ॥२८॥

हस्तावूर्द्धमुखौ कृत्वा वामागुष्ठेन योजितौ ।
द्रव्याणा शोधने योज्या रक्षार्थं च विशेषत ॥२९॥
अनया मुद्रया सर्वं रक्षित शोधित भवेत् ।
अर्घ्य दत्वा प्रयोक्तव्या पूजान्ते च विशेषत ॥३०॥
जपध्यानावसाने च यदीच्छेत्सिद्धिमात्मन ।
अनेन विधिना नित्य जपेदब्दमतन्द्रित ३१॥
स लभेतेप्सितान्कामानिहामुत्र न सशय ।
रोगार्तो मुच्यते रोगाद्धनहीनो धन लभेत् ॥३२॥
राज्यभ्रष्टो लभेद्राज्यमपुत्र पुत्रमाप्नुयात् ।
प्रज्ञामेधासमृद्धीश्च चिरजीवति मानव ।
सुरूपा लभते कन्या कुलीना पुरुषो ध्रुवम् ॥३३॥
सौभाग्य स्त्री कुलीनापि कन्या च पुरुषोत्तमम् ।
अविद्यो लभते विद्यामित्युक्त भानुना पुरा ॥३४॥
नित्ययाग स्मृतो ह्येष धनधान्यसुखावह ।
प्रजापशुविवृद्धिश्च निष्कामस्यापि जायते ॥३५॥
तदैक स्तूयते स्वर्गे शब्दयते च नरोत्तम ।
भक्तया त पूजयेद्यस्तु नर पुण्यतर सदा ॥३६॥
इह वै कामिक प्राप्य ततो गच्छेन्मनो पदम् ।
द्विजास्तस्य प्रसादेन तेजसा बुधसन्निभ ॥३७॥

दोनो हाथ ऊर्द्धमुख करके वाम अङ्गुष्ठ के साथ योजित करे। यह मुद्रा द्रव्यों के शोधन करने म और विशेष करके रक्षा के लिए योजित करनी चाहिये ॥२९॥ इस मुद्रा के द्वारा वस्तु शोधित तथा रक्षित होती हैं। अर्घ्य देकर विशेष करके पूजा के अन्त म यह मुद्रा प्रयुक्त करनी चाहिये ॥३०॥ जप और ध्यान के अन्त मे यदि अपनी आत्मा की सिद्धि की इच्छा रखता है तो इसी विधि स अतन्द्रित होकर एक वष तक जप करना चाहिये ॥३१॥ वह मनुष्य अपनी अभीष्ट कामनाओं की प्राप्ति किया करता है और इस लोक मे परलोक म उसको सबकी प्राप्ति होती है इस म कुछ भी सशय नहीं है।

जो रोगा मे पीडित होना है वह रोग से मुक्ति पा जाना है और जो निर्धन हेता है वह धन का लाभ किया करता है ।।३२।। जो राज्य से भ्रष्ट हो जाता है वह राज्य की प्राप्ति करना है अपुत्र पुत्र पाता है इसके करने से प्रज्ञामेधा और समृद्धि की प्राप्ति होती है और मानव बहुत समय तक जीवित रहा करता है । पुरुष कुलीन और सुन्दर रूप वाली कन्या का लाभ निश्चय ही किया करता है । कुलीना कन्या भी श्रेष्ठ पुरुष को प्राप्त किया करती हैं तथा स्त्री सौभाग्य का लाभ प्राप्त करती है । जो विद्या से हीन होता है वह विद्या को पा जाता है ऐसा भानुदेव ने पहिले कहा था ।।३३।।३४।। यह नित्य ही करने वाला भाग बताया गया है और तभी यह धन तथा धान्य के सुख को देने वाला होता है । जो बिल्कुल निष्काम होता है उसको भी प्रजा और पशुओं की विशेष वृद्धि होती है ।।३५।। उस समय वह एक ही स्वर्ग मे स्तुत किया जाता है और नरो मे उत्तम कहा जाया करता है । जो उसकी भक्ति के साथ पूजा करता है वह मनुष्य सदा अधिक पुण्यात्मा होता है ।।३६।। इस लोक में अपना समग्र अभीष्ट प्राप्त करके उसके पश्चात वह मनु के पद की प्राप्ति किया करता है । हे द्विजगण ! उसके प्रसाद से एसा तेज प्राप्त होता है कि वह उस तेज से बुध के समान होता है ।।३७।।

★

।। रथसप्तमीमाहात्म्यवर्णनम् ।।

नैमित्तिकं ततो वक्ष्ये यज्ज्ञात्वा च समासत ।
सप्तम्यां ग्रहणे चैव सङ्क्रातिषु विशेषत ।।१।।
शुक्लपक्षस्य सप्तम्यां हविर्भुक्त्वैकदा दिवा ।
सन्ध्यागतस्य सन्ध्याया वारुणं प्रणिपत्य च ।।२।।
इन्द्रियाणि च सयम्य वृतं ध्यात्वा स्वपदघ ।
दर्भशय्यागतो रात्रौ प्रात स्नात सुसयत ।।३।।
तत सन्ध्यामुपास्याथ पूर्वोक्त च मनु जपेत् ।
जुहुयाच्च तदा वह्नि सूर्याग्नी परिकल्प्य च ।।४।।
सूर्याग्निस्मरणं वक्ष्ये तर्पण च समासत ।
अर्चनागारमन्दिस्य प्रविश्याच्र्य जनैर्जनम् ।।५।।

प्रक्षिप्यास्तीर्य दर्भैश्च पात्राद्यालभ्य च क्रमात् ।
पवित्र द्विकुश कृत्वा साग्र प्रादेशसमितम् ॥६॥
तेन पात्राणि सप्रोक्ष्य सशोध्याथ विलोक्य च ।
उदगग्रे स्थिते पात्रे प्रज्वाल्याथोल्मुकेन च ॥७॥
पर्यग्निकरण कृत्वा तथाज्योत्पवन त्रिधा ।
परिमृज्य स्रु्वादीश्च दर्भै सप्रोक्षयेत्तत ॥८॥

इस अध्याय मे आदित्य के नैमित्तिक आराधन के क्रम का तथा रथ सप्तमी के माहात्म्य का वर्णन किया जाता है। भगवान् वासुदेव ने कहा—इसके पश्चात् मैं नैमित्तिक आराधन के विषय मे बतलाता हूँ जिसको कि सक्षेप मे जान लेना चाहिए। सप्तमी मे, ग्रहण मे और विशेष कर सक्रान्तियो मे तथा शुक्ल पक्ष की सप्तमी तिथि मे दिन मे एक बार हविका भोजन करे भली भाँति आचमन करके सन्ध्या के समय मे वारुण को प्रणाम करे। इन्द्रियो को सयम मे करके किए हुए का ध्यान करे और भूमिपर नीचे शयन करना चाहिये। रात्रि मे दर्भों की शय्या पर रहे और प्रातःकाल मे स्नान करके सुसंयत हो जाना चाहिए ॥१॥२॥३॥ इसके अनन्तर सन्ध्योपासन करके पूर्वोक्त मन्त्र का जाप करे। सूर्याग्नि परिकल्पित करके तब अग्नि मे हवन करना चाहिये ॥४॥ सूर्याग्निकरण को मैं बताऊँगा तथा तर्पण को भी सक्षेप में बताया जायगा। अर्चना के घर का उल्लेख करके अर्चन करने के योग्य जनो के साथ वहाँ पर प्रवेश करके जल को प्रक्षिप्त करे और दर्भों से आस्तरण करे तथा क्रम से पात्रादि का आलम्भन करना चाहिये। दो कुशाओ की पवित्री बनालेवे जो कि साग्र और प्रादेश समित्त हो ॥५॥६॥ उससे पात्रो का सम्प्रोक्षण – सशोधन और विलोकन करे। उदगग्र स्थित पात्र में उल्मुक से प्रज्वलित करना चाहिये। फिर पर्यग्निकरण करके तथा तीन प्रकार से आज्योत्पवन करें। स्रु्वा आदि का परिमार्जन करके फिर दर्भों से सम्प्रोक्षण करना चाहिए ॥७॥८॥

जुहुयात्प्रोक्ष्य तान्वह्नौ तत्रार्कं पूर्ववद्व्रजेत् ।
अभूमौ स्थितपात्रेण विष्टरेण तु पाणिना ॥
दानेन यदुशार्दूल नान्तरिक्षे स्थले क्वचित् ॥६॥
दक्षिणेन स्रुवं गृह्य जुहुयात्पावकं बुधः ।
हृदयेन क्रिया सर्वाः कर्तव्या पूर्वचोदिताः ॥१०॥
अर्कादारभ्य सज्ञार्थं दद्यात्तूष्णीं हुतिं स्थित. ।
वरुणाय शतं मंघे सप्तम्या वरुण यजेत् ॥११॥
यथाशक्त्या तु विप्रेभ्यः प्रदद्यात्खण्डवेष्टकान् ।
दद्याद्व दक्षिणा शक्त्या प्राप्नोति यांचित फलम् ॥१२॥
एव वै फाल्गुने सूर्यं चैत्रे वैशाख एव च ।
वैशाखे मासि धातारमिद्रं ज्येष्ठे यजेद्रविम् ॥१३॥
आपाढे श्रावणे मासि नभ भाद्रपदे यमम् ।
तयाश्वयुजि पर्जन्य त्वष्टार कार्तिके यजेत् ॥१४॥
मार्गशीर्षे च मित्र च पौषे विष्णु तजेद्यदि ।
संवत्सरेण यत्प्रोक्त फलमिष्ट दिनेदिने ।
तत्सर्वमाप्नुयात्क्षिप्र भक्त्या श्रद्धान्वितो व्रती ॥१५॥

उनका प्रोक्षण करके अग्नि में हवन करना चाहिये । वहाँ पर अर्क को पूर्व की भाँति जावे । अभूमि में स्थित पात्र से, विष्टर से, पाणि से और दान से हे यदुशार्दूल । अन्तरिक्ष मे और स्थल में कही नहीं है दक्षिण हाथ से स्रुवा का ग्रहण कर बुध को पवक में हवन करना चाहिए । पूर्वनोदित समस्त क्रिया हृदय से करनी चाहिए ॥ ॥१०॥ अर्क से आरम्भ करके सज्ञार्थ चुपचाप स्थित होकर आहुतियाँ देनी चाहिए । वरुण के लिए एक शत आहुतियाँ देवे । माघ मास में सप्तमी तिथि के दिन वरुण का यजन करे ॥११॥ अपनी शक्ति के अनुसार विप्रों के लिए खण्ड वेष्टकों का दान करना चाहिए । शक्ति पूर्वक दक्षिणा भी देवे तो जो भी चाहे वह फल प्राप्त किया करता है । ॥१२॥ इसी प्रकार से फाल्गुन मास में तथा चैत्र और वैसाख के महीने में सूर्य का यजन करे । वैशाख मास में धाता इन्द्र का तथा ज्येष्ठ में रवि का यजन

करना चाहिये ।।१३।। आषाढ और श्रावण मास में नभ का, भाद्रपद में यम का, मार्गशीर्ष में मित्र का और पौष में विष्णु का यदि यजन करे। आश्विन में पर्जन्य का और कार्तिक में त्वष्टा का यजन करे। इस तरह एक वर्ष पर्यन्त यजनाजन करने से जो कि बताया गया है, वो दिन दिन में अभिष्ट फल होता है। भक्ति के साथ श्रद्धा से युक्तव्रती वह सभी कुछ प्राप्त कर लेता है ।।१४।।१५।।

माघस्य शुक्लपक्षे तु पञ्चम्यां मत्कुलोद्वह ।
एकभक्तं सदाख्यातं षष्ठ्यां नक्तमुदाहृतम् ।।१६।।
सप्तम्यामुपवासं तु केचिदिच्छन्ति सुव्रत ।
पञ्चम्यां केचिद्वदतीह सप्तम्यां पारणं किल ।।१७।।
कृतोपवासः षष्ठ्यां तु पूजयेद्भास्करं बुधः ।
रक्तचन्दनमिश्रैस्तु करवीरैश्च सुव्रत ।।१८।।
गुग्गुलेन महाबाहो सयावेन च सुव्रत ।
पूजयेद्देवदेवेशं शंकरं भास्करं रविम् ।।१९।।
एवं हि चतुरो मासान्माघादीन्पूजयेद्रविम् ।
आत्मनश्चापि शुद्ध्यर्थं प्राशनं गोमयस्य च ।।२०।।
स्नानं च गोमयेनेह कर्तव्यं चात्मशुद्धये ।
ब्राह्मणान्दिव्यभोमाश्च भोजयेच्चापि शक्तितः ।।२१।।

इस अध्याय में माघ शुक्ल सप्तमी में महा सप्तमी के व्रत के माहात्म्य का वर्णन किया जाता है। भगवान् वासुदेव ने कहा— हे मत्कुलोद्वह ! माघ मास के शुक्ल पक्ष की पञ्चमी में एक भक्त सदा कहा गया है और षष्ठी में रात्रि में कहा गया है ।।१६।। हे सुव्रत ! कुछ लोग सप्तमी में उपवास चाहते हैं और कुछ विद्वान पष्ठी में उपवास का करना बतलाते हैं और सप्तमी तिथि में उस उपवास का पारण करने का विधान कहा करते हैं ।।१७।। षष्ठी में जिसने उपवास किया है उसे भास्कर की पूजा करनी चाहिए। हे सुव्रत ! भास्कर का अर्चन रक्त चन्दन से मिश्रित तथा करवीर के पुष्पों से करना

चाहिये ॥१८॥ हे महान् बहुमों वाले ! गुग्गुल और सयाव से देवदेवेश शङ्कर भास्कर रवि का पूजन करे ॥१९॥ इसी प्रकार से माघ आदि चार मासों में रवि का पूजन करना चाहिये। और अपनी आत्मा की शुद्धि के लिये भी गोमय का प्राशन करे ॥२०॥ यहाँ पर गोमय (गोबर से ही आत्मा की शुद्धि के सम्पादन करने के वास्ते स्नान करना चाहिये। और ब्राह्मणों को तथा दिव्य भौमों को अपनी शक्ति के अनुसार भोजन भी कराना चाहिए ॥२१॥

ज्येष्ठादिष्वथ मासेषु श्वेतचन्दनमुच्यते ।
श्वेतानि चापि पुष्पाणि शुभगन्धान्वितानि वै ॥२२॥
कृष्णागरुस्तथा धूपो नैवेद्य पायस स्मृतम् ।
तेनैव ब्राह्मणास्तुष्टान्भोजयेच्च महामते ॥२३॥
प्राशयेत्पञ्चगव्य तु स्नान तेनैव पुनक ।
कार्तिकादिषु मासेषु अगस्तिकुसुमै स्मृतम् ॥२४॥
पूजयेन्नरशार्दूल धूपैश्चैवापराजितै ।
नैवेद्य गूडपूपास्तु तथा चेक्षुरस स्मृतम् ॥२५॥
तेनैव ब्राह्मणास्तात भोजयस्व स्वशक्तित ।
कुशोदक प्राशयेथा स्नान च शुरु शुद्धये ॥२६॥
तृतीये पारणस्याते माघे मासि महामते ।
भोजन तत्र दान च द्विगुण समुदाहृतम् ॥२७॥
देवदेवस्य पूजा च कर्तव्या शक्तितो बुधै ।
रथस्य चापि दान तु रथयात्रा तु सुव्रत ॥२८॥
इत्येषा कथिता पुत्र रथाह्वा सप्तमी शुभा ॥२९॥
महासप्तमी विख्याता महापुण्या महोदया ।
यामुपोष्य धन पुत्रान्कीर्ति विद्यामवाप्नुयात् ।
तथाखिल कुवलय चन्द्रेण च समोचिषा ॥३०॥

ज्येष्ठ आदि मासों में श्वेत चन्दन कहा जाता है। पुष्प भी श्वेत होने चाहिए जो कि बहुत उत्तम गन्ध वाले हैं ॥२२॥ कृष्ण अगुरु का धूप हो तथा

नैवेद्य के लिए पायस बनाया गया है। हे महामते ! उसी बैत्र समर्पित नैवेद्य के स्थान मे जो पायस है उससे ब्राह्मणों को बहुत तुष्ट करते हुए भोजन कराना चाहिए ॥२३॥ हे पुत्र ! पञ्चगव्य का प्राशन करावे और उसी से स्नान भी कराना चाहिये। कार्तिक आदि मासो मे तो अगस्त्य के पुष्प बताये गए हैं ॥२४। हे नरशार्दूल ! अपराजित धूप के द्वारा पूजन करना चाहिए। नैवेद्य के स्थान मे गुड के बनाये हुए पूए होवें तथा ईख का रस कहा गया है ॥२५॥ हे तात ! उसी समर्पित नैवेद्य के द्वारा अपनी शक्ति के अनुसार ब्राह्मणों को भोजन करावे। कुशोदक का प्राशन करावे और शुद्धि के लिए स्नान भी कुशोदक से करे ॥२६॥ हे महान् मति वाले ! तृतीय पारण के अन्त मे माघ मास मे भोजन और दान दुगना कहा गया है ॥ ॥२७॥ विद्वान पुरुषो के द्वारा शक्ति के अनुसार देवदेव की पूजा करनी चाहिए। हे सुव्रत ! रथ का भी दान और रथ यात्रा भी करनी चाहिए ॥२८॥ हे पुत्र ! रथाह्वा अर्थात् रथ के नाम वाली शुभ सप्तमी का यह वर्णन किया गया है। यह महासप्तमी विख्यात है। यह महान् पुण्य वाली और महान् उदय वाली होती है जिसके दिन उपवास करके मनुष्य धन पुत्र, कीर्ति और विद्या की प्राप्ति किया करता है तथा समस्त भूमण्डल को प्राप्त करता है और चन्द्रमा के समान रुचि वाला हो जाता है ॥२९॥३०।

☆

॥ सूर्ययोगमाहात्म्यवर्णनम् ॥

रामेयमक्षर धाम पर मदसतोर्महत् ।
भेदाभेदस्वरूपस्थ प्रणिपत्य रवि नृप ॥१॥
प्रवक्ष्यामि यथापूर्व विरिंचेन महात्मना ।
ऋषीणा कथित पूर्व त निबोध नराधिप ॥२॥
आराधनाय सवितुर्महात्मा पद्मसभव ।
योग ब्रह्मपर प्राह महर्षीणा यथा प्रभु ॥३॥
समस्तवृत्तिसरोधात्कैवल्यप्रतिपादनम् ।
तदा जगत्पतिर्ब्रह्मा प्रणिपत्य महर्षिभि ॥४॥

सर्वे किलोक्तो भगवानात्मयोनि प्रजाहितम् ।
योय योगो भगवता प्रोक्तो वृत्तिनिरोधज ॥५॥
प्राप्तु शक्य स त्वनेकैर्जन्मभिर्जगय पते ।
विषया दुर्जया नृणामिन्द्रियाकर्षिण प्रभो ॥६॥
वृत्तयश्चेतसश्चापि चञ्चलस्यापि दुर्धरा ।
रागादत कथ जेतु शक्या वर्षशतैरपि ॥७॥

इस अध्याय मे सूर्य के योग के माहात्म्य का वर्णन किया गया है। सुमन्तु महर्षि न कहा—हे नृप ! उस एक, अक्षर, सद् और असत् मे महान्, भेद और अभेद के स्वरूप मे स्थित, पर धाम रवि का प्रणिपात करना चाहिए और मैं रवि को प्रणाम करके मैं तुमको बताता हूँ जैसा कि महात्मा विरञ्चि ने पहिले ऋषियो के आगे कहा था। हे नराधिप ! अब तुम उसको समझ लो ॥१॥ ॥ सविता की आराधना करने के लिए महान् आत्मा वाले पद्म सम्भव (ब्रह्मा) प्रभु ने महर्षियो को जैसा ब्रह्म पर योग कहा था ॥३॥ वह समस्त वृत्तियो के सरोध से कैवल्य का प्रतिपादक योग है। उस समय मे जगत् के स्वामी ब्रह्माजी से समस्त महर्षियो ने कहा था जो कि भगवान् हैं और प्रजा के लिए आत्मयोनि थे। ऋषियो ने कहा – आपने जो वृत्तियो के निरोध से होने वाला योग बताया है वह तो हे जगत् के स्वामी ! अनेको जन्म बीत जाने पर कही बडी कठिनाई से प्राप्त किया जा सकता है। हे प्रभो ! ये जो विषय हैं वे बहुत कठिनाई से भी नही जीते जाया करते हैं। ये तो मनुष्यो की इन्द्रियो को हठात् खीच लेने वाले हुआ करते हैं ॥४॥५॥६॥ वृत्तियाँ जो हैं वे इस चचल चित्त से भी अधिक कठिन होती हैं। ये राग आदिक वृत्तियाँ सैकडो वर्षो मे भी किस तरह जीती जा सकती हैं ? ॥७॥

न योगयोग्य भवति मन एभिरनिर्जितै ।
अल्पायुषश्च पुरुषा ब्रह्मन्कृतयुगेप्यमी ॥८॥
त्रेतायां द्वापरे चैव किमु प्राप्ते कलौ युगे ।
भगवस्त्वामुपासीनान्प्रसन्नो वक्तुमर्हसि ॥९॥

अयायासेन येनैव उत्तरेम भवार्णवम् ।
दुःखावुमग्ना पुरुषा प्राप्य ब्रह्मन्महाप्लवम् ॥१०॥
उत्तरेम भवाम्भोधिं तथा त्वमनुचिंतय ।
एवमुक्तस्तदा ब्रह्मा क्रियायोगं महात्मनाम् ॥११॥
तेषामृषीणामाचष्ट नराणां हितकाम्यया ।
आराधयत विश्वेशं दिवाकरमतन्द्रिता ॥१२॥
बाह्यालंबनसापेक्षास्तमज जगत पतिम् ।
इज्यापूजानमस्कारशुश्रूषाभिरहर्निशम् ॥१३॥
व्रतोपवासैर्विविधैर्ब्राह्मणानां च तर्पणैः ।
तैस्तैश्चाभिमतैं कामैर्ये च चेतसि तुष्टिदा ॥१४॥

इन अर्थो के द्वारा मन इस योग के योग्य नही होता है। हे ब्रह्मन् ... युमहाग्राह ... पुरुष अल्प आयु वाले होते हैं ॥८॥ त्रेता और द्वापर तथा कलियुग में तो आयु के विषय मे कहने की बात ही क्या है। हे भगवन्! आपकी उपासना करने वालों को आप प्रसन्न होकर बताने के योग्य होते हैं ॥६॥ हे महान्! जिसके द्वारा अनायास से ही इस संसार रूपी महान् सागर के पार हो जावें ऐसा कोई योग बताइये। मनुष्य बिचारे सांसारिक दुःख रूपी जल में डूबे हुए हैं आपके द्वारा बनाये हुए महान् प्लव की प्राप्ति कर ये पार हो सकते हैं ॥१०॥ जिस प्रकार से संसार समुद्र से पार हो जावें—ऐसा कोई योग आप विचारिये। इस तरह से जब ब्रह्माजी से कहा गया तो उनने मानवों के हित की कामना से महात्माओं के क्रिया योग को उन ऋषियों से कहा था कि समस्त इस विश्व के स्वामी दिवाकर की तन्द्रा रहित होकर आराधना करो ॥११॥१२॥ बाह्य आलम्बन की अपेक्षा वाले उस जगत् के पति अज की इज्या, पूजा, नमस्कार और शुश्रूषा से रात दिन आराधित की आराधना करने लगे ॥१३॥ व्रत, उपवास जो कि अनेक प्रकार के थे उनके द्वारा तथा ब्राह्मणों के तर्पण द्वारा और उन-उन कामनाओं से जो कि चित्त में तुष्टि के देने वाले थे, भगवान् भास्कर की आराधना करो ॥१४॥

अपरिच्छेद्यमाहात्म्यमाराधयत भास्करम् ।
तन्निष्ठास्तद्गतधियस्तत्कर्माणस्तदाश्रया ॥१५॥
तद्दृष्टयस्तन्मनस सर्वस्मिंस्त इति स्थिता ।
न्यस्तान्यथ कर्माणि तत्र सर्वात्मनात्मनि ॥१६॥
मन्यसध्व स व कर्ता समस्तावरणक्षयम् ।
एतनदक्षर ब्रह्म प्रधानपुरुषावुभौ ॥१७॥
यतो यस्मिन्यथा चोभौ सर्वव्यापिन्यवस्थितौ ।
पर पराणा परम सैक सुमनसा पर ॥१८॥
यस्माद्भिन्नमिद सर्व यच्चेद यच्च नेंगति ।
मोक्षकारणमव्यक्तमचिन्त्यमपरिग्रहम् ।
समाराध्य जगन्नाथ क्रियायोगेन मुच्य ॥१९॥
इति त ब्रह्मण श्रुत्वा रहस्यमृषिसत्तमा ॥२०॥
नराणामुपकाराय योगशास्त्राणि ... ॥
क्रियायोगपराणीह मुक्तिकारीण्यनेकश ॥२१॥

जिस भगवान् भास्कर का माहात्म्य अपरिच्छेद्य है उसकी आराधना करो और तन्निष्ठ होकर उनी म अपनी बुद्धि को लगाने वाले बनकर तथा उन्ही के कर्मों का करने वाले और एक मात्र भास्कर का आश्रय ग्रहण करके एव उसकी ही दृष्टि वाले और मन वाले होकर सदा सबमे वह ही स्थित है—ऐसा विचार करके स्थित हो । इसके पश्चात् समस्त कर्मों को सबकी आत्मा उसमे ही न्यास करदो अर्थात् उस ही समर्पित कर देना चाहिये । वह आपका समस्तावरण क्षय का कर्त्ता है । यह अक्षर ब्रह्म है । दोनो ही प्रधान पुरुष हैं ॥१५॥१६॥१७॥ जिससे जिसमे जिस प्रकार स सबव्यापी में दोनो ही अवस्थित हैं । परो का भी पर परम और सुमनो का पर वह एक ही है ॥१८॥ जिससे यह भिन्न है और जो यह सब है और जो इङ्गित नहीं होता है उस मोक्ष के कारण स्वरूप, अव्यक्त, अचिन्त्य और परिग्रह से रहित रहने वाले जगत् के नाथ की समाराधना करके क्रिया के योग से मुक्ति प्राप्त की जाया करता है ॥१९॥ इस प्रकार से उन श्रेष्ठ ऋषियों ने इस रहस्य को ब्रह्माजी से सुनकर मनुष्यों की

भलाई करने के लिए योगशास्त्रों का करने लगे। यहाँ पर क्रिया योग मे परायण ऐसे मुक्ति करने वाले अनेक हैं ॥२०॥२१॥

आराध्यते जगन्नाथस्तदनुष्ठानतत्परैः ।
परमात्मा स मार्तंडः सर्वेशः सर्वभावनः ॥२२॥
यान्युक्तानि पुरा तेन ब्रह्मणा कुरुनन्दन ।
तानि ते कुरुशार्दूल सर्वपापहराण्यहम् ॥२३॥
वक्ष्यामि श्रूयतामद्य रहस्यमिदमुत्तमम् ।
ससारार्णवमग्नाना विषयाक्रातचेतसाम् ॥२४॥
हसपोत विना नान्यत्किंचिदस्ति परायणम् ।
उत्तिष्ठश्चितय रविं व्रजश्चितय गोपतिम् ॥२५॥
भुजश्चितय मार्तंड स्वपश्चितय भास्करम् ।
एवमेनाग्रचित्तस्त्व सश्रितः सतत रविम् ॥२६॥
जन्ममृत्युमहाग्राह ससाराभस्तरिष्यसि ॥२७॥

प्रद्देशमीश वरद पुराण
जगद्विधातारमज च नित्यम् ।
समाश्रिता ये रविमीशितार,
तेषा भवो नास्ति विमुक्तिभाजाम् ॥२८॥

न्तर रविका समाश्रय करने वाले रहो ।।२६।। जन्म और मृत्यु जिसमें महान ग्राह हैं ऐसे इस संसार रूपी सागर को तुम रवि का समाश्रय ग्रहण करके तैर जाओगे ।।२७।। जो इस ग्रहों के स्वामी, वरदान देने वाले पुराण पुरुष, जगत् के विधाता, अज मा, ईश्वर रवि हैं उनका समाश्रय जिन्होंने ग्रहण किया है उन विमुक्ति के सेवन करने वालों के लिए यह संसार कुछ भी नहीं है अर्थात् उन्हें इस संसार से छुटकारा पाना एक अत्यन्त साधारण सी बात है ।।२८।।



।। सूर्यस्य विराट्रूपवर्णनम् ।।

विस्तरेणानुपूर्व्या च सूर्य निगदतः शृणु ।
ततः शापाप्रवक्ष्यऽहं नमस्कृत्य विवस्वते ।।१।।
अव्यक्तं कारणं यत्तन्नित्यं सदसदात्मकम् ।
प्रधानं प्रकृतिश्चेति यमाहुस्तत्त्वचिंतकाः ।।२।।
गन्धवर्णं रसहीनं शब्दस्पर्शविवर्जितम् ।
जगद्योनिं महद्भूतं परं ब्रह्म सनातनम् ।।३।।
विग्रहं सर्वभूतानामव्यक्तमभवत्किल ।
अनाद्यन्तमजं सूक्ष्मं त्रिगुणं प्रभवोऽप्ययम् ।।४।।
अनाकारमविज्ञेयं तमाहुः पुरुषं परम् ।
तस्यात्मना सर्वमिदं जगद्व्याप्तं महात्मनः ।।५।।
तस्येश्वरस्य प्रतिमा ज्ञानवैराग्य लक्षणा ।
धर्मैश्वर्यकृता बुद्धिर्ब्राह्मी तस्याभिमानिनः ।।६।।
अव्यक्ताज्जायते तस्य मनसा यद्यदिच्छति ।
चतुर्मुखस्य ब्रह्मत्वं बालत्वे चातद्भवेत् ।।७।।

इस अध्याय में सूर्य के विराट् रूप का वर्णन किया जाता है। श्रीन रद ऋषि ने कहा—विस्तार से और आनुपूर्वी से सूर्य को बताने वाले मुझसे तुम श्रवण करो। इस अनन्तर विवस्वान् को नमस्कार करके मैं तेपो को बतलाऊंगा ।।१।। जो अव्यक्त कारण है वह नित्य और सत् एवं असत् स्व-

रूप वाला है। जो तत्त्वों के चिन्तन करने वाले पुरुष हैं वे उसको प्रधान और प्रकृति कहा करते हैं ॥२॥ गन्ध, वर्ण और रस से हीन तथा शब्द एवं स्पर्श से विवर्जित, जगत् की योनि और महद्भूत एवं सनातन परब्रह्म है ॥३॥ समस्त भूतों का विग्रह अव्यक्त हुआ था। आदि और अन्त से रहित, सूक्ष्म, त्रिगुण अर्थात् सत्व, रज और तम इन तीन गुणों वाला प्रभाव भी यह है ॥४॥ जिसका कोई आकार नहीं है और जो विशेष रूप से जानने के योग्य नहीं है उसको परपुरुष कहते हैं। उस महान् आत्मा वाले की आत्मा से यह समस्त जगत् व्याप्त हो रहा है ॥५॥ उस ईश्वर की प्रतिमा ज्ञान और वैराग्य के लक्षण वाली होती है। अभिमानी उसकी धर्मैश्वर्य से की हुई बुद्धि ब्राह्मी कही जाती है ॥६॥ उसके मन से जो कुछ भी वह इच्छा किया करता है वह अव्यक्त से उत्पन्न हुआ करता है। चतुर्मुख के ब्रह्मत्व में और कालत्व में अन्तहृद होता है ॥७॥

सहस्रमूर्धा पुरुषस्तिस्रोऽवस्था स्वयंभुव ।
सत्त्व रजश्च ब्रह्मत्वे कालत्वे च रजस्तम ॥८॥
सात्त्विक पुरुषत्वे च गुणवृत्त स्वयंभुव ।
ब्रह्मत्वे सृजते लोकान्कालत्वे चापि संक्षिपेत् ॥९॥
पुरुषत्वे उदासीनस्तिस्रोऽवस्था प्रजापते ।
त्रिधा विभज्य चात्मानं त्रिकाल सम्प्रवर्तते ॥१०॥
सृजते ग्रसते चैव वीक्षते च त्रिभि स्वयम् ।
अग्रे हिरण्यगर्भस्तु प्रादुर्भूत स्वयंभुव ॥११॥
आदित्यस्यादिदेवत्वादजातत्वादज स्मृत ।
देवेषु सुमहान्देवो महादेव स्मृतस्तत ॥१२॥
सर्वेशत्वाच्च लोकस्य अधीशत्वाच्च ईश्वर ।
बृहत्त्वाच्च स्मृतो ब्रह्मा भवत्वाद्भव उच्यते ॥१३॥
पालियस्मात्प्रजा सर्वा प्रजापतिरत स्मृत ।
पुरे शेते च वै यस्मात्तस्मात्पुरुष उच्यते ॥१४॥

पुरुष सहस्र मूर्धा वाला है। उस स्वयम्भू की तीन अवस्थायें होती हैं।

ब्रह्मत्व मे सत्व और रज, और कालत्व म रज और तम होता है। स्वयम्भू के पुरुषत्व म सात्विक गुण वृत्त होता है। वह ब्रह्मत्व म लोको का सृजन किया करता है और कालत्व की दशा म उसका सक्षेप करता है ॥८॥६॥ जब वह पुरुषत्व की अवस्था म स्थित रहता है तो उदासीन रहा करता है। इस तरह प्रजापति की तीन अवस्थायें होती हैं। वह अपनी आत्मा अर्थात् स्वरूप को तीन प्रकार से विभाजित करके तीन काल मे सप्रवृत्त रहता है॥१०॥ इन तीनो से वह स्वय ही सृजन करता है ग्रसन करता है और वीक्षण किया करता है। सबसे प्रथम स्वयम्भू से हिरण्यगर्भ प्रादुर्भूत हुआ था ॥११॥ आदित्य व आदि देव होने से और अजात होने से वह 'अज' इस नाम से कहा गया है। देवो म वह सबसे बडा देव है इसीलिए 'महादेव' इस नाम से कहा गया है ॥१२॥ लोक का सर्वेश होने से और अधीश होने के कारण से उसे ईश्वर—इस नाम से कहा गया है। बृहत् होने से उसको ब्रह्मा पुकारा गया है और भवत्व होने के कारण उसका भव यह नाम पड गया है ॥१३॥ क्योंकि वह समस्त प्रजा की रक्षा तथा पालन करता है इसी कारण से वह प्रजापति कहा गया है। १४॥

नोत्पादयदासर्वंसनात्स्वयभूरिति विश्रुत ॥१५॥
हिरण्मयाण्डगर्भो यस्माद्ब्रह्मयो वै दिवस्पति ।
तस्माद्धिरण्यगर्भोऽसौ देवदेवो दिवाकर ॥१६॥
आपो नारा इति प्रोक्ता ऋषिभिस्तत्त्वदर्शिभि ।
अयन तस्य ता आपस्तेने नारायण स्मृत ॥१७॥
अर इत्येष शीघ्रार्थो निपात कविभि स्मृत ।
आप एवार्णवा भूत्वा न शीघ्रास्तेन ता नरा ॥१८॥
एकार्णवे पुरा तस्मिन्नष्टे स्थावरजगमे ।
नारायणाख्य पुरुष सुष्वाप सलिले तदा ।
सहस्रशीर्षा सुमना सहस्राक्ष सहस्रपात् ॥१६॥
सहस्रपाद् प्रथम प्रजापति-
स्त्रयीपथे य पुरुषो निगद्यते।

आदित्यवर्णो भुवनस्य गोप्ता-
अपूर्व एक पुरुष पुराण ॥२०॥
हिरण्यगर्भ पुरुषो महात्मा
सपद्यते वै तमस परस्तात् ॥२१॥

उत्पाद्यत्व न होने से और अपूर्व होने से स्वयम्भू–इस नाम से प्रसिद्ध हुआ है ॥१५॥ हिरण्य अण्ड मे रहने वाला है और दिवस्पति ग्रहो का स्वामी है इसी कारण से यह हिरण्यगर्भ तथा देवो का भी देव दिवाकर कहा गया है ॥१६॥ तत्वो को देखने वाले महर्षियो ने जलों का 'नारा' इस नाम से कहा है। वे ही जल उसके अयन अर्थात् निवास के स्थान हैं इस कारण से वह नारायण कहे जाते है ॥ ७॥ अर यह शब्द शीघ्रता के अर्थ वाला कवियो ने निपात बनाया है। जल ही अणव होकर शीघ्र नही है इस कारण से वे नर हुए हैं ॥१८॥ पहिले कुछ एकार्णव मे स्थावर और जङ्गम सबके नष्ट हो जाने पर नारायण नाम वाला पुरुष उस समय उस जल मे शयन करता था। वह सहस्र शीर्षों वाला—सहस्र नेत्रो वाला और सहस्र पैरो वाला एव सुन्दर मन वाला है ॥१९॥ प्रथम प्रजापति सहस्र बाहुओ वाला है जो कि वेदो पथ मे पुरुष कहा जाता है। आदित्य के समान वर्ण वाला इस भुवन का रक्षक एक पुराण पुरुष अपूर्व ही है ॥२०। महात्मा हिरण्यगर्भ पुरुषोत्तम से परे होता है ॥२१॥



॥ आदित्यवारमाहात्म्य ॥

ये त्वादित्यदिने ब्रह्मन्पूजयति दिवाकरम् ।
स्नानदानादिक तेषा कि फल स्याद्ब्रवीतु मे ॥१॥
पुण्या सा सप्तमी प्रोक्ता युक्ता तेन पितामह ।
विजयेति तथा नाम वर्ण्यतामस्य पुण्यता ॥२॥
ये त्वादित्यदिने ब्रह्मञ्छ्राद्ध कुर्वंति मानवा ।
सप्तजन्मसु ते जाता सभवंति विरोगिण ॥३॥

नक्त कुर्वति ये तत्र मानवा स्थैर्यमाश्रिता ।
जपमाना पर जाप्यमादित्यहृदय परम् ॥४॥
आरोग्यमिह वै प्राप्य सूर्यलोक व्रजति ते ।
उपवास च य कुर्यु रादित्यस्य दिने सदा ॥५॥
जपति च महाश्वेता ते लभते यथेप्सितम् ।
अहोरात्रेण नक्तेन निरान्ननियमेन वा ॥६॥
जपमानो महाश्वेतामीप्सित लभते फलम् ।
विनायत सूर्यदिने जपमानो गणाधिप ॥७॥

इस अध्याय म आदित्य वार के माहात्म्य का वणन तथा नन्दादित्य आदित्य,वार के व्रत कल के माहात्म्य का वणन किया जाता है। दिण्डि ने कहा—हे ब्रह्मन् ! जो मनुष्य आदित्य वार के दिन मे दिवाकर का पूजन किया करते हैं और स्नान तथा दान आदि के कम करते हैं उनका क्या फल होता है ? कृपा कर यह आप मुझे व तावें । १॥ हे पितामह ! उस आदित्य वार से युक्त सप्तमी तिथि परम पुण्य तिथि आपने बतलाई थी तथा उसका नाम विजया—यह भी कहा था सो कृपया इसकी पुण्यता का वणन कीजिये ॥२॥ ब्रह्माजी ने कहा—हे ब्रह्मन् जो मानव रवि के वार वाले दिन म श्राद्ध करते हैं वे सात जन्मो तक उत्पन्न होकर रोगो से रहित हुआ करते हैं ॥३॥ जो उस दिन स्थिरता का आश्रय लेकर रात्रि के समय म किया करते हैं और पर जाप्य आदि म हृदय का जाप करते रहते हैं वे इस लोक म पूर्ण आरोग्य प्राप्त करके अन्त म सूर्यलोक म चले जाते हैं। आदित्य के दिन में सदा उपवास किया करते हैं वे भी सूर्यलोक की प्राप्ति करते हैं ॥५॥ जो महाश्वेता को जपते हैं वे अपने इच्छित की प्राप्ति किया करते हैं जो भी वे कुछ चाहते हैं वही उन्हे मिल जाता है। एक अहोरात्र म, केवल रात्रि के समय म अथवा तीन रात्रियो में नियम से महाश्वेता के जप करने वाले अपने ईप्सित फल पाते हैं। हे गणाधिप ! विनय रूप से सूय के दिन म जाप करते स पूर्ण फल की प्राप्ति होती है ॥७॥

षडक्षर तथा श्वेता गच्चेद्वैरोचन पदम् ।
द्वादशेह स्मृता वारा आदित्यस्य महात्मन ॥८॥
नदो भद्रस्तथा सौम्य कामद पुत्रदस्तथा ।
जयो जयतो विजय आदित्याभिमुख स्थित ॥९॥
हृदयो रोगहा चैव महाश्वेतप्रियोऽपर ।
शुक्लपक्षस्य षष्ठ्या तु माघे मासि गणाधिप ॥१०॥
य कुर्यात्स भवेद्भूप सर्वपापभयापह ।
अत्र नक्त स्मृत पुण्य घृतेन स्नपन रवे ॥११॥
अगस्त्यकुसुमानीह भानोस्तुष्टिकराणि तु ।
विलेपन सुगधस्तु श्वेतचदनमुत्तमम् ॥१२॥
धूपस्तु गुग्गुल श्रेष्ठो नैवद्य पूपमेव हि ।
दत्त्वा पूष तु विप्रस्य ततो भुञ्जीत वाग्यत ॥१३॥
नक्षत्रदर्शनान्नक्त केचिदिच्छति मानद ।
मुहूर्तोन दिन केचित्प्रवदति मनीषिण ॥१४॥

षडक्षर तथा श्वेता का जाप करने वाला वैरोचन पद को जाता है । इस ससार मे महात्मा आदित्य के द्वादशवार कहे गये हैं ॥८॥ न द, भद्र सौम्य कामद, पुत्रत, जय जयन्त, विजय, आदित्याभिख, हृदय रोगहा, महाश्वेत प्रिय ये बारह उनके नाम होते हैं । हे गणाधिप ! माघ मास मे शुक्ल पक्ष की षष्ठी तिथि म जो किया करता है वह समस्त प्रकार के पापो के भय का अपहरण करने वाला राजा होता है । इसम रात्रि के समय मे घृत से रविका स्नपन करना परम पुण्य बताया गया है ॥९॥१०॥११॥ अगस्त्य वृक्ष के पुष्प सूर्य को अत्यन्त तुष्टि के करने वाले होते हैं अर्थात् इन पुष्पो से सूर्य देव बहुत ही विशेष प्रसन्न हुआ करते हैं । सुगन्ध का विलेपन करने म श्वेत चन्दन अति उत्तम माना गया है ॥१२॥ धूपो मे गूगल का धूप अति श्रेष्ठ होता है और नवेद्य के स्थान मे पूप (पूआ) ही विशेष प्रिय कर हाते हैं । इसके पश्चात् मौन व्रती होकर पूआ से ब्राह्मण को भोजन कराना चाहिए ॥१३॥ हे मानद ! कुछ विद्वान लोग नक्षत्रो के दर्शन हो जाने पर रात्रि मानते हैं और दूसरे मनीषी

प्राण एक मुहूर्त्त तम दिन के समय को ही नक्त कहा करते हैं। दो घडी का एक मुहूर्त्त होता है ॥१४॥

नक्षत्रदर्शनान्नक्तमहम्मन्ये गणाधिप ।
प्रस्थमात्र भवेत्पूप गोधूममयमुत्तमम् ॥१५॥
यवोद्भव वा कुर्वीत सगुड सर्पिषान्वितम् ।
सहिरण्य च दातव्य ब्राह्मण सेतिहासके ॥१६॥
भौमे दिव्येऽथ वा देय न्यसेद्वा पुरतो रवे ।
दातव्यो मन्त्रतश्चाय मडको ग्राह्य एव हि ॥१७॥
भूत्वादित्येन वै भक्त्या आदित्य तु नमस्य च ।
आदित्यतेजसोत्पन्न राज्ञीकरविनिर्मितम् ।
श्रेयसे मम विप्र त्व प्रतीच्छापूपमुत्तमम् ॥१८॥
कामद सुखद धर्म्यं धनद पुत्रद तथा ।
सदास्तु ते प्रतीच्छामि मडक भास्करप्रियम् ॥१९॥
एतौ चैव महामन्त्रौ दानादाने रविप्रियौ ।
अपूपस्य गणश्रेष्ठ श्रूयते नात्र सशय ॥२०॥

हे गणाधिप ! मैं तो नक्षत्रों का जिस समय दर्शन हो जावे उस समय को ही नक्त मानता हूँ। पूप (पूआ) एक प्रस्थ प्रमाण के उत्तम गोधूम (गेहूँ) चून के होने चाहिये ॥१५॥ यदि गोधूम का अभाव हो तो विकल्प मे जौ के चून के ही गुड और घृत से पूप बना लेने चाहिये । इतिहास के वक्ता ब्राह्मण को सुवर्ण की दक्षिणा के सहित पूओ का दान करना चाहिए ॥१६॥ अथवा दिव्य भौम म देने चाहिये । अथवा सूर्य के आगे रख देवे । यह मन्त्र से देना चाहिये । मण्डक ग्राह्य ही होता है ॥१७॥ आदित्य से होकर भक्ति पूवक आदित्य को नमस्कार करके आदित्य के तज से उत्पन्न तथा राज्ञी के हाथ द्वारा विशेष रूप से बनाये हुए हे विप्र ! मेरे कल्याण करने के लिए इन उत्तम पूपो को ग्रहण करो । कामनाओं के प्रदान करने वाले, सुख देने वाले धम से समन्वित, धन के दाता और पुत्र प्रदान करने वाले भास्कर भगवान् के प्रिय मडक देता हूँ जो सदा तुम्हारे लिए होवें ॥१८॥१९॥ हे गणश्रेष्ठ ! ये दोनो ही दान

और आदान मे रवि के परम प्रिय महा मन्त्र है जो कि अपूप के होते हैं। य कल्याण के लिए हैं इसमे कुछ भी सशय नही है ॥२०॥

एप नदविधि प्रोक्तो नराणा श्रेयसे विभो ।
अनेन विधिना यस्तु नर पूजयते रविम् ।
सर्वपापविनिर्मुक्त सूर्यलोके महीयते ॥२१॥
न दारिद्र्य न रोगश्च कुले तस्य महात्मन ।
योऽनेन पूजयेद्भानु न क्षय सततेस्तथा ॥२२॥
सूयलोकाच्च्युतश्चासौ राजा भवति भूतले ।
बहुरत्नसमायुक्तस्तेजसाद्विजसनिभ ॥२३॥
पठता शृण्वता चेद विधान त्रिपुरातक ।
क ददात्यचल दिव्यमबुजामचला तथा ॥२४॥

हे विभो ! मानवो के श्रेय सम्पादन करने के लिए यह नन्द की विधि बतादी गई है। इस विधान से जो मनुष्य रवि का पूजन किया करता है वह समस्त प्रकार के पापो से विक्षेप रूप से छुटकारा पाकर सूयलोक मे प्रतिष्ठा प्राप्त करता है ॥२१॥ उस महान् आत्मा वाले पुरुष को न तो कभी दरिद्रता होती है और न उसके कुल मे कभी काइ रोग ही हुआ करता है। जो इस रीति से भानु का पूजन करता है उसके कभी स तति का क्षय नही होता। जब यह सूयलोक से च्युत होकर भूमण्डल मे आता है तो यहाँ राजा होता है और बहुत से रत्नो से समायुक्त होकर तेज से विप्र के तुल्य होता है। इस विधान को पढने तथा सुनने वालो को त्रिपुरा तक अचल दिव्य सुख और अचल लक्ष्मी देते है ॥२२॥२३॥२४॥



॥ सौरधर्ममाहात्म्यवर्णनम् ॥

पुनर्मे ब्रूहि विपेन्द्र सौर धर्ममनुत्तमम् ।
समासात्कथित ब्रह्मन्विस्तरेण प्रकीर्तय ॥१॥
साधुसाधु महाबाहो साधु पृष्टोऽस्मि भारत ।
त्वत्समो नास्ति लोकेऽस्मिन्सौर पार्थिवसत्तम ॥२॥

कीर्तयाम्यद्य त पुण्य सवाद पापनाशनम् ।
गरुडारुणयो राजन्पुरावृत्त नराधिप ॥३॥
सुखासीन पुरा राजन्नरुण सूर्यसारथिम् ।
उपगम्य महाबाहो गरुडो वाक्यमब्रवीत् ॥४॥
धर्माणामुत्तम धर्मं सर्वपापप्रणाशनम् ।
सौरधर्म खगश्रेष्ठ ब्रूहि मे कृत्स्नशोनघ ॥५॥
साधु वत्स महात्मासि धन्यस्त्व पापवर्जित ।
श्रोतुकामोऽसि यत्पुन सौरधर्ममनुत्तमम् ॥६॥
शृणु त्व कीर्तयाम्येप सुखोपाय महत्फलम् ।
परम सर्वधर्माणा सौरधर्ममनुत्तमम् ॥७॥

इस अध्याय मे सौरधर्म के प्रस्ताव के वर्णन मे गरुड और अरुण के सम्वाद का आरम्भ तथा सौरधर्म के माहात्म्य का वर्णन किया जाता है। राजा शतानीक ने कहा—हे विप्रेन्द्र ! आप परमोत्तम जो सौरधर्म हैं उसे कृपया पुन मुझे बतलाइये। अब तक आपने इस धर्म को बहुत ही सक्षेप मे कहा था। अब मेरा प्रार्थना है कि इसे विस्तार पूर्वक निरूपित कीजिए ॥१॥ सुमन्तु ऋषि ने कहा—हे महाबाहो ! बहुत अच्छा तुमने मुझसे पूछा है। हे भारत ! इस लोक मे तुम्हारे समान अन्य कोई भी राजा सौरधर्म मे अनुराग रखने वाला नही है ॥२॥ आज मैं उस परम पुण्य और पापो के नाश करने वाले सम्वाद को तुमसे कहता हू। हे नराधिप ! पहिले यह गरुड और अरुण का सम्वाद हुआ था ॥३॥ हे महाबाहो ! पहिले किसी समय मे सूर्य के सारथि अरुण के पास, जब कि वह सुख पूर्वक बैठे हुए थे, गरुड पहुंचे और उनसे यह वचन कहने लगे ॥४॥ हे खगश्रेष्ठ ! निष्पाप ! धर्मों मे सबसे उत्तम धर्म और समस्त पाप राशियो के नाश कर देने वाले सौरधर्म को आप मुझे पूर्ण रूप से बताने की कृपा करें ॥५॥ अरुण ने कहा—हे वत्स ! बहुत अच्छा, तुम महान् आत्मा वाले हो और परम धन्य हो तथा पापो से भी रहित हो। हे पुत्र ! तुम इस परम श्रेष्ठ सौरधर्म के सुनने की इच्छा वाले हो रहे हो। यह इच्छा

ही तुम्हारी धन्यता और निष्पापता प्रकट कर रही है ॥६॥ अब तुम श्रवण करो, मैं सुख के उपाय स्वरूप और महान् फल वाले तथा समस्त धर्मों में पर इस अत्युत्तम सौरधर्म को बतलाता हूं ॥७॥

अज्ञानार्णवमग्नानां सर्वेषां प्राणिनामयम् ।
सौरधर्मो ह्ययं श्रीमान्परतीरप्रदो यतः ॥८॥
ये स्मरंति रविं भक्त्या कीर्तयंति च ये खग ।
पूजयन्ति च ये नित्यं ते गताः परमं पदम् ॥९॥
आत्मद्रोहः कृतस्तेन जातेनेह खगाधिप ।
नार्चितो येन देवेशः सहस्रकिरणो रविः ॥१०॥
सुचिरं संभ्रमत्यस्मिन्दु खदे च भवार्णवे ।
जराभूतमहाग्राहे तृष्णावेलाकुलापरे ॥११॥
मानुष्यं दुर्लभं प्राप्य येऽर्चयति दिवाकरम् ।
तेषां हि सफलं जन्मकृतार्थस्ते नरोत्तमाः ॥१२॥
सूर्यभक्तिपरा ये च ये च तद्गतमानसाः ।
ये स्मरंति सदा सूर्यं न ते दुःखस्य भागिनः ॥१३॥
विविधानि मनोज्ञानि विविधाभरणाः स्त्रियः ।
धनं वा दृष्टपर्यंतं सूर्यपूजाविधेः फलम् ॥१४॥

अज्ञान के सागर मे निमग्न समस्त प्राणियो को यह श्री मान् सौरधर्म दूसरे तट पर लगा देने वाला होता है अर्थात् अज्ञानियो का यह उद्धार कर देने वाला है ।।८।। हे खग ! जो लोग भक्ति भाव से रविका स्मरण करते हैं और उसका कीर्तन किया करते हैं तथा नित्य ही उसका भजन किया करते है वे परम पद को चले जाते है ॥९॥ हे खगाधिप ! जिसने यहाँ लोक मे जन्म ग्रहण करके इस देवेश का अर्चन नही किया है जो कि सहस्र किरणो वाला भगवान् रवि है, उसने आत्मा से ही द्रोह किया है ॥१०॥ भगवान रवि की अर्चना न करने वाला पुरुष बहुत अधिक समय तक इस दु ख देने वाले ससार रूपी सागर मे जिसमे जरा (बुढापा) भूत महान् ग्रह रहते हैं और जो तृष्णा की वेला से आकुल हैं। भ्रमण किया करता है अर्थात् ससार मे ही पड़ा हुआ

चक्कर काटा करता है और महान् दुःख भोगता है ॥११॥ यह मनुष्य जीवन परम दुर्लभ होता है क्योंकि अत्यधिक पुण्य पुंज से ही यह मिला करता है। ऐसे मनुष्य जीवन को प्राप्त करके जो भगवान् दिवाकर का पूजन सदा किया करते हैं उनका ही जन्म लेना सफल है और नर श्रेष्ठ कृतार्थ होते हैं ॥१२॥ जो लोग भगवान् सूर्य देव की भक्ति में परायण होते हैं और जो सूर्यदेव के चरणों में अपना मन लगा देने वाले हैं तथा जो सदा सूर्य का स्मरण किया करते हैं वे कभी भी किसी प्रकार के दुःख के भागी नहीं होते हैं ॥१३॥ अनेक प्रकार के सुन्दर पदार्थ और नाना-भाँति के आभूषणों से भूषित स्त्रियाँ तथा अटूट धन ये सभी भगवान् सूर्यदेव की पूजा के फल हुआ करते हैं ॥१४॥

ये वाञ्छन्ति महाभोगान्राज्यं वा त्रिदशालये ।
सौभाग्यं कान्तिमतुलां भोगं त्यागं यशः श्रियम् ॥१५॥
सौन्दर्यं जगतः ख्यातिं कीर्तिर्धर्मादयः स्मृताः ।
फलान्येतानि वै पुत्र सूर्यभक्तिविधेर्बुध ॥१६॥
तस्मात्सम्पूजयेत्सूर्यं सर्वदेवगणार्चितम् ।
दुर्लभा भास्करे भक्तिर्दुर्लभं च तदर्चनम् ॥१७॥
दानं च दुर्लभं तस्मै तद्धोमश्च सुदुर्लभः ।
दुर्लभं तस्य विज्ञानं तदभ्यासोऽपि दुर्लभः ॥१८॥
सदुर्लभतरं ज्ञेयं तदाराधनमुत्तमम् ।
लोभस्तेषां मनुष्याणां ये रविं शरणं गताः ॥१९॥
येषामिहेश्वरे भानौ नित्यं सूर्ये गतं मनः ।
नमस्काराादिसंयुक्तं रविरित्यक्षरद्वयम् ॥२०॥

जो लोग महान् भोगों के सुखों को प्राप्त करने की इच्छा रखते हैं—जो राज्यासन पाना चाहते हैं अथवा स्वर्ग में सौभाग्य प्राप्त करने की इच्छा करते हैं एवं अतुल कान्ति, भोग, त्याग, यश, श्री, सौन्दर्य जगत् की ख्याति, कीर्ति और धर्म आदि चाहते हैं उन्हें सूर्य की भक्ति करनी चाहिये क्योंकि ये सब सूर्य भक्ति के विधि में ही फल हुआ करते हैं। अतः हे पुत्र! सूर्य की भक्ति अवश्य ही करो ॥१५॥१६॥ इस कारण से समस्त देवगणों के द्वारा समर्चित

सूयदेव का पूजन करना चाहिये। भगवान् भास्कर मे भक्ति का करना इस लोक मे से परम दुलभ है और सूय का यजनाचन करना भी महा दुलभ होता है ॥१७॥ उसके लिए दान देना अति दुलभ होना है तथा उसके निए होम करना महान् दुलभ है। उसका विज्ञान प्राप्त करना भी कठिन है और फिर उसका अभ्यास करना भी दुलभ होता है ॥१८॥ उसके उत्तम आराधन का विधान जान लेना कठिन होता है। इसका लाभ उन्ही मनुष्यो को होता है जो भगवान् रविदेव की शरण मे चले जाया करते हैं ॥१९॥ स लोक मे जिनका मन नित्य ही ईश्वर भानुदेव मे चला गया है और 'रवि' ये दो अक्षर जिसको नमस्कार प्राप्ति से सयुक्त होते हैं वह सफल जीवन वाला पुरुष है ॥२०॥

जिह्वाग्र वर्तते यस्य सफल तस्य जीवितम् ।
य एव पूजयेद्भानु श्रद्धया परयान्वित ।
मुच्यते सवपापेभ्य स नरो नात्र सशय ॥२१॥
डाकिन्यो विविधाकारा राक्षसा सपिशाचका ।
न तस्य पीडा कुर्वति तथान्याश्च विभीषणा ॥२२॥
शत्रवो नाशमायाति सग्रामे जयमाप्नुयात् ।
न रोगै पीड्यते वीर आपदो न स्पृशति तम् ॥२३॥
धनमायुयशो विद्या प्रभावोह्यतुल तथा ।
शुभेनोपचय याति नित्य पूर्णमनोरथा ॥२४॥

जिसकी जिह्वा के अग्रभाग पर भगवान् रवि के नाम के दो अक्षर स्थान प्राप्त कर लेते हैं उनका जीवन सार्थक हो जाता है। जो इस प्रकार से परम श्रद्धा के भाव से युक्त होकर भगवान् भानुदेव की पूजा किया करता है वह समस्त पापो से छुटकारा पा जाया करता है—इसमे तनिक सशय नही है॥२१॥ विविध आकार वाली डाकिनियो पिशाच और राक्षस ये सब उसको कुछ भी पीडा नही करते हैं। इनके अतिरिक्त अन्य भीषण जीव भी उसे नही सताते हैं ॥२२॥ सूय की उपासना करने वाले मनुष्य के शत्रुगण नाश को प्राप्त हो जाते हैं और वे सग्राम मे विजय प्राप्त किया करते हैं। हे वीर! उसे कोई भी

रोग-पीडा नही देता है और आपत्तियाँ उसका कभी स्पर्श तक नही किया करती है ॥२३॥ सूर्योपासक मनुष्य धन, आयु, यश, विद्या, अतुल, प्रभाव और शुभ से उपचय प्राप्त करते हैं। तथा सदा उनके सभी मनोरथ पूर्ण हो जाते हैं ॥२४॥



॥ ब्रह्मकृतसूर्यस्तुतिवर्णनम् ॥

पूजयित्वा रविं भक्त्या ब्रह्मा ब्रह्मत्वमागत. ।
विष्णुत्व चापि देवेशो विष्णुराप तदर्चनात् ॥१॥
शकरोऽपि जगन्नाथ. पूजयित्वा दिवाकरम् ।
महादेवत्वमगमत्तत्प्रसादात्खगाधिप ॥२॥
सहस्राक्षोपि देवेश इन्द्रो भानुं तपोमहम् ।
इन्द्रत्वमगमद्देव पूजयित्वा दिवाकरम् ॥३॥
मातरो देवगधर्वा पिशाचोरगराक्षसा ।
पूजयति सदा भानुमीशान सुरनायकम् ॥४॥
सर्वमेतज्जगन्नित्य भानौ देवे प्रतिष्ठितम् ।
तस्मात्सपूजयेद्भानुं य इच्छेत्स्वगमक्षयम् ॥५॥
यो न पूजयते सूर्य भास्कर तमसूदनम् ।
धर्मार्थकाममोक्षाणा न नरो भाजन भवेत् ॥६॥
तस्मा कार्यं हि तद्ध्यान यावज्जीव प्रतिज्ञया ।
अर्चयेत सदा भानुमापन्नोऽपि सदा दग ॥७॥

इस अध्याय में अन्य समस्त देवताओं की अपेक्षा सूर्य की श्रेष्ठता का वर्णन तथा ब्रह्मा के द्वारा की हुई स्तुति का वर्णन किया जाता है। अरुण ने कहा ब्रह्मा जी ने जो ब्रह्मत्व की प्राप्ति की थी वह भक्ति के साथ रविदेव की पूजा करने ही की थी। देवों के ईश भगवान् विष्णु जी विष्णुत्व के पद को सूर्य के अर्चन से ही प्राप्त हुए हैं ॥१॥ भगवान् शङ्कर भी समस्त जगत् नाथ दिवाकर की पूजा करके ही हुए हैं। हे खगाधिप ! सूर्य के प्रसाद से ही शङ्कर

सर्वेषामेव पात्राणामतिपात्र   दिवाकर   ।
पतन्त त्रायते यस्मादतीव   नरकार्णवात् ॥२०॥
तस्य पात्रातिपात्रस्य माहात्म्य दानमण्वपि ।
अनेन   फलमादिष्टमिहलोके   परत्र   च ॥२१॥

सूर्य के भक्त दम्भ और मत्सरता से रहित होते हैं, तथा तृष्णा और लोभ से वर्जित हुआ करते हैं। वे सविभाग परायण कहे गए हैं। वे शठ और कुत्सित नही होते है ॥१५॥ सूर्य भक्त मनुष्य विषयो मे कभी लिप्त नही रहते हैं जिस तरह पद्मिनी के पत्र जल मे रह कर भी जल से निर्लिप्त रहते हैं। वे कभी दान और मानी नही होते है तथा कभी रोगवशानुगमी नही होते हैं ॥१६॥ सूर्यभक्त भावित आत्मा वाले सुस्निग्ध और साधु सवित हुआ करते हैं। वे पाणि, पाद वाणी, चक्षु श्रोत्र शिश्न और उदर मे राग रखने वाले नही होते हैं। सूर्यभक्त कभी चापल्य नही दिखाया करते हैं। वे सदा सबके व्यासङ्ग से वर्जित होते है। सूर्यभक्त सूर्य की उपासना मे आसन मे रति करने वाले शान्त और षडक्षर मन्त्र को मन मे धारण करने वाले होते हैं ॥१७॥१८॥ इस प्रकार के आचार से युक्त जो मानव इस भूमण्डल मे होते है वे एकान्त भक्ति मे स्थित होकर धर्म काम और अर्थ की सिद्धि के लिए योग्य होते हैं ॥१९॥ इन गुणो के होने पर रवि देव नित्य ही पूजा करने के योग्य होते हैं। समस्त पात्रो मे दिवाकर अति पात्र होते हैं। जिस नरक रूपी समुद्र से अत्यन्त पतन होने वाले की रक्षा करते हैं ॥२०॥ उस पात्राति पात्र का अणु मात्र भी दान का बडा अधिक माहात्म्य होता है। इससे इस लोक और परलोक म फल बताया गया है ॥२१।

द्रव्येणापि हि य कुर्यान्नर रम तदान्ये ।
सोऽपि देहक्षये ज्ञान प्राप्य शान्तिमवाप्नुयात् ॥२२॥
सर्वद्विजन्देषु कश्चिज्ज्ञानमवाप्नुयात् ।
यश्चिदेतत्तु मे दिव्य लब्ध्वा ज्ञान विमुच्यति ॥२३॥
तावद्भ्रमति ससारे दु खदोषपरिप्लुता ।
न भवति स्वभक्ता यावत्सर्वेऽपि दहिन ॥२४॥

सूर्यस्यालेपन पुण्य द्विगुण चन्दनस्य तु ।
चन्दनादगुरौ ज्ञेय पुण्यमष्टगुणोत्तरम् ॥२५॥
कृष्णागुरौ विशेषेण द्विगुण फलमिष्यते ।
तस्माच्छतगुण पुण्य कुकुमस्य विधीयते ॥२६॥
सूर्ययज्ञोपकरण कृत्वाल्प यदि वा बहु ।
भावाद्वित्तानुसारेण सूर्यलोके महीयते ॥२७॥
यदपीष्टमनिष्ट च न्यायेनोभयमागतम् ।
तत्सूर्याय निवेद्य सद्भक्त्यानन्तफलार्थिना ॥२८॥

जो कोई मानव द्रव्य के द्वारा भी उसके आलय मे कर्म करता है वह भी देह के क्षय हो जाने पर ज्ञान की प्राप्ति कर परम शान्ति को प्राप्त किया करता है ॥२२॥ समस्त द्विजो के समूह मे कोई ही एक ज्ञान की प्राप्ति किया करता है और उनमे भी कोई एक ही मेरे दिव्य ज्ञान का लाभ कर विमुक्त होता है ॥२३॥ उस समय तक इस ससार मे दु ख और शोक से परिप्लुत होते हुए ये देहधारी भ्रमण किया करते हैं जब तक समस्त देही भगवान् रवि के भक्त नहीं हुआ करते हैं ॥२४॥ चन्दन का आलेपन भगवान् सूर्यदेव को करना दुगना पुण्य होता है और चन्दन लेपन से भी आठ गुना पुण्य अगुरु मे समझ लेना चाहिये ॥२५॥ कृष्ण अगुरु मे विशेष रूप से द्विगुण फल कहा जाता है । इससे कृष्ण गुरु से सौ गुना पुण्य कुड्कुम का लेपन का होता है ॥२६॥ भगवान् सूर्यदेव के यज्ञ के इन उपकरणो को, चाहे थोडे हो या बहुत हों, करके किन्तु भक्ति के भाव से करने से और अपनी वित्त की शक्ति के अनुसार करने से यह मानव अन्त म सूर्यलोक मे जाकर प्रतिष्ठा प्राप्त किया करता है ॥२७॥ जो भी इष्ट और अनिष्ट हो तथा न्याय से दोनो आगत हो वह सूर्य के लिए सद्भक्ति से फल के चाहने वाले को निवेदन कर देना चाहिये ॥२८॥

कर्मशाठ्येन य कुर्याद्दु खेनापि तदर्चनम् ।
सोऽपि द्विजो दिव यति कर्मणा पापवर्जित ॥२९॥
सर्वमन्यत्परित्यज्य सर्यं चैकमना सदा ।
सूर्यपूजाविधि कुर्याच्च इच्छेच्छ्रेय आत्मन ॥३०॥

महादेवत्व को प्राप्त हुए हैं ॥२॥ एक सहस्र नेत्रों वाला भी देवों का स्वामी इन्द्र है उसने भी तपोमह दिवाकर भानुदेव की पूजा करके इन्द्रत्व को प्राप्त किया है ॥३॥ मातृवग देवगण गन्धर्व पिशाच उरग और राक्षस सभी सुरो के नायक ईशान भानु की सदा पूजा किया करते है ॥४॥ यह समस्त जगत् देवभानु मे ही नित्य प्रतिष्ठित रहता है। इसलिए यदि स्वर्ग के अमर निवास की इच्छा रखते हो तो भानु की पूजा भली भांति से करनी चाहिये ॥५॥ जो तम के सूदन करने वाले भास्कर सूर्य की पूजा नही करता है वह मनुष्य धर्म अर्थ काम और मोक्ष का प्राप्त करने का पात्र नही होता है ॥६॥ इससे प्रतिज्ञा करके जब तक जीवित रहे उसका ध्यान करना चाहिये। हे खग ! आपत्ति ग्रस्त होकर भी सदा भानु का अर्चन करते रहना चाहिये ॥७॥

यस्तु सतिष्ठते नित्य विना सूर्यस्य पूजनात् ।
वर प्राणपरित्याग शिरसो वाथ च्छेदनम् ॥८॥
सूर्य सपूज्य भुञ्जीत त्रिदशेश दिवाकरम् ।
इत्थ निवहते यस्य यावज्जीव तदर्चनम् ।
मनुष्यचर्मणा नद्ध स रविर्नात्र सशय ॥९॥
नहि सूर्यार्चनादन्यत्पुण्यमप्यधिक भवेत् ।
इति विज्ञाय यत्नेन पूजस्व दिवाकरम् ॥१०॥
सूर्यभक्तागमार्श्चव सूर्यार्चनपरायणा ।
सयता धर्मसपन्ना धर्मादीन्साधयति ते ॥११॥
सवद्वद्वमहा वीरा नीतिविन्युक्तचेतस ।
परोपकारनिरता गुरुशुश्रूषणे रता ॥१२॥
अमानिनो बुद्धिमन्ताऽव्यक्तस्पर्धा गतस्पृहा ।
शाता स्वातगता भद्रा नित्य स्वागतवादिन ॥१३॥
स्वल्पवाच सुमनस शूरा शास्त्रविशारदा ।
शौचाचारसुसपन्ना तथादाक्षिण्यगोचरा ॥१४॥

जो मनुष्य बिना सूर्य की पूजा के नित्य रहा करता है इससे तो उसका

अपने प्राणों का त्याग कर देना ही अच्छा है अथवा अपने शिर का छेदन कर लेना चाहिए ॥८॥ देवों के स्वामी दिवाकर सूर्य की पूजा करके सदा भोजन करना चाहिये । जो इस प्रकार से अपने क्रम का निर्वाह करता है और जब तक जीवित रहता है तब तक बराबर सूर्य का यजनार्चन किया करता है वह मनुष्य के चम से नद्ध रवि ही है अर्थात् मनुष्य के चोला में रहने वाला साक्षात् सूर्य ही होता है —इसमें तनिक भी संशय की बात नहीं है ॥९॥ अर्क अर्थात् सूर्य देव की अर्चना से अधिक कोई भी पुण्य नहीं होता है, ऐसा जान, समझकर यत्न पूर्वक दिवाकर की पूजा करो ॥१०॥ सूर्य की भक्ति करने वालो में आगम जो कि सूर्य की अर्चना में परायण होते हैं, संयत एवं धर्म से सम्पन्न हैं वे धर्मादि का साधन करते हैं ॥११॥ जो सूर्यभक्त हैं वे समस्त द्वन्द्वों के सहन करने वाले, धीर, नीति की विधि से युक्त चित्त वाले, परोपकार करने निरत रहने वाले, गुरु की सेवा में अनुराग वाले होते हैं ॥१२॥ वे अमानी, बुद्धिमान, अव्यक्त स्पर्धा वाले, गतस्पृह, शान्त, स्वान्तमन, भद्र और नित्य स्वागत वादी हुआ करते हैं ॥१३॥ सूर्यभक्त थोड़ा बोलने वाले, अच्छे मन वाले, शूर, शास्त्रों के पंडित, शौच और आचार से सुसम्पन्न और दाक्षिण्य से गोचर अर्थात् प्रकट होने वाले होते हैं ॥१४॥

दम्भमत्सरनिर्मुक्तास्तृष्णालोभविवर्जिता ।
संविभागपरा प्रोक्ता न शठाश्चाप्यकुत्सिता ॥१५॥
विषयेष्वपि निर्लेपा पद्मपत्रमिवाम्भसा ।
न दीना मानिनश्चैव न च रोगवशानुगा ॥१६॥
भवंति भावितात्मान सुस्निग्धा साधुसेविता ।
न पाणिपादवाक्चपला श्रोत्रशिश्नोदरे रता ॥१७॥
चपलानि न कुर्वंति सर्वव्यासनवर्जित ।
सूर्यार्चनरत ज्ञाता षडक्षरमनोगता ॥१८॥
इत्याचारसमायुक्ता भवंति भुवि मानवा ।
एतातभक्तिमास्थाय धर्मकामार्थसिद्धये ॥१९॥
पूजनीयो रविर्नित्य गुणैष्वेषु वर्तते ।

सर्वेषामेव पात्राणामतिपात्रं दिवाकरः ।
पतन्त त्रायते यस्मादतीव नरकार्णवात् ॥२०॥
तस्य पात्रातिपात्रस्य माहात्म्य दानमण्वपि ।
अनेन फलमादिष्टमिहलोके परत्र च ॥२१॥

सूर्य के भक्त दम्भ और मत्सरता से रहित होते हैं, तथा तृष्णा और लोभ से वर्जित हुआ करते हैं। वे सविभाग परायण कहे गए हैं। वे शठ और कुत्सित नहीं होते हैं ॥१५॥ सूर्य भक्त मनुष्य विषयों में कभी लिप्त नहीं रहते हैं जिस तरह पद्मिनी के पत्र जल में रह कर भी जल से निर्लिप्त रहते हैं। वे कभी दीन और मानी नहीं होते हैं तथा कभी रोगवशानुगमी नहीं होते हैं ॥१६॥ सूर्यभक्त भावित आत्मा वाले, सुस्निग्ध और साधु सेवित हुआ करते हैं। वे पाणि, पाद, वाणी, चक्षु, श्रोत्र, शिश्न और उदर में राग रखने वाले नहीं होते हैं। सूर्यभक्त कभी चापल्य नहीं दिखाया करते हैं। वे सदा सबके व्यामङ्ग से वर्जित होते हैं। सूर्यभक्त सूर्य की उपासना में आसन में रति करने वाले, शान्त और षडक्षर मन्त्र को मन में धारण करने वाले होते हैं ॥१७॥१८॥ इस प्रकार के आचार से युक्त जो मानव इस भूमण्डल में होते हैं वे एकान्त भक्ति में स्थित होकर धर्म काम और अर्थ की सिद्धि के लिए योग्य होते हैं ॥१९॥ इन गुणों के होने पर रवि देव नित्य ही पूजा करने के योग्य होते हैं। समस्त पात्रों में दिवाकर अति पात्र होते हैं। जिस नरक रूपी समुद्र से अत्यन्त पतन होने वाले की रक्षा करते हैं ॥२०॥ उस पात्राति पात्र का अणु मात्र भी दान का बड़ा अधिक माहात्म्य होता है। इससे इस लोक और परलोक में फल बताया गया है ॥२१।

इत्थेनापि हि य कुर्यान्नर कर्म तदानघे ।
सोऽपि देहक्षये ज्ञान प्राप्य ज्ञानिमवाप्नुयात् ॥२२॥
सर्वद्विजादवेतु धर्मज्ञानमवाप्नुयात् ।
यस्त्रिदेवत्त्व मे दिव्य लब्ध्वा ज्ञान विमुञ्चति ॥२३॥
तावद्भ्रमति संसारे दुःखशोकपरिप्लुतः ।
न भक्ति र्नेव धर्मेण यावत्तत्त्वमिति देहिनः ॥२४॥

सूर्यस्यालेपन पुण्य द्विगुण चन्दनस्य तु ।
चन्दनादगुरौ ज्ञ य पुण्यमष्टगुणोत्तरम् ॥२५॥
कृष्णागुरौ विशेषेण द्विगुण फलमिष्यते ।
तस्माच्छतगुण पुण्य कु कुमस्य विधीयते ॥२६॥
सूययज्ञोपकरण कृत्वाल्प यदि वा बहु ।
भावाद्वित्तानुसारेण सूर्यलोके महीयते ॥२७॥
यदपीष्टमनिष्ट च न्यायेनोभयमागतम् ।
तत्सूर्याय निवेद्य सद्भक्त्यान तफलार्थिना ॥२८॥

जो कोई मानव द्रव्य के द्वारा भी उसके आलय मे कर्म करता है वह भी देह के क्षय हो जाने पर ज्ञान की प्राप्ति कर परम शान्ति को प्राप्त किया करता है ॥२२॥ समस्त द्विजो के समूह मे कोई ही एक ज्ञान की प्राप्ति किया करता है और उनमे भी कोई एक ही मेरे दिव्य ज्ञान का लाभ कर विमुक्त होता है ॥२३॥ उस समय तक इस ससार मे दु ख और शोक से परिप्लुत होते हुए ये देहधारी भ्रमण किया करते हैं जब तक समस्त देही भगवान् रवि के भक्त नहीं हुआ करते हैं ॥२४॥ चन्दन का आलेपन भगवान् सूयदेव को करना दुगना पुण्य होता है और चन्दन लेपन से भी आठ गुना पुण्य अगुरु मे समझ लेना चाहिए ॥२५॥ कृष्ण अगुरु मे विशेष रूप से द्विगुण फल कहा जाता है । इससे कृष्ण गुरु से सौ गुना पुण्य कुडकुम का लेपन का होता है ॥२६॥ भगवान् सूयदेव के यज्ञ के इन उपकरणो को, चाहे थोडे हो या बहुत हो, करके किन्तु भक्ति के भाव से करने से और अपनी वित्त की शक्ति के अनुसार करने से यह मानव अत म सूयलोक म जाकर प्रतिष्ठा प्राप्त किया करता है ॥२७॥ जो भी इष्ट और अनिष्ट हो तथा न्याय से दोनो आगत हो वह सूय के लिए सद्भक्ति से फल के चाहने वाले को निवेदन कर देना चाहिये । २८॥

कमणाठ्येन य कुर्याद्दु खेनापि तदचनम् ।
सोऽपि द्विजो दिव याति कमणा पापवर्जित ॥२६॥
गवमन्यत्परित्यज्य सर्वं चैवमना सदा ।
सूयपूजाविधि कुर्याच्च इच्छेच्छ्रेय आत्मन ॥३०॥

त्वरित जीवित याति त्वरित यौवन तथा ।
त्वरित व्याधिरप्येति तस्माच्छित्य रवि व्रजेत् ॥३१॥
यावन्नाभ्येति मरण यावन्नाक्रमते जरा ।
यावन्नेंद्रियवैकल्य तावदर्चेद्दिवाकरम् ॥३२॥
न सूर्यार्चनतुल्योपि न धर्मोन्यो जगत्रये ।
इत्य विज्ञाय देवेश पूजयस्व दिवाकरम् ॥३३॥
ये भक्त्या देवदेवेश सूर्यं शातमज प्रभुम् ।
इह लोके सुख प्राप्य ते गता परम पदम् ॥३४॥
गोपति पूजयित्वा तु प्रहृष्टेनातरात्मना ।
कृताजलिपुटो भूत्वा पुरा ब्रह्माब्रवीदिदम् ॥३५॥

जो कोई कर्म की शठता से दु ख रहित होकर भी उसकी अर्चन किया करता है वह द्विज भी कर्म के द्वारा पाप से रहित होकर स्वर्गलोक को चला जाता है ॥२९॥ अन्य सबका परित्याग करके सदा एक मन वाला सूर्यदेव मे रहे और यदि अपने आपका श्रेय चाहता है तो उसे सूर्य की पूजा की विधि को करना चाहिये ॥३०॥ यह जीवन बहुत ही शीघ्र समाप्त हो जाया करता है तथा यह यौवन भी शीघ्र चला जाता है । शीघ्र ही व्याधियाँ इस शरीर को घेर लिया करती हैं इसलिए नित्य ही भगवान् रवि की शरण मे चले जाना चाहिये ॥३१॥ जब तक मौत नही प्राप्त होती है और जिस समय तक वृद्धावस्था आकर शरीर को नही घेर लेती है तथा जिस वक्त तक इन्द्रियो की शक्ति क्षीण नही होती है तब तक ही दिवाकर की अर्चना का कर्म कर लेना चाहिए क्योंकि फिर इसे यह मान व असमर्थ होकर नही कर सकता है और यह मानव जीवन यो ही व्यर्थ निकल जाया करता है ॥३२॥ भगवान् सूर्यदेव की पूजा के समान इस जगत्त्रय मे अन्य कोई भी धर्म का कार्य नहीं होता है । इस प्रकार से समझकर देवेश दिवाकर का पूजन करो ॥३३॥ जो मानव भक्ति पूर्वक शान्त,अज प्रभुदेव देवेश सूर्य की पूजा किया करते हैं वे इस लोक मे सुख प्राप्त करके परम पद को प्राप्त हो जाते हैं ॥३४॥ अपनी परम प्रहृष्ट अन्तरात्मा से गोपति की पूजा करके और अपनी अञ्जलि बाँधकर पहिले ब्रह्माजी ने यह कहा था ॥३५॥

भगवन्त भगहर शान्तचित्तमनुत्तमम् ।
देवमार्गप्रणेतारं प्रणतोऽस्मि रविं सदा ॥३६॥
शाश्वतं शोभनं शुद्धं चित्रभानुं दिवस्पतिम् ।
देवदेवेशमीशेशं प्रणतोऽस्मि दिवाकरम् ॥३७॥
सर्वदुःखहरं देवं सर्वदुःखहरं रविम् ।
वराननं वराङ्गं च वरस्थानं वरप्रदम् ॥३८॥
वरेण्यं वरदं नित्यं प्रणतोऽस्मि विभावसुम् ।
अर्कमर्यमणं चेन्द्रं विष्णुमीशं दिवाकरम् ॥३९॥
देवेश्वरं देवरतं प्रणतोऽस्मि विभावसुम् ।
य इदं शृणुयान्नित्यं ब्रह्मणोक्तं स्तवं परम् ।
स हि कीर्तिं परां प्राप्य पुनः सूर्यपुरं व्रजेत् ॥४०॥

ब्रह्माजी ने कहा— भग अर्थात् षडैश्वर्य के करने वाले—शान्त चित्त से युक्त, सर्वश्रेष्ठ, भगवन्‌ देवों के मार्ग के प्रणेता रविदेव को मैं सदा प्रणाम करता हूँ ॥३६॥ जो देवदेवेश शाश्वत, शोभन, शुद्ध, दिवस्पति, चित्रभानु, दिवाकर और ईशों के भी ईश हैं उनको मैं प्रणाम करता हूँ ॥३७॥ समस्त प्रकार के दुःखों को हरण करने वाले देव तथा सर्व दुःख हर रवि-वर आनन वाले, श्रेष्ठ अङ्गों वाले, वर के स्थान और वर प्रदान करने वाले, वरेण्य,नित्य ही वरद ऐसे भगवान् विभावसु को मैं प्रणाम करता हूँ। अर्क, अर्यमणा, इन्द्र, विष्णु,ईश, दिवाकर, देवेश्वर देवरत और विभावसु को मैं प्रणाम करता हूँ। इस प्रकार की ब्रह्मा के द्वारा की हुई इस स्तुति का जो नित्य श्रवण किया करता है वह परम कीर्ति का लाभ लेकर फिर सूर्यपुर में चला जाता करता है ॥३८॥३९॥४०॥



॥ विवाह विधिवर्णनम् ॥

असपिण्डा च या मातुरसगोत्रा च या पितुः ।
सा प्रशस्ता द्विजातीनां दारकर्मणि मैथुने ॥१॥

सहजो न भवेद्यस्या न च विज्ञायते पिता ।
नोपयच्छेत ता प्राज्ञ. पुत्रिकाधर्मशकया ॥२॥
ब्राह्मणाना प्रशस्ता स्यात्सवर्णा दारकर्मणि ।
कामशस्तु प्रवृत्तानामिमा स्यु क्रमशोऽवरा ॥३॥
क्षत्रस्यापि सवर्णा स्यात्प्रथमा द्विजसत्तमा ।
द्वे चावरे तथा प्रोक्ते कामतस्तु न धर्मत ॥४॥
वैश्यस्यैका वरा प्रोक्ता सवर्णा चैव धर्मत ।
तथावरा कामतस्तु द्वितीया न तु धर्मत ॥५॥
शूद्रैव भार्या शूद्रस्य धर्मतो मनुरब्रवीत ।
चतुर्णामपि वर्णाना परिणता द्विजोत्तम ॥६॥
न ब्राह्मणक्षत्रिययोरापद्यपि हि तिष्ठतो ।
कस्मिंश्चिदपि वृत्ताते शूद्रा भार्योपदिश्यते ॥७॥
हीनजातिस्त्रिय मोहादुद्वहतो द्विजातय ।
कुलान्येव नयत्याशु ससतानानि शूद्रताम् ॥८॥

इस अध्याय मे विवाह की विधि का वर्णन किया गया है । ब्रह्माजी ने कहा – जो नारी अपनी माता की सपिण्ड न हो और पिता के गोत्र वाली न हो वही स्त्री द्विजातियो के यहाँ स्त्री के कर्म मैथुन मे प्रशस्त मानी गई है ॥१॥ जिस नारी का सहज अर्थात् सगा भाई न हो और जिसके पिता का भी कोई ज्ञान न कि इसका पिता कौन है उसको प्राज्ञ पुरुष को पुत्रिका धर्म की शङ्का से उपयम नही करना चाहिये ॥२॥ ब्राह्मणो को सवर्णा नारी दारकर्म मे प्रशस्त मानी गई है। जो काम की वासना शान्त करने के लिए रक्खी जावें वे इन निम्न कथितो मे क्रम से अवर होती हैं ॥३॥ हे द्विजश्रेष्ठो ! क्षत्रिय के लिए जो सवर्णा अर्थात् उसके ही अपने वर्ण वाली स्त्री होती है वह उत्तम होती है और दो वैश्य एव शूद्र की कन्यायें उसी उक्त क्रम से अधम होती हैं ये काम वासना की ही पूर्ति करने वाली होती है धर्म के काम के लिए ही हैं ॥४॥ इसी प्रकार से वैश्य को भी एक सवर्णा स्त्री ही धर्म के कर्म मे श्रेष्ठ कही गई है और दूसरी जो असवर्णा होती है वह काम के लिए ही होती है, धर्म के लिए नही

है ॥५॥ शूद्र की एक ही शूद्राभार्या धर्म से मनुमहर्षि ने बतलाई है। द्विजोत्तम चारों वर्णों की कन्याओं का परिणेता होता है ॥६॥ ब्राह्मण और क्षत्रिय के लिए चाहे वे कितनी भी आपत्तियों में स्थित क्या न हों किसी भी वृत्तान्त में शूद्रभार्या का उपदेश नहीं दिया जाता है ॥७॥ जो द्विज निर्मोह से हीन जाति वाली स्त्री के साथ विवाह कर लेते हैं वे सन्तान के सहित अपने कुलों को शूद्र बना दिया करते हैं ॥८॥

शूद्रमारोप्य वेद्या तु पतितोनिर्वभूव ह ।
उतथ्य पुनजननात्पतितत्वमवाप्तवान् ॥९॥
शूद्रस्य पुनमासाद्य शौनक शूद्रता गत ।
भृग्वादयोप्येवमेव पतितत्वमवाप्नुयु ॥१०॥
शूद्रा शयनमारोप्य ब्राह्मणो यात्यधोगतिम् ।
जनयित्वा सुत तस्या ब्राह्मण्यादेव हीयते ॥११॥
दैवपि दारिथेयानि तत्प्रधानानि यस्य तु ।
नार्दति पितरो दवा स च स्वग न गच्छति ॥१२॥
वृषलीफेनपीतस्य निश्वासोपहतस्य च ।
तस्या चैव प्रसूतस्य निष्कृतिर्न विधीयते ॥१३॥
चतुर्णामपि विप्रेन्द्रा प्रेत्येह च हिताहितम् ।
समासतो ब्रवीम्येष विवाहाष्टकमुत्तमम् ॥१४॥
ब्राह्मो दैवस्तथा चार्ष प्राजापत्यस्तथासुर ।
गान्धर्वो राक्षसश्चैव पैशाचश्चाष्टमोऽधम ॥१५॥

पहले समय मे अत्रि ने वेदी पर शूद्रा स्त्री को आरोपित किया था और पतित हो गया था। उतथ्य ऋषि ने शूद्रा म पुत्र उत्पन्न किया था इसी कारण से वह पतित हो गया था ॥९॥ शूद्र के पुत्र को प्राप्त कर शौनक मुनि भी शूद्रत्व को प्राप्त हो गये थे। इसी प्रकार से भृगु आदि अन्य मुनिगण भी पतितत्व को प्राप्त हो चुके हैं ॥१०॥ ब्राह्मण शूद्रा नारी को अपनी शय्या मे सुलाकर अधोगति को प्राप्त हो जाता है और उसी शूद्र वर्ण की स्त्री मे यदि कोई पुत्र उत्पन्न कर लेता है तब तो वह अपने ब्राह्मणत्व को भी खो बैठा करता है ॥११॥ दैव

कर्म, पितृकर्म और आतिथेय कर्म जो कि ब्राह्मण के लिए सब से प्रधान बताये गये हैं। उनमें फिर ऐसे ब्राह्मण के पितर देव आदि अन्न ग्रहण नहीं किया करते हैं जो शूद्रा स्त्री के साथ भोग या सन्तानोत्पादन किया करता है और वह स्वर्ग में भी जाने का अधिकारी नहीं रहता है। १२॥ वृषली अर्थात् शूद्रा के फेन को पीने वाले और निश्वासा से उपहत होने वाले तथा शूद्रा में उत्पन्न होने वाले का कोई भी प्रायश्चित नहीं होता है ॥१३॥ हे विप्रेन्द्रगण! अब मैं चारों वर्णों के इस संसार में और यहाँ से मरने के पश्चात् जो हित और अहित होता है संक्षेप में बतलाता हूँ और आठ प्रकार के विवाह तथा उनमें कौन सा विवाह उत्तम होता है यह भी बतला रहा हूँ ॥१४॥ ब्राह्म दैव, आर्ष, प्राजापत्य, आसुर, गान्धर्व, राक्षस और आठवाँ अधम पैशाच विवाह होता है। ये उपर्युक्त आठ प्रकार के विवाह हुआ करते हैं ॥१५॥

विद्वद्भिः सेवितं धर्मं शास्त्रोक्तं च सुरोत्तम।
यदास्मासु सुरश्रेष्ठ कौतुकं परमं हि न ॥१६॥
विद्वद्भिः सेवितः सद्भिर्नित्यमद्वेषरागिभिः।
हृदयेनाभ्यनुज्ञातो यो धर्मस्तं निबोधत ॥१७॥
कामात्मता न प्रशस्ता न चैवेहास्त्यकामता।
काम्यो हि वेदाधिगमः कर्मयोगश्च वैदिकः ॥१८॥
संकल्पाज्जायते कामो यज्ञायाति च सर्वशः।
व्रता नियमधर्माश्च सर्वे संकल्पजाः स्मृताः ॥१९॥
अकामादिने क्रियाकारी दृश्यते नेह कर्हिचित्।
यद्यद्धि कुरुते कश्चित्तत्तत्कामस्य चेष्टितम् ॥२०॥
निगमो धर्ममूलं स्यात्स्मृतिशीले तथैव च।
तथाचारश्च साधूनामात्मनस्तुष्टिरेव च ॥२१॥

रुप और द्वेष तथा राग से रहित पुरुषों ने सेवन किया है एवं जो हृदय के द्वारा भी अभ्यनुज्ञात धर्म है उसे तुम भली भांति समझ लो ॥१७॥ इस संसार में कामात्मता का होना प्रशंसनीय नहीं होता है और वेदों की अकामता भी प्रशस्त (अच्छी) नहीं होती है क्योंकि वेदों का ज्ञान प्राप्त करना तो अत्यन्त काम्य होता है और जो वैदिक कर्मयोग है वह भी जानने के योग्य होता है ॥१८॥ मन के संकल्प से काम की उत्पत्ति हुआ करती है और भी कामों की पूर्ति यज्ञ से होती है। व्रत, नियम और धर्म सभी संकल्प से उत्पन्न होने वाले कहे गये हैं ॥१९॥ इस संसार में काम के बिना कोई भी कर्म करने वाला किसी भी समय में दिखलाई नहीं देता है। कोई भी पुरुष जो जो भी कुछ यहाँ किया करता है वह सभी काम का ही चेष्टित होता है अर्थात् हृदय में कुछ न कुछ इच्छा को लेकर ही सब लोग कर्मों में प्रवृत्त हुआ करते हैं ॥२०॥ जो पुरुष स्मृति कथित कर्म करने के स्वभाव वाला है उसमें नियम ही एक धर्म का मूल होता है। साधु पुरुषों का आचार और स्वयं अपनी आत्मा की सन्तुष्टि का होना भी धर्म का मूल कहा गया है ॥२१॥

सर्वं तु समवेक्षेत निखिलं ज्ञानचक्षुषा ।
श्रुतिप्राधान्यतो विद्वान्स्वधर्मे निवसेत वै ॥२२॥
श्रुतिस्मृत्युदितं धर्ममनुतिष्ठन्सदा नरः ।
प्राप्य चेह परां कीर्तिं याति शक्रसलोकताम् ॥२३॥
श्रुतिस्तु वेदो विज्ञेयो धर्मशास्त्रं तु वै स्मृतिः ।
ते सर्वार्थेषु मीमांस्ये ताभ्यां धर्मो हि निर्बभौ ॥२४॥
योऽवमन्येत ते चोभे हेतुशास्त्राश्रयाद्द्विजः ।
स साधुभिर्बहिष्कार्यो नास्तिको वेदनिन्दकः ॥२५॥
वेदः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः ।
एतच्चतुर्विधं विप्राः साक्षाद्धर्मस्य लक्षणम् ॥२६॥
धर्मज्ञानं भवेद्विप्रा अर्थकामेष्वसज्जताम् ।
धर्मं जिज्ञासमानानां प्रमाणं नैगमं परम् ॥२७॥

निषेकादिश्मशानान्तो मन्त्रैर्यस्योदितो विधि ।
अधिकारो भवेत्तस्य वेदेषु च जपेषु च ॥२८॥

अपनी ज्ञान की चक्षु से इन सभी का भली-भाँति प्रवेक्षण करना चाहिये और निश्चय पूर्वक करना चाहिए। विद्वान पुरुष का कर्तव्य है कि श्रुति की प्रधानता से ही अपने धर्म में निवास करे अर्थात् स्थित रहे ॥२२॥ श्रुति और स्मृतियों में हुए धर्म का अनुष्ठान करता हुआ मनुष्य यहाँ इस लोक में सदा परम कीर्ति की प्राप्ति किया करता है और अन्त में इन्द्र लोक में जाता है ॥२३॥ श्रुति से वेद जानना चाहिए और स्मृति धर्मशास्त्र होता है। समस्त कर्मों में इन्हीं दोनों का विचार करना चाहिए। इन दोनों से ही धर्म प्रकाशित हुआ था ॥२४॥ जो ब्राह्मण हेतुशास्त्र का आश्रय लेकर इन दोनों का अपमान किया करता है वह ईश्वर की सत्ता को न मानने वाला नास्तिक और वेद की बुराई करने वाला है। साधु पुरुषों के द्वारा इसका बहिष्कार कर देना चाहिये ॥२५॥ वेद, स्मृति सदाचार और जो अपनी आत्मा को प्रिय लगता हो यह चार प्रकार का साक्षात् धर्म का लक्षण होता है ॥२६॥ अर्थ कामों में असज्जत धर्म की जिज्ञासा (जानने की इच्छा) करने वालों को धर्म का ज्ञान होता है। प्रमाण से नैगम सर्व पर होता है ॥२७॥ निषेक से आदि लेकर श्मशान के अन्त तक मन्त्रों के द्वारा जिसकी विधि कही गई है, वेदों में और जपों से उसका ही अधिकार होता है ॥२८॥

सरस्वतीदृषद्वत्योर्देवनद्योर्यदन्तरम् ।
तदेव निर्मितं देशं ब्रह्मावर्तं प्रचक्षते ॥२९॥
यस्मिन्देशे य आचारः पारम्पर्यक्रमागतः ।
वर्णानां सान्तरालानां स सदाचार उच्यते ॥३०॥
कुरुक्षेत्रं च मत्स्याश्च पञ्चालाः शूरसेनकाः ।
एष ब्रह्मर्षिदेशो वै ब्रह्मावर्तादनन्तरम् ॥३१॥
एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः ।
स्वस्वं चरित्रं शिक्षन्ति पृथिव्यां सर्वमानवाः ॥३२॥

हिमवद्विंध्ययोर्मध्ये यत्प्राग्विनशनादपि ।
प्रत्यगेव प्रयागाच्च मध्यदेश प्रकीर्तित ॥३३॥
आ समुद्रात्तु वै पूर्वादासमुद्रात्तु पश्चिमात् ।
तयोरेवातर गिर्योरार्यावर्त्त विदुर्बुधा ॥३४॥
अटते यत्र कृष्णा गौर्मृगो नित्य स्वभावत ।
स ज्ञेयो याज्ञिको देशो म्लेच्छदेशस्त्वत पर ॥३५॥
एतान्निरय शुभान्देशान्सश्रयेत द्विजोत्तम ।
यस्मिन्कस्मिश्च निवसेत्पादजो वृत्तिकर्शित ॥३६॥
प्रकीर्तितेय धर्मस्य बुधैर्योनिर्द्विजोत्तमा ।
सभवश्चास्य सर्वस्य समासान्न तु विस्तरात् ॥३७॥

सरस्वती और दृषद्वती इन दोनो देव नदियो का जो अन्तर होता है वह ही निर्मित देश ब्रह्मावर्त्त के नाम से प्रसिद्ध होता है ॥२९॥ जिस देश मे जो परम्परा के क्रम से चला आया आचार होता है अर्थात् अन्तराल सहित वर्णों का आचार है वही सदाचार कहा जाता है ॥३०॥ कुरुक्षेत्र, मत्स्य, पञ्चाल और शूरसेन ये ब्रह्मर्षियो के देश हैं जो कि ब्रह्मावर्त्त के अनन्तर हैं ॥३१॥ इन देशो मे जो उत्पन्न हुआ है उस अग्रजन्मा अर्थात् ब्राह्मण के सकाश से पृथिवी मे समस्त मनुष्य अपना अपना चरित्र सीखा करते हैं ॥३२॥ हिमाचल और विन्ध्यगिरि के मध्य मे जो विनशन से भी प्राक् और प्रयाग से प्रत्यक् मे है वह मध्य देश के नाम से कहा गया है ॥३३॥ पूर्व सागर से लेकर पश्चिम सागर तक उन दोनो पर्वतो का जो अन्तर भाग है उसे पण्डित लोग आर्यावर्त्त कहते हैं ॥३४॥ जहाँ पर श्यामा गौ और मृग स्वभाव से ही अटन किया करते हैं वह याज्ञिक देश समझना चाहिये । इससे अन्य देश म्लेच्छ देश हैं ॥३५॥ श्रेष्ठ ब्राह्मणो का कर्तव्य है कि इन शुभ देशो का अपना निवास स्थान बनायें । जिस किसी भी देश में जो वृत्ति से कर्शित शूद्र को निवास करना चाहिये ॥३६॥ हे श्रेष्ठ द्विजगण ! महा पण्डितो ने यह धर्म की योनि बताई है । इस सबका सम्भव सक्षेप से कहा है विस्तार से नही बताया गया है ॥३७॥



।। स्त्रीणां गृहधर्म विधिवर्णनम् ।।

या पतिं दैवतं पश्येन्मनोवाक्कायकर्मभिः ।
तच्छरीरार्धजातेव सर्वदा हितमाचरेत् ॥१॥
तत्प्रिया प्रियवत्पश्येत्तद्द्वेष्या द्वेष्यवत्सदा ।
अधर्मानर्थयुक्तेभ्योऽयुक्ता चास्य निवर्तते ॥२॥
प्रियं किमस्य किं पथ्यं साम्यं चास्य कथं भवेत् ।
ज्ञात्वैव सर्वभृत्येषु न प्रमाद्येत वै द्विजा ॥३॥
देवतापितृकार्येषु भर्तुं स्नानाशनादिषु ।
सत्कारेऽभ्यागतानां च यथोचित्यं न हापयेत् ।।४॥
वेश्मात्मा च शरीरं हि गृहिणीनां द्विधा कृतम् ।
संस्कर्तव्यं प्रयत्नेन प्रथमं पश्चिमादपि ॥५॥
कृत्वा वेश्म सुसमृष्टं त्रिकालविहितार्चनम् ।
वृत्ताकर्मोपभोगानां संस्कर्तव्यं यथोचितम् ॥६॥
प्रातर्मध्यापराह्णेषु बहिर्मध्यांतरेषु च ।
गृहसमार्जनं कृत्वा निष्कारान्निशि क्षिपेत् ॥७॥

इस अध्याय मे स्त्रियो के गृह के धर्मों की विधि का वर्णन किया जाता है। ब्रह्माजी ने कहा—स्त्री का कर्तव्य है कि वह अपने पति को मन, वाणी और शरीर से पूर्णतया देवता के समान समझना चाहिये। पत्नी को चाहिये कि वह अपने आपको पति के आधे शरीर से उत्पन्न होने की भाँति ही सर्वदा पति के हित का आचरण करे ॥१॥ पति के प्रिय को प्रिय देखे और उनके द्वेष्य के समान सदा देखना चाहिये। और इसके अधर्म एवं अनर्थों से युक्तों से अयुक्त निवृत्त हो जाती है ॥२॥ हे द्विजगण ! इसका प्रिय क्या है और हितकर क्या है तथा इसका साम्य किस प्रकार से होता है इस तरह भली-भाँति ज्ञान प्राप्त कर ही समस्त भृत्यों मे कभी प्रमाद नही करना चाहिये ॥३॥ गृहस्थाश्रम मे पत्नी का कर्तव्य है कि उसे देवता और पितरो के कार्यों मे तथा पति के स्नान और भोजन आदि कार्यों में एवं अभ्यागतो के सत्कार मे जो भी औचित्य हो उसे

नही त्यागना चाहिये ॥४॥ वेश्म (घर) और आत्मा यह गृहिणियों का दो प्रकार का शरीर बताया गया है। अत जो प्रथम अर्थात् घर है उसका पिछले भी पहिले प्रयत्न पूर्वक सत्कार करना चाहिये। तात्पर्य यह है कि शरीर से अधिक घर का सत्कार होना चाहिये ॥५॥ तीनों काल मे जहाँ भजन का विधान होता है उसे (घर को) भली भाँति स्वच्छ एव सुसज्जित करना चाहिये। वृत्त कर्म और उपभोगो का यथोचित सत्कार करना चाहिये ॥६॥ प्रात काल, मध्यकाल और अपराह्णकाल में बाहिर, मध्य में और अन्दर के भागो मे घर का समार्जन करके जो निष्कार अर्थात् भाड़कर निकले हुए पदार्थ हैं उन्हे रात्रि मे नही फैंकना चाहिये ॥७॥

गोमहिष्यादिशालाना तत्पुरीषादिमात्रकम् ।
अपनेय तु यत्नेन समार्जन्या प्रसाधनम् ॥८॥
दासकर्मकरादीना बाह्याभ्यतरचारिणाम् ।
पोषणादिविधि विद्यादनुष्ठान च कर्मसु ॥९॥
शाकमूलफलादीना वल्लीनामौषधस्य च ।
सग्रह सर्वबीजाना यथाकाल यथाबलम् ॥१०॥
ताम्रकास्यायसादीना काष्ठवेणुमयस्य च ।
मृन्मयाना च भाडाना विविधाना च सग्रहम् ॥११॥
कुण्डकादिजलद्रोण्या कलशोदञ्चतालुका ।
दधिपात्राण्यनेकानि स्नेहाना गोरसस्य च ॥१२॥
मुसल खण्डनीय तु यत्रक चूर्णघातनी ।
दोहन्यो नेत्रक तथा मडन्य शृखलानि च ॥१३॥
सदश कुण्डिकाशूर्प पट्टपिप्पल्यो ऽपत् ।
डाविरा हस्तको दर्वी आटम्पुटस्थानि च ॥१४॥
तुलाप्रस्थादिनानानि मार्जन्य पिटकानि च ।
सर्वमेतत्प्रकुर्वीत प्रयत्नेन च सर्वदा ॥१५॥

गाय भैंस आदि के रहने की जो शालायें हैं उनकी सफाई करने से वहाँ

से उनके पुरीष आदि का ही व्यवनयन करना चाहिए और बडे यत्न से समा-जनी के द्वारा वहाँ का प्रसाधन करे ॥८॥ जो दास कर्मों के करने वाले नौकर आदि हैं और जो बाहिर तथा अन्दर चरण किया करते हैं उन सबकी पोषण की विधि को अच्छी तरह जान लेना चाहिये तथा यह भी शम रखना एक गृहिणी का कर्तव्य है कि उनसे क्या-क्या कर्म कराने चाहिये ॥९॥ शाक मूल और फल आदि का, वल्लियों और औषधों का तथा स्व प्रकार के बीजों का काल के अनुसार यथा काल संग्रह करना चाहिए ॥१०॥ ताम्र काँसे और लोह आदि धातुओं के तथा लकड़ी और बांस के एवं मिट्टी के विविध प्रकार के पात्रों का संग्रह भी स्त्रियों को रखना चाहिए ॥११॥ कुण्डक आदि जल द्रोणी का, कलशोद और तानुक, अनेक शाक पात्रा स्नेहों का एवं गोरस का संग्रह करना चाहिये ॥१२॥ मूसल, कण्डनी (ओखली) यन्त्र और चून छानने की चलनी, दूध दुहने का दोहनी पात्र मट्ठा चलाने की नेती, मथनी, मण्डनी और शृङ्खला, सदश कुण्डिका, चून, पट्टपिष्पनक पत्थर, डालिका, हस्तक और दर्वी (कड़ाई) तथा प्राष्ट स्फुल्लक, तुला (तराजू) व प्रस्थ आदि मान (बाट) कुठारी और पिटक इन सबका संग्रह सर्वदा प्रयत्न के साथ स्त्री को करना चाहिये। ये सभी नित्य ही घर के काम में आने वाली वस्तुयें हैं ॥१३॥१४॥१५॥

हिङ्ग्वादिकमथो जाजी पिप्पल्यो मरिचानि च ।
राजिका धान्यकं शुण्ठी त्रिचतुर्जातकानि च ॥१६॥
लवणं क्षारवर्गाश्च गोधीरासनसर्पिषी ।
छिद्रामलक चिञ्चा गर्वाश्च स्नेहजातय ॥१७॥
गुडखाण्डानि कल्लूरमरिष्टा पिष्टमाषयो ।
धिराग पयसश्चापि विविधा कन्दजातय ॥१८॥
नियमितानां हि कार्याणामुपयोजन ।
भवन्ति यादि मयत्न यथासिद्धिनिवारिताम् ॥१९॥
यन्त्राद्यानां मधुपत्राणुसारं च इत्यतः ।
गन्धाद्य यथाकाल मृन्मयाग्रगना ॥२०॥

धान्याना घृष्टपिष्टाना क्षुण्णोपहतयोरपि ।
भृश शुष्कार्द्रसिद्धाना क्षयवृद्धी निरूपयेत् ॥२१॥

अब तक पात्र तथा अन्य साधनो के सग्रह के विषय मे बताया गया है। अब मसाले आदि उपस्कर जो भोजन बनाने मे आवश्यक होते है उनके सग्रह के विषय मे बताते हैं— हीग आदि पदार्थ, जाजी, पीपल, मरिच, राई, धनियाँ सौंठ, तीन और चार जातक, लवण तथा क्षारवर्ग, सौवीरक और परूपक, द्विदल (दाल), आमलक (आँवला) चिचा और सब प्रकार के स्नेह जाति वाले तैल आदि पदार्थों का सग्रह करना चाहिए ॥१६॥१७॥ सूखी लकडियाँ, वल्लूर धरिष्ट जो पिष्ट और माष (उर्द) के हैं। दूध के विकार (दही, खोआ, मलाई आदि) और अनेक प्रकार कन्द की जातियों का सग्रह, गृहणी को घर मे रखना आवश्यक है। यह स्त्री का ही कर्तव्य होता है ॥१८॥ इनमे नित्य के काम के उपयोग मे आने वाले तथा नैमित्तिक कार्यो के उपयोग के वास्ते सभी का सग्रह होना चाहिये और वह अपनी आर्थिक स्थिति के अनुकूल ही होना चाहिये॥१६। जब कार्य उपस्थित हो जाते है तो उसी समय पर इन सबको प्रस्तुत नही किया जा सकता है। इसलिए पहिले से ही कार्य के आने के पूर्व यथायोग इनका प्रयत्न पूर्वक सग्रह कर लेना चाहिए ॥२०॥ घृष्ट और पिष्ट धान्यो का तथा जो क्षुण्ण और उपहत हो उनका भी बहुत शुष्क, आर्द्र (गीले) और सिद्धो की क्षय तथा वृद्धि को भी बराबर देखते रहना आवश्यक है ॥२१॥



॥ स्त्रीधर्मवर्णनम् ॥

व्रीहीणा कोद्रवाणा च सारधर्ममुदारक ।
वगुकोद्रवयोर्ज्ञेयो वरट. पचभागक. ॥१॥
पचभागाग्निप्रियगूना शालीना च अयोऽष्ट च ।
चणकाना तृतीयाश: समक्षुण्णत्रय विदु. ॥२॥
पानीययवगोधूम पिष्टधान्यचतुष्टयम् ।
तुल्यमेवावगतव्य मुद्गा माषास्तिला यवा. ॥३॥

पचभागादिका घृष्टा गोधूमा सक्तवस्तथा ।
कुल्मापा पिष्टमास च सम्यगर्धादिक भवेत् ॥४॥
सिद्ध तदेव द्विगुण पुन्नाको यावकस्तथा ।
कगुकोद्रवयोरन्न चणकोदारकस्य च ॥५॥
द्विगुण चीनकाना च व्रीहीणा च चतुर्गुणम् ।
शाले पचगुण विद्यात्पुराणे त्वतिरिच्यते ॥६॥
क्रियापाकविशेषास्तु वृद्धिरेवोपदिश्यते ।
निमित्तस्य वरान्नस्य तद्वृद्धिद्विगुणा भवेत् ॥७॥

इस अध्याय मे स्त्रियो के धर्म का वर्णन किया जाता है। ब्रह्माजी ने कहा—व्रीहि और कोद्रवो का सारधम को उदारक कहते हैं। कगु और कोद्रव का पाँच भाग वाला बरट समझना चाहिए ॥१॥ प्रियङ्गु के पाँच भागो का और शालियों के ग्यारह भागो का तथा चणको (चनों) का तीसरा अंश इन सबको एक साथ अुण्ण किया हुआ अन्न जानना चाहिये ॥२॥ यमनी यव और गोधूम ये पिसे हुए चारो प्रकार के अ य मूग उद तिल और यव ये सब तुल्य ही समझने चाहिये ॥३॥ पञ्च भागादिक घृष्ट गेहू तथा सत्तु (सतुआ) कुल्माप और पिष्टमाप ये भली भाँति अर्धादिक होने चाहिये ॥४॥ वह ही सिद्ध दुगुना पुन्नाक तथा यावक कङ्गु (काँगनी) और कोद्रव का और चणकोदारक का अन्नचीनकों का द्विगुण और व्रीहियो का चौगुना तथा शाली का पाँच गुना जानना चाहिए। जो कहीं ये पुराने हों तो और भी अधिक होता है ॥५॥६॥ ये पाक क्रिया की विशेषतायें हैं। इनकी वृद्धि का ही उपदेश दिया जाता है। श्रेष्ठ अन्न के निमित्त की वृद्धि के गुण वाली वृद्धि हुआ करती है ॥७॥

तस्माद्भूयो विम्टस्य चतुर्भागो विवर्धते ।
लाजा धाना कलायाश्च भृष्टाद्विगुणवृद्धय ॥८॥
अद्रव्यानामतोऽन्येषा पचभागोऽधिको मत ।
चापाणा च पिष्टाना पादहीना कलायजा ॥९॥
मुद्गमापमसूराणामधपादावरोभवत् ।
स्निग्धगुणवरान्नाना हानिर्वृद्धिविशिष्यत ॥१०॥

तथार्धेन तु शोव्यानामाढवया मुद्गमापयोः ।
मसूराणा च जानीयात्क्षयं पंचमभागकम् ॥११॥
षड्भागेनातसीतैलं　सिद्धार्थकरुपित्थयोः ।
तथा निवकदंवादौ　विद्यात्पंचमभागकम् ॥१२॥
तिलेंगुदीमधूकाना　नक्तमालकुसुंभयोः ।
जानीयात्पादकं　तैलं　खलमन्यत्प्रचक्षते ॥१३॥
क्षेत्रकालक्रियादिभ्यः　क्षयादेर्व्यभिचारतः ।
प्रत्यक्षीकृत्य　तान्सम्यगनुमित्यावधारयेत् ॥१४॥

इस कारण से जो पुनः विरुद्ध होता है उसका चतुर्भाग विवृद्ध हुआ करता है । लाज (खील), धान और कला इनके भ्रष्ट होने पर अर्थात् भूने जाने पर दुगुनी वृद्धियाँ होती हैं ॥८॥ इसलिए अन्य भृष्टयों भूनने के योग्यो) का पाँच भाग अधिक माना गया है । चापको और पिठो के कलायजपाद हीन अर्थात् चौथाई भाग से कम होते हैं ॥९॥ मूग, उर्द और मसूरो का अर्धपाद अर्थात् चौथाई का आधा भाग अवर होता है अर्थात् कम होता है । क्लिन्न और शुष्क वरान्नो की हानि और वृद्धि की विशेषता हुआ करती है । अर्थात् जो भिगोकर सुखाये जाते हैं उनकी हानि तथा वृद्धि विशिष्ट होती है ॥१०॥ शोव्यो का आधा, मुद्ग और माप का एक आढ की प्रमाण तथा मसूरो की पाँचवाँ भाग वाला क्षय जानना चाहिये ॥११॥ अलसी का तेल षड्भाग होता है । इसी प्रकार से सिद्धार्थक और कपित्थ का होता है । नीम और कदम्ब आदि मे पाँचवाँ भाग तैल होता है ॥१२॥ तिल, इङ्गुदी, मधूक, नक्तमाल और कुसुम्भ का तैल एक पाद होता है अर्थात् चौथा भाग ही हुआ करता है शेष सब खल नाम से प्रसिद्ध पदार्थ होता है ॥१३॥ क्षेत्रकाल और क्रियादि से क्षय आदि का व्यभिचार के द्वारा प्रत्यक्षीकरण करना चाहिए । उन सबका अनुमान करके अवधारण करे ॥१४॥

क्षीरदोषे गवा　प्रस्थ महिषीणा च सर्पिषः ।
पादाधिकमजावीनामुत्पाद　तद्विदो　विदु. ॥१५॥
सुभूमितृणकालेभ्यो　वृद्धिर्वा क्षीरसर्पिषाम् ।
अतस्तेषा विधातव्यो ह्यर्थादेव विनिश्चयः ॥१६॥

प्रत्यक्षीकृत्य यत्नेन पक्षमासान्तरे तथा ।
पयोवृ सौर्गवादीना कुर्यात्सभवनिर्णयम् ।।१७।।
कार्पासक्रमिकोशौमौर्णक क्षौमादिकतनम् ।
कुणिपम्बधयोपाभिविधवामिश्र कारयेत् ।।१८।।
बालवृद्धान्धकार्पण्ये यत्कर्तव्यमवश्यत ।
विनियोग नयेत्सर्वं प्रियोपग्रहपूर्वकम् ।।१६।।
कर्मणामन्तरालेपु प्रोपिते चापि भर्तरि ।
स्वय वै तदनुष्टेय नित्याना चाविरोधत ।।२०।।
शूद्राणा स्थूलसूक्ष्मत्व वहुत्व च व्ययाव्ययौ ।
मत्वा विशेप कुर्वीत चेतनप्रतिपत्तिपु ।।२१।।

क्षीर के दोपो मे गौग्रो का और भैंसो का एक प्रस्यसपि (घृत) का होता है। प्रजाविका का पाद से अधिक घृत इम विद्या के विद्वान् बताया करते हैं ।।१५।। अच्छी भूमि, अच्छा तृण और अच्छे काल से क्षीर और घृत की वृद्धि भी हो जाती है इसलिए उनका विशेष निश्चय यत्न से ही करना चाहिये ।।१६।। यत्न के द्वारा छै मास के अ .र प्रत्यक्ष करके गो आदि के दूध और घृत का जो भी निर्णय सम्भव हो यह करना चाहिए ।।१७।। कपास, कृमिकोश ऊर्ण और क्षौम आदि का कतन का काय कुणि, पगु और अ धी स्त्रियो से और विधवा स्त्रियो से करवाना चाहिये ।।१८।। बालक, वृद्ध अ ध और कृपण के विषय म जो भी कर्तव्य होना है उसका विनियोग प्रिय के उपग्रह पूर्वक अवश्य ही सब करना चाहिए ।।१६।। कार्यों के मध्य म अपने स्वामी के बाहिर कहीं परदेश म चले जाने पर नित्य के करने वाले कार्यों के अविरोध से उन्हे स्वय ही स्त्री को कर डालना चाहिए ।।२०।। शूद्रो की स्थूलता, सूक्ष्मता और बहुत्व तथा व्यय और बचत की विशेषता को मानकर चेतन की प्रतिपत्तियों म करना चाहिये ।।२१ ।

कारयेद्धमधान्यादि स्थानपुंर्धिष्ठितम् ।
शूद्राणा क्षयवृद्धयादि मन्तव्य चेतनादि च ।।२२।।

क्षौमकार्पासयोर्विद्यात्सूत्र पञ्चमभागकम् ।
देशकालादिभागात्तु प्रत्यक्षादेव निर्णय. ॥२३॥
अवघातेन तूलस्य क्षयो विंशतिभागक ।
छन्ना व्याप्ता तु वातेन तद्वद्रूर्णां प्रचक्षते ॥२४॥
पञ्चाशद्भागिकी हानिं सूत्रे कुर्वीत लक्षणात् ।
वृद्धिस्तु मण्डसपर्काद्दशकादशिका भवेत् ॥२५॥
श्लक्ष्णमध्यमसूत्राणामर्धाधिकसम भवेत् ।
स्थूलाना तु पुनर्मृ त्यात्पादोन वालचेतनम् ॥२६॥
कर्मणो भूरिभेदत्वाद्देशकालप्रभेदत ।
तद्विद्भ्य एव वोद्धव्यो वालचेतननिश्चय ॥२७॥
स्थूल दिनत्रय देय मध्यम च त्रिरात्रिकम् ।
सूक्ष्ममापक्षतो मृष्ट मासात्तत्परिकर्मकम् ।
यदन क्षयवृद्धयादि तदुत्सर्गात्प्रदर्शितम् ॥२८॥

अपने से बडे और आप्तो के द्वारा अधिष्ठित वस्त्र तथा धान्य आदि का कार्य कराना चाहिये । तूलो के वेतन, क्षय और वृद्धि को भी मानना चाहिये ॥२२॥ क्षौम और कपास के सूत्र को पाँचवाँ भाग जानना चाहिये । देश और काल के विभाग से प्रत्यक्ष होने से ही इसका निर्णय हुआ करता है ॥२३॥ तूल (रूई) के अवघात से बीसवें भाग का क्षय होता है । वायु से व्याप्त और छन्न ऊन भी उसी प्रकार से प्रसिद्ध होता है ॥२४॥ सूत्र मे लक्षण से पचासवाँ भाग का क्षय करना चाहिये । माँड के सम्पर्क कर देने से उसमे दश तथा एक दश भाग की वृद्धि होती है ॥२५॥ जो श्लक्ष्ण मध्यम सूत्र होते हैं उनका अर्धाधिक सम होता है । जो स्थूल होते हैं उनका पुनर्मृत्यन होने से बालचेतन एक पाद कम होता है ॥२६॥ इस कम के बहुत से भेद होने के कारण से तथा देश और काल के भेद प्रभेद होने के कारण वालचेतन का ठीक निश्चय इसके विद्वान पुरुषो के द्वारा ही जानने के योग्य होता है ॥२७॥ जो स्थूल हो उसे तीन दिन देना चाहिये जो मध्यम हो अर्थात् न स्थूल हो और न सूक्ष्म ही हो उसे तीन दिन और तीन रात्रि तक देना चाहिये, जो सूक्ष्म हो उसे एक पक्ष से एक मास

सक तत्परिकर्मक मृष्ट देना चाहिये । जो इसमें क्षय और वृद्धि आदि होती है वह उसके स्वभाव से दिखलाई गई है ॥२८॥

कालकर्त्रादिभेदेन व्यभिचारोपि दृश्यते ।
शय्यासनान्यनेकानि कवलाश्चतुराश्रिका ॥२६॥
कबुकाश्चावकोपाश्च मध्या रक्ताश्च भूरिश ।
गुरुबालादि वृद्धानामभ्यागतजनस्य च ॥३०॥
भोगायानुगतो भर्त्ता कुर्याद्विविधमात्रकम् ।
यदस्य श्वशुरादीना कल्पित शयनादिकम् ॥३१॥
भर्तुश्चैव विशेषेण तदन्येव न कारयेत् ।
वस्त्र माल्यमलकार विधृत देवरादिभि ॥३२॥
न धारयेन्न चैतेषामाक्रमेच्छयनानि वा ।
पिण्याकनवकुट्टाश्च कालक्ष्क्षाणि यानि च ॥३३॥
हेय पर्युषितायन्न गोभक्तेनोपयोजयेत् ।
कुलाना बहुवेनूना गोध्यक्षव्रजजीविनाम् ॥३४॥
किलाटगविकादीना भक्तार्थमुपयोजनम् ।
दध्न समाहरेत्सर्पिर्दुहेद्वत्सान पीडयेत् ॥३५॥

समय और इनके करने वाले कर्त्ता के भेद से जो कुछ भी कहा गया है इसमे व्यभिचार भी दिखलाई देता हैं । शय्या और आसन अनेक तरह के होते हैं । कम्बल चतुराश्रिक, कम्बुक, चावकाप, मध्य और बहुत से रक्त होते हैं । गुरु, बालक वृद्ध आदि के तथा अभ्यागत जन के भोग के लिए अनुगत स्वामी को विविध मात्रा वाले करने चाहिए । जो श्वसुर आदि के लिए शयन आदि कल्पित किए गऐ हो ॥२६॥३०॥३१॥ उन्हे और स्वामी के लिए विशेष रूप से किए हो उन्हें किसी भी अन्य के उपयोग करने के लिए नही कराना चाहिए । देवर आदि के द्वारा धारण किए गए वस्त्र, माल्य और अलङ्कारों को नही धारण करे और इनके शयनों का कभी आक्रमण भी नहीं करना चाहिए । पिण्याकनव और कुट्ट अर्थात् कोद्र जो कि काल पर रूक्ष हो गये हैं तथा पर्युषित (बासी) अन्न आदि हेय होता है । इन्हें गौओं का देकर उपयोग कराना

चाहिये । जिन कुलो मे बहुत सी गौएँ होती हैं और जो गायो के व्रज के स्वामी होकर उपजीविन रहते हैं तथा विलाट नविकादि का भक्तार्थ उपभोजन होता है । दही से घृत को प्राप्त करे और जब दोहन करे तो उनके वत्सो का पीडित नही करना चाहिए । तात्पर्य यह है कि गाय आदि के वत्सो को पीने के लिए दूध छोड देना चाहिए ॥३२॥३३॥३४॥३५॥

वर्षाशरद्वसन्तेषु द्वौ कालावन्यदा सकृत् ।
तक्र वाप्युपयुञ्जीत श्ववराहादिपोषणे ॥३६॥
पिण्याकक्लेदनार्थं वा विक्रय वा तदर्हयेत् ।
वृत्ति धान्यहिरण्येन गोपादीना प्रकल्पयेत् ॥३७॥
ते हि क्षीरव्रता लोभादुपहन्युस्तदन्वयान् ।
दोहकाल गवा दोग्धा नातिवर्तेत वै द्विजा ॥३८॥
प्रसरोदक्योर्गोपा मन्थकस्य च मन्थवा ।
मासमेक यथा स्तन्य मासमेक स्तनद्वयम् ॥३९॥
सतत पाययेदूर्ध्वं स्तनमेक स्तनद्वयम् ।
तिलपिष्टाभि पिण्डाभिस्तृणेन लवणेन च ।
वारिणा च यथाकाल पुष्णीयादिति वत्सकान् ॥४०॥
जगद् गुर्गर्भिणी धेनुर्वत्सा वत्सतरी तथा ।
पश्चानां समभागेन घास यूथे प्रकल्पयेत् ॥४१॥
एको गोपालकस्तस्य त्रयाणामथ वा द्वयम् ।
पश्चाना वृत्सवस्त्वेक प्रवरास्तु पृथक्पृथक् ॥४२॥

कुत्ता और वराह आदि के पोषण मे वर्षा शरद और वसन्त मे दो समय और इसके अतिरिक्त एक बार तक्र का उपयोग करना चाहिए ॥३६॥ अथवा पिण्याक के क्लेदन करने के लिए अथवा विक्रय के लिए वह योग्य होता है । गोपादि की वृत्ति धान्य हिरण्य से प्रकल्पित करानी चाहिये ॥३७॥ क्षीर के व्रत वाले वे लालच के कारण उनके वंशो का हनन किया करते हैं । गौओ के दोहन करने वाले को दोहन के काल का कभी अतिक्रमण नही करना

चाहिए ।।३८।। गोप प्रसर और उदक के मन्थक के मन्थक होते हैं। गोदोहन करने वालो को चाहिए कि एक मास तक गो के व्या जाने पर एक ही स्तन का दूध लेवें और इसके पश्चात् एक मास तक दो स्तनो का दूध लेना चाहिये। ।।३६।। तिन पिष्ट पिण्डो से, तृण से, लवण से, और जल से समय के अनुसार वत्सो का पालन करना चाहिए ।।४०।। जगद्गुर्भिणी, धेनु, वत्सा और वत्सतरी इन पाँचो को यूथ म समभाग घास देनी चाहिये ।।४१।। एक गोपालक है उसके तीनो ये दो अथवा पाँचो म एक वत्सक है तो वे प्रथक प्रथक प्रवर होते हैं ।।४२।।

गोचरस्यानयनार्थं व्यालाना त्रासनाय च ।
घण्टा कर्णेषु वध्नीयु शोभारक्षार्थमेव च ।।४३।।
पशव्ये व्यालनिर्मुक्ते देशे भूरितृणोदके ।
अभूत दुष्टे वारण्ये सदा कुर्वीत गोकुलम् ।।४४।।
सगुप्तमटवीवास नित्य कुर्यादजाविकम् ।
ऊर्णा वर्षेद्विरा दद्यान्न्राश्वयुजमासयो ४५।।
यूथे वृषा दशैताषा चत्वार पञ्च वा गवाम् ।
अश्वोष्ट्रमहिषाणा च यथा स्यु सुखसेविता ।।४६।।
विद्यारकूपीवलादीना योग कृषिककर्मसु ।
भक्तवेतनलाभ च कर्मकालानुरूपत ।।४७।।
क्षेत्रकेदारवाटेषु भृत्याना कर्म कुर्वताम् ।
खलेषु च विजानीयात्क्रियायोग प्रतिक्षणम् ।।४८।।
योग्यतातिशय मत्वा कर्मयोगेषु कस्यचित् ।
ग्रासाच्छादशिरोभ्यर्गैविशेष तस्य कारयेत् ।४६।।

गोचर भूमि से आनयन के लिए तथा व्यालो के त्रासन के वास्ते और शोभा की रक्षा करने के लिए कानो मे घण्टे बाँध देने चाहिये ।।४३।। पशुओ के हित करने वाले, व्यालो से रहित, बिना भूत दुष्ठो वाले तथा बहुत तृण और जल वाले वन म सदा गोकुल बनाना चाहिये अर्थात् गायो के रहने का स्थान

व रे ॥४४॥ अजाविको (भेडो) का नित्य गुप्त (सुरक्षित) वन का निवास बनाना चाहिए। एक वर्ष मे चैत्र तथा आश्विन मासो मे दो बार उनसे ऊन लेना चाहिए ॥४५॥ इनके यूथ मे दश वृष, गौओ के यूथ मे चार या पाँच वृष होने चाहिये। अश्व, ऊँट और महिषो के जैसे सुख सेवित हो होने चाहिये ॥४६॥ कृषिक कर्मों मे किसानो के योग का ज्ञान प्राप्त करना चाहिये। उनके काम और काल के अनुकूल ही उनके भक्त और वेतन के लाभ को भी जानना चाहिए ॥४७॥ खेत केदार और वाटो मे काम करने वाले भृत्यो का तथा खलियानो मे काम करने वाले नौकरो का प्रतिक्षण क्रिया के योग को जानना चाहिए ॥४८॥ इन कर्मों के योगदान मे किसी भृत्य की अत्यधिक योग्यता को या मानकर उसको ग्रास (भोजन) अच्छाद (वस्त्र) और शिरोभ्यङ्गो के द्वारा विशेष सम्मानित कराना चाहिए ॥४९॥

पद्मशाकादिवापाना कन्दबीजादिजन्मनाम् ।
सग्रह सर्वबीजाना काले वाप सुभूमिषु ॥५०॥
जाताना रक्षण सम्यग्रक्षिताना च सग्रह ।
तेषा च सगृहीताना यथावद्विनियक्रिया ॥५१॥
गृहमूल स्त्रियश्चैव धान्यमूलो गृहाश्रम ।
तस्माद्धान्येषु भक्तेषु न कुर्यान्मुक्तहस्तताम् ॥५२॥
धान्य तु सचित नित्य मितो भक्तपरिव्यय ।
न चान्न मुक्तहस्तत्व गृहिणीना प्रशस्यते ॥५३॥
अल्पमित्येव नावज्ञा चरेदन्नेषु व द्विजा ।
मधुवल्मीकयोर्वृद्धि क्षय दृष्ट्वाजनस्य च ॥५४॥
ये केचिदिह निर्दिष्टा व्यापारा पुरुषोचिता ।
दपत्योर्वयमास्थाय तद्विदानप्रसगत ॥५५॥
सत्येव पुरुषा लोके स्त्रीप्रधाना सहस्रश ।
तेषु तासा प्रयोक्तत्वाददोष इति गृह्यताम् ॥५६॥
एव योग्यतया युक्ता सौभाग्येनोद्यमेन च ।
सम्यगाराध्य भर्तार तत्रैन वशमानयेत् ॥५७॥

पद्य और शाक आदि वापो वे तथा कन्द और बीज आदि से उत्पन्न होने वाले पदार्थों के समय पर सब प्रकार के बीजो का सग्रह करना चाहिये जिससे सुन्दर भूमि मे ठीक समय पर वपन (बोना) हो सके ॥५०॥ जो उत्पन्न हुए हो उनका अच्छी तरह से सरक्षण करना और भली भाति सरक्षित हो उनका सग्रह करना तथा जो अच्छी तरह सगृहीत हो उनका यथावत् वपन की क्रिया का करना, सब जानना चाहिए ॥५१॥ स्त्रिया ही गृह का मूल हुआ करती हैं और यह गृहाश्रम जो होता है इसका मूल धान्य होता है। इसलिए धा यो मे भक्तो मे कभी भी मुक्त हस्तता (हाथ का खुला रखना) नही करनी चाहिए। तात्पर्य यह है कि धान्य को खुले हाथ से नही लुटाना चाहिये ॥५२॥ धान्य का नित्य ही सञ्चय किया जाना चाहिये और उसका भक्त परिव्यय भी मित्त ही होना चाहिए अर्थात् खाने पीने का खर्चा सीमा के अन्दर ही रहना चाहिये। अच्छी गृहणियो की अन्न के विषय मे मक्त हस्तता प्रशसनीय नही कही जाया करती है ॥५३॥ यह बहुत ही कम है—इस प्रकार से अन्नो के विषय मे कभी अवज्ञा नही करे और मधु तथा बल्मीक की एव अजन की क्षय तथा वृद्धि का विचार करके ही ऐसा नही करना चाहिये। ५४॥ यहाँ पर जो भी पुरुषा के योग्य व्यापार निर्दिष्ट किए गए है वे दान के प्रसङ्ग से दम्पत्ति से के ऐक्य मे आस्थित होकर ही किये है ॥५५॥ लोक म सहस्रो पुरुप ऐसे हैं जिनके यहाँ स्त्रियो की प्रधानता हुआ करती है। उन मे उन स्त्रियो के प्रयुक्त करने वाले होने से कोई दोप नही है इसी से ग्रहण करना चाहिए ॥५६॥ इस प्रकार से योग्यता से युक्त तथा सौभाग्य एव उद्यम से स्त्रियो को चाहिए कि वे भली भाति अपने स्वामी की आराधना करके उसको अपने वश मे ले आवें ॥५७॥



॥ ब्राह्म पर्व समाप्त ॥

भविष्य पुराण

मध्यम पर्व



॥ धर्मस्वरूपवर्णनम् ॥

स्वच्छं चंद्रावदातं करिविकरमकरक्षोभसंजातफेनं ।
ब्रह्मोद्भूतिप्रसक्तैर्व्रतनियमपरैः सेवितं विप्रमुख्यैः ॥
ॐकारालंकृतेन त्रिभुवनगुरुणा ब्रह्मणा दृष्टपूतं ।
संभोगाभोगगम्यं जनकलुषहरं पौष्करं वः पुनातु ॥१॥
नमस्कृत्य जगद्योनिं ब्रह्मरूपधरं हरिम् ।
वक्ष्ये पौराणिकीं दिव्यां कथां पापप्रणाशिनीम् ॥६॥
यच्छ्रुत्वा पापकर्माणि स गच्छेत्परमां गतिम् ।
पुण्यं पवित्रमायुष्यमिदानीं शृणुत द्विजाः ॥७॥

इस प्रथम अध्याय में सब प्रथम मङ्गलाचरण है और फिर भविष्य-पुराण की प्रशंसा है तथा इसके पश्चात् धर्म के स्वरूप का वर्णन किया जाता है। मङ्गलाचरण स्वच्छ, चन्द्रमा के समान अवदात (शुभ्र), करिविकर मकर के क्षोभ से फेन उत्पन्न होने वाला, ब्रह्मा की उत्पत्ति के प्रसूक्तों से व्रत और नियमों में परायण प्रमुख विप्रों के द्वारा सेवित, ओङ्कार से अलङ्कृत तीनों भुवनों के गुरु ब्रह्मा के द्वारा दृष्ट पूत, सम्भोगाभोग से जानने के योग्य मनुष्यों के पापों को हरण करने वाले पौष्कर आप सबकी पवित्रता करें ॥१॥ श्री सूत जी ने कहा—ब्रह्मा के रूप को धारण करने वाले इस जगत् की योनि अर्थात्

उत्पत्ति के स्थान भगवान हरि को प्रणाम करके पापो का प्रणाश करने वाली दिव्य पौराणिकी कथा को कहता हूं। जिस कथा का श्रवण करके पाप कर्मों का त्यागकर मानव परम गति को प्राप्त किया करता है। यह परम पुण्य, पवित्र और आयु के बढ़ाने वाली कथा है। हे द्विजगण ! अब तुम इसे सुनो ॥६॥७॥

भविष्यपुराणमखिलं यज्जगाद गदाधर ।
मध्यपर्व ह्ययो वक्ष्ये प्रतिष्ठादिविनिर्णयम् ॥८॥
धर्मप्रशसनं चात्र ब्राह्मणादिप्रशसनम् ।
आपद्धर्मस्य कथन विद्यामाहात्म्यवर्धनम् ॥९॥
प्रतिमाकरण चैव स्थापनाचित्रलक्षणम् ।
कालव्यवस्थासर्गादिप्रतिसर्गादिलक्षणम् ॥१०॥
पुराणलक्षण चैव भूगोलस्य च निर्णयम् ।
निरूपण तिथीना च श्राद्धसवत्सरमन्तरम् ॥११॥
मुमूर्षोरपि यत्कर्म दानमाहात्म्यमेव च ।
भूत भव्य भविष्य च युगधर्मानुशासनम् ॥१२॥
त्रयाणामाश्रमाणा च गृहस्थो योनिरुच्यते ।
अन्येऽपि सूपजीवन्ति तस्माच्छ्रेष्ठो गृहाश्रमी ॥१३॥
एकाश्रम गृहस्थस्य त्रयाणा सूतिदर्शनम् ।
तस्माद्गार्हस्थ्यमेवैक विज्ञेय धर्मशासनम् ॥१४॥

गदाधर ने जो यह सम्पूर्ण भविष्यपुराण कहा था उसका अब मध्य पर्व वर्णित किया जाता है जिसमें प्रतिष्ठा आदि का विशेष निर्णय किया गया है ॥८॥ इसमें धर्म की प्रशंसा है और ब्राह्मण आदि की प्रशंसा की गई है। इसमें आपद्धर्म का कथन है और विद्या के माहात्म्य का वर्णन बताया गया है ॥९॥ प्रतिमा का कराना, स्थापना चित्र का लक्षण, काल की व्यवस्था और सर्गादि प्रतिसर्गादि का लक्षण बताया गया है ॥१०॥ पुराण का लक्षण तथा भूगोल का विशेष निर्णय, तिथियों का निरूपण और श्राद्ध सम्वत् मन्वन्तर कहा

गया है ॥११॥ जो मरने वाला है उसका कर्म और दान का माहात्म्य तथा भूत, भव्य और भविष्य युगधर्म का अनुशासन इस पुराण म बताये गये हैं ॥१२॥ तीनों आश्रमो का उत्पत्ति स्थान गृहस्थ कहा जाता है। गृहस्थ के सहारे ही अन्य सब आश्रम उपजीवित होते हैं। इस कारण से गृहाश्रमी सबसे श्रेष्ठ माना जाता है ॥१३॥ एक गृहस्थ का आश्रम अन्य तीनों का प्रतिदर्शन होता है। इसलिये एक गार्हस्थ्य आश्रम ही को धर्म का शासन समझना चाहिए ॥१४॥

परित्यजेदर्थकामौ यौ स्याता धर्मवर्जितौ।
सर्वलोकविरुद्ध च धर्ममप्याचरेन्न तु ॥१५॥
तडागस्य च सान्निध्ये तडाग परिवर्जयेत्।
प्रपास्थाने प्रपा वर्ज्या मठस्थाने मठ त्यजेत् ॥१६॥
धर्मात्सजायते ह्यर्थो धर्मात्कामोऽभिजायते।
धर्मादेवापवर्गोऽय तस्माद्धर्मं समाश्रयेत् ॥१७॥
धर्मश्चार्थश्च कामश्च त्रिवर्गस्त्रिगुणो मत।
सत्त्व रजस्तमश्चे ति तस्माद्धर्मं समाश्रयेत् ॥१८॥
ऊर्ध्वं गच्छति सत्त्वस्था मध्ये तिष्ठ ति राजसा।
जघन्यगुणवृत्तिस्था अधो गच्छति तामसा ॥१९॥
यस्मिन्धर्म समायुक्तो ह्यर्थकामौ व्यवस्थितौ।
इह लोके सुखी भूत्वा प्रेत्यानन्त्याय कल्पते ॥२०॥
तस्मादर्थं च काम च युक्त्वा धर्मं समाश्रयेत्।
धर्मात्सजायते कामो धर्मादर्थोभिजायते ॥२१॥

जो धर्म से रहित अर्थ और काम हैं उनको त्याग देना चाहिए और जो समस्त लोक के विरुद्ध धर्म है उसका भी कभी आचरण नहीं करना चाहिए ॥१५॥ तडाग के सान्निध्य म तडाग को परिवर्जित कर देना चाहिए। प्रपा (प्याऊ) के स्थान प्रपा वर्जनीय होती है और मठ के स्थान म मठ का त्याग कर देना चाहिए ॥१६॥ धर्म स अर्थ उत्पन्न होता है और धर्म से ही काम

अभिजात हुआ करता है । धर्म से ही अपवर्ग हुआ करता है इसलिए धर्म का समाश्रय अवश्य ही करना चाहिए ॥१७॥ धर्म, अर्थ और काम इनका त्रिवर्ग माना गया है । इन तीनो के क्रम से सत्त्व, रज और तम ये तीन गुण हैं । इससे धर्म का ही समाश्रय करना चाहिए ॥१८॥ जो सत्त्व मे स्थित होते हैं वे ऊर्ध्व भाग मे जाया करते हैं, जो राजस होते हैं वे मध्य मे रहते है तथा सबसे जघन्य गुण तमोगुण है उसमे जो स्थित रहा करते है वे तामस लोग अधोभाग मे जाया करते हैं ॥१९॥ जिस मानव मे धर्म समायुक्त होता है वहाँ अर्थ और काम तो स्वय व्यवस्थित हुआ करते हैं । ऐसा मानव इस लोक मे सुखोपभोगो का अनुभव प्राप्त करके मरने के पश्चात् अनन्त्य के लिये कल्पित हो जाता है ॥२०॥ इसलिए अर्थ और काम को युक्त करके धर्म का समाश्रय करना चाहिए । धर्म से काम और धर्म ये दोनो ही हो जाया करते हैं ॥२१॥

———

॥ ब्रह्माण्डोत्पत्तिविस्तारवर्णन ॥

इदानी विस्तर चैव विभाग रूपमैश्वरम् ।
वक्ष्ये कल्पानुसारेण मन्वतरशतानुगम् ॥१॥
आसीत्तमोमय सर्वमप्रज्ञातमलक्षणम् ।
तत्र चैको महानासीद्रुद्र परमकारणम् ॥२॥
आत्मना स्वयमात्मान सञ्चित्य भगवान्विभु ।
मन ससृजने पूर्वमहङ्कार च पृष्ठत ॥३॥
अहङ्कारात्प्रजानाति महाभूतानि पञ्च च ।
अष्टौ प्रकृतय प्रोक्ता विकाराश्चैव षोडश ॥४॥
शब्द स्पर्शश्च रूप च रसो गधस्तथैव च ।
प्राणोऽपान समानश्चोदानव्यानो तथैव च ॥५॥
सत्त्व रजस्तमश्चैव गुणा प्रोक्तास्तु ते त्रय ।
तस्माद्भगवतो ब्रह्मा तस्माद्विष्णुरजायत ॥६॥
ब्रह्मविष्णुमोहनार्थं तत प्रभुस्तु तजसा ।
अशरीरो वासुदेवा ह्यनुत्पत्तिरयोनिज ॥७॥

इस अध्याय मे विराट ब्रह्माण्डोत्पत्ति के विस्तार का वर्णन किया जाता है। श्री सूत जी ने कहा—अब मैं इस विराट् ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति का विस्तार, विभाग और ऐश्वर रूप का बतलाता हूँ और कल्प के अनुसार मन्वन्तर शत के अनुकूल चलने वाला बतलाऊँगा ॥१॥ आरम्भ मे यह सम्पूर्ण तमोमय-अप्रज्ञात और बिना लक्षण वाला था। वहाँ पर एक महान परम कारण रुद्र थे ॥२॥ विभु भगवान ने अपनी ही आत्मा से अपने आपको स्वय सश्रित करके व पहले मन का सृजन करते है और उसके पीछे महङ्कार की सृष्टि किया करते हैं ॥३॥महङ्कार से पाँच महाभूत समुत्पन्न करते है। इस तरह ये आठ प्रकृतियाँ कही गई हैं और षोडश विकार कहे जाते हैं ॥४॥ शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध तथा प्राण अपान, समान, उदान और व्यान होते हैं ॥५॥ सत्व, रज और तम ये गुण कहे गये हैं और ये तीन हुते हैं। उससे भागवत ब्रह्मा और उससे विष्णु उत्पन्न हुए ॥६॥ ब्रह्मा और विष्णु के मोहन के लिये इसके अनन्तर तेज से शम्भु हुए थे। भगवान वासुदेव बिना शरीर वाले, बिना उत्पत्ति वाले और अयोनिज होते हैं ॥७॥

व्यामोहयित्वा तत्सर्वं तेजसाऽमोहयज्जगत् ।
तस्मात्परतर नास्ति तस्मात्परतर न हि ॥८॥
ब्रह्मा विष्णुश्च द्वावेतावुद्भूतौ भगवत्सुतौ ।
कल्पेकल्पे तु तत्सर्वं सृजतेऽसौ जन जगत् ॥९॥
उपसहरते चैव नानाभूतानि सर्वश ।
द्वासप्ततियुगान्येव मन्वतर इति स्मृत ॥१०॥
चतुर्दश तु तान्येव कल्प इत्यभिधीयते ।
दिनैव ब्रह्मण प्रोक्त निशि कल्पस्तथोच्यते ॥११॥
एव मासश्च वर्षंच तथा चाष्टशत द्विजा ।
एव बुद्धीन्द्रियस्यास्य विष्णोश्च निमिप स्मृत ॥१२॥
ब्रह्मादिस्तवपर्यंत निमेषश्च ध्रुवस्य वै ।
निमेषजीवन सर्वं सर्वंलोकचराचरम् ॥१३॥

भूर्लोकोऽथ भुवर्लोक स्वर्लोकश्च प्रकीर्तित ।
जनस्तपश्च सत्य च ब्रह्मलोकश्च सप्तम ॥१४॥

उस सबको व्यामोहित करके तेज से इस जगत् को मोहित किया था उस परतर कोई नही है और उससे ऊपर अ य कुछ भी नही होता है ॥८॥ ब्रह्मा और विष्णु दोनो ये भगवान के पुत्र उद्भूत हुए थे । यह कल्प कल्प मे इस सबका जन जगत सृजन किया करते हैं ॥९॥ अनेक प्रकार के प्राणियो का सब ओर से यही उपसहार भी किया करते है। बहत्तर युगो का एक म व तर कहा गया है ॥१०॥ चौन्ह म वन्तर जब सम त हो जाते है तो एक कल्प होता है । यह कल्प ब्रह्मा का एक दिन कहा गया है और इसी प्रकार से अ य दूसरा कल्प ब्रह्मा की रात्रि होती है । ११॥ इसी प्रकार से मास और वष होते है । हे द्विजगण ! इसी तरह से आठशत होते हैं। इसी प्रकार इनक बुद्धि और इन्द्रिया है । यह इतना समय भगवान विष्णु का एक निमिष होना है ॥१२॥ ब्रह्मा से स्तम्ब पय त उस अ श का िमेष है । यह समस्त चराचर लोक निमेष मात्र जीवन वाला होता है ॥१३॥ भूर्लोक भुवर्लोक और स्वर्लोक कहा गया है । जन लोक तयोलाक सत्यलोक और सातवा ब्रह्मलोक होता है ॥१४॥

पाताल वितल तद्धि अतल तलमेव च ।
पञ्चम विद्धि सुतल सप्तम च रसातलम् ॥१५॥
एतेषु सप्त विख्याया अध पातालवासिन ।
तेषामादौ च मध्ये च अते रुद्र प्रकीर्तित ॥१६॥
ग्रसते जायते लोकान्क्रीडाथ तु महेश्वर ।
ब्रह्मलोकपरीप्सूना गतिरूर्ध्वं प्रकीर्तिता ॥१७॥
पृथिवी चातरिक्ष च दिशश्च विदिशस्तथा ।
समुद्राणा गिरीणा च अधस्तियक्प्रसर्पया ॥१८॥
समुद्राणा च विस्तार प्रमाण च तत श्रृणु ।
स्थावराणा च शैलाना देवाना च दिवौकसाम् ॥१९॥

चतुष्पदानां द्विपदां तथा धर्मैकभापिणाम् ।
सहस्रगुणमाख्यातं स्थावराणां प्रकीर्तितम् ॥२०॥
सहस्रगुणशीलाश्च इत्याह भगवान्मुनिः ।
ऋपिस्तु प्रथमं कुर्वन्प्रकृतिं नाम नामतः ॥२१॥

नीचे के लोकों के नाम पाताल, वितल, अनल, तल, पाँचवाँ सुतल और सातवा रसातल होता है ॥१५॥ इनमे नीचे पाताल वासी सात विख्यात हैं। उनके आदि में, मध्य में और अन्त में रुद्र कहे गये हैं ॥१६। महेश्वर भगवान क्रीडा के लिये लोकों को उत्पन्न करते हैं और इनका ग्रसन भी किया करते है। जो ब्रह्म लोक के परीप्सु होते हैं उनकी गति ऊर्ध्व बताई गई है ॥१७॥ पृथिवी, अन्तरिक्ष, दिशाऐं और विदिशाऐं, समुद्र और पर्वतों की प्रसख्या से अध और तिर्यक् गति होती है ॥१८॥ अब समुद्रों का विस्तार और इसके पश्चात् उनका प्रमाण मुझसे श्रवण करो। स्थावरों का, शैलों का, देवों का और दिवौकसों का, चतुष्पदों का, द्विपदों का तथा धर्मैक भापियों का स्थावरों का सहस्र गुण कहा गया है ॥१९॥२०॥ भगवान मुनि ने यह कहा है कि ये सहस्र गुण शील होते हैं। ऋपि ने नाम से प्रकृति कही जाने वाली को सबसे पहले किया था ॥२१॥

तस्यां ब्रह्मा प्रकृत्यास्तु उत्पन्नः सह विष्णुना ।
तस्माद्बुद्धया प्रकुरुते सृष्टिं नैमित्तिकीं द्विजाः ॥२२॥
तस्मात्स्वयंभुवो ब्रह्मा ब्राह्मणान्समकल्पयत् ।
पादहीनान्क्षत्रियाश्च तस्माद्धीनास्तु वैश्यकान् ॥२३॥
चतुर्थपादहीनाश्च आचारेपु वहिष्कृताम् ।
पृथिवीं चान्तरिक्षं च दिशश्चैवाप्यकल्पयत् ॥२४॥
लोकालोकस्य सस्था च द्वीपानामुदधेस्तथा ।
सरितां सागराणां च तीर्थान्यायतनानि च ॥२५॥
मेघस्तनितनिर्घोषरोहितेद्रधनू पि च ।
उल्कानिर्घातकेतूश्च ज्योतीष्यायतनानि च ॥२६॥
उत्पन्नं तस्य देहेपु भूयः कालेन पीडयेत् ॥२७॥

उस प्रकृति से विष्णु के साथ ब्रह्मा उत्पन्न हुए। हे द्विजगण! उससे बुद्धि के द्वारा नैमित्ति की सृष्टि को किया करते हैं ॥२२॥ उस स्वयम्भू से ब्रह्मा ने ब्राह्मणो की रचना की थी। पाद से हीन क्षत्रियो को उनसे हीन वैश्यो का रचा था ॥२३॥ चौथे पाद हीन और आचारो मे वहिष्कृत शूद्रो की रचना की थी। पृथिवी, अन्तरिक्ष और दिशाओ की कल्पना की थी ॥२४॥ लोका लोक पर्वत को सरथा, द्वीपो की और समुद्र की तथा सरिताओ और सागरो की सस्थापना की। तीर्थ और आयतन उसके देहो मे उत्पन्न हुए और फिर काल के द्वारा पीडित होते हैं ॥२५॥२६॥२७॥

॥ पुराण इतिहास श्रवण माहात्म्य ॥

समाख्यामीह विप्रेंद्रा इतिहास पुरातनम्।
श्रवणेपि च धर्मात्मिञ्छ्रूयता यन्मया पुरा ॥१॥
पृष्टोवोचन्महातेजा विरिंचो भगवान्प्रभु।
हत ते कथयाम्येष पुराणश्रवणे विधिम् ॥२॥
इतिहासपुराणानि श्रुत्वा भक्त्या द्विजोत्तमा।
मुच्यते सर्वपापेभ्यो ब्रह्महत्याशत च यत् ॥३॥
साय प्रातस्तथा रात्रौ शुचिर्भूत्वा शृणोति य।
तस्य विष्णुस्तथा ब्रह्मा तुष्यते शकरस्तथा ॥४॥
प्रत्यूषे भगवान्ब्रह्मा दिनाते तुष्यते हरि।
महादेवस्तथा रात्रौ शृण्वता पठता नृणाम् ॥५॥
शुक्लवस्त्रधरश्चैव चैलाजिनकुशोत्तर।
प्रदक्षिणत्रय कुर्याद्या तस्मिन्देवता गुरौ ॥६॥
नात्युच्छ्रित नातिनीच स्वासन भजते तत।
दिक्पतिभ्यो नमस्कृत्य ॐकाराधिष्ठितानपि ॥७॥

इस अध्याय मे पुराण, इतिहास का अर्चन और श्रवण का माहात्म्य वर्णन किया जाता है। श्री सूत जी ने कहा—हे विप्रेन्द्र गण! यहाँ पर मैं

एक बहुत पुराना इतिहास बतलाता हूं। हे धर्मात्मन्! उसके श्रवण मे भी कल्याण होता है। मैंने यह पहिले सुना था अब तुम इसे श्रवण करो ॥१॥ जब पूछा गया तो महान तेज वाले भगवान प्रभु विरञ्चि ने कहा—मैं तुमसे यह पुराण के श्रवण करने की विधि कहता हूं ॥२॥ हे द्विजोत्तमो! भक्ति के भाव से इतिहास पुराणों को सुनकर समस्त पापो से मुक्त हो जाता है। यदि सौ भी ब्रह्म हत्यायें का पाप हो तो उससे भी छुटकारा हो जाया करता है ॥३॥ जो मनुष्य प्रातः काल और सायंकाल में शुद्ध होकर श्रवण करता है उससे ब्रह्मा विष्णु और शंकर बहुत ही सन्तुष्ट होते हैं ॥४। प्रातः काल मे भगवान ब्रह्मा और दिन के मध्य मे विष्णु तुष्ट होते हैं। महादेव रात्रि मे श्रवण करने वालो तथा पढने वालो से प्रसन्न हुआ करते हैं ॥५॥ शुक्ल वस्त्रो के धारण करने वाला चन्द्र, अजिन य कुशा के उत्तरीय वाला जो भी उसमें देवता हो उसे और गुरु की तीन प्रदक्षिणा करे ॥६॥ आसन ऐसा होना चाहिए जो न तो अधिक ऊँचा हो और न अधिक नीचा ही हो, उस आसन पर बैठना चाहिए। पहले दिशाओ के पतियो को नमस्कार करे और ओङ्काराधिष्ठितो को भी प्रणाम करना चाहिए ॥७॥

पुस्तक धर्मशास्त्रस्य धर्माधिष्ठानशाश्वतम्।
आगमाना शिवो देवस्तन्त्रादीना च शारदा ॥८॥
जामलाना गणपतिर्डामराणा शतक्रतु।
नारायणो भारतस्य तथा रामायणस्य च ॥६॥
वासुदेवो भवेद्द्व सप्ताना शृणु सत्तम।
आदित्यो वासुदेवश्च माधवो रामकेशवौ ॥१०॥
वनमाली महादेव सप्ताना सप्तवंसु।
विष्णुधर्मादिकाना च शिवो ज्ञेय सनातन।
अथ चादिपुराणस्य विरिंचि परिकीर्तित ॥११॥
शुद्धौदन यवक्षीर पायस कृशर तथा।
कृशरान च वा दद्या कमाद्बलिगण विदु ॥१२॥

शालिभक्त सगोधूम तिलाक्षतविमिश्रितम् ।
गव्य च सफल चैव देयश्चैभ्यस्त्वय वलि ॥१३॥
पृथक्पृथक्चैव कास्ये विन्यसेद्दिक्षु मध्यत ।
पठेच्चापि विधानेन स याग पण्मय पर ॥१४॥

धम शास्त्र की पुस्तक शाश्वत धर्म का अधिष्ठान है । आगमो का देवना शिव होते हैं और तन्त्र आदि का देवता भगवती शारदा होती है ॥८॥ जामलो का देव गणपति है और डामरा का देवता शतक्रतु इन्द्र होते हैं। भारत के देव नारायण हैं और रामायण के देवता भी नारायण ही होते हैं। हे सत्तम ! सत्नो के देव श्री वासुदेव है । आदित्य, वासुदेव, माधव, राम, केशव वनमाली, महादेव सत्त पर्वो मे सत्नो के देव होते हैं। विष्णु धर्मादि का सनातन शिव जानना चाहिए । आदि पुराण का विरञ्चि देव बतलाया गया है ॥९॥१०। ११॥ अब इन देवो को समर्पित करने की बलि के विषय मे बताते हैं शुद्धौदन, यवक्षीर, पायस कृशर अथवा कृशरा न क्रम से इनको बलि देनी चाहिए ॥१ ॥ गोधूम के सहित शालिभक्त जोकि तिल और अक्षतो से विशेष रूप से मिश्रित हो, फलो के सहित गव्य इन देवो के लिये बलि देनी चाहिए ॥१३॥ कांसे के पात्र मे पृथक पृथक दिशाओ मे मध्य भाग मे बलि का वि यास करना चाहिए । विधान के साथ पढना चाहिए। यहा याग पण्मय और पर होता है ॥१४॥

शीतोदक मधु क्षीर सितेक्ष्वोश्च रसो गुड ।
सगभश्च परा ज्ञेय पण्मयश्चापरो वलि ॥१५॥
शालितडुलप्रस्थ तु तदर्ध वा तदधकम् ।
क्षीरेणापि च सभक्त यवक्षीरमिद स्मृतम् ॥१६॥
क्षीर भागाष्टक ग्राह्य सप्तभागेन सस्थितम् ।
हैमतिक सियास्य च ताडुल प्रपचेन्नरम् ॥१७॥
गुडमिश्रेण यो दद्यात्सपर्को जायते क्वचित् ॥१८॥
सपृक्त माक्षिकेणापि दद्यादिक्षुरस बुध ।
गृहीत्वा याचक शुद्ध शृणुत द्विजसत्तमा ॥१९॥

शृणुते वाधीयानो यो दद्याद्धस्ते च पुस्तकम् ।
समुत्थाय च गृह्णीयात्प्रणम्य विनिवेदयेत् ॥२०॥
पूर्वस्थ श्रावको विप्रो विख्यातस्तस्यदक्षिणे ।
पश्चिमाशामुखेनैव तर्जन्यागुयष्ठया सह ॥२१॥
प्रस्तरेणापि हस्तेन विन्यास पडितै. सदा ।
इतोन्यथा न कर्तव्य कृत्वा न्यासमयाप्नुयात् ॥२२॥

शीत जल, मधु, क्षीर और सित ईख का रस तथा गुड और सगर्भ पर समझना चाहिए। यह दूसरा पण्मय बलि होती है ॥१५॥ शालि तण्डुल एक-प्रस्थ या इससे अर्ध भाग अथवा उसका भी आधा भाग क्षीर के साथ सभक्त किया हुआ हो, इसको यवक्षीर कहा गया है ॥१६॥ आठ भाग क्षीर लेना चाहिए जाकि सात भाग से सस्थित रहे। हैमन्तिक और सिताब्य तण्डुल का पाक करे यह चरु हुआ ॥१७॥ जब अस्सी पल के मान वाला रहकर सिद्ध होवे तो उसे प्राप्त करना चाहिए। फिर आधा भाग माक्षिक अथवा मिश्री देना चाहिए। गुड के मिश्र से जो कोई देवे और कही सम्पर्क हो जाता है तो बुध को माक्षिक से सप्रक्त म भी ईख का रस देना चाहिए। शुद्ध याचक ग्रहण करे हे द्विजश्रेष्ठो ! तुम श्रवण करो ग्रहण करके याचक शुद्ध होता है। ॥१८॥१९॥ श्रवण करने वाले के लिये अथवा पढने वाला जो हाथ मे पुस्तक देता है तो उठकर ग्रहण करना चाहिए और प्रणाम करके निवेदन करना चाहिए ॥२०॥ श्रावक विप्र पूर्व मे स्थित विख्यात है उसके दक्षिण मे पश्चिम दिशा की ओर मुख से तर्जनी और अङ्गुष्ठ से, प्रस्तर हाथ से भी पण्डितो को सदा विन्यास करना चाहिए। इससे अन्यथा नही करना चाहिए न्यास करके प्राप्त करना चाहिये ॥२१॥ २॥

अम्कृद्विन्यसेद्विप्रा पावमानी जले जपेत् ।
वेदातागमवेदातविधिरेप स्मृतो बुधै. ॥२३॥
यमदिक्समुखे श्रोता वाचकश्चोत्तरामुख ।
पुराणभारताख्यान एप वै कथितो विधि ॥२४॥

वैपरीत्येन विधिना विज्ञेयो द्विजसत्तमा ।
रामायणे धर्मशास्त्रे हरिवंशे च सत्तमा ॥२५॥
इतोऽन्यथा यातुधाना प्रलुपंति फलं यत ।
तस्माद्विधिविधानेन शृणुयादथ वा पठेत् ॥२६॥
श्रुत्वा प्रति पुण्यविद्या योऽश्नीयान्मासमेव तु ।
स याति गार्दभी योनिं यदि मैथुनिनं क्वचित् ॥२७॥
यदि देवालये तीर्थे वाचयेच्छृणुयादथ ।
यस्य देवगृहे तस्त तस्य तीर्थस्य वर्णनम् ॥२८॥

हे विप्रो ! बार बार विन्यास करे और पावमानी का जल मे जाप करना चाहिए । महामनीषियो ने वेदान्तागम की वेदान्त विधि यह ही बताई है ॥२३॥ श्रवण करने वाला यम की दिशा की ओर मुख वाला हो और वाचक उत्तर दिशा की ओर मुख वाला रहना चाहिए । पुराण और भारत के आख्यान मे वह विधि कही गई है ॥२४॥ हे द्विजश्रेष्ठो ! रामायण धर्मशास्त्र और हरिवंश मे इसके विपरीत विधि जाननी चाहिए । २५॥ इसके विरुद्ध करने पर यातुधान लोग इनके फल को प्रलुप्त कर दिया करते है । इसलिये विधि, विधान की बहुत अधिक आवश्यकता होती है । इनके विधान से ही सुनना तथा पढना चाहिए ॥२६॥ इस पुण्य विद्या का श्रवण करके जो मास का अशन करता है वह गधा की योनि को प्राप्त किया करता है । और जो श्रवण करके मैथुन करता है तो वह भी गधा के शरीर मे जन्म ग्रहण करता है ॥२७॥ यदि किसी देवालय तीर्थ मे इसका वाचन या श्रवण करे तो जिसका यह देवगृह होता है उसके तीर्थ का वर्णन होता है ॥२८॥

गुरुभ्यो वदनं व्यर्थं पितरं यो न तर्पयेत् ।
जीवन्तं तर्पयेन्मुख्यं गंगायां मरणेऽपि च ।
उभयोस्तर्पणं नास्ति जीवन्नपि न जीवति ॥२९॥
पुराणश्रवणं पुण्यं शून्यं भागवतं यदि ।
व्यर्थं भागवतं विप्रा नारसिंहविहीनकम् ॥३०॥

आदिपर्वणि हीने तु भारताख्य न धारयेत् ।
विनाश्वमेधिक विप्रा विना यज्ञानन विना ॥३१॥
दानकर्मविहीन च मोक्षधर्म न धारयेत् ।
भारत च दिवारोहधारणादौ वर व्रजेत् ॥३२॥
वायुपुराणमश्रुत्वा शास्त्र च यौगिक विना ।
वायुहीन देहिकुल वृथा तस्य न धारकम् ॥३३॥
तथा वायुपुराण यद्विहीन श्रव्यमन्यकम् ।
यथा सुन्दरकाडेन आरण्य च न धरयेत् ॥३४॥
लका विना चादिकाड तल्लिखित्वा न धारयेत् ।
पाराशर विना व्यास याज्ञवल्क्य विना मखम् ॥३५॥

यदि पितरो का तर्पण भली भाँति नही किया है तो उसका गुरु के लिए वन्दना करना व्यर्थ है । गङ्गा मे मृत्यु पाने पर भी जीवित रहते हुए जिसने मुख्य तर्पण नही किया है उन दोनो का तर्पण नही होता है और जीवित रहते हुये भी जीवित नही रहता है ॥२६॥ पुराण का श्रवण करना व्यर्थ है यदि भागवत का श्रवण नही किया है । हे विप्रगण ! वह भागवत श्रवण भी निष्फल है जो मारसिंह से विहीन होता है ॥३०॥ आदि पर्व से हीन भारत नामक पुराण को कभी धारण नही करना चाहिए । दिवारोह धारण आदि मे भारत परम श्रेष्ठ होता है ॥३१॥ अश्वमेघ के बिना और यज्ञानन के बिना तथा दान कर्म के बिना मोक्ष धर्म को धारण नहीकरना चाहिए ॥३२॥ वायु पुराण का श्रवण न करके तथा यौगिक शास्त्र के बिना यह वायुहीन देही का कुल वृथा होता है और उसका धारक नही होता है ॥३३॥ वायु पुराण ऐसा श्रवण करने के योग्य होता है कि उसके बिना अन्य सभी श्रव्य विषय व्यर्थ है जिस तरह सुन्दर काण्ड के बिना आरण्य काण्ड को कभी धारण नहीकिया जाता है ॥३४॥ लङ्का काण्ड के बिना आदि काण्ड को लिखकर कभी धारण नही करना चाहिए । पाराशर के बिना व्यास और याज्ञवल्क्य के बिना मख व्यर्थ होता है ॥३५॥

दक्ष विना न शख च शंखहीन वृहस्पतिम् ।
वीहय श्रवणाद्येन न च युक्तिमथापयेत् ॥३६॥
सस्थापनादेव विना न च किमपि राक्षसं ।
न ददेत्प्रार्थकादिभ्यो न विक्रीयत्स्वथचन ॥३७॥
न हरेत्पुस्तकं चापि न हरेदक्षराणि पट् ।
ब्रह्माक्षरस्य हरणाद्रौरवान्न निवर्तते । ३८॥
आद्याक्षरस्य हरणात्ताम्रकुष्ठी भवेदिह ।
मुखवृत्तस्य हरणाद्यावदाचन्द्रतारकम् ॥३६॥
कुवले असिपत्रे च पततीह न सशय ।
स्वाक्षरस्य हरणे स्वमातृहरणेऽपि यत् ॥४०॥
तस्मात्पुस्तकमान यो हरेन्नरकमाप्नुयात् ।
य द्भारत यत्पुराण स्तोत्ररूपाणि तानि च ॥४१॥

दक्ष स्मृति के विना शङ्ख स्मृति और शङ्ख स्मृति के बिना वृहस्पति स्मृति का श्रवण व्यर्थ होता है। वहीय श्रवण से युक्ति का स्थापन नही करना चाहिए ॥३६॥ सस्थापन के बिना और राक्षसो के बिना प्रार्थकादि के लिये कुछ भी नही देना चाहिए और किसी भी प्रकार से विक्रय भी नही करना चाहिए ॥३७॥ पुस्तक का कभी हरण न करे और पट अक्षरो का भी हरण नही करना चाहिये । ब्रह्माक्षर के हरण करने से कभी रौरव नरक से निवृत्ति नही होती है ॥३८॥ आद्याक्षर के हरण से ताम्र कुष्ठी हो जाता है। मुखवृत्त के हरण करने से जब तक सूर्य, चन्द्र और तारा गण इस भूमण्डल मे रहते हैं तब तक कुवल और असिपत्र नरक मे जाकर पड जाता है इसमे सशय नही है। स्वाक्षर के हरण मे और स्वमातृ हरण मे भी यही नरक प्राप्त होते हैं। इससे कोई भी पुस्तक का जो हरण किया करता है वह नरक मे अवश्य ही जाता है। चाहे भारत हो या पुराण हो या कोई केवल स्तोत्र मात्र ही क्यो न हो। ये सभी स्तोत्र के ही स्वरूप होते हैं ॥३६॥४०॥४१॥

परम प्रकृतेर्गु ह्य स्थान देवैर्विनिर्मितम् ।
पूरयेत्ताम्रलिंगेन अथ रैत्यमयेन वा ॥४२॥
अशक्तो बिल्वकाष्ठस्य तथा श्रीपर्णिकस्य च ।
न काष्ठस्य नव शस्य न लोह योजयेत्क्वचित् ॥४३॥
प्रागारभश्लोकशत धर्मशास्त्रस्य वै लिखेत् ।
सहितायां पुराणायां युग्मकल्प तदर्धकम् ॥४४॥
ब्रह्मचर्येण विलिखेन मोहाद्ब्राह्मणः क्वचित् ।
तथापि चाखिलव्यास लेखनात्सन्ततिक्षय ॥४५॥
अनामात्वे हेमयुता बलाक चित्तमेव च ।
न लिखेदखिलभाग च हरिवशस्य सत्तमा ॥४६॥
गारुडस्य च स्कान्दस्य न लिखेन्मध्यतन्त्रकम् ।
लेखन हरिवशस्य व्रतस्थो नियमैर्युत ॥४७॥
गृहस्थो न लिखेद्ग्रन्थ लिखेन्न मथुरा विना ।
लेखने पारिजातस्य मत्स्यमांसाशिन लिखेत् ॥४८॥
वाल्मीकिसहितायाश्च लेखने च तथा क्वचित् ।
स्तोनमान लिखेद्विप्रा अव्रती न लिखेत्क्वचित् ॥४९॥

प्रकृति का परम गुह्य स्थान जो कि देवो के द्वारा विनिर्मित हुआ है उसे ताम्र लिङ्ग से अथवा रैत्यमय से पूरित करना चाहिए ॥४२॥ यदि शक्ति हीनता हो तो विल्व के काष्ठ तथा श्री पर्णिक के काष्ठ से करे। काष्ठ का भी नव अच्छा नही होता है। लोह का तो कभी योजित नही करना चाहिए ॥४३॥ पहिले आरम्भ मे धर्म शास्त्र के सौ श्लोक लिखने चाहिए। पुराण सहिता मे युग्म कल्प उसका आधा लिखे ॥४४॥ लखन ब्रह्मचर्य के नियम से ही करना चाहिए। मोह से कहीं ब्राह्मण समस्त व्यास का लेखन करे तो सन्तति का क्षय होता है ॥४५॥ अनामात्व मे हे मथुना, बलाक और चित्त को ही नही लिखना चाहिये। हे सत्तम ! हरिवश के सम्पूर्ण भाग को नही लिखो ॥४६॥ गारुड और स्कन्द के मध्य तन्त्र को नही लिखना चाहिये।

हरिवंश का लेखन व्रत में स्थित होकर और नियमों से युक्त रह कर ही करना चाहिये ।।४७।। गृहस्थ को ग्रन्थ नहीं लिखना चाहिये और लिखे तो मथुरा के बिना लिखे । लेखन में पारि जान के मत्स्य मासादी को लिखना चाहिये ।।४८।। वाल्मीकि संहिता को किसी समय लिखना हो तो स्तोत्र मात्र ही लिखे और बिना व्रत वाला होकर नहीं लिखना चाहिये ।।४९।।



।। पूर्तकर्म तथा वृक्षारोपण ।।

अन्तर्वेदि प्रवक्ष्यामि ब्रह्मणोक्त युगान्तरे ।
वहिर्वेद तथैवोक्त शस्तस्याद्द्वापरे कलौ ।।१।।
ज्ञानसाध्य तु यत्कर्म अन्तर्वेदीति कथ्यते ।
देवतास्थापन पूजा वहिर्वेदिरुताहृता ।।२।।
प्रपापूर्तादिक चैव ब्राह्मणाना च तोपणम् ।
गुरुम्य परिचर्या च वहिर्वेदी द्विधा मता ।।३।।
अकामेन कृत कर्म कर्म च व्यसनादिकम् ।
अन्तर्वेदी तदेवोक्त वहिर्वेदी विपर्यय ।।४।।
धर्मस्य कारण राजा धर्ममेतद्भवेन्नृप ।
तस्मान्नृप समाश्रित्य बहिर्वेदी ततो भवेत्।।५।।

इस अध्याय में अन्तर्वेदि वहिर्वेदि प्रमाण आदि के वर्णन के साथ पूर्त कर्म का निरूपण किया जाता है । श्री सूतजी ने कहा—अब मैं अन्तर्वेदि को बतलाता हूँ जोकि युगान्तर में ब्रह्माजी ने कहा था । उसी प्रकार से वहिर्वेदि ने भी कहा था जो कि द्वापर में और कलियुग में प्रशस्त होता है ।।१।। जो कर्म ज्ञान के द्वारा साध्य होता है वह अन्तर्वेदि कर्म कहा जाता है । देवता की स्थापना तथा देवता का पूजन का कर्मन्दि वेदि कर्म कहा गया है ।।२।। प्रपा पूर्त आदि और ब्राह्मणों को तोषण करना गुरु वर्ग की परिचर्या करना यह वहिर्वेदि कर्म है जोकि दो प्रकार का माना गया है ।।३।। बिना किसी कामना के किया हुआ कर्म और व्यसनादिक कर्म जो वहिर्वेदि के विपर्यय

होता है वह धन्यवाद वन गया है ॥४॥ धन का कारण राजा होता है और राजा ही धर्म होता है। इसलिए राजा का सम्मान करके फिर अन्य होना चाहिये ॥५॥

महागोरिवहि‍देशो मार्गमणा तृतीयाम् ।
देवताम्स्थापना चैव प्रासादारम्भ तथा ॥६॥
तडागारम्भ चैव तृतीय [redacted] चतुर्थकम् ।
पंचम पितृपूजा च गुरुपूजापुर सग ॥७॥
अधिवास प्रतिष्ठा च देवतानामविक्रिया ।
प्रतिमारम्भ चैव वृक्षाणामथ रोपणम् ॥८॥
त्रिविधा सा विनिर्दिष्टा उत्तमा चाथ मध्यमा ।
कनिष्ठा चापकल्पस्य सर्वकार्येषु विधि ॥९॥
त्रिधा भवति सर्वत्र प्रतिष्ठादिविधिमत ।
पूजाहोमादिभिर्दानैर्मानतश्च त्रिभागत ॥१०॥

महर्षियों ने पुन महत्ता की होने हैं किन्तु इन सबका सार बता रहे हैं। किसी देवता की स्थापना करना तथा किसी प्रासाद का निर्माण करना और तडाग का बनवाना ये तीन सार स्वरूप हैं। इनके अतिरिक्त चौथा और पांचवा पितृगणों की पूजा है जो गुरु पूजा के पुरस्सर होती है ॥६॥७॥ अधिवास प्रतिष्ठा और देवताओं की अविक्रिया प्रतिमा का करना वृक्षों का आरोपण इस तरह यह उत्तम मध्यम और कनिष्ठ तीन प्रकार की निर्दिष्ट की गई है। और शेष अल्प समस्त कार्यों में यही विधि होनी है ॥८॥९॥ यह तीन भाग वाली होती है और सब जगह प्रतिष्ठा आदि की विधि मानी गई है। पूजा होम आदि दान और मान इनके तीन भाग किए जाते हैं ॥१०॥

शोधयेत्प्रथमं भूमिं मिता कृत्वा ततो द्विजा ।
दशहस्तेन दण्डेन पञ्चहस्तेन वा पुन ॥११॥
वाहयेत्सदा वृषभैस्तडागार्थेऽपि भूमिकाम् ।
देवागारस्य या भूमि स्वतैश्च वृषभैरपि ॥१२॥

या भूमिर्ग्रहयागार्थे तत्र वाहैरपि स्पृशेत् ।
आरामार्थे कृष्णवृषै कूपार्थखननैरपि ॥१३॥
वाहयेत्रिदिन विप्रा पञ्चवीहीश्च वापयेत् ।
देवपक्षे सप्तगुण आरामकरण गुण ॥१४॥
मुद्गमाषौ धान्यतिला श्यामाकश्चेति पञ्चम ।
मसूरश्च कलायश्च सप्तव्रीहिगण स्मृत ॥१५॥
सपपश्च कलायश्च मुद्गो माषश्चतुथक ।
व्रीहित्रय माषमुद्गौ श्यामाको महिषो गण ॥१६॥
सुवणमृत्तिका ग्राह्या वर्णानामनुपूर्वश ।
बिल्ववृक्षैरिय कुर्याद्यूपशूनध्वजे दिने ॥१७॥

इस अध्याय मे आराम कर्म और विविध प्रकार के वृक्षो के आरोपण करने की विधि का वणन किया जाता है । श्री सूतजी ने कहा – हे द्विजगण ! सबसे प्रथम भूमिका भली भाँति शोधन करना चाहिए इसके अनन्तर उसे मित्त करे अर्थात् दश हाथ क दण्ड से अथवा पाँच हाथ के दण्ड से उसका ठीक मान कर लेना चाहिए ॥११॥ तडाग निर्माण करने के लिए भूमि को सदा बैलो के द्वारा वाहित कराना चाहिये । जो भूमि देवता के आलय बनाने के लिए ली गई हो उसे श्वेत श्रृङ्ग के वृषभो से जुताना चाहिए ॥१२॥ जो भूमि ग्रहयाग के लिए हो उसे वाहो से स्पश नही करना चाहिए । जो आराम के लिए भूमि हो अथवा कुए के खुदाने के लिए भूमि हो उसे कृष्ण वण के वृषो से जुतवाना चाहिए । हे विप्रगण ! इस तरह तीन दिन तक वाहन करावे और उसमे पञ्च व्रीहियो का वपन कराना चाहिए । देव पक्ष मे और आराम करण मे सात गुना अर्थात् सात धा य बुवाने चाहिये । मुद्ग (मूँग) माष (उद), धान्य, तिल और पाँचवा श्यामाक मसू और कलाय ये सात व्रीहिया का गण कहा गया है ॥१३॥ १४॥१५॥ सपप (सरसो), कलाय, मुद्ग, माष, व्रीहीत्रय, मुद्ग, माष और श्यामाक यह महिषगण होता है ॥१६॥ सुवण मृत्तिका ग्रहण करनी चाहिए जो कि वर्णों के आनुपूर्वी से हो । बिल्व वृक्षो स इसे यूपशून ध्वज दिन में करनी चाहिए ॥१७॥

अरत्निमात्र विज्ञेय प्रशस्त यष्टिहस्तकम् ।
ऊर्णासूत्रमयी मूर्ति कृत्वा कुर्याच्चतुष्टयम् ॥१८॥
क्षीरदारुगर्तयुत द्वादशागुलमेव च ।
ज्वालयेत्तिलतैलेन तथा केशरजेन वा ॥१६॥
पूर्वदिक्प्रणवे सिद्धि पश्चिमाशागति शुभा ।
मरणे दक्षिणाया च हानि स्यादुत्तरे स्थिते ॥२०॥
कल्पे विपत्कर विद्यात्तथा चैव च दिग्गते ।
नारसिहेन मनुना चाग्नि प्रज्वाल्य दापयेत् ॥२१॥
मासे घटे तथा मासे कुर्याद्भूमिपरिग्रहम् ।
सूत्रयेत्कीलयेत्पश्चान्महामाने द्विजोत्तमा ॥२२॥
ततो वास्तुबलि दद्यात्खनित्र परिपूजयेत ।
आब्रह्मन्निति मन्त्रेण खनयेन्मध्यदेशत ॥२३॥

अरत्नि मात्र यष्टि हस्तक प्रशस्त जाननी चाहिए । ऊन और सूत्रमयी मूर्त्ति करे और चार करनी चाहिए ॥१८॥ क्षीर दारु गर्त्त से युक्त और बारह अङ्गुल प्रमाण वाले को तिल के तैल से अथवा केश रज से जलवाना चाहिये ॥१६॥ पूर्व दिक्प्रणव मे सिद्धि होती है । यदि पश्चिम दिशा की गति हो तो वह भी शुभ मानी जाती है । दक्षिण दिशा में गति होने से मरण होना है और यदि उत्तर मे गति हो तो हानि होती है ॥२०॥ कल्प मे विपत्ति के करने वाला होता है और दिग्गत मे भी उसी प्रकार से होना है । नारसिंह मन्त्र के द्वारा अग्नि को प्रज्वलित करा कर दिलवाना चाहिये ॥२१॥ मास घट मे तथा मास में भूमि का परिग्रह करना चाहिए । हे द्विजश्रेष्ठो ! पश्चात् महामान मे उसे सूत्रापित और कीलित करना चाहिए ॥२२॥ इसके अनन्तर वास्तुदेव के लिए बलि देवे और खनित्र का पूजन करना चाहिए । "आ ब्रह्मन्"— इत्यादि मन्त्र के द्वारा मध्यदेश में खनन कराना चाहिए ॥२३॥

पत्रपुष्पफलाना च रजोरेणुसमागमा ।
पोषयति च पितर प्रत्यह प्रतिकर्मणि ॥२४॥

यस्तु वृक्ष प्रकुरुते छायापुष्पफलोपगम् ।
पथि देवालये चापि पापात्तारयते पितृन् ।
कीर्तिश्च मानुषे लोके प्रत्यम्येति शुभ फलम् ॥२५॥
अतीतानागताश्चात पितृन्स स्वर्गतो द्विजा ।
तारयेद्वृक्षरोपि च तस्माद्वृक्ष प्ररोपयेत् ॥२६॥
अपुत्रस्य हि पुत्रत्व पादपा इह कुर्वते ।
यत्नेनापि च विप्रेंद्रा अश्वत्थारोपण कुरु ॥२७॥
शतै पुत्रसहस्राणामेक एव विशिष्यते ।
कामेन रोपयेद्विप्रा एकद्विनिप्रसख्यया ॥२८॥
मुक्तिहेतु सहस्राणा लक्षकोटीनि यानि च ।
धनी चाश्वत्थवृक्षे च अशोक शोकनाशन ॥ ६॥
प्लक्षो भार्याप्रदश्चैव विल्व आयुष्यद स्मृत ।
धनप्रदो जवुवृक्षो ग्रह्राद प्लक्षवृक्षक ॥३०॥

पत्र, पुष्प और फलो के रज रेणु के समागम प्रतिदिन प्रति धर्म मे पितृगण का पोषण किया करते हैं ॥२४॥ जो वृक्ष छाया देता है, पुष्प देता है और फल दिया करता है और मार्ग मे या देवालय मे रहना है वह पितृगण को पाप से तार दिया करता है। ऐसे स्थान मे समारोपित छाया पुष्प एव फलो के देने वाला वृक्ष इस मनुष्य लोक म कीर्त्ति देता है और शुभ फल प्राप्त कराता है ॥२५॥ जो पितृगण हो चुके हैं और जो आगे होने वाले हैं उन सब पितरो को वह स्वर्गगत होकर वृक्षो का रोपण करने वाला तार देता है। इसलिए वृक्षो का रोपण अवश्य कराना चाहिए ॥२६॥ इस लोक म जो मनुष्य पुत्रहीन हो उसको ये समारोपित हुए वृक्ष पुत्र वाला कर देते हैं। इसलिए हे विप्रेन्द्र वर्ग ! यत्न पूर्वक भी अश्वत्थ (पीपल) के वृक्ष का आरोपण अवश्य ही करो ॥२७॥ सैकडो और सहस्रो पुत्रों से यह एक ही विशेषता रखता है। अत कामना से एक,दो और तीन सख्या मे वृक्षों का आरोपण अवश्य करना चाहिए ॥२८॥ यह अश्वत्थ वृक्ष का समारोपण मुक्ति के प्रदान करने का हेतु होता है। लाखो और करोडो के धन का धनी बनाने वाला होता है।

जो अशोक का वृक्ष है वह समारोपित होकर शोक का नाश कर देने वाला होता है ॥२६॥ प्लक्ष (पाखर का वृक्ष आरोपित होकर भार्या का प्रदाता होता है और बिल्व बेल) का वृक्ष आयुष्य के प्रदान करने वाला है। जामुन का वृक्ष धन प्रदान किया करता है तथा प्लक्ष वृक्ष ब्रह्म का देने वाला होता है ॥३०॥

तिंदुकात्कुलवृद्धि स्याद्दाडिमी कामिनीप्रद ।
बकुलो वञ्जुलश्चैव पापहा बलबुद्धिद ॥३१॥
स्वर्गप्रदा धातकी स्याद्वटो मोक्षप्रदायक ।
सहकार कामप्रदो गुवाक सिद्धिमादिशेत् ॥३२॥
सबशम्य बलवले मधुक चार्जुने तथा ।
कदवे विपुला कीर्तिस्तितिडी धमदूषिक ॥३३॥
जीवत्या रोगशान्ति स्यात्केशर शत्रुमदन, ।
धनप्रदश्चैव वटो वट श्वेतवटस्तथा ॥३४॥
पनसे मदवृद्धि स्यात्कलिवृक्ष श्रिय हरेत् ।
कलिवृक्ष च शाखोट उदरावतक तथा ॥३५॥
तथा च मर्कटीनीपरोपणात्सततिक्षय ।
शिशपा चार्जुन चैव जयन्ती हयमारकान् ।
श्रीवृक्ष किंशुक चैव रोपणात्स्वगमादिशेत् ॥३६॥
न पूर्वारोपयेज्जातु समिध कटकीद्रुमम् ।
कुश पद्म जलजाना रोपणाद्दुर्गति व्रजेत् ॥३७॥

तिन्दुक के वृक्ष का समारोपण करने से कुल की वृद्धि होती है और दाडिम (अनार) का वृक्ष कामिनी के देने वाला है। बकुल और वञ्जुल का वृक्ष पापों का हनन करते हैं और बल तथा बुद्धि के देने वाले होते हैं ॥३१॥ धातकी वृक्ष स्वर्ग का प्रदान करने वाला होता है तथा वट के वृक्ष का आरोपण मोक्ष प्रदान किया करता है। आम का वृक्ष कामना पूर्ण करने वाला है और गुवाक का वृक्ष सिद्धि प्रदायक होता है ॥३२॥ बलवल, मधुक और अर्जुन

वृक्षों में सब प्रकार शस्य देने की सामर्थ्य होती है। कदम्ब वृक्ष के आरोपण से विपुल कीर्त्ति की प्राप्ति होती है। तिंतडी का वृक्ष धर्मदूषिक होता है ॥३३॥ जीवन्ती में रोग की शान्ति होती हैं और केशर वृक्ष शत्रु के मर्दन करने वाला है। वट वृक्ष धन प्रदान करने वाला है और श्वेत वट भी धन प्रदाता होता है ॥३४॥ पनस का वृक्ष से मन्द वुद्धि होती है और कलि वृक्ष श्री का हरण किया करता है। कलिवृक्ष, शाखोट, उदरावर्त्तक, मर्कटी, नीप इनके रोपण से सन्तति का क्षय होता है। शिंशपा, अर्जुन, जयन्ती, हयमारक, श्री वृक्ष, किंशुक इन वृक्षों के रोपण करने से स्वर्ग की प्राप्ति हुआ करती है ॥३५॥-६॥ पूर्वा का कभी रोपण न करे। समिध और कण्टकी, द्रुम, कुश, पद्म और जलज के वृक्षों के रोपण से दुर्गति को प्राप्त होता है ॥३७॥

अथ तत्रविधि वक्ष्ये पुराणेष्वति गीयते ।
तन्त्रे चैव प्रतिष्ठा च कुर्यात्पुण्यतमेऽहनि ॥३८॥
शतवृक्षक्षुद्रवृक्षे दशद्वादश वृक्षके ।
हृष्टिमात्रातरे सेतौ कूपयागे समुत्सृजेत् ॥३९॥
न कूपमुत्सृजेन्नन्तु वृक्षयागे कथचन ।
तुलसीवनयागे तु न चान्य यागमाचरेत् ॥४०॥
तडागयागे सेत्वादीन्न चारामे कदाचन ।
न सेतु देवयागे तु तडाग न समुत्सृजेत् ॥४१॥
तत्रे श्राद्ध पृथङ्नास्ति कर्तुर्भेदे पृथग्भवेत् ।
शिवलिंग स्थापनाया न चान्यद्देवस्थापनम् ॥४२॥

इस अध्याय मे कूप, वापी और तालाव की प्रतिष्ठा मे विशेष विधि का वर्णन किया जाता है। सूतजी बोले—यहाँ पर अब मैं तन्त्र विधि को बतलाऊँगा जिसका कि पुराणों मे भी गान किया जाता है। तन्त्र मे प्रतिष्ठा का कर्म किसी परम पुण्यतम दिन मे करना चाहिये ॥३८॥ छोटे शत वृक्ष मे, दश-द्वादश वृक्ष मे, दृष्टिमात्र अन्तर वाले सेतु में कूपयाग मे समुत्सृजन करना चाहिये ॥३९॥ वृक्षयाग मे किसी भी प्रकार से कूप का कभी उत्सृजन नही करना चाहिये तुलसी वन के याग मे तो अन्य कोई भी याग नही करना चाहिये ॥४०॥ तडाग

याग म और आराम म सेतु आदि का उत्सृजन कभी न करे। देवयाग मे सेतु और तडाग का समुत्सृजन नही करना चाहिये ।४१।। तन्त्र मे श्राद्ध प्रथक् नही होता है केवल कर्त्ता के भेद से ही उसमे पार्थक्य हुआ करता है। शिवलिङ्ग की स्थापना मे अन्य किसी भी देव की स्थपना नही होती है ।।४२।।

स्वदेशे वर्जयेत्त त स्वतन्त्रण विधीयते ।
विपरीते कृते चापि आयु क्षय इति स्मृति ।।४३।।
तडागे पुष्करिण्या वा आरामेऽमि द्विजोत्तमा ।
मानहीने मानपूर्ण दशहस्ते न दूषणम् ।।४४।।
द्विसहस्राधिक यत्र तत्प्रतिष्ठा समाचरेत् ।
दश द्वादशवृक्ष च आरामे पूर्ववद्विजा ।।४५।।
प्रतिष्ठा विल्ववृक्ष च अन्यथा कर्णवेधनम् ।
कुर्याद्दोहददान च तत्र निर्मथनादिकम् ।।४६।।
अनतर प्रदातव्या लाजा मूर्ध्न्यक्षतादिकम् ।।४७।।

उसको अपने देश मे वर्जित कर देना चाहिए और स्वन त्र रूप से करना चाहिए। इसके विपरीत करने से आयु का क्षय होता है – ऐसा स्मृति कहती है ।।४३।। हे द्विजोत्तमो ! तडाग मे अथवा पुष्करिणी मे और आराम मे भी मानहीन मानपूर्ण और दशहस्त मे कोई भी दूषण नही होता है ।। ४।। जहाँ पर दो सहस्र से अधिक हो वहा प्रतिष्ठा करनी चाहिए। हे द्विजगण ! दश द्वादश वृक्ष मे आराम मे तो पूव की भाति ही करना चाहिए ।।४५।। बिल्व वृक्ष मे प्रतिष्ठा करे अन्यथा कर्णवेधन, दोहद दान और वहाँ निर्मन्थनादिक करना चाहिये ।।४६।। इसके अन तर मूर्द्धा पर लाज और अक्षत आदि का प्रक्षेपण करना चाहिये ।।४७।।



।। विविधविधिकुण्डनिर्णय ।।

अत पर प्रवक्ष्यामि कुण्डानामथ निर्णयम् ।
तस्योद्धार च सस्कार शृणुध्व द्विजसत्तमा। ।१।।

चतुरस्र च वृत्त च पादार्ध चार्धचन्द्रकम् ।
योन्याकार चद्रक च अष्टाधमथ पचमम् ॥२॥
सप्ताध च नवार्ध च कुड दशकमीरितम् ।
भूमि सशोध्य विधिवत्तुपकेशादिवर्जिताम् ॥३॥
भ्रामयेच्चोर्ध्वतस्तस्या भस्मागाराणि यत्नत ।
अकुरार्पणक कुर्यात्सप्ताहादेव बुद्धिमान् ॥४॥
स्थान विमर्दित कुर्यात्खनित्वा सेचयेज्जलं ।
पुष्टिहस्तोच्छ्रायमित प्रकुर्यात्परिसूनयेत् ॥५॥
अर्कांगुलमित सूत्र चतुरस्र प्रकल्पयेत् ।
अष्टादशागके क्षत्रे न्यसेदेक बहिस्तत ॥६॥
मापयेत्तेन मानेन त्रिवृत्त कुडमुज्ज्वलम् ।
पूर्ववद्विभजेत्क्षत्र भागैक पुरतो न्यसेत् ॥७॥

इस अध्याय म कम विशेषो की प्रधानता होने से अनेक प्रकार के विधि कुण्डो के निर्णय का निरूपण किया जाता है । श्री सूतजी ने कहा—अब इससे आगे हम कुण्डो के निर्णय के विषय मे बतायेंगे । हे द्विजश्रेष्ठो ! कुण्डो का उद्धार और सस्कार का तुम श्रवण करो ॥१॥ कुण्ड कई प्रकार के होते हैं—चौकोर वृत्त (गोलाकार), पादाध, अधचन्द्रक योनि, के समान आकार वाला चन्द्रक, अष्टाध पञ्चम सप्ताध, नवाध इस तरह ये दश प्रकार के कुण्ड बताये गये हैं । विधि के अनुसार भूमि का सशोधन करे जहाँ कि तुष और केश आदि न हो ॥२॥३॥ उसके ऊपर यत्न से भस्माङ्गारो का भ्रामण कराना चाहिये । बुद्धिमान को एक सप्ताह मे ही अड्कुरा रोपण करना चाहिये ॥४॥ कुण्ड का जो स्थान हो उसे विशेष रूप से मर्दित करे और खोद कर जल से सेचन करना चाहिये । पुष्टि हस्त उच्छ्राय वाला होना चाहिये और उसे परिसूत्रित करना चाहिये ॥५॥ बारह अगुल परिमाण वाला सूत्र चतुरस्र प्रकल्पित करे । अष्टादश अङ्ग वाले क्षेत्र म एक का न्यास करे फिर उससे बाहिर उस मान से उसका माप करे । त्रिवृत्त उज्ज्वल कुण्ड होता है । इसी प्रकार से पूर्व की भाँति क्षेत्र का विभाजन करे और एक भाग आग की ओर रक्खे ॥६॥७॥

वृत्तानि कालिकादीनि वहिस्त्रीणि विवर्जयेत् ।
पद्मकुडमिद प्रोक्त विलोचनमनोहरम् ॥८॥
दशधा भेदयेत्क्षेत्रे उर्ध्वाधोर्ध्वांगुलद्वयम् ।
सपरिपातयेत्सूत्र पाटयेत्तत्प्रमाणत ॥६॥
पचधा भेदिते क्षेत्रे काम वा विभजेत्सुधा ।
न्यसेत्पुरस्तादेवाग कोणार्धार्धप्रमाणत ॥१०॥
योनिस्थान प्रतिष्ठाप्य अश्वत्थस्य दलाकृति ।
सूत्रद्वय ततो दद्यात्कुड परिमित भवेत् ॥११॥
चतुरस्र समुद्धृत्य सूत्र सकल्पयोगत ।
दिश प्रति यथान्याय पातयेच्च द्विजोत्तमा ॥१२॥
शृ गाटक युग्मपुट षडस्र कुडनय बुधा ।
जलाशयारामकूपे नित्ये गृहमये यथा ॥१३॥
चतुस्र भवेत्कुड द्विजसंस्कारकर्मणि ।
देवप्रतिष्ठायागे च गृहवास्तौ चतुर्थकम् ॥१४॥

कालिकादि तीन वृत्तों को बाहिर विवर्जित कर देना चाहिये । इमको पद्म कुण्ड कहा गया है जो कि भगवान् त्रिलोचन को परम सुन्दर लगता है ॥८॥ क्षेत्र मे दश प्रकार से भेदन करे । ऊर्ध्व भाग में, अधो भाग मे दो अगुल रक्खे और सूत्र को सर्पातित करे तथा उसी प्रमाण से उसे पाटित भी करना चाहिए ॥६॥पाँच प्रकार से भेदित क्षेत्र मे अथवा विद्वान को यथेच्छा मे विभाजन करना चाहिए और कोणार्धार्ध प्रमाण से पहले ही अङ्ग का न्यास करना चाहिए ॥१०॥ योनिस्थान को प्रतिष्ठापित करके पीपल के पत्ते की आकृति वाला बनावे फिर दो सूत्र देवे जिससे कुण्ड परिमित होवे ॥११॥ चतुरस्र सूत्र लेकर सकल्प के योग से दिशा के प्रति न्यायानुसार पातन करना चाहिए ॥१२॥ हे द्विजोत्तमो ! शृङ्गाटक, युग्मपुट और षडस्र ये तीन प्रकार के कुण्ड होते है । जिस तरह जलाशय, आराम कूप और नित्य गृहमय म होते हैं ॥१३॥ द्विजो के सस्कार के कर्मों चतुरस्र कुण्ड होता है । देव प्रतिष्ठ याग मे और गृह वास्तु म चतुर्थक होता है ॥१४॥

वसुधरायोगभेदे प्रपचे वर्तमादिशेत् ।
सोमेऽष्टौ पकज प्रोक्त नरमेधाश्वमेधयो ॥१५॥
अकुरार्पणयागे च वैष्णवे यागकर्मणि ।
शिवदेव्योश्च जन्मादावष्टम्या चार्धचद्रकम् ॥१६॥
मार्जारपौष्टिके वैर रम्ये च शान्तिके तथा ।
शातिप्रतिष्ठायागे तु शाक्ताना काम्यकर्मणि ॥१७॥
पुरश्चरणकाम्येषु ज्वरादीना विमोक्षणे ।
एवविधेषु कार्येषु योनिकुड प्रशस्यते ॥१८॥
देवतातीर्थयात्रादौ महायुद्धप्रवशने ।
सौरे शाते पौष्टिके च षट्पुर कुडमुत्तमम् ॥१९॥
मारणोच्चाटने चैव तथा रोगोपशातये ।
वैष्णवाना कोटिहोमे नृपाणामतिशोचने ॥२०॥
अष्टास्रमब्जकुड च सप्तास्र निधिसाधने ।
राज्ञा साध्ये च पचास्र कन्याप्राप्तौ त्रिरस्रकम् ॥२१॥

वसुधरायोग भेद मे प्रपञ्च मे वर्त्त का आदेश देना चाहिए । सोम आठ और नरमेद तथा अश्वमेध यागो मे पङ्कज कहा गया है ॥१५॥ अङ्कुरार्पण याग मे, वैष्णव याग कर्म में शिव और देवी के जन्मादि मे और अष्टमी मे अर्ध चन्द्रक कुड का निर्माण कराना चाहिये ॥१६॥ मार्जार पौष्टि में वैर में, रम्य, शान्तिक, शान्ति प्रतिष्ठायाग और शाक्तो के काम्य कर्म में एव काम्य पुरश्चरणो म तथा ज्वरादि के विमोक्षण कर्म में इस प्रकार के जो क होते हैं उनमें योनि कुड ही प्रशस्त कहा जाना है ॥१७॥१८॥ देवता ती यात्रादि में महायुद्ध के प्रवेश में सौर शान्त और पौष्टिक कर्म में षडपुर नाम कुड उत्तम माना जाता है ॥१९॥ मारण उच्चाटन रोगोपशान्ति वैष्णव का कोटि होम और नृपो के प्रति मोचन मे अष्टास्र अब्ज कुड होना चाहिए निधि के साधन में सप्तास्र कुण्ड श्रेष्ठ कहा गया है । राजा के द्वारा साध्य पञ्चास्र कुड और कन्या की प्राप्ति मे त्रिरस्रक कुड होना चाहिए ।२०॥२१॥

यावन्निम्नं भवेदेव विस्तारस्तावदेव तु ।
कुंडानुरूपतः कार्या मेखला सर्वतो बुधैः ॥२२॥
अयुतादिषु होमेषु मेखला योजयेत्सुधीः ।
निम्नप्रमाणे चात्रापि मूले सार्धांगुलं त्यजेत् ॥२३॥
कोणवेदरसैर्मानं यथायोग्यमनुक्रमात् ।
मुष्टिहस्ते समुत्सेधो सार्धांगुलपरिष्कृतः ॥२४॥
अरत्निमात्रे कुंडे तु त्रिश्चैकांगुलतः क्रमात् ।
एकहस्तमिते कुंडे वेदाग्निनयनांगुलाः ॥२५॥
सप्तमेखलकं युक्तं लक्षहोमे न शस्यते ।
पंचमे खलकं लक्षकोट्या च योजयेत् ॥२६॥
एकांगुलादिमानेन नेमिं संवर्धयेत्सुधीः ।
चतुर्हस्तमिते कुंडे तावदेव गुणांगुलाः ॥२७॥
वसुहस्ते भानुपंक्तियुग्महीनेऽपि ताः क्रमात् ।
सर्वाः समा ग्रहमखे मेखलाश्च सहस्रके ॥२८॥

-कुण्ड जितना नीचे गहरा हो उसका उतना ही विस्तार भी होना चाहिए। बुधो को कुंड के अनुरूप ही सब ओर से मेखला भी बनानी चाहिये ॥२२॥ सुधी पुरुष को अयुतादि होमो मे मेखला को योजित करना चाहिए। निम्न के प्रमाण मे यहाँ पर भी मूल में डेढ अड्गुल का त्याग कर देना चाहिए ॥२३॥ कोण वेद रसो से यथा योग्य अनुक्रम से मान रखे, मुष्टि हस्त मे सार्धाड्गुल परिष्कृत समुत्सेध होना चाहिए ॥२४॥ जो कुंड अरत्नि मात्र हो उसमे तो तीन और एक अड्गुल के क्रम से रक्खे। एक हाथ परिमित जो कुंड हो उसमे वेद, अग्नि और नयन (अर्थात् चार तीन और दो) अगुल मेखला होनी चाहिए ॥२५॥ सात मेखलाओ से युक्त कुंड लक्ष होम मे प्रशस्त नही कहा जाता है। लक्ष कोटि मे पाँच मेखलाओ वाला कुंड की योजना करनी चाहिए ॥२६॥ सुधी को एक अगुल आदि मान से नेमि को सर्वधित करना चाहिए। जो कुंड चार हाथ के परिस्तरण वाला हो उसमे उतनी ही अगुल वाली मेखला होनी चाहिये ॥२७॥ आठ हाथ के परिमाण वाले कुंड मे भानु

पंक्ति होती है और युग्म हीन मे भी वेदी क्रम से होती है। ग्रह दुख मे सभी समान और सहस्रक मे मेखलाऐं हुआ करती हैं ॥२८॥

पार्श्वतो योजयेत्तत्र मेखलास्ता यथाक्रमम् ।
सार्धांगुलादिमानेन नेमि सवर्धयेत्सुधीः ॥२९॥
एकमेखलयागेन ' योजयेच्छक्तिभावतः ।
होमाधिक्ये बहुफलमन्यून नाधिकं भवेत् ॥३०॥
कुंडस्य रूप 'जानीयात्परमं प्रकृतेर्वपुः ।
ततो होमे शतगुण स्थडिले स्वल्पक फलम् ॥३१॥
षट्चतुर्धा गुणायामविस्तारोन्नतिशालिनी ।
एकागुल तु योन्यग्रं कुर्यादीषदधोमुखम् ॥३२॥
एकैकागुलतो योनिं कुंडशून्येषु वर्धयेत् ।
सममध्ये मेखलाया. सपर्या ~या सुलक्षणा ॥३३॥
स्थापयेत्कुंडकोणेषु योनिं ता द्विजसत्तमाः ।
कुंडाना कल्पयेन्नाभि स्फुटमबुजसन्निभाम् ॥३४॥
तत्तु कुंडानुरूप वा सुव्यक्तं सुमनोहरम् ।
योनिकुंडे योनिमब्ज कुंडे नाभि च वर्जयेत् ॥३५॥

वहाँ पर उन मेखलाओं को यथाक्रम पार्श्व से योजित करना चाहिए। सुधी पुरुष को सार्धाङ्गुलि मान से उसकी नेमि को सवर्धित करना चाहिए ॥२९॥ एक मेखला वाले भाग से शक्ति भाव के अनुसार योजित करना चाहिए। होम की अधिकता मे बहुत फल होता है। अन्यून अधिक नहीं होता है ॥३०॥ कुण्ड के रूप को अवश्य ही जान लेना चाहिए। यह प्रकृति का परम वपु होता है। इससे होम सौगुना हो जाता है और स्थण्डिल में स्वल्प फल वाला रहा करता है ॥३१॥ षट् और चार प्रकार से गुणायाम विस्तार और उन्नति वाली योनि होती है और योनि का अग्रभाग एक अङ्गुल थोड़ा नीचे की ओर मुख वाला करना चाहिए ॥३२॥ एक-एक अङ्गुल से कुण्ड शून्यों मे योनि को बढ़ाना चाहिए मेखला के सम मध्य मे जो सपर्या

होती है वह अच्छे लक्षण वाली होती है ॥३३॥ हे द्विज श्रेष्ठो ! उस योनि को कुंड कोणों में स्थापित करना चाहिए। कुंडों की नाभि की कल्पना करें जो कि एक विकसित कमल के समान हो ॥३४॥ और वह कुंड के अनुरूप हो अथवा सुस्पष्ट एवं सुमनोहर हो। योनि कुण्ड में योनि और कुंड में अब्ज और नाभि को वर्जित कर देना चाहिए ॥३५॥

यावद्द्वयप्रमाणेन अर्धांगुलक्रमाद्बहिः ।
नाभिं प्रवर्धयेदेकं कुंडानां रूपतो यथा ॥३६॥
तत्र तत्र भवेत्कुंडं विंबशून्यं न होमयेत् ।
शिवशक्तिसमायोगात्कामं उत्पद्यते यतः ॥३७॥
अवटोपि उमादेवी विंबं ख्यातं सदाशिवं ।
न कुर्यादेकया हीनं मरणं च समुद्दिशेत् ॥३८॥
त्रयोदशांगुलं हित्वा बह्निहस्तमथापि वा ।
महातीर्थे सिद्धक्षेत्रे यत्र शंभुगृहे कुले ॥३९॥
तस्य दक्षिणदिग्भागे अग्रतो मंडलं लिखेत् ।
तत्र पूजा प्रकर्तव्या पूर्वमानेन चाश्रयेत् ॥४०॥
अर्कहस्तांतरे कुर्याच्छतोर्ध्वांते शतेन वा ॥४१॥

यावद् द्वय प्रमाण से बाहिर अर्ध अङगुल क्रम से नाभि को बढाना चाहिए जैसा कि कुंडों का रूप हो उसी के अनुसार बढावे ॥३६॥ वहाँ वहाँ पर कुंड होना चाहिए और जो बिम्बशून्य हो उसका होम नहीं करे। शिव शक्ति के समायोग से काम उत्पन्न होता है ॥३७॥ अवट भी उमा देवी बिम्ब सदाशिव ख्यात हैं। एक से हीन कभी नहीं करना चाहिए मरण का समुद्देश कर लेवें ॥३८॥ त्रयोदश अङ्गुल को त्यागकर अथवा बह्निहस्त का त्याग करके सिद्धों के क्षेत्र में महा तीर्थ में और शम्भु गृह में कुल में उसके दक्षिण दिग्भाग में आगे मंडल को लिखे और वहाँ पर भली भाँति पूजा करनी चाहिए और पूर्व मान से आश्रय करना चाहिए। अर्क हस्त के अन्तर में शतोर्ध्वान्त में अथवा शत से करना चाहिये ॥३९॥४०॥४१॥

।। होमावसाने षोडशोपचारवर्णन ।।

नित्य नैमित्तिक चैव यागादौ च समाप्तके ।
होमावसाने प्रजपेदुपचारांश्च षोडश ।।१।।
दद्यात्समीरणं पश्चात्पीठपूजां समाचरेत् ।
गृहीत्वा रक्तपुष्पं च ध्यायेद्वह्निं यथाविधि ।।२।।
इष्टं शक्तिस्वस्तिकाभीति
मुच्चैर्दीर्घैर्दोर्भिर्धारयन्तं वरातम् ।
हेमाकल्पं पद्मसंस्थं त्रिनेत्रं
ध्यायेद्वह्निं बद्धमौलिं जटाभिः ।।३।।
पूर्वादिद्वारदेशेषु कामदेवं शतक्रतुम् ।
वराहं षण्मुखं चैव गधाद्यैं साधु पूजयेत् ।।४।।
आवाह्य स्थापयेत्पश्चादष्टौ मुद्राः प्रदर्शयेत् ।
दत्वासनं स्वागतं च दद्यात्पाद्यादिकत्रयम् ।।५।।
अतः पूर्वादिपात्रेषु यावता च हुताशनम् ।
सुवर्णवर्णममलं समिद्धं सर्वतोमुखम् ।।६।।
महोदरं महाजिह्वमाकाशत्वेन पूजयेत् ।
तारकादीन्समाप्ते च गन्धैः पुष्पैः पृथग्विधैः ।।७।।

इस अध्याय मे नित्य और नैमित्तिक होम के अन्त मे षोड शोप चार का वर्णन किया जाता है । श्री सूतजी ने कहा—यागादि की समाप्ति होने पर नित्य और नैमित्तिक का जाप करे और होम के अवसान हो जाने पर षोडश उपचारो का प्रकृष्ट रूप से जाप करना चाहिए ।।१।। समीरण को देवे और पीछे पीठ पूजा करनी चाहिए । रक्त पुष्प ग्रहण करके वह्नि का यथा विधि ध्यान करना चाहिए ।।२।। अग्नि के ध्यान का प्रकार यह है—अग्निदेव अपने लम्बे हाथो मे इष्ट, शक्ति, स्वस्तिक और उच्च अभीति को धारण किए हुए हैं । वरदान देने वाले हेम के आकल्प वाले, पद्म पर विराजमान, तीन नेत्रो से युक्त और जटाओ से मौलिभाग को बाँधे हुए वह्निदेव का ध्यान करना चाहिए ।।३।। पूर्व

ग्रादि दिशाओ के द्वारा देशो मे वामदेव, शतक्रतु, वराह, षण्मुख की गन्धाक्षतादि से भली भाँति पूजा करनी चाहिए ॥४॥ आवाहन करके पीछे इसकी स्थापना करे और फिर ग्राठ मुद्राओ को प्रदर्शित करना चाहिये । आसन और स्वागत देकर फिर ग्रर्घ्यपाद्य और आचमनीय इन तीनो को देवे ॥५॥ इसलिए पूर्वादि पात्रो मे जितना सुवर्ण के वर्ण वाला ग्रमल हुताशन सर्वतोमुख समिद्ध हो उन महान् उदर वाले और महान् जीह्वा वाले का ग्राकाशत्व से पूजन करना चाहिए और पृथक् विध गन्ध एव पुष्पो से समास मे तारकादि का पूजन कर ॥६॥७॥

तत्रैव जिह्वास्त्रिविधा ध्यायेन्मन्त्रपुर सरा ।
वक्ष्यमाणेन मन्त्रेण उपचारैरनन्तरम् ॥८॥
त्वमादि सर्वभूताना ससारार्णवतारक ।
परमज्योतीरूपस्त्वमासन सफली कुरु ॥९॥
दद्यादासनमेतेन पुष्पगुच्छत्रयेण तु ।
पुटाजलि ततो वद्धा पृच्छेत्कुशलपूर्वकम् ॥१०॥
वैश्वानर नमस्तेऽस्तु नमस्ते हव्यवाहन ।
स्वागत तु सुरश्रेष्ठ शांति कुरु नमोऽस्तु ते ॥११॥
नमस्ते भगवन्देव आपोनारायणात्मक ।
सर्वलोकहितार्थाय पाद्य च प्रतिगृह्यताम्॥१२॥
नारायणपर धाम ज्योतीरूप सनातन ।
गृहाणार्घ्य मया दत्त विश्वरूप नमोऽस्तु ते ॥१३॥
जगदादित्यरूपेण प्रकाशयति य सदा ।
तस्मै प्रकाशरूपाय नमस्ते जातवेदसे ॥१४॥

वहाँ पर ही तीन प्रकार की जिह्वाओ का मन्त्र पुरस्सर ध्यान करना चाहिए । आगे बताये गये मन्त्र के द्वारा ध्यान करे और इसके अनन्तर उपचारो से करे ॥८॥ हे अग्निदेव ! आप समस्त प्राणियो के आदि स्वरूप हैं और इस ससार रूप सागर से तार देने वाले हैं । आप परम ज्योति स्वरूप हैं । अब कृपा करके इस आसन को सफल कीजिए ॥९॥ इस उक्त मन्त्र से अग्निदेव को

आसन देना चाहिए फिर पुष्पों के तीन गुच्छों के द्वारा पुष्पाञ्जलि करके कुशल पूर्वक पूछना चाहिए ।।१०।। हे वैश्वानर ! हे हव्यवाहन ! आपके लिए प्रणाम है आपको नमस्कार है। हे सुरश्रेष्ठ ! आपका स्वागत है। आप शान्ति करिये। आपको नमस्कार है ।।११।। हे भगवन् ! हे देव ! हे भगवन् ! आपो नारायणात्मक ! आप समस्त लोकों के हित सम्पादन करने के लिये इस पाद्य का ग्रहण कीजिए ।।१२।। हे ज्योति स्वरूप ! हे सनातन ! आपका धाम नारायण पर है। हे विश्वरूप ! मेरे द्वारा समर्पित यह अर्घ्य आप ग्रहण करें। आपके लिए मेरा नमस्कार है ।।१३।। जो सदा आदित्य के स्वरूप से इस जगत् को प्रकाशित किया करता है उस प्रकाश रूप ज्ञान वेदा के लिए मेरा नमस्कार है ।।१४।।

धनंजय नमस्तेऽस्तु सर्वपापप्रणाशन ।
स्नानीयं ते मया दत्तं सर्वकामार्थसिद्धये ।।१५।।
हुताशन महाबाहो देवदेव सनातन ।
शरणं ते प्रयच्छामि देहि मे परमं पदम् ।।१६।।
ज्योतिषां ज्योतीरूपस्त्वमनादिनिधनाच्युत ।
मया दत्तमलंकारमलङ्कुरु नमोऽस्तु ते ।।१७।।
देवीदेवा मुदं यान्ति यस्य सम्यक्समागमात् ।
सर्वदोषोपशान्त्यर्थं गन्धोऽयं प्रतिगृह्यताम् ।।१८।।
त्वं विष्णुस्त्वं हि ब्रह्मा च ज्योतिषां गतिरीश्वर ।
गृहाण पुष्पं देवेश सानुलेपं जगद्भवेत् ।।१९।।
देवतानां पितृणां च सुखमेकं सनातनम् ।
धूपोऽयं देवदेवेश गृह्यतां मे धनंजय ।।२०।।

हे धनञ्जय ! हे समस्त पापों के प्रणाश करने वाले देव ! आपके लिए मेरा प्रणाम है। मेरे द्वारा आपके लिए यह स्नानीय समर्पित किया गया है जो कि समस्त कामनाओं के अर्थ की सिद्धि के लिये है ।।१५।। हे हुताशन ! हे महाबाहो ! हे देवों के देव ! हे सनातन ! मैं आपकी शरण में जाता हूँ। आप मुझे परम पद प्रदान कीजिए ।।१६।। आप ज्योतियों के ज्योति रूप हैं। हे अनादि

निधनाच्युत ! मेरे द्वारा समर्पित किए हुए अलङ्कारों से आप अपने को अलङ्कृत करें। आपके लिए मेरा नमस्कार है ॥१७॥ जिनके भली-भाँति समागम होने से देवी और देव सभी प्रसन्नता प्राप्त किया करते हैं वह अग्निदेव समस्त दोषों की उपशान्ति करने के लिए यह गन्ध ग्रहण करें ॥१८॥ हे ईश्वर ! आप विष्णु हैं, आप ब्रह्मा हैं और आप ज्योतिगण की गति हैं। हे देवेश ! यह पुष्प ग्रहण कीजिए जिससे यह जगत् सानुकूल हो जावे ॥१९॥ देवताओं को और पितृगण को सुख देने वाला यह एक सनातन धूप है, हे देवदेवेश ! हे धनञ्जय ! इस आप मुझसे ग्रहण करें ॥२०॥

त्वमेक सर्वभूतेषु स्थावरेषु चरेषु च ।
परमात्मा पराकार प्रदीप प्रतिगृह्यताम् ॥२१॥
नमोऽस्तु यज्ञपतये प्रभवे जातवेदसे ।
सर्वलोकहितार्थाय नैवेद्य प्रतिगृह्यताम् ॥२२॥
हुताशन नमस्तुभ्य नमस्ते रुक्मवाहन ।
लोकनाथ नमस्तेऽस्तु नमस्ते जातवेदसे ॥२३॥
इत्यनेन तु मन्त्रेण दद्याद्दिव्येऽप्यधीतकम् ।
सर्वस्व यज्ञसूत्र च परमान्न समाक्षिकम् ॥२४॥

इन समस्त प्राणियों में चाहे वे स्थावर हों या जङ्गम हों आप ही एक परमात्मा और पराकार हैं। आप मेरे द्वारा निवेदित इस प्रदीप का ग्रहण करें ॥२१॥ यज्ञों के पति प्रभु जात वेदा के लिए मेरा नमस्कार है। आप समस्त लोक के हित सम्पादन करने के लिए इस मेरे समर्पित नैवेद्य को ग्रहण कीजिए ॥२२॥ हे हुताशन ! आपके लिए मेरा प्रणाम है। हे रुक्मवाहन ! आपको मेरा नमस्कार है। हे लोकों के स्वामिन् ! आपको मेरा नमस्कार है। जात वेदा के लिए मेरा प्रणाम है ॥२३॥ इस प्रकार के मन्त्रों के द्वारा दिव्य में भी अधी तक देना चाहिए। सर्वस्व और यज्ञ सूत्र एवं माक्षिक के सहित परमान्न समर्पित करना चाहिए ॥२४॥



॥ यज्ञभेद से वह्निनामवर्णन ॥

यज्ञभेद निभेद च वक्ष्ये शास्त्रमत यथा ।
यथावेदानुसारेण यथाग्रहण योजनम् ॥१॥
शतार्धे वह्निरुद्दिष्ट शतार्धे काश्यपः स्मृत ।
घृतप्रदीपके विष्णुस्तिलयागे वनस्पति ॥२॥
सहस्रे ब्राह्मणो नाम अयुते हरिरुच्यते ।
लक्षहोमे तु वह्नि स्यात्कोटिहोमे हुताशन ॥३॥
वरुण शातिके ज्ञेयो मारणे ह्यरुणः स्मृतः ।
नित्यहोमेऽनलो नाम प्रायश्चित्ते हुताशन. ॥४॥
लोहितश्चाश्वयज्ञे यो ग्रहाणा प्रत्यनुक्रमात् ।
देवप्रतिष्ठायागे तु लोहित परिकीर्तित. ॥५॥
प्रजापतिर्वास्तुयागे मडपे चापि पद्मके ।
प्रपाया चैव नागारुयो महादाने हविर्भुजः ॥६॥
गोदाने च भवेद्रुद्र. कन्यादाने तु गोऽजकः ।
तुलापुरुषदाने च धाताग्निः परिकीर्तित ॥७॥
वृषोत्सर्गे भवेत्सूर्योऽवसानाते रविः स्मृतः ।
पावको वैश्वदेवे च दीक्षापक्षे जनार्दन ॥८॥

इस अध्याय में तीन प्रकार के यज्ञों के भेदों के वर्णन के साथ कर्म विशेषों में वह्नि के नामों का वर्णन किया जाता है। श्री सूतजी ने कहा— यज्ञों के तीन भेदों को हम सब बतलायेंगे जैसा कि शास्त्रों का मत होता है। जो कुछ भी वेद ने कहा है उसके अनुसार और जैसा कि ग्रहण योजन होता है कहा जाता है ॥१॥ शतार्द्ध में वह्नि उद्दिष्ट किया गया है। शतार्द्ध में काश्यप कहा गया है। घृत के प्रदीप में विष्णु नाम होता है और तिलयाग में वनस्पति होता है ॥२॥ सहस्र में ब्राह्मण नाम होता है और अयुत में हरि इस नाम से कहा जाता है। लक्ष का होम होता है इसका यही वह्नि नाम होता है और कोटि के होम में इसे हुताशन कहते हैं ॥३॥ शान्तिक होम में

वरुण और मारण कर्म के लिये किये गये हवन में इसका ग्रहण नाम होता है। जो होम नित्य ही होना है उसमें इसका नाम अनल है तथा प्रायश्चित के लिए किये गये होम में हुताशन कहते हैं ॥४॥ अन्न यज्ञ में लोहित जो कि ग्रहों के अनुक्रम से किया जाता है। देवों की प्रतिष्ठा के याग में भी इसका नाम लोहित ही है ॥५॥ वास्तु याग में इसका नाम प्रजापति होता है और पवर्क मण्डप में भी यही नाम है। प्रपा में नाग इसका नाम है और महादान में इसका नाम हविर्भुज होता है ॥६॥ गोदान में रुद्र और कन्या के दान में गोऽजक इसका नाम होता है। तुला पुरुष दान में इसे धाताग्नि कहा गया है ॥७॥ वृष के उत्सर्ग करने में सूर्य और अवसानान्त में रवि कहा गया है। वैश्वदेव में पावक तथा दीक्षा पक्ष में जनार्दन कहा जाता है ॥८॥

नासने च भवेत्काल क्रव्याद शरदाहने ।
पर्णदाहे यमो नाम ह्यास्थिदाहे शिखण्डिक ॥९॥
गर्भाधाने च मरुत सीमन्ते पिंगल स्मृत ।
पुंसवे त्विद्र आख्यात प्रशस्तो यागकर्मणि ॥१०॥
नामसंस्थापने चैवमुन्यस्ने च पार्थिव ।
निष्क्रमे हाटकश्चैव प्राशने च शुचिस्तथा ॥११॥
षडाननश्च चूडाया व्रतादेशे समुद्भव ।
वीतिहोत्रश्चोपनये समावर्ते धनंजय ॥१२॥
उदरे जठराग्निश्च समुद्रे वडवानल ।
शिखाया च विभुर्ज्ञेय स्वरस्याग्नि सरीसृप ॥१३॥
अश्वाग्निर्मंथरो नाम रथाग्निर्जातवेदस ।
गजाग्निर्मंदरश्चैव सूर्याग्निर्विध्यसंज्ञक ॥१४॥
तोयाग्निर्वरुणोनाम ब्राह्मणाग्निर्हविर्भुज ।
पर्वताग्नि क्रतुभुजो दावाग्नि सूर्य उच्यते ॥१५॥
दीपाग्नि पावको नाम गृहाग्निर्धरणीपति ।
घृताग्निश्च नभो वायु सूतिकाग्निश्च राक्षस ॥१६॥

प्राशन के कर्म मे इसका काल नाम है और शरदाहन मे इसे क्रव्याद कहा जाता है । पर्णदाह मे इसका यम नाम है तथा अस्थि दाह मे इसे शिखण्डिक कहते हैं ॥९॥ गर्भादान मे मरुत और सीमन्त कर्म मे पिङ्गल नाम होता है । पुसवन मे इन्द्र कहा गया है और याग कर्म मे इसका प्रशस्त नाम होता है ॥१०॥ नाम सस्थापन और उपन्यस्त मे पार्थिव नाम है । निष्क्रम कर्म मे हारक तथा प्राशन कर्म मे सुचि नाम होता है ॥११॥ चूडाकर्म मे इसका नाम षडानन है और व्रतादेश मे समुद्भव नाम है । उपनयन मे वीतिहोत्र तथा समावर्तन सस्कार मे इसका धनञ्जय नाम होता है ॥१२॥ उदर मे जो पाचन करने वाला अग्नि उसका जठराग्नि होता है तथा समुद्र मे वडवा नल होता है । शिखा मे इसका नाम विभु जानना चाहिए और स्वर की अग्नि का नाम तनूनपात होता है ॥१३॥ अश्वाग्नि का मन्थर नाम है और रथाग्नि का नाम जातवेदस होता है । गजाग्नि को मन्दर कहा जाता है तथा सूर्याग्नि का नाम विध्य है ॥१४॥ तोयाग्नि का नाम वरुण होता है तथा ब्राह्मणाग्नि को हविर्भुज कहते हैं । पर्वत की अग्नि का नाम क्रतुभुज होता है और सूर्य दावाग्नि कहा जाता है ॥१५॥ दीपाग्नि का नाम पावक है तथा गृहाग्नि का नाम भरणी पति होता है । घृताग्नि का वायु और सूतिकाग्नि का नाम राक्षस होता है ॥१६॥



॥ स्रुव-दर्वी-पात्र निर्माण ॥

श्रीपर्णी शिंशपा क्षीरी बिल्व खदिर एव च ।
स्रुवे प्रशस्तास्तत्र सिद्धिदा यागकर्मणि ॥१॥
प्रतिष्ठायां प्रशस्तास्तु धात्रीखदिरोद्भवा ।
सत्कारे शशिभिन्नौ च धात्री धात्रा विनिर्मिता ॥२॥
सप्राणे य स्रुव प्रोक्त सत्कारे यज्ञसाधने ।
प्रतिष्ठाया तु वक्ष्यामि तदन्ये शास्त्रवेदिभि ॥३॥
स्रुव स्रुचमयो वक्ष्ये यद्धीरत्र जायते ।

यज्ञे न सर्वक धार्यमक्षरेण च व्यत्यय ॥४॥
तस्यादौ च स्रु व वक्ष्ये यच्चमान यदास्पदम् ।
काष्ठ गृहित्वा विल्वस्य रिक्तादितिथिवर्जिते ॥५॥
समुपोष्य च रचयेदामिपाणि न च स्मरेत् ।
वजयेद्ग्राम्यधर्मं च निर्माणे स्रुक्स्रु वस्य वै ॥६॥
काष्ठ गृहीत्वा विभजेद्भागांस्त्रिशत्तथा पुन ।
विंशत्यगुलमान तु कु डवेदिसमोदरम् ॥७॥

इस अध्याय मे स्रु वा, दर्वी पात्र के निर्णय एव निर्माण करने का वर्णन किया जाता है । सूतजी ने कहा—सुवा के निर्माण कराने लिए श्रीपर्णी शिंशपा, क्षीर वाले वृक्ष क्षीरी, विल्व, खदिर ये वृक्ष प्रशस्त कहे गये हैं जो कि यागो के कर्मों मे सिद्धियो के देने वाले होते हैं ॥१॥ प्रतिष्ठा के कर्म म धात्री (आँवला), खदिर और केशर ये वृक्ष प्रशस्त माने गये हैं । सस्कार कर्मों में शशि भिन्न धात्री और धात्रा से विनिर्मित होने चाहिए ॥२॥ सप्राश में जो स्रु वा कहा गया है, शास्त्रों के वेत्ताओ ने उनसे अन्य सस्कार, यज्ञ साधन और प्रतिष्ठा में बताये हैं ॥३॥ स्रु व स्रु च को बनायेंगे जिसके अधीन होता है । यज्ञ में सवक नही धारण करना चाहिए और अक्षर के द्वारा व्यत्यय होता है । ॥४॥ उनके आदि में स्रु व को बताते हैं कि उसका कितना मान और क्या आस्पद होना चाहिये । विल्व के काष्ठ को ग्रहण करके जबकि रिक्ता तिथि न हो उस दिन में समुपास करके इसकी रचना करावे और उस समय में आमिषों (मांसा) का स्मरण नही करना चाहिये । स्रुव स्रु व के निर्माण क काय के समय म ग्राम्य धर्म भी वर्जित कर देने चाहिए । ५॥६॥ काष्ठ का ग्रहण करके उसके तीस भागो का विभाजन करना चाहिए । बीस अगुल के मान वाला कुड वेदि समादर करावे ॥७॥

वटाहावारनिम्न च स्रु व कुर्याद्विचक्षण ।
धात्रीफलसमाकार स्वधानिम्न सुशोभनम् ॥८॥

वेदी शूर्पाकृति कुर्यात्कुण्डानि परिकल्पयेत् ।
हस्तवन्त्रिगुणा वापि हस्तेनाऽनुमुखं निखेत् ॥६॥
स्रुवं चतुर्विंशतिभिर्भागैश्च रचयेद्ध्रुवम् ।
द्विंत्रिंश स्यात्कुण्डमानमदैवे तस्य कीर्तितम् ॥१०॥
चतुर्भिरंगैरानाहं कर्यादग्रं ततः स्रुवम् ।
अंगद्वयेन विलिखेत्पके मृगमदाकृतिम् ॥११॥
दण्डमूलाश्रये दण्डी भवत्कंकणभूषित ।
सौवर्णस्य च ताम्रस्य कार्या दर्वी प्रमाणत ॥१२॥
श्रीपर्णिकोद्भवं यच्च इन्दुवृक्षसमुद्भवम् ।
क्षीरवृक्षसमुद्भूतं द्वादशांगुलसंमितम् ॥१३॥

कटाह के आकार वाला निम्न भाग वाला स्रुवा विचक्षण पुरुष को कराना चाहिए। पात्री में फल के समान आकार का स्वधानिम्न एवं सुशोभन निर्मित करावे ॥८॥ वेदी को सूप की जैसी आकृति वाली करनी चाहिए और कुण्डों की परिकल्पना करे। हस्तवत् त्रिगुणा हस्त से अनुमुख लिखनी चाहिए ॥६॥ चौबिस भागों के द्वारा निश्चय ही स्रुवा की रचना करावे। उसके अदैव में बत्तीस कुण्ड का मान कहा गया है ॥१०॥ चार अङ्गों से आनाह और फिर कर्याग्र वाला स्रुव बनवाना चाहिए। अङ्गद्वय से पङ्क में मृग मदाकृति का विलेखन करना चाहिए ॥११॥ दण्ड मूल के आश्रय में कङ्कण भूषित दण्डी होनी चाहिए। सुवर्ण की अथवा ताम्र की प्रमाण से दर्वी करानी चाहिए ॥१२॥ जो श्रीपर्णिकोद्भव हो और जो इन्दुवृक्ष से उत्पन्न होने वाला हो तथा क्षीर वाले किसी वृक्ष से उत्पन्न होने वाला हो वह द्वादश अंगुल का संमित होना चाहिए ॥१३॥

हस्तमात्र मण्डन तस्य दर्वी सा यज्ञसाधना ।
चरवाणितस्तोनित्राभिर्मिति ताम्रमयस्य च ॥१४॥
पंचांगुलं मण्डलं च अष्टाभ्यन्तरमण्डलम् ।
अन्नादिपाकसंविधौ दर्वी यज्ञस्य साधना ॥१५॥

दशतोलकमानेन सा च दर्वी उदाहृता ।
आज्यसशोधनार्थं तु सा तु ताम्रमयस्य च ॥१६॥
षोडशागुलमानेन सर्वाभाव च पैप्पलीम् ।
आज्यस्थाली घृतमयी मृन्मयी च समाश्रयेत् ॥१७॥
अथ ताम्रमयी कार्या न च या तत्र योजयेत् ॥१८॥

उसका म डन दो अङ्गुल हो वह दर्वी यज्ञ के साधन मे होती है। जो कि ताम्रमय चालीस तोलो से निर्मित कराई गई हो ॥१४॥ पाँच अगुल म डल हो और आठ हाथ द डव हो ऐसी दर्वी अनादि पायस की विधि मे यज्ञ साधन में हाती है ॥१५॥ और वह दर्वी दश तोले मान वाली कही गई है। ताम्रमय की वह आज्य के सशोधन के लिए होती है ॥१६॥ सबके अभाव में षोडश अङ्गुल के मान से पैप्पली अर्थात् पीपल के वृक्ष की आज्य (घृत) स्थाली घृतमयी और मृन्मयी का समाश्रय करना चाहिए ॥१७॥ इसके अन तर ताम्रमयी करनी चाहिए और उसको वहाँ याजित नही करनी चाहिए ॥१८॥



॥ ब्राह्मणलक्षण तथा ब्राह्मणकर्तव्यवर्णन ॥

त्रयाणामेव वर्णानां जन्मतो ब्राह्मण प्रभु ।
ससृष्टा ब्राह्मणा पूर्वं तपस्तप्त्वा द्विजोत्तमा ॥१॥
हव्यानामिह कव्याना सवस्यापि च गुप्तये ।
अश्नति च मुखेनास्य हव्यानि त्रिदिवौकस ॥२॥
कव्यानि चैव पितर किं भूतमधिक तत ।
जन्मना चोत्तमोऽय च सर्वार्चा ब्राह्मणोऽर्हति ॥३॥
स्वकीय ब्राह्मणो भु क्ते विदधाति द्विजोत्तमा ।
त्रयाणामिह वर्णाना भावाभावाय वै द्विज ॥४॥
भवेद्विप्रो न सन्देहस्तुष्टो भावाय वै भवेत् ।
अभावाय भवेत्क्रुद्धस्तस्मात्पूज्य सदा हि स ॥५॥

गर्भाधानादयश्चेह संस्कारा यस्य सत्तमा ।
चत्वारिंशत्तथा चाष्टौ निर्वृत्ता शास्त्रतो द्विजा ।
स याति ब्रह्मणः स्थानं ब्राह्मणत्वेन संयुत. ॥६॥
संस्कारपूत प्रथमो वेदपूतो द्वितीयक ।
विद्यापूतस्तृतीयः स्यात्तीर्थपूतस्त्वनतरम् ॥७॥
क्षेत्रपूत ऽ ह्विज्ञाय विपूत पूजयेद्द्विजा ।
स्वर्गापवर्गफलदम यथा श्रमतायियात् ॥८॥

इस अध्याय में वर्णाणिको की प्रशसा में ब्राह्मणों के लक्षण और ब्राह्मणों के कर्तव्यों का वर्णन किया जाता है। श्री सूतजी ने कहा—तीनों वर्णों का ब्राह्मण जन्म से ही प्रभु होता है। हे द्विजोत्तमो ! तपस्या करके पहिले ब्राह्मणों की ससृष्टि की गई थी ॥१॥ इस लोक में जो हव्य और कव्य होते हैं उनको सबकी रक्षा के लिये देवगण इस ब्राह्मण के मुख के द्वारा प्रदान किया करते हैं। कव्यों पितर लोग प्रदान किया करते हैं। इससे अधिक क्या होता है। यह ब्राह्मण जन्म से ही उत्तम होता है और ब्राह्मण सबकी अर्चा के ग्रहण करने के योग्य होता है ॥३॥ ॥ ब्राह्मण स्वयं जो खाता है और यहाँ तीनों वर्णों के भावाभाव के लिये किया करता है ॥४॥ विप्र जब परम तुष्ट होता है तो भाव के लिए होता है। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है और जब वह क्रुद्ध हो जाता है तो अभाव के लिये होता है। इससे ब्राह्मण सर्वदा ही पूजा करने के योग्य होता है ॥ ॥ हे द्विजवर्ग ! यहां लोक में गर्भाधान से आदि लेकर जिसके अड़तालीस संस्कार शास्त्र के अनुसार पूर्ण किए गए हों वह ही ब्रह्म के स्थान को प्राप्त करता है और ब्राह्मणत्व से संयुक्त भी होता है ॥६॥ जो ब्राह्मण संस्कारों से पवित्र हो जाता है वह प्रथम होता है। फिर वेदों के अध्ययन-अध्यापन से पूत होता है वह द्वितीय होता है। विद्या के ज्ञान से जो पूत होता है वह तीसरा होता है। इसके अनन्तर तीर्थों से पूत हुआ करता है। क्षेत्रपूत को भली-भांति जानकर हे द्विजगण ! विशेष रूप से पूत को पूजना चाहिए। अन्यथा स्वर्ग अपवर्ग के फल देने वाला श्रमता को प्राप्त होता है ॥७॥८॥

--

पूताना परम पूतो गुरूणा परमो गुरु ।
सवसत्त्वान्वितो विप्रो निर्मितो ब्रह्मण पुरा ॥६॥
पूजयित्वा द्विजान्देवा स्वर्गं भुञ्जतिचाक्षयम् ।
मनुष्याश्चापि देवत्व स्वस्व राज्य गतेन स ॥१०॥
यस्य विप्रा प्रसीदति तस्य विष्णु प्रसीदति ।
तस्माद्ब्राह्मणपूजाया विष्णुस्तुष्यति तत्क्षणात् ॥११॥
यस्माद्विष्णुमुखाद्विप्र समुद्भूत पुरा द्विजा ।
वदास्तत्रैव सजाता सृष्टिसहारहेतव ॥१२॥
तस्माद्विप्रमुख वदाश्चापिता पुरुषेण हि ।
पूजार्थं ब्रह्मलोकाना सवज्ञानार्थतो ध्रुवम् ॥१३॥
पितृयज्ञविवाहेषु वह्निकार्येषु शातिपु ।
प्रशस्ता ब्राह्मणा नित्य सवस्वस्त्ययनेषु च ॥१४॥
देवा भुञ्जति हव्यानि बलिं प्रेतादयोऽसुरा ।
पितरो हव्यकव्यानि विप्रस्यैव मुखाद् ध्रुवम् ॥१५॥
देवभ्यश्च पितृभ्यश्च यो दद्याद्यज्ञकर्मसु ।
दाम होम बलिं चैव विना विप्रेण निष्फलम् ॥१६॥

पूतो को परम पूत और गुरुओ मे परम गुरु सवसत्वो से अन्वित विप्र को ब्रह्मा जी ने सबसे पहले निर्मित किया था ॥६॥ देवगण द्विजो की पूजा करके ही अक्षय स्वग का उपभोग किया करत है । अपने अपने राज्य को प्राप्त होने वाले मनुष्यो भी देवत्व को प्राप्त किया करते हैं यह सब ब्राह्मणो के अर्चा से फल होता है ॥१०॥ जिसके ऊपर ब्राह्मण प्रसन्न होते है उस पे विष्णु भी प्रसन्न हो जाते हैं । इससे ब्राह्मण की पूजा करने से भगवान विष्णु तत्क्षण ही प्रसन्न हुआ करत हैं ॥११॥ हे द्विजगण ! जिस भगवान् विष्णु के मुख से पहिले ब्राह्मण उत्पन्न हुआ था वेदा वर्ग से ही समद्भूत हुए हैं जो कि इस जगत् के सृजन और सहार के हेतु होते हैं ॥ २॥ इसी कारण से पहिले पुरुष के द्वारा विप्र के मुख म वेदो को अर्पित किया गया था । सबके ज्ञानाथ से निश्चय ही वेदो का समर्पण ब्रह्म लोको की पूजा क लिए होता है ॥१३॥ पितृयज्ञो म विवाह म,

वह्नि कार्यों मे, शान्ति के कर्मों मे और समस्त स्वयन कर्मों मे ब्राह्मण नित्य प्रशस्त होते हैं ॥१४॥ ब्राह्मण के मुख से ही देवता लोग हव्यों का, प्रेतादि असुर बलि का और पितर हव्य कव्यो का भोग किया करते हैं ॥१५॥ जो यज्ञ कर्मों मे देवो के लिए और पितरो के लिए देना है अर्थात् दान, होम और बलि दिया करता है वह ब्राह्मण के द्वारा ही सफल होते हैं अन्यथा सब निष्फल होते हैं ॥१६॥

विना विप्र च यो धर्मं प्रयासफलमाप्नुयात् ।
भुञ्जते चासुरास्तत्र प्रेता भूताश्च राक्षसा ॥१७॥
तस्माद्ब्राह्मणमाहूय तस्य पूजा च कारयेत् ।
काले देशे च पात्रे च लक्षकोटिगुणं भवेत् ॥१८॥
श्रद्धया च द्विजं दृष्ट्वा प्रकुर्यादभिवादनम् ।
दीर्घायुस्तस्य वाक्येन चिरजीवी भवेन्नर ॥१९॥
अनभिवादिना विप्रे द्वेषादश्रद्धयापि च ।
आयु क्षीणं भवेत्पुंसां भूमिनाशश्च दुर्गति. ॥२०॥
आयुर्वृद्धिर्यशोवृद्धिर्विद्याधनस्य च ।
पूजयित्वा द्विजश्रेष्ठान्भवन्त्यत्र सदाय ॥२१॥
न विप्रपादोदककर्दमानि
न वेदशास्त्रप्रतिगर्जितानि ।
स्वाहास्वधास्वस्तिविवर्जितानि
श्मशानतुल्यानि गृहाणि तानि ॥२२॥
षड्विंशतिदोषमाहुर्नरा नराभीरव ।
विमुच्यैव यमेत्तीर्थे ग्रामे वा पत्तने वा ॥२३॥
ते स्वर्गे पितृलोके च ब्रह्मलोकेष्ववस्थिता ॥२४॥

ब्राह्मण के बिना जो धर्म किया जाता है उसमें केवल प्रयास ही फल होता है फल कुछ भी प्राप्त नहीं होता है। वहाँ पर असुर प्रेत भूत और राक्षस उसके फल का भोग किया करते हैं ॥१७॥ इसलिए ब्राह्मण का आवाहन

करके उसकी पूजा करानी चाहिए। काल,देश और पात्र मे लक्ष कोटि गुण फल हुआ करता है अर्थात् समुचित समय पर पवित्र स्थान मे और किसी परम योग्य ब्राह्मण की पूजा से अनेक गुना फल प्राप्त होता है ॥१८॥ ब्राह्मण का दर्शन श्रद्धा से करना चाहिये और उसका विधिवत् अभिवादन करे। आशीर्वाद के जो वचन उसके मुख से निकलते हैं उससे ब्राह्मण को प्रणाम करने वाला व्यक्ति दीर्घ आयु वाला होना है और चिरकाल तक जीवित रहता है ॥१६॥ किसी भी देश मे या अश्रद्धा से जो ब्राह्मण का अभिवादन नही किया जाता है उससे आयु क्षीण होती है और मनुष्यो की भूमि का नाश होता है तथा दुर्गति भी होती है ॥२०॥ इस लोक मे द्विज श्रेष्ठो की पूजार्चना करने से आयु की वृद्धि, यश की वृद्धि, विद्या और धन की वृद्धि हुआ करती है। इस विषय मे तनिक भी संशय नही होता है ॥२१॥ जिन पुरुषो के घरो मे कभी ब्राह्मणो के चरण धोने से कीच नही हुआ है और जिन घरो मे वेद और शास्त्रो के मन्त्र तथा वचनो की ध्वनि ही हुई है जो घर स्वाधा और स्वाहा करने तथा स्वस्ति वाचक वचनो से रहित रहते है वे गृह श्मशान के समान हुआ करते हैं ॥२२॥ नरक के भय वाले मनुष्य छत्तीस दोषो को बताया करते हैं। इन दोषो का त्याग करके ही तीर्थ मे ग्राम म नगर मे या वन मे निवास करना चाहिए। ऐसे मनुष्य स्वर्ग मे पितृलोक मे और ब्रह्मलोक में ही अवस्थित होते हैं। ॥२३।२४॥

अन्यथा न वसेद्वासस्तस्मात्स्तेयी न पालयेत् ।
अधर्मो विषमश्चैव पशुश्च विशुनस्तथा ॥२५॥
पापिष्ठो नष्टकष्टौ च रुष्टो दुष्टश्च पुष्टक ।
हृष्ट कुण्ठश्च अन्धश्च काणश्चैव तथापर ॥२६॥
चण्ड खण्डश्च वक्ता च दत्तस्यापहरस्तथा ।
नीच खलश्च वाचाल कदर्यश्चपलस्तथा ॥२७॥
मलीमसश्च ते दोषा षड्विंशतिरमी मता ।
एतेषा चापि विप्रेन्द्रा पञ्चाशीतिर्निगद्यते ॥२८॥
शृणुध्व द्विजशार्दूला शास्त्रेस्मिन्प्रवत क्रमात् ।
अधमोऽत्र त्रिधा विद्याद्विषम स्याद्विधोचित ॥२६॥

पशुश्चतुर्विधश्चैव क्रूपणोपि हि वै द्विधा ।
द्विधाथापि च पापिष्ठो नष्ट सप्तविध स्मृत ॥३०॥
कष्ट स्यात्पञ्चधा ज्ञेयो रुष्टोपि स्याद्विधा द्विजा ।
दुष्ट स्यात्षड्विधो ज्ञेय पुष्टश्चैव भवेद्विधा ॥३१॥
हृष्टश्चाष्टविध प्रोक्त कुण्ठश्चैव त्रिधोदित ।
अन्ध काणश्च तौ द्वौ द्वौ स्याद्वै च सगुणोऽगुण ॥३२॥

अ य प्रकार से निवास कहो पर भी नही करना चाहिये। स्तेयी (चोरी करने वाला) नही पालित करना च हिए। अधम अर्थात् धम से रहित, विपम, पशु पिशुन पापिष्ठ, नष्ट, कष्ट, रुष्ट दुष्ट पुष्ट, हृष्ट कुण्ठ अ ध, काण, चण्ड, खण्ड मक्त', दिए हुए का हरण करने वाला, नीच, खल, वाचाल, कदय, चपल और मलीमस ये दोष होते हैं जो कि छत्तीस बताये गये है। इनके भी हे विप्रेन्द्रगण ! वे दोष पिचासी कहे जाते है ॥२५॥२६॥२७॥२८॥ हे द्विज शार्दूलो ! अब शास्त्र में क्रम से बताये हुये इन दोषो को बताने वाले मुझसे आप श्रवण करें। जो अधम होता है वह भी तीन प्रकार का हुआ करता है विपम दो प्रकार का होता है। पशु चार तरह का कहा गया है कृपण भी दो प्रकार का होता है। पापिष्ठ दो तरह का है और नष्ट सात प्रकार का कहा गया है ॥२९॥३०॥ कष्ट पाँच प्रकार का होता है और रुष्ट दो तरह का बताया गया है। दुष्ट छः तरह का है और पुष्ट दो प्रकार का होता है। हृष्ट आठ भेदो वाला होता है। कुण्ठ तीन तरह का है। अ ध और काण दो दो तरह के होते है। सगुण और अगुण दो होते हैं ॥३१॥३२॥

द्वौ चण्डौ चपलश्चैवाखण्डचण्डौ द्विगुर्भवत् ।
दण्डपण्डौ तथा ज्ञेयौ खलनीचौ चतुर्द्वयम् ॥३३॥
वाचालश्च कदर्यश्च क्रमात्त्रिभिरुदाहृत ।
कदर्यश्चपलश्चैव तथा ज्ञेया मलीमस ॥३४॥

द्रावकौ चतुरश्चैव स्तेयी चैकविधो भवत् ।
पृथग्लक्षणमेतेषा शृणुध्व द्विजसत्तमा ॥३५॥
सम्प्रश्नस्य परिज्ञान नरो देवत्वमाप्नुयात् ।
उपानच्छत्रधारी च गुरुदेवाग्रतश्चरन् ॥३६॥
उच्चासन गुरोरग्रे तीर्थयात्रा करोति य ।
यानमारुह्य विप्रेन्द्रा साप्येवमधमो मत ॥३७॥
निमज्ज्य तीर्थे विधिवद्ग्राम्यधर्मेण वर्तयन् ।
द्वितीयश्चाधम प्रोक्तो निदित परिकीर्तित ॥३८॥
वाक्चैव मधुराश्लक्ष्णा हृदि हालाहल विषम् ।
वदत्यन्यत्करो यन्यद्द्वावेतौ विषमो स्मृतौ ॥३९॥
मोक्षचिन्तामतिक्रम्य योऽन्यचिन्तापरिश्रम ।
हरिसेवा विहीनो य स पशुर्योनित पशु ॥४०॥

दो प्रकार के चण्ड हैं और चपल ही होते हैं । षण्ड चण्ड एक एक हैं । यहाँ द्विगु होता है । इसी प्रकार से दण्ड पण्ड जानने चाहिए । खल और नीच चार प्रकार के होते हैं ॥३३॥ वाचाल और कदर्य क्रम से तीन - तीन प्रकार के होते हैं । कदर्य चपल और मलीमस भी उसी प्रकार से समझने चाहिए ॥३४। ये दो एक और चार इस प्रकार से हुआ करते हैं । स्तयी एक ही प्रकार का होता है । हे द्विजश्रेष्ठो ! अब इनके पृथक लक्षणों का श्रवण करो ॥३५॥ जिस मनुष्य को बहुत ही अच्छी तरह से परिज्ञान होता है वह नर देवत्व को प्राप्त किया करता है । उपानत् (जूता) और छत्र इनको धारण करके जो गुरु और देवत्व के आगे चलता है और गुरु के आगे ऊँचे आसन पर स्थित होता है तथा जो तीर्थ यात्रा किया करता है एवं यान पर आरूढ होकर चला करता है हे विप्रेन्द्रगण ! वह मनुष्य भी एक स्थान पर अधम कहा गया है ॥३६॥३७॥ तीर्थ मे निमज्जन करके जो विधिवत् ग्राम्य धर्म का बरताव करता है वह दूसरा अधम कहा गया है और निंदित बताया गया है ॥३८॥ जिसकी वाणी तो बहुत चिकनी चुपडी हो एवं

मीठी हो और हृदय मे हाला हल विष भरा हो, जो कहता है कुछ और है और करता कुछ और ही है ये दोनो विषम बताये गये हैं ।।३९।। जो अपने ससार के जन्म-मरण से छुटकारा पाने की चिन्ता का त्याग कर अन्य बातो की चिन्ता ही मे रात-दिन परिश्रम किया करता है और हरि की सेवा से विहीन होता है वह पशु योनि से पशु ही होता है ।।४०।।

प्रयागे विद्यमानेऽपि योऽन्यत्र स्नानमाचरेत् ।
दृष्टं देवं परित्यज्य अदृष्टं भजते तु य. ।।४१।।
आयुषस्तु क्षयार्थाय शास्त्रेयमृषिसमत ।
योगाभ्यास ततो हित्वा तृतीयश्चाधम. पशु : ।।४२।।
बहूनि पुस्तकानीह शास्त्राणि विविधानि च ।
तस्य सार न जानाति स एव जंबुक. पशु. ।।४३।।
बलेन च्छलछद्म न उपायेन प्रवधनम् ।
सोऽपि स्यात्पिशुन स्यात प्रणयाद्वा द्वितीयक ।।४४।।
मधुरान्न प्रतिश्राव्य दैवे पित्र्ये च कर्मणि ।
म्लान चापि च तिक्तान्न य प्रयच्छति दुर्मति. ।।४५।।
कृपण स तु विज्ञेयो न स्वर्गी न च मोक्षभाक् ।
क्षुदाता च मुदा हीन सक्रोधस्तु यजेत स ।।४६।।
स एव कृपण. श्वानः सर्वधर्मबहिष्कृत ।
अदोषेण शुभत्यागी शुभ कार्योपविक्रयी ।।४७।।
पितृमातृगुरुत्यागी शौचाचारविवर्जित. ।
पित्रोरग्रे समश्नाति स पापिष्टतम. स्मृत ।।४८।।

प्रयाग मे विद्यमान रहते हुए भी जो अन्यत्र स्नान करता है और अपने इष्ट देव का परित्याग करके जो अदृष्ट का सेवन किया करता है। आयु के क्षय के लिये श्रुति सम्मत शास्त्रीय योगाभ्यास का त्याग करता है वह तीसरा अधम होता है और पशु होता है ।।४१।।४२।। यहाँ संसार मे बहुत से ग्रन्थों को और अनेक प्रकार के शास्त्रों को देखकर भी उनके सार को नहीं समझता है वह जम्बुक

पशु ही होता है ॥४३॥ बल से, छल छद्म से और उपाय से जो प्रकृष्ट बन्धन करता है वह भी पिशुन नाम से प्रसिद्ध है अथवा प्रणय से जो करता है वह दूसरी तरह का होता है ॥४४॥ दैव और पित्र्य कर्म मे मधुरान्न का प्रतिष्ठापन कर जो दुष्ट बुद्धि वाला म्लान और तिक्त न को दिया करता है वह कृपण समझना चाहिए। वह न तो स्वर्ग के वास का ही अधिकारी होता है और न मोक्ष प्राप्त करने वाला ही हुआ करता है। जो कुत्सित वस्तु का देने वाला है और आनन्द एव प्रसन्नता से रहित होता है एव क्रोध से युक्त होता है ऐसा जो कोई यजन करे तो वह भी कृपण कहा गया है जो कि सम्पूर्ण धर्मों से बहिष्कृत होता है। प्रदोष से शुभ का त्याग करने वाला और शुभ कार्यों की उपविक्रयी होता है। माता-पिता और गुरु का त्याग कर देने वाला तथा शौच और आचार से वर्जित रहने वाला एव माता-पिता के आगे अशन जो करता है वह पापिष्ठतम कहा गया है ॥४५॥४६॥४७॥४८॥

जीवत्पितृपरित्यक्त सुत सेवेन्न वा क्वचित्।
द्वितीयस्तु स पापिष्ठो होमलोपी तृतीयक ॥४९॥
साध्वाचार च प्रच्छाद्य सेवन चापि दर्शयेत्।
स नष्ट इति विज्ञेय क्रयक्रीत च मैथुनम् ॥५०॥
जीवेद्देवलवृत्तिर्यं भार्याविपणजीवक ।
कन्याशुल्केन जीवेद्वा स्त्रीधनेन च वाक्वचित् ॥५१॥
बडेव नष्टा शास्त्रं च न स्वर्गमोक्षभागिन ।
सदा क्रुद्ध मनो यस्य हीन दृष्ट्वा प्रकोपवान् ॥५२॥
भ्रुकुटीकुटिल क्रुद्धो रुष्ट पर्चविधोदित ।
अकार्ये भ्रमते नित्य धर्मार्थे न व्यवस्थित ॥५३॥
निद्रालुर्व्यसनासक्तो मद्यप स्त्रीनिषेवक ।
दुष्टै सह सदालाप स दुष्ट सप्तधा स्मृत ॥५४॥
एकाकी मिष्टमश्नाति वचक साधुनिंदक ।
यथा सूकर पुष्ट स्यात्तथा पुष्ट प्रकीर्तित ॥५५॥

निगमागमतन्त्राणि नाध्यापयति यो द्विज ।
न शृणोति च पापात्मा स दुष्ट इति चोच्यते ॥५६॥

किसी समय म भी जीवित पिता से परित्यक्त सुत का सेवन नही करना चाहिये अथवा जिस व्यक्ति ने जीवित माता पिता का ही त्याग कर दिया हो वह दूसरा पापिष्ठ होता है । जो होम का लाप करने वाला वह तीसरा पापिष्ठ होता है ॥४६॥ साधु आचार का प्रच्छादन करके जो सेवन करना दिखलाता है वह नष्ट समझना चाहिये । जो क्रय क्रीत मैथुन करता है वह भी नष्ट होता है ॥५०॥ जो देवननृत्ति से अर्थात देव पूजन करके रोजी कमाई स रहता है और भार्या के विपण से जीवन निर्वाह करने वाला है, जो कन्या के शुल्क से जीवन-यापन करता है अथवा स्त्री के धन स जो अपना जीवन निर्वाह करता है ये छओं नष्ट होते हैं और स्व। तथा मोक्ष के भागी नही होते हैं । शास्त्र म इनको नष्ट माना गया है । जिसका मन सदा क्रोध से परिपूर्ण रहता है और अपने से हीन को देखकर प्रहृष्ट कोप व ला हो जाता है । जिसकी भृकुटियाँ हमेशा निरद्धा ही रहा करती हैं और क्रुद्ध होता है इस तरह पाँच प्रकार के ये दुष्ट बताये गये हैं । य परार्थ म निरन्तर भ्रमण किया करते हैं और धर्मार्थ म व्यवस्थित नही होते हैं ॥५१॥५२॥५३॥ रात दिन निद्रा करने वाला, व्यसनो म आसक्त रहने वाला, मद्यपान करने वाला स्त्रियों का सेवन करने वाला तथा दुष्ट पुरुषों के साथ सदा वार्तालाप करने वाला, जो होता है वह सात प्रकार का दुष्ट बताया गया है । ५४॥ पराये ही जो मिष्ट पदार्थों के खाने वाला है, वञ्चक (ठग) है तथा साधु पुरुषों की जो निन्दा किया करता है वह जैसे शूकर दुष्ट होता है वैसे ही दुष्ट कहा गया है ॥५५॥ निगम और आगम तन्त्रों को जो द्विज न पढ़ता है और न पढ़ाता ही है तथा इनका कभी श्रवण किया करता है वह पापात्मा 'दुष्ट' इस नाम स कहा जाया करता है ॥५६॥

श्रुति स्मृतिश्च विप्राणां नयने द्वे विनिर्मिते ।
एकेन विकल काणो द्वाभ्यामन्ध प्रकीर्तित ॥५७॥
नियाद गोदरं गार्द्ध पितोर्गभ्रियादर ।
द्विजानाम न विशेष न भेद शास्त्रीदित ॥५८॥

पिशुनो राजगामी च शूद्रसेवक एव च ।
शूद्रांगनागमो विप्र. स चंडश्च द्विजाधमः ॥५६॥
पकान्नं शूद्रगेहे च यो भुंक्ते सकृदेव वा ।
पचरात्रं शूद्रगेहे निवासी चड उच्यते ॥६०॥
अष्टकुष्ठान्वितः कुष्ठी त्रिकुष्ठी शास्त्रनिंदितः ।
एतैः सह सदालापः स भवेत्तत्समोऽधमः ॥६१॥
कीटवद्भ्रमणं यस्य कुव्यापारी कुपंडितः ।
अज्ञानाद्व वदेद्धर्ममप्रवृत्तिः प्रधावति ॥६२॥
अविमुक्तं परित्यज्य योऽन्यदेशे वसेच्चिरम् ।
स द्विधा शूकरपशुर्निदितः सिद्धसंमतः ॥६३॥
कपोलेन हि संयुक्तो भ्रुकुटीकुटिलाननः ।
नृपवद्दंडयेद्यस्तु स दडः समुदाहृतः ॥६४॥

श्रुति और स्मृति ये दोनो विप्रो के नेत्र निर्मित किये गये हैं। जो इन दोनो मे से एक से रहित होना है वह काण (काना) होता है और दोनो से जो हीन होता है वह अन्धा ही होता है ॥५७॥ जो अपने सगे भाइयो के साथ विवाह किया करता है और जो अपने माता-पिता के साथ उनका अप्रिय कर्म करता है या अप्रिय वचन बोलता है वह अधम द्विज होता है, वह च ड कहा जाता है और शास्त्र मे परम निन्दित कहा गया है ॥५८॥ जो पिशुन, राज गामी, शूद्र सेवक तथा शूद्राङ्गना के समागम वाला विप्र होता है वह अधम द्विज च ड कहा गया है ॥५६॥ शूद्र के घर मे जो एक बार भी पकान्न खाता है और पाच रात्रि तक शूद्र के घर मे निवास करने वाला है वह भी चण्डन कहा जाता है ॥६०॥ आठ प्रकार के कुष्ठो से अन्वित, कुष्ठ वाला, त्रिकुष्ठी और शास्त्र निन्दित इनके साथ सदा वार्तालाप करने वाला होता है वह उसके समान ही अधम होता है ॥६१॥ कीट की भाँति जिसका भ्रमण होना है और जो कुत्सित व्यापार करने वाला है तथा कुपण्डित होता है एव अज्ञान से धर्म के विषय में बोला करता है और अप्रवृत्ति होकर जो प्रधावन करता है, जो अविमुक्त का त्याग करके बहुत समय तक अन्य देश मे निवास किया करता है

यह दो प्रकार का सूकर पशु होता है यह सिद्ध सम्मति निन्दित हुआ करता है ॥६२॥६३॥ कपोल से संयुक्त अर्थात् गालों का फुलाने वाला तथा भृकुटियों की कुटीलता से युक्त मुख वाला अर्थात् भौंहे तिरछी करने वाला जो एक राजा की भाँति दण्ड दिया करता है वह दण्ड कहा गया है ॥६४॥

ब्रह्मस्वहरणं कृत्वा नृपदेवस्वमेव च ।
धनेन तेन इतरं देवं वा ब्राह्मणानपि ॥६५॥
संतर्पयति योऽश्नाति यः प्रयच्छति वा क्वचित् ।
स नरश्च पशुश्रेष्ठः सर्ववेदेषु निंदितः ॥६६॥
अक्षराभ्यासनिरतः पठत्येव न बुध्यते ।
पदशास्त्रपरित्यक्तः स पशुः स्यान्न संशयः ॥६७॥
यदन्यत्करोत्यन्यद्गुरुदेवाग्रतो यतः ।
स नीच इति विज्ञेयो ह्यनाचारस्तथापरः ॥६८॥
षड्गुणालंकृतः सायोदोपान्मृगयने गतः ।
वने पुष्पफलाकीर्णे सनभः कंटकानिव ॥६९॥
दैवेन च विहीनो यः पुर्वभागा वदेत् यः ।
स चाण्डाल इति ख्यातो यो ह्यपत्रपणाकुलः ॥७०॥
साहानैः सह आलापः पक्षिणा पीपले स्वनः ।
मार्जारैश्चापि संयुक्तं यस्तूष्णं सर्वतोदिनम् ॥७१॥
मृगपक्षिद्रोही कीटमर्दो वृथा मागानकश्च यः ।
पापनः स तु विज्ञेयः परभार्याभिगस्तथा ॥७२॥

और करता कुछ और ही है वह नीच होता है तथा दूसरा आचार से रहित होता है ॥६८॥ छै प्रकार के गुणो से विभूषित साधु के भी जो खल दोषों को खोजा करता है वह खल ही होता है। वह इसी प्रकार से होना है जैसे पुष्प और फलो से समाकीर्ण वन में शलभ काटो की ही खोज किया करता है ॥६६॥ जो देव से विहीन है और जो बुरी भाषा बोला करता है वह वाचाल लज्जा से रहित हुआ करता है ॥७०॥ जो चाण्डालो के साथ आलाप करता है, जो पक्षियो के पोषण करने मे रति रखता है, जो बिल्लियो के साथ बैठ कर भोजन करता है, जो मर्कटो जैसे कृत्य किया करता है, जो तृणो का छेदन करने वाला है-जो लोष्ठो का वृथा मर्दन करने वाला है और जो मास का अशन करने वाला होता है तथा पराई स्त्री से रति किया करता है वह चपल जानना चाहिए ॥७१॥७२॥

स्नेहोद्वर्तनहीनो यो गधचन्दनवर्जितः ।
नित्यक्रिया अकुर्वाणो नित्य स च मलीमसः ॥७३॥
अन्यायेन गृहं विन्देदन्यायेन गृहान्धनम् ।
शास्त्रादन्यद्गृहं मंत्रं स स्तेयी ब्रह्मघातकः ॥७४॥
देवपुस्तकरत्नानि मणिमुक्ताश्वमेव च ।
गोभूमिस्वर्णहरणः स स्तेयोति निगद्यते ॥७५॥
देवोऽपि भावयेत्पश्चान्मानुषोऽपि न संशयः ।
अन्योन्यभावना कार्या स स्तेयी यो न भावयेत् ॥७६॥
गुरोः प्रसादाज्जयति पित्रोश्चापि प्रसादतः ।
करोति च यथार्हं च स च स्वर्गे महीयते ॥७७॥
न पोषयति दुष्टात्मा स स्तेयो चापरः स्मृत. ॥७८॥
उपकारिजनं प्राप्य न करोति परिष्क्रियाम् ।
स तप्तनरके शेते शोणिते च पतत्यधः ॥७६॥
सर्वेषा च सवर्णाना धर्मतो ब्राह्मणः प्रभुः ।
पृथिवीपालको राजा धर्मचक्षुरुदाहृयः ॥८०॥

जो स्नेह तैल आदि और उद्वर्त्तन उबटना आदि से हीन होता है, जो गन्ध और चन्दन से रहित होता है, जो नित्य क्रिया के न करने वाला होता है वह नित्य ही मलीमस होता है ॥७३॥ जो अन्याय से गृह की प्राप्ति करे और अन्याय पूर्वक घरा को तथा धन को पाता है एवं शास्त्र के विरुद्ध गृह और मन्त्र को जो पाता है वह यहां घातक स्नेही होता है ॥७४॥ देवता, पुस्तक, रत्न, मणि, मुक्ता, अश्व, गो, भूमि और सुवर्ण का हरण करने वाला स्तेयी कहा जाता है ॥७५॥ देव को भावित करना चाहिए और पीछे मनुष्य भी भावित करे इसमें संशय नहीं है। अन्योन्य भावना करनी चाहिए। जो भावना नहीं करता है वह स्तेयी होता है ॥७६॥ गुरु के प्रसाद से जय होता है और माता पिता के प्रसाद से भी जय हुआ करता है वह यथार्ह करता है और वह स्वर्ग में प्रतिष्ठित होता है ॥७७॥ जो कुटुम्ब पोषण नहीं करता है वह दूसरा स्तेयी कहा गया है। ॥७८॥ जो उपकारीजन को प्राप्त करके उसकी प्रतिक्रिया नहीं करता है अर्थात उसका प्रत्युपकार नहीं किया करता है वह तप्त नरक में गिरता है और रुधिर में उसका अध:पतन हुआ करता है ॥७९॥ समस्त नवर्णों का धर्म से ब्राह्मण ही प्रभु होता है। पृथिवी का पालन करने वाला राजा धर्म को चक्षु कहा गया है ॥८०॥

प्रजापतेर्मुखोद्भूतो होमतन्त्रे यथोदितम् ।
तद्विदो गणनाभिज्ञा अन्यविप्रा प्रकाशते ॥८१॥
गणहीनो हुतो देवो विप्रहीना यथा क्रिया ।
होमशक्तिविहीना यो देशोऽसौ विनश्यत्यत्र ॥८२॥
अप्रदीपा यथा रात्रिरनादित्य यथा नभ ।
तथाऽराजकगो राजा भ्रमत्यथ इतस्तति ॥८३॥
स्यात्मेद्धमंतो विप्र आचर्याराम्रंतृद्धयं ।
स्मश्रुणो द्विज पूज्य यथो विप्रस्तु स्मश्रुस ॥८४॥
प्रज्ञाप्रदर्शनार्यस्य विदित पन्नगारम् ।
दर्शन यार्दयिष्ये गृहं दृष्ट्वा विमुच्यति ॥८५॥

न व्रात्यत्व सूर्यविप्रे पूजयेद्यज्ञसिद्धये ।
ज्योतिर्वेदस्याधिकार सूर्यविप्रस्य वै द्विजा ॥८६॥
(जातिभेदाश्च चत्वारो भोजक कथकस्तथा ।
शिवविप्र सूर्यविप्रश्चतुर्थ परिपठ्यते ॥८७॥)

प्रजापति के मुख से उद्भूत ब्राह्मण होता है जैसा कि होरातन्त्र मे कहा गया है । उसके जानने वाले गणना के अभिज्ञ होते हैं अन्य विप्र कहे जाते हैं ॥८१॥ जो देश गङ्गा नदी से हीन होता है वह हत कहा गया है जिस प्रकार से विप्रो से हीन क्रिया हत हुआ करती है । जो होरा की ज्ञप्ति से विहीन देश होता है वह विप्लवा का प्लव होता है ॥८२। जो रात्रि प्रदीपो से रहित होती है और जो नभ आदित्य से वर्जित होता है उसी प्रकार से अमात्सर राजा मार्ग मे अन्धे की भाँति भ्रमण किया करता है ॥८३॥ धन से विप्र को स्थापित करना चाहिए और कर्मों की वृद्धि के लिए भावित करना चाहिए। जो द्विज श्मश्रुओ से युक्त हो उसकी पूजा करनी चाहिए। श्मश्रुल विप्र सूर्य होता है ॥८४। प्रत्यक्ष दर्शन करने से पुण्य होता है और तीन दिन तक करते रहने से कल्मषो का अपहरण करने वाला होता है। व्रात्य सज्ञा को प्राप्त होने वाले विप्र के दर्शन मे सूर्य का दर्शन करने पर विशुद्धि हुआ करती है ॥८५॥ सूर्य विप्र मे व्रात्यत्व नही होता है । यज्ञो की सिद्धि के लिए पूजा करनी चाहिए । हे द्विजो । (सूर्य विप्र को ही ज्योतिर्वेद का अधिकार होता है ॥८६॥ जाति के भेद चार होते है । भोजक, कथक, शिव विप्र और चौथा सूर्य विप्र परिपठित किये जाते हैं ॥८७॥

(कथको मध्यमस्तेषा सूर्यविप्रस्तथोत्तम ।
शिवलिङ्गार्चनरत शिवविप्रस्तु निंदित ॥८८॥)
सूर्यविप्रस्य विप्रस्य वैद्यस्य च नृपस्य च ।
प्रवासयदक्षनेन सपुत्रपशुबाधव ।
अवध्य सर्वलोकेषु राजा राज्येन पालयत् ॥८९॥
• वसुभिर्वस्त्रगधाद्यै र्माल्यैश्च विविधैरपि ।
दशाचक्रविद पूज्या होराचक्रविद परा ॥९०॥

सूर्यचक्रविदः पूज्या नावमन्येत्कथंचन ।
सिद्धच्र्द्धि च धनर्द्धि च य इच्छेदायुषा समम् ।
गणविप्रसमः पूज्यो दैवज्ञः समुदाहृतः ॥६१॥
जाते बाले निरूप्ये च लग्नग्रहनिरूपणम् ।
संस्थानं सूर्यविप्रो यः सूर्यविप्रस्य सत्तमाः ।
द्विमात्रिकां समभ्यस्य सर्ववेदफलं लभेत् ॥६२॥

उन चारों में कल्पक जो होता है वह मध्यम होता है और जो सूर्यविप्र होता है वह उत्तम माना गया है।) शिवलिङ्ग के अर्चन में रत रहने वाला जो शिव विप्र होता है वह निन्दित हुआ करता है ॥८८॥ सूर्य विप्र, वैद्य विप्र और नृप का पशु पुत्र और बान्धवों के सहित अक्षत से प्रणाम कर देना चाहिए। राजा समस्त लोकों में अवध्य होता है उसे राज्य से पालन करना चाहिए ॥८९॥ वसुओं (धनों) के द्वारा तथा वस्त्र और गन्धों के द्वारा एवं माल्यों के द्वारा जोकि विविध प्रकार के हों, देवचक्र के ज्ञाता विद्वान् और होराचक्र के वेत्ता विद्वान् पूजने के योग्य होते हैं ॥९०॥ जो सूर्य चक्र के ज्ञान रखने वाले होते हैं वे पूजा के योग्य हुआ करते हैं उनका कभी किसी प्रकार से भी अपमान नहीं करना चाहिए यदि सिद्धि, ऋद्धि और धन की ऋद्धि आयु के तुल्य ही चाहते हो तो इनकी पूजा आवश्यक होती है। गण विप्र के समान ही दैवज्ञ विप्र पूज्य कहा गया है। ६१॥ बालक के उत्पन्न होने पर लग्न और ग्रहों का निरूपण करना चाहिए। हे श्रेष्ठ वर्ग ! सूर्य विप्र का जो संस्थान है वह सूर्य विप्र ही होता है। द्विमात्रिका का भली भाँति अभ्यास करके समस्त वेदों के अध्ययन-अध्यापन का फल प्राप्त किया करता है ॥६२॥

—x—

॥ गुरुजन माहात्म्य वर्णन ॥

चतुर्णामपि वर्णानां नान्यो बंधुः प्रचक्षते।
प्रोते पितृद्विजश्रेष्ठा इतीयं नैगमी स्मृतिः ॥१॥

त्रयोऽपि गुरवः श्रेष्ठास्ताभ्यां माता परो गुरुः ।
ये सोदारा ज्येष्ठश्रेष्ठा उत्तरोत्तरतो गुरु. ॥२॥
द्वादश्या तु आमवास्यामथ वा रविसक्रमे ।
वासासि दक्षिणा देया मणिमुक्ता यथारुचि ॥३॥
अयने विषुवे चैव चद्रसूर्यग्रहे तथा ।
प्राप्ते चापरपक्षे तु भोजयेच्चापि शक्तितः ॥४॥
पश्चात्प्रवदयेत्पादौ मत्रेणानेन सत्तमा. ।
विधिवद्वदनादेव सर्वतीर्थफल लभेत् ॥५॥
स्वर्गापवर्गप्रदमेकमाद्य ब्रह्मस्वरूपं पितरं नमामि ।
यतो जगत्पश्यति चारुरूप
त तर्पयाम. सलिलैस्तिलैर्युतैः ॥६॥
पितरो जनयतीह पितरः पालयति च ।
पितरो ब्रह्मरूपा हि तेभ्यो नित्य नमोनम. ॥७॥

श्री सूत जी ने कहा—चारों वर्णों का अन्य कोई भी बन्धु नहीं कहा जाता है । हे द्विज श्रेष्ठो ! पिता ही एक परम बन्धु होता है पिता के बिना अन्य कोई बन्धु नही है, यह नैगमी स्मृति है ॥१॥ ये तीनों ही गुरुगण श्रेष्ठ होते हैं और उन दोनो से माता पर गुरु होती है । जो सोदार और ज्येष्ठों मे श्रेष्ठ है वे उत्तरोत्तर से गुरु होते है ॥२॥ द्वादशी अथवा अमावस्या में अथवा रवि के सङ्क्रमण के दिन मे वस्त्र दक्षिणा देनी चाहिए और अपनी रुचि एवं शक्ति अनुसार मणि और मुक्ता भी देने चाहिए ॥३॥ अयन में, विषुव में, चन्द्र तथा सूर्य के ग्रहण मे अपर पक्ष के प्राप्त होने पर शक्ति के अनुरूप भोजन भी करावे । ४॥ हे सत्तमाः ! इसके पीछे इस निम्न मन्त्र के द्वारा चरणों की वन्दना करनी चाहिए । विधि-विधान के साथ वन्दना करने से ही समस्त तीर्थों के फल को प्राप्त किया करता है ॥५॥ मन्त्र यह है, स्वर्ग और अपवर्ग (मोक्ष) के प्रदान कराने वाले, आद्य ब्रह्म के स्वरूप से युक्त पिता को मैं प्रणाम करता हूँ जिनसे जगत् चारु रूप को देखता है उनको मैं तिलो से युक्त सलिलों के द्वारा तृप्त करता हूँ ॥६॥

इस ससार मे पितर उत्पन्न किया करते हैं और पितृगण ही पालन भी करते है। पितर ब्रह्म के रूप वाले है अत उनके लिये नित्य ही बार बार नमस्कार है ॥७॥

यस्माद्विजयते लोकस्तस्माद्धर्म प्रवर्तते ।
नमस्तुभ्य पित साक्षाद्ब्रह्मरूप नमोऽस्तु त ॥८॥
या कुक्षिविवरे कृत्वा स्वय रक्षति सर्वत ।
नमामि जननी देवी परा प्रकृतिरूपिणीम् ॥९॥
कृच्छ्रेण महता देव्या धारितोऽह यथोदरे ।
त्वत्प्रसादाज्जगद्दृष्ट मातर्नित्य नमोऽस्तुते ॥१०॥
पृथिव्या यानि तीर्थानि सागरादीनि सर्वश ।
वसन्ति यत्र ता नौमि मातर भूतिहेतवे ॥११॥
गुरुदेव प्रसादेन लब्धा विद्या यशस्करी ।
शिवरूप नमस्तस्मै ससारार्णवसेतवे ॥१२॥
वेद वेदागशास्त्राणा तत्त्व यत्र प्रतिष्ठितम् ।
आधार सर्वभूतानामग्रजन्मन्नमोऽस्तु ते ॥१३॥
ब्राह्मणो जगता तीर्थं पावन परम यत ।
भूदेव हर मे पाप विष्णुरूपिन्नमोऽस्तु ते ॥१४॥

जिससे लोक विजय प्राप्त किया करता है और उससे धर्म प्रवृत्त होता है हे पित ! हे साक्षात् ब्रह्म स्वरूप ! आपके लिये नमस्कार है, आपको मेरा प्रणाम है ॥८॥ जो अपनी कुक्षि के विवर में रखकर स्वय सब प्रकार से मेरी रक्षा करती है उस परा प्रकृति के स्वरूप वाली देवी जननी को मैं नमन करता हू ॥९॥ देवी ने बड़े ही कष्ट से जिस तरह मुझे अपने उदर मे धारण किया था हे मात ! यह समस्त जगत मैंने आपके ही प्रसाद (प्रसन्नता) से देखा है । अत मैं नित्य ही प्रणाम करता हूँ । १०॥ पृथ्वी मण्डल मे जितने भी तीर्थ है और सब ओर सागर आदि हैं ये सब जहाँ पर निवास किया करते है उस अपनी देवी माता को भूति के हेतु के लिए नमस्कार करता हूँ

॥११॥ गुरुदेव के प्रसाद से मैंने यश प्रदान करने वाली विद्या को प्राप्त किया है। ऐसे शिव के स्वरूप हे गुरुचरण ! इस संसार रूपी अर्णव से पार होने के सेतु के लिए आपके लिए मेरा शत शत वार प्रणाम है ॥१२॥ जहाँ पर वेद-वेदों के अङ्ग स्वरूप शास्त्रों का तत्त्व प्रतिष्ठित रहता है। जो समस्त प्राणियों के आधार स्वरूप हैं हे अग्रजन्मन् ! आपके लिए मेरा प्रणाम है ॥१३॥ ब्राह्मण समस्त जगत् का तीर्थ है क्योंकि यह परम पावन होता है। हे भूदेव ! हे विप्र ऋषिन् ! मेरे पाप को हरण करो। आपके लिए मेरा नमस्कार है ॥१४॥

कनिष्ठं तारहस्तं स्यादुत्तमं पञ्चविंशति ।
सर्वोत्तमं च द्वात्रिंशच्चतुष्कोणे महाफलम् ॥१५।
पुरद्वारं च कर्तव्यं चतुरस्रं समं भवेत् ।
अष्टकोणं न कर्तव्यं त्रिपुरं च कलौ युगे ॥१६॥
सुरवेश्मनि यावन्तो द्विजेन्द्रा परमाणवः ।
तावद्वर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते ॥१७॥
कर्तुं दशगुणं प्रोक्तमापानपरिपालकः ।
पतितान्युद्धरेद्यस्तु स सर्वं फलमश्नुते ॥१८॥
पतितं पतमानं च तथार्द्धस्फुटितं तथा ।
समुद्धृत्य हरेर्वेश्म द्विगुणं फलमाप्नुयात् ॥१९॥
पतितस्य तु यः कर्त्ता पतमानस्य रक्षिता ।
विष्णोरधितलस्यैव मानवः स्वर्गभाग्भवेत् ॥२०॥
यः कुर्याद्विष्णुप्रासादं ज्योतिर्लिंगस्य वा क्वचित् ।
सूर्यस्यापि विरिंचेश्च दुर्गाया श्रीधरस्य च ॥२१॥

अब देवायतन के निर्माण कराने के विषय में बतलाते हैं कि कनिष्ठ देवालय तारहस्त होता है जो कि पञ्च विंशति उत्तम होता है। बत्तीस सर्वोत्तम होता है और जो चतुष्कोण हो तो उसमें महान् फल होता है ॥१५॥ पुरद्वार चतुरस्र और सम करना चाहिए। इस कलियुग में अष्टकोण त्रिपुर

नही बनवाना चाहिए ॥१६॥ देवायतन में हे द्विजे द्रगण ! जितने भी परमाणु होते हैं उतने सहस्र वर्ष तक वह मन्दिर निर्माता स्वर्गलोक मे प्रतिष्ठा प्राप्त किया करता है ॥१७॥ जो देवालय के कराने वाला होता है उससे दश गुना आपान परिपालक कहा गया है। वह जो भी पतित हो गये हैं उन सबका उद्धार कर देता है और सम्पूर्ण फल को प्राप्ति किया करता है ॥१८॥ गिरे हुये या गिरने वाले तथा आधे टूटे-फूटे हुए हरि के आपतन का भली भाँति जीर्णोद्धार किया करता है वह दुगुना फल प्राप्त करने का अधिकारी हो जाता है। नूतन बनवाने की अपेक्षा जीर्ण देवालय के उद्धार का द्विगुण फल मिला करता है। ॥१९॥ पतित का जो कर्त्ता है और पतमान होने वाला है उसकी रक्षा किया करता है वह मानव विष्णु के अयस्तल का ही स्वग भाक होता है ॥२०॥ जो विष्णु के प्रासाद को बनवाता है अथवा ज्योतिर्लिङ्ग के प्रासाद को करता है, सूर्य, ब्रह्मा, दुर्गा और श्रीधर क प्रासाद की रचना कराता है वह करोडो कल्प तक स्वर्गवासी होता है ॥२१॥

स्वय स्वकुलमुद्घृत्य कल्पकोटि वसेद्दिवि ।
स्वर्गाद्भ्रष्टो भवद्राजा धनी पूज्यतमोपि वा ॥२२॥
देवीलिंगेपु योनौ वा कृत्वा देवकुल नर ।
स्मरत्व प्राप्नुयोल्लोके पूजितो दिवि सर्वदा ॥२३॥
प्रावृट्काले स्थित तोयमग्निष्टोमफल लभेत् ।
शरत्कालस्थित तोय यज्ञतोयाद्विशिष्यते ॥२४॥
निदाघकाले पानीय यस्य तिष्ठति वापिन ।
स्वर्गं गच्छेत्स नरक न कदाचिदवाप्नुयात् ॥२५॥
एकाह तु स्थित तोय पृथिव्या द्विजसत्तमा ।
कुलानि तारयेत्तस्य सप्त सप्त पराणि च ॥२६॥
पूर्वं पितृकुले सप्त तद्वन्मातृकुले द्विजा ।
चतुर्दशमिद ज्ञेय शतलेख तत शृणु ॥२७॥
पितुरूर्ध्वं कुल विश मातुरूर्ध्वं कुल तथा ।
तद्वत्पर विजानीयाद्भार्याया पच एव च ॥२८॥

देवायतन के निर्माण कराने वाला चाहे किसी भी एक देवता के आलय की रचना करावे अपने कुल का उद्धार करके करोडो कल्प पर्यन्त स्वर्गलोक मे निवास किया करता है। जब स्वर्ग का उपभोग उसका समाप्त हो जाता है तो वह फिर यहाँ मानुष लोक मे जन्म ग्रहण करके राजा, धनी या पूज्यतम हुआ करता है ।।२२।। जो मनुष्य देवी के लिङ्गो मे अथवा योनि में देव कुल को करता है वह लोक म स्मर के स्वरूप को प्राप्त किया करता है और सर्वदा स्वर्ग म पूजित होता है ।।२३।। वर्षा के समय मे जो तोय (जल) स्थित होता है वह अग्निष्टोम के फल को प्राप्त करता है । जो जल शरत्काल मे स्थित रहता है वह यज्ञ तोय से भी विशेषता रखता है ।।२४।। जिसकी वापी (बावडी) मे ग्रीष्म ऋतु मे जल स्थित रहा करता है वह वापी के निर्माण कराने वाला मानव स्वर्ग मे चला जाता है और उसे नरक कभी भी प्राप्त नहीं होता है ।।२५।। हे द्विजश्रेष्ठो ! पृथिवी मडल मे एक दिन भी स्थित रहने वाला जल उस निर्माता के सात पूर्व के और सात आगे होने वाले कुलो का उद्धार कर दिया करता है ।।२६।। पहिले पितृ कुल मे सात और उसी भाँति मातृ कुल मे सात इस तरह से चौदह कुल हो जाते हैं। अब दान लेख का श्रवण करो ।।२७।। पिता के ऊर्ध्व के बीस कुल तथा इसी प्रकार से माता के ऊर्ध्व कुल और इसी भाँति अपनी भार्या के पाँच समझने चाहिए ।।२८।।

पच वै मातृतभ्रास्य पितुर्मातामहे कुले ।
पच पच विजानीयान्मातुर्मातामहस्य च ।।२९।।
गुरो पितृकुले पच तस्य मातृकुले तथा ।
आचार्यस्य कुले द्वद्व दशराजकुलस्य च ।।३०।।
राज्ञो मातामहकुले पंच चैव प्रकीर्तिता. ।
एवोरा शतकुल परिसख्यातमेव च ।।३१।।
आत्मना सह विप्रेंद्रा उद्धारः समत स्मृत ।
कुर्याद् वार्चन तीर्थे स्वविमुक्ते दशार्णवे ।।३२।।
समुद्धरेत्कुलशत शृणु विप्रकुल द्विज ।
पच पच च विज्ञेय पितुर्मातामहस्य च ।।३३।।

मातुर्मातामहस्यैव जाति द्व द्वमुदाहृतम् ।
गुरो सतानके द्वद्व तद्वद्यादवसात्वतो ॥३४॥
परपक्षस्य चैक स्यादेकविंश कुल क्रमात् ।
पानीयमेतत्सकल त्रैकोक्य सचराचरम् ॥३५॥

इस तरह माता से इसके पाँच और पिता के मातामह कुल मे पाँच-पाँच तथा माता के महके जानने चाहिए ॥२६॥ गुरु के पितृकुल मे पाँच और उसके मातृकुल मे पाँच, आचार्य के कुल मे दो तथा राजा के कुल मे दश का उद्धार कर देता है ॥३०॥ राजा के मातामह के कुल मे पाँच बताये गये हैं। इस प्रकार से एक सौ से अधिक अर्थात् एक सौ एक कुनो की सख्या की गई है। ॥३१॥ हे विप्रेन्द्रगण ! अपनी आत्मा के साथ ही उद्धार का होना सम्मत कहा गया है। तीर्थ मे स्वविमुक्त दशार्णव मे देवता का अर्चन करना चाहिए। ॥३२॥ हे द्विज ! इस तरह दानपुन का समुद्धार करना चाहिये। अब विशकुन का श्रवण करो। पाँच पाँच माता और पिता के और पिता के मातामह के तथा माता के मातामह के द्वन्द्व जाति को बतलाया गया है। गुरु की सन्तान मे द्वन्द्व और इसी भाँति यादव सात्वत और पर पक्ष का एक इस क्रम से इक्कीस कुल होते हैं। यह जल सम्पूर्ण चराचर त्रैलोक्य का उद्धार कर देता है। ॥३३॥३४॥३५॥

पानीयेन विना वृत्तिर्लोके नास्तीति कर्हिचित् ।
वारस्वस्य पुण्यखड तोये पतति यावति ॥३६॥
तावत्काल वसेत्स्वर्गे चान्ते ब्रह्मत्वमाप्नुयात् ।
तस्मात्तोयोपरि गृह प्रसादोपरि वर्जयेत् ॥३७॥
सूर्यरश्मियुत यद्वै तत्तोय तु विनिंदितम् ।
चद्ररश्मिविहीन यन्नामृतत्वाय कल्पते ॥३८॥
तस्माद्दशगुण कुण्डे तस्माद्दशगुण ह्रद ।
देवाना स्थापन कुर्यादविमुक्तफल शुभम् ॥३६॥
सुस्थित दु स्थित वापि शिवलिंग न चालयेत् ।
चालनाद्रौरव याति न स्वर्गं न च स्वर्गगार् ॥४०॥

उच्छ्वसनगरग्रामे स्थानत्यागे च विप्लवे ।
पुन. ससारधर्मेण स्थापयेदविचारयन् ॥४१॥
बाहुदन्तादिप्रतिमा विष्णोश्चान्यस्य सत्तमाः ।
न चालयेत्स्थापिते च विप्रवृक्ष न चालयेत् ॥४२॥

पानीय के बिना लोक मे कही भी वृत्ति नही होती है। जब तक वारस्वस्थ पुण्य खण्ड जल मे गिरना है तब तक वह स्वर्ग मे निवास किया करता है और अन्त मे ब्रह्मत्व को प्राप्ति करता है। इसलिए तोय (जल) के ऊपर गृह और प्रसाद के ऊपर गृह वर्जित रखना चाहिए ॥३६॥३७॥ जो तोय सूर्य की रश्मियों से युक्त होता है वह तोय विनिन्दित होता है। जो चन्द्रमा की रश्मियो (किरणो) से विहीन होता है वह अमृतत्व के लिए कल्पित नही होता है॥३८॥ इससे दश गुना कुड मे और उसमे दश गुणा ह्रद मे देवो का स्थापन करना चाहिए वह अविमुक्त फल शुभ होता है ॥३६॥ सुस्थित या दु स्थित कैसा भी हो शिवलिङ्ग को चालित नही करना चाहिए। इसके चालन करने से रौरव को जाया करता है और स्वर्ग मे नही जाता है और स्वर्ग का भागी भी नही होता है ॥४०॥ उच्छ्वस नगर ग्राम मे, स्थान के त्याग मे और विप्लव मे पुन ससार के धर्म से बिना कुछ विचार किए हुए स्थापना करनी चाहिए ॥४१॥ हे सत्तमा ! विष्णु की या अन्य की बाहु दन्तादि प्रतिमा नही चालित करनी चाहिए और स्थापित करने पर विप्र वृक्ष को भी चालित न करे ॥४२॥

देवाय हरिवृक्ष च मधूकं किंशुक तथा ।
नाकाले स्थापयेज्ज्ञातु चालनाद्ब्रह्महा भवेत् ॥४३॥
देवालयस्य पुरत. कुर्यात्पुष्करिणीं द्विजाः ।
ब्राह्मणाना समाजे च राजद्वारे चतुष्पथे ॥४४॥
देवार्थे ब्राह्मणार्थे च सुग्र कुर्याच्च सर्वतः ।

याम्ये स्वार्थं ना कुर्वीत कोणे तु नरक भवेत् ।
मुख प्रकल्पयेन्मध्ये केचिदुत्तारलंघनम् ॥४६॥
पूर्वाद्दक्षिणपूर्वे तु अर्कहस्तप्रमाणत ।
तडागे तु फलाहस्त हस्तिक ह्रासयेत्क्रमात् ॥४७॥
तृप्ये हस्त नलिन्यादाप्रतो हीन न कारयेत् ।
गर्तंतृण कलाहस्त तडागेऽत्र प्रचक्ष्यते ॥४८॥
हीने हीनतर कुर्याद्धस्तमानेन ह्रासयेत् ।
यूपस्तथा खादिर एव कार्यं
श्रीपर्णिको धात्रिसमुद्भवश्च ॥४६॥

केशव, हरि वृक्ष, मधूक और किंशुक को मकान मे कभी स्थापित न करे और इनके चालन करने से ब्रह्महा होता है। ४३॥ हे द्विजा ! देवालय के आगे के भाग म पुष्करिणी बनवानी चाहिए। ब्राह्मणों के समाज म, राजद्वार मे और चतुष्पथ मे पुष्करिणी होनी चाहिए ॥४४॥ देशो के मध्य म और ब्राह्मणो के मध्य म सब प्रकार से सुख करे। पश्चिम मे पुष्टि काम को और उत्तर में समस्त कामनाओ के देने वाला होता है ॥४५॥ याम्य दिशा मे स्वाथ नही करे और कोण मे करने से नरक होता है। इसका मुख मध्य म प्रक ल्पित करे। कुछ विद्वान् इसे उत्तर लङ्घन कहते हैं ॥४६॥ बारह हाथ के प्रमाण से दक्षिण पूर्व मे करना चाहिए। तडाग मे फलाहस्त क्रम से हस्तिक का ह्रास करे ॥४७॥ तृप्य में नलिन्यादाक से हाथ हीन नही कराये। गर्त तृण कला हस्त इस तडाग मे कहा जाता है ॥४८॥ हीन म हीनतर करे और हस्त के मान स ह्रासकाम बनावे। खादिर का, श्रीपर्णिक अथवा धात्री स समुत्पन्न यूप कराना चाहिए ॥४६॥



॥ आहुति होमसख्या वर्णन ॥

यस्य यज्ञस्य यन्मान तत् तेनैव योजयेत् ।
अमानेन कृतो यज्ञस्तस्मान्मान न ह्रापयेत् ॥१॥

शतार्धं प्रथम मान शतसाहस्रमेव च ।
अयुत च तथा लक्ष कोटिहोममत परम् ॥२॥
अत पर तु विभवे राजा वान्यो द्विजोत्तमाः ।
न स सिद्धिमवाप्नोति अयागफलभाग्भवेत् ॥३॥
विपाक कर्मणा सर्वं नर प्राप्नोति सर्वदा ।
शुभाशुभ ततो नित्य प्राप्नोति मनुज किल ॥४॥
युक्ताश्चापि ग्रहास्तत्र नित्य शातिकपौष्टिके ।
तस्मात्प्रयत्नतो भक्त्या नित्य पूजा यथाविधि ॥५॥
अद्भुते च तथा शाति कुर्याद्भक्तिसमन्वित ।
तस्माद्ग्रहाभिजनित शुभाशुभफल खलु ॥६॥
अद्भुतेषु च सर्वेषु अयुत कारयेन्नर ।
होम यथाभिरुचित पौष्टिके काम्कयमणि ॥७॥

इस अध्याय में यज्ञ परता होने से आहुति और होम की सख्या तथा मान का निरूपण किया जाता है । श्री सूतजी ने कहा—जिस यज्ञ का जो मान होता है उसे उस ही मान के द्वारा योजित करना चाहिए । जो यज्ञ बिना ही मान के किया जाता है वह हृत हो जाता है इसलिए मान का त्याग कभी नही करे ॥१॥ इस यज्ञ का प्रथम मान एक शत होता है । फिर शत सहस्र वाला मान होता है । अयुतमान होता है और लक्ष तथा कोटिका होम सबसे पर होता है । ॥२॥ इसस ऊपर तो विभव होने पर राजा हो या कोई भी अन्य हो, हे द्विजोत्तमो । जो भी कोई करता है वह सिद्धि को प्राप्त नही होता है और याग के फल का भ गी भी नही हुआ करता है ॥३॥ इस ससार मे मनुष्य सर्वदा कर्मों के समस्त विपाक को प्राप्त किया करता है । मनुष्य इसी से नित्य शुभ और अशुभ फल पाया करता है ॥४॥ वहाँ शान्ति व पौष्टिक कर्म मे नित्य ही ग्रह युक्त होते है । इससे भक्ति के भाव से प्रयत्न पूर्वक यथाविधि पूजा करनी चाहिए ॥५॥ और अद्भुत म भक्ति से समन्वित होकर शान्ति करे । इससे ग्रहो से अभिजनित शुभ और अशुभ फल निश्चय ही होता है ॥६॥ समस्त

अद्भुतो में मनुष्य को अयुत कराना चाहिए । पौष्टिक काम्य कर्म में अपनी अभिरुचि के अनुसार होम करे ॥७॥

लक्षहोमं कोटिहोमं राजा कुर्याद्यथाविधि ।
अन्य शतादिकं कुर्यादयुतं विभवे सति ॥८॥
ग्रहाणां लक्षहोमस्तु कोटिहोमस्तथा कलौ ।
निधिहोमं चाभिचारं तन्न कुर्याद्गृहाश्रमी ॥९॥
यत्र यत्र जपं कार्यो होमो वा यत्र कुत्रचित् ।
मानं नैव च कर्तव्य मानादौ चाष्टकं न्यसेत् ॥१०॥
युग्मसाध्यं न कर्तव्यं युग्मतो भयमादिशेत् ।
लक्षे सप्ततालसंख्या कोटिहोमे च विंशतिः ॥११॥
एकत्रिंशद्दिनैर्वापि न कुर्यात्यत्ययं क्वचित् ।
आरम्भस्त्रिसहस्रं स्याद्द्वितीयेऽष्टसहस्रकं ॥१२॥
तृतीये तु सहस्रं स्याद्ग्रहसाध्यं स्मृतो विधिः ।
पश्चाहे च समारम्भे सहस्रं जुहुयाद्बुधः ॥१३॥
द्वितीयेऽह्नि द्विसाहस्रं तृतीये तु सहस्रकम् ।
गुणसाहस्रकं तुर्ये पश्चाहे दोषमीरितम् ॥१४॥

राजा को लक्ष होम और कोटि होम विधि के अनुसार करना चाहिये । अन्य पुरुष को शतादिक होम करना चाहिए । यदि विभव हो तो अयुत भी करे ॥८॥ ग्रहों का लक्ष होम होता है और कलियुग में कोटि होम करना चाहिए । निधि होम और अभिचार जो होता है उसे गृहाश्रमी को नहीं करना चाहिए ॥९॥ जहाँ कहीं पर जप करे अथवा जहाँ कहीं होम करे । और मान नहीं करना चाहिए । मानादि में अष्टक का न्यास करना चाहिये ॥१०॥ युग्म साध्य को नहीं करे युग्म से भय प्राप्त होता है । लक्ष में सप्त ताल की संख्या होती है और कोटि होम में बीस की संख्या है ॥११॥ अथवा इकतीस दिनों में करे । इसका व्यत्यय कहीं पर नहीं करना चाहिये । आरम्भ में तीन सहस्र होता है और द्वितीय में आठ सहस्र होता है । तृतीय में सहस्र है । यहाँ से साध्य विधि

कही गई है । पाँच दिन के समारम्भ मे बुध को एक सहस्र का हवन करना चाहिए । दूसरे दिन मे दो सहस्र तथा तृतीय दिन मे सहस्र करे । चौथे मे गुण साहस्र करे और पाँचवे मे शेष कहा गया है ॥१२॥१३॥१४॥

नवाहे कल्पयेल्लक्षमेकैवाग दिने दिने ।
पचमे च तथा षष्ठे कुले भागद्वयाधिकम् ॥१५॥
कोटिहोमे च तिथ्यगे शतभागेन कल्पयेत् ।
न न्यून नाधिक कार्यमेतन्मानमुदाहृतम् ॥१६॥
नित्यमेव दिने दद्यात्पृथङ्नित्य न चाचरेत् ।
स समाजे जपेन्नित्य पञ्चतारेण स्विष्टकृत् ॥१७॥
अयुते लक्षहोमे च कोटिहोमे च सर्वदा ।
प्रथमे दिवसे कुर्याद्देवताना च स्थापनम् ॥१८॥
महोत्सवे द्वितीये तु बलिदान तथैव च ।
त्र्यहसाध्ये त्रिरात्रे पूर्ण कृत्वा विसर्जयेत् ॥१९॥
पञ्चाहे तु तृतीयेऽह्नि बलिदान प्रशस्यते ।
सप्ताहे चाष्टदिवसे नवाहे पचमेऽहनि ॥२०॥
पञ्चाहे द्वादशाहे तु द्वात्रिंशत्षोडशेऽहनि ।
इतोऽन्यथा न कुर्वीत नात्र यज्ञफल लभेत् ॥२१॥

नवाह मे लक्ष की कल्पना करे और दिन-दिन में एक एक भाग को करना चाहिए । पाँचवे और छठवें कुल में भाग द्वय से अधिक करना चाहिये ॥१५॥ तिथ्यङ्ग कोटि होम में शतभाग से कल्पना करनी चाहिए । न तो न्यून ही करे और न अधिक ही करना चाहिए । इस तरह से इसका मान बताया गया है ॥१६॥ दिन में नित्य एक को देना चाहिये । और नित्य पृथक् आचरण नहीं करना चाहिए । उसे पञ्च तार से स्विष्टकृत् होकर समाज में नित्य जप करना चाहिए ॥१७॥ अयुत होम में, लक्ष होम में, और कोटि होम में सर्वदा प्रथम दिवस में देवताओं का स्थापन करना चाहिए ॥१८॥ दूसरे महोत्सव में बलिदान करे । तीन दिन में साध्य में और तीन रात्रि में साध्य होने वाले में पूर्ण करके विसर्जन करे ॥१९॥

जो पश्चाह याग हो उसमें तीसरे दिन मे बलिदान प्रशस्त कहा जाता है । सप्ताह मे आठवें दिन मे और नवाह मे पाँचवे दिन मे करे ॥२०॥ पश्चाह मे द्वादशाह मे बत्तीस षोडश दिन मे करे । इससे अन्यथा कभी नही करना चाहिए । विपरीत करने पर यज्ञ के फल की प्राप्ति नही होती है ॥२१॥



॥ कुण्ड सस्कार वर्णन ॥

कुण्डानामथ सस्कारे वक्ष्ये शास्त्रमत यथा ।
असस्कृते चाथहानिस्तस्मात्सस्कृत्य होमयेत् ॥१॥
अष्टादश स्यु सस्कारा कुण्डाना तत्र दर्शिता ।
तारेणावेक्षयेत्स्थान कुशतोयै प्रसचयेत् ॥२॥
त्रिसूत्रीकरण पश्चाद्वृत्तमूत्र निपातयेत् ।
वारेण कीलक दद्यात्तारमिहेन कुड्मलम् ॥३॥
जिह्वा प्रचरपयेत्पश्चात्तस्मादग्नि समाहरेत् ।
न च म्लेच्छगृहादग्नि न शूद्रनिलयात्क्वचित् ॥४॥
नदीपर्वतशानाम्य स्त्रीहस्तात्परियजयेत् ।
सस्कृत्य परिगृह्णीयात्रिधा कृत्वा समुद्धरेत् ॥५॥
तमग्नि प्रतिगृह्णीयादात्मनोऽभिमुख यथा ।
वह्निबीजेन मतिमान्छिन्नबीजेन प्रोक्षयेत् ॥६॥
वागीश्वरीमृतुस्नाता वागीश्वरसमागताम् ।
ध्यात्वा समीरण दद्यात्वाममुत्पद्यत तत ॥७॥

रह सस्कार दिखलाय गये हैं । तार के द्वारा स्थान का अवेक्षण करना चाहिये और कुश के जल से प्रसचन करना चाहिए ॥२॥ इसके पीछे त्रिसूत्रीकरण करे और वृत्त सूत्र का निपातन करना चाहिए । वार से कीलक देवे और नार-सिंह मन्त्र ■ कुड्मल दवे ॥३॥ इसके पश्चात् उसमे जीह्वा को प्रकल्पित करना चाहिए और उससे अग्नि का समाहरण करे । किसी मलेच्छ जाति वाले के घर से और किसी भी शूद्र के घर से कभी अग्नि नही लेनी चाहिए ॥४॥ नदी, पर्वत और शाला से तथा स्त्री के हाथ से अग्नि का लाना परिवर्जित करना चाहिए । पहले सस्कार करके परिग्रहण करना चाहिए । और तीन भाग करके समुद्धृत करे ॥ ॥ उस अग्नि को अपने अभिमुख करके प्रतिग्रहण करे । मति माम पुरुष को वह्नि बीज से और शिव बीज से प्रोक्षण करना चाहिए ॥६॥ वागीश्वर से समागत ऋतु स्नान करने वाली वागीश्वरी का ध्यान करके समीरण (वायु) देना चाहिय जिससे कि वह अच्छी तरह से यथेच्छ उत्पन्न हो जाती है ॥७।

यालबीजेन चैशान्या योनावग्निं विनिक्षिपेत् ।
पश्चाद्देवस्य देव्याश्च दद्यादाचमनीयकम् ॥८॥
पिङ्गपिङ्गल दहदह पचयुग्ममुदीर्य च ।
सर्वज्ञाज्ञापय स्वाहा मन्त्रोय वह्निपूजने ॥९॥
वह्निर्हृदपि सयुक्ता सादियाता सविदव ।
वह्निमन्त्रा समुद्दिष्टा द्विजाना मन्त्र ईरित ॥१०॥
जिह्वास्ताश्चिविधा प्रोक्ता यज्ञदत्तेन सत्तमा ।
हिरण्यामाज्यहोमेषु होमयेत्छयतारमत ॥११॥
त्रिमध्यक्तं यत्र होम कणिकाया च होमयेत् ।
गनकास्यात् कृष्णास्याद्धिरण्या शुभ्रता तया ॥१२॥
बहुरूपातिम्या च सात्त्विका योगकर्मसु ।
स्निग्धमूर्तिस्फुलिङ्गिन्यौ धूम्रवर्णा मनोजवा ॥१३॥
लोहितास्याकरालाभ्यात्कालीभामस्य इत्यपि ।
एता मप्त नियुञ्जीत विज्ञेया क्रूरकर्मसु ॥१४॥

समिधाओं के भेदों में जो जीह्वा हैं वे उसी के द्वारा योजित करे। आज्य होमों में संयत आत्मा वाला होकर हिरण्या को होम करना चाहिए ।१५॥ त्रिमध्वक्तों से होम को कर्णिका में होमना चाहिए। रक्ता में शुद्ध क्षीर से करे और नैत्यिको में प्रभा कही गई है ॥१६। पुण्य होम में बहुरूपा जीह्वा होती है। अन्न के द्वारा और पायस से होम में कृष्णा होती है। इक्षु के होम में पद्म-रागा और पद्म होम में सुवर्णा होती है ॥१७॥ पद्म होम में लोहिता और बिल्व पत्रों के द्वारा किये जाने वाले होम में श्वेता होती है। तिलों के होम में धूमिनी और काष्ठ के होम में करामा कही गई है ॥१८॥ पितृहोम में लोहिता-स्या और इसके अनन्तर मनोजवा जाननी चाहिए। होम जो समिद्ध हो उनमें है सत्तमा ! वैश्वानर स्थित होम में रहते हैं ॥१९॥ आज्य होम में समान है और शेष वस्तुओं में निषण्ण रहते हैं। वह्नि में आस्य से हवन करना चाहिए जो कि समस्त कर्मों में पालन करना है ॥२०॥ कर्ण होम में व्याधि होती है। नेत्र में भी उसी तरह कहा गया है। नासिका में मन को पीडा होती है और मस्तक में मार्ग होता है, इसमें लेश मात्र भी संशय नहीं है ॥२१॥

गुह्यं विपत्करं चैव तस्मात्तत्र न होमयेत् ।
साधारणमथो वक्ष्ये वह्नेर्जिह्वाश्च कीर्तिता. ॥२२॥
प्रवक्ष्यामि विधिं कृत्स्नं यद्विशेषं पुन. शृणु ।
घृताहुतौ हिरण्याख्या गगना पाणिहोमत ॥२३॥
यक्षा ख्याता महाहोमे कृष्णाभा सा क्रतौ मता ।
सुप्रभा मोदकविधौ बहुरूपातिरूपिका ॥२४॥
पुष्पपत्रविधौ होमे वह्नेर्जिह्वा प्रकीर्तिता. ।
न वा संकल्पयेत्कुण्डे शूद्राकारत्रिभेदत. ॥२५॥
इन्द्रकोष्ठं मस्तकं स्यादीशाग्नेये च मस्तके ।
तत्पार्श्वगारव्ये द्वे नेत्रे द्वौ करौ च पदक्रमात् ॥२६॥
अविशिष्टं भवेत्पुच्छं मध्ये चोदरसम्भवम् ।
उदरे होमयेत्पुष्टिमन्नं पायसं च यत् ॥२७॥

हुत्वा व्रीहिगण तत्र कर्णे पुष्पाहुर्ति हुनेत् ।
वामकर्णे वामनेन हुनेद०जादिक बुध ॥२८॥

गुह्य में विपत्ति करने वाला होता है इसलिए उसमें होम नहीं करना चाहिए। अब तक वह्नि की जीह्वा के विषय में विशदतया कह दिया गया है। अब साधारण बताया जाता है। २३॥ अब मैं पूर्ण विधि को बतलाऊँगा। जो कुछ विशेष है उसे पुर श्रवण करो। घृताहुति में हिरण्या नाम वाली होती है। पाणि होम में गगना है ॥२३॥ महा हाम मे बक्ता कही गई है। क्रतु मे बहु कृष्णाभा मानी गई है। मोदक विधि मे सुरभा होती है। बहुरूपा और प्रति रूपिका पुष्प पत्र विधि वाले होम मे वह्नि की जिह्वाय परिकीर्तित की गई हैं। अथवा सूत्रकार के विभेद से कुण्ड मे सकल्पन नही करना चाहिए ॥२४॥२५॥ इन्द्रकोष्ठ मस्तक होता है और ईशाग्नेय मस्तक होते हैं। तत्काष्ठ पार्श्व मे दो नेत्र और पद क्रम से दो हाथ होते हैं ॥२६॥ और मध्य में उदर से सम्भव वाली अविशिष्ट पुच्छ होती है। उदर में पुष्टि अन्न और पायस का होम करना चाहिये ॥२७॥ वहाँ व्रीहिगण का हवन करके वहाँ कर्ण में पुष्पा हुति का हवन करना चाहिए। बुध पुरुष को चाहिए कि वाम कर्ण में और वाम नेत्र में अब्ज आदि का हवन करे ॥२८॥

श्रवण चैव नेत्र च दक्षिणे चेक्षुखण्डकम् ।
वामपादे वामकरे अभिचारेषु शस्यते ॥२९॥
मारणे पुष्पदेशे तु न चान्य होमयेत्क्वचित् ।
विपरस्त्वर विजानीयाद्धनि सर्वविनाशकृत् ॥३०॥
चन्दनागरुकर्पूरपाटलायूथिकानिभ ।
पावकस्य सुतो गन्ध समतात्सुमहोदय ॥३१॥
प्रदक्षिणस्त्वयक्तकल्पा छत्राभा शिथिला शिखा ।
शुभदा यजमानस्य राज्यस्यापि विशेषत ॥३२॥
छिन्नवृत्ता शिखा कुर्यान्मृत्युधनपरिक्षय ।
निर्वाप्य मरण विद्यान्महाधूमाकुलेऽपि च ॥३३॥

एवविधेपु दोपेपु प्रायश्चित्त समाचरेत् ।
अष्टाविंशाहुतीस्त्यक्त्वा ब्राह्मणान्भोजयेत्तत ॥३४॥
मूलेनाज्येन जुहुयाज्जुहयात्पञ्चविंशतिम् ।
महास्नान प्रकर्तव्य त्रिकाल हरिपूजनम् ॥३५॥

दक्षिण श्रवण और नेत्र मे ईन्ध के दण्ड का हवन करना चाहिए । वाम पाद और वाम कर मे हवन करना अभिचार के कर्मों में प्रशस्य माना जाता है ॥२९॥ मारण पुण्य देश मे अन्य किमी का कभी भी हवन नही करना चाहिए । ऐसा हवन करना विपत्ति के करने वाला जानना चाहिए । यह हनि सर्व विनाश की करने वाली होती है ॥३०॥ चन्दन, अगरु, कपूर, पटला, यूथिका के तुल्य पावक का सुन गन्ध सब और सुन्दर महान् उदय वाला होना है ॥३१॥ प्रदक्षिण कल्प के त्यागने वाली, छत्राभ, शिथिला अग्नि की शिखा यजमान को शुभ देने वाली होती है और विशेष करके राज्य की भी शुभदा हुआ करता है ॥३२॥ छिन्न वृत्त वाली शिखा मृत्यु और धन का परिक्षय करती है । महान् धूम से आकुल म भी मरण को निर्दिष्ट जानना चाहिए ॥३३॥ इस प्रकार के दोषा मे प्रायश्चित्त करना चाहिए अट्ठाईस आहुतियाँ छोड़कर फिर ब्राह्मणो को भोजन कराना चाहिए । मूल के द्वारा आज्य से हवन करना चाहिए और पञ्च विंशति का हवन करे । महास्नान करना चाहिए और त्रिकाल मे हरि का पूजन भी करना चाहिए ॥३४॥३५॥



॥ विविध मडल निर्माण वर्णन ॥

अथातो मडल वक्ष्ये पुराणेषु यथोदितम् ।
यदधीना भवेत्सिद्धिस्तस्मात्कुर्यात्समाहित ॥१॥
देवा पद्मासनस्थाश्च भविष्यति वसति च ।
विनाब्ज नार्चयेद्देवमर्चिते यक्षिणी हरेत् ॥२॥

अतो मडलविच्छेद यस्माद्दशगुण भवेत् ।
रज साध्ये शतगुण केवले द्विगुण फलम् ।।३।।
त्रिशत वदने साध्ये सहस्त्र च रजो ष्टकम् ।
रजोभि षोडशैविव शतशतमनतकम् ।।४।।
यन्त्रे मणौ शालग्रामे प्रतिमाया विशेषत ।
महालये महायोनौ रक्तलिगे च साधिकम् ।।५।।
रजोयुक्त लिखेद्यस्तु पूजाकार्ये विभूतये ।
करणादिफल यस्मात्तस्मात्तपरिवर्जयेत् ।।६।
चतुरस्त्र नव व्यूह कौचत्राण चर्तुविधम् ।
कामबीज वज्रनाभ विघ्नराज गजाह्वयम् ।।७।।

इस अध्याय में देवता परता होने से और कम का पर स होने से विविध विधि के मण्डनो के निर्माण करने का वर्णन किया जाता है । श्री सूत जी ने कहा—इसके अन नर मण्डन के विषय मे बतलाया जाता है जैसा कि पुराणो में कहा गया है ? मण्डलो के ही अधीन सिद्धियाँ हुआ करती हैं अतएव इन मण्डनो की रचना बहुत ही समाहित होकर करनी चाहिए ।।१।। देवगण पद्म के आसन पर स्थित रहा करते हैं । और उसी पर वे निवास भी करते हैं । इसलिए बिना कमल के देवता का यजन नही करना चाहिए । और जो बिना कमलो के अचना करते हैं उस अचना को दम्भिणी हरण करके ले जाया करती है ।।२।। इससे दश गुना मण्डन का विच्छेद होना है १ रज के साध्य होने म शतगुण और केवल में द्विगुण फन हुआ करता है ।।३।। वदन के द्वारा साध्य में तीन सौ गुना होता है और रजोऽष्टक म सहस्त्र गुना फन हुआ करता है । रजो के द्वारा जो षोडश हो विम्ब करना शत शत और अनन्त फल देने वाला होता है ।।४।। यन्त्र मे मणि म, शालग्राम म और प्रतिमा म विशेष रूप से होता है । महालय म, महायोनि मे और रक्त लिङ्ग म साधिक होता है ।।५।। जो रज से युक्त पूजा के काय में लिखता है वह विभूति के लिये होता है । जिससे करण नि फन हो

उसे परिवर्जित कर देना चाहिए ॥६॥ चतुरस्र नव व्यूह होता है और क्रौञ्च प्राण चार प्रकार का होता है। कामबीज, वज्रनाभ विघ्नराज और गजाह्वय नाम वाले होते हैं ॥७॥

पारिजात चद्रबिम्ब सूर्यकात च शेखरम् ।
शतपत्र सहस्रार नवनाभ च मुष्टिकम् ॥८॥
पद्माब्ज चैव मैनाक कामराज च पुष्करम् ।
अष्टास्र चैव श्रीबिंब पद्मस्र व्यस्रमेव तु ॥६॥
चत्वारिंशत्तथा पचस्त्वाधिक परिसंख्यया ।
चतुरस्र नवव्यूह वैष्णवे यागकर्मणि ॥१०॥
प्रशस्त चापि गोमेधे क्रौच प्राण चतुर्विधम् ।
सुभद्र चाश्वमेधे च नरमधे नरासनम् ॥११॥
सवत्र सवतोभद्र चतुरस्र सुभद्रकम् ।
कामराज तथा व्यस्रमष्टास्र च पडकमम् ॥१२॥
शाक्ताना कामपक्षे च पद्मसिंहासन महत् ।
ध्यानावने मेरुपृष्ठ मणिमुक्तावनेष्वपि ॥१३॥
सहस्र शतपत्र च अन्नदाने तिलाचले ।
हरिवल्लभ राजसूय सोमयागपु शस्यते ॥१४॥

पारिजात चन्द्रबिम्ब सूर्यकान्त शेखर शतपत्र, सहस्रार, नवनाभ और मुष्टिक होते हैं ॥८॥ पद्माब्ज, मनाक, कामराज, पुष्कर, अष्टास्र, श्रीबिम्ब, पद्म और व्यस्र नाम वाले होते है ॥६॥ इस प्रकार से परिगणना से पैंतालीस वैष्णव याग कर्म में चतुरस्र नवव्यूह है ॥१०॥ गोमेध में क्रौञ्च और प्राण चार प्रकार के प्रशस्त होते हैं। अश्वमेध में सुभद्र और नरमेध म नरासन होता है ॥११॥ सवत्र सर्व तो भद्र चतुरस्र, सुभद्रक कामराज, व्यस्र अष्टास्र और पद्मक होते हैं ॥१२॥ शाक्तों के काम पक्ष में पद्म सिंहासन महान् होता है। ध्यानावन में मेरु पृष्ठ होता है तथा मणि मुक्तावनों में भी यही होता है ॥१३॥ अन्नदान और तिलाचल में सहस्र और शतपत्र होते हैं।

राजसूय यज्ञ मे हरिवल्लभ और यह सोमयागों मे भी प्रशस्त कहा जाता है ॥१४॥

प्रतिष्ठाया सुभद्र च सर्वतोभद्रमेव च।
जलाशयप्रतिष्ठाया विघ्नराज प्रशस्यते ॥१५॥
घटप्रस्थापने चैव गजाह्व तुरगासनम्।
शतपत्र लक्षहोमे अयुने चतुरस्रकम् ॥१६॥
यस्य यज्ञस्य यद्विम्ब तत्तु तेनैव योजयेत्।
इतोऽन्यथा भवेद्दोषो विपरीतेष्वधोगति ॥१७॥
द्विहस्ता चतुरस्रा च वेदिका परिकीर्तिता।
चतुरंगुलोच्छ्रायमिता षडंगुला ह्यथापि वा ॥१८॥
षडंगुला नवव्यूहे वर्धयेद्यज्ञकोविद।
एकांगुलसमुत्सेध कर्तव्यस्सुसमाहितै ॥१९॥
क्रौंचप्राणे तुयहस्त मुष्टिहस्त समुच्छ्रितम्।
मध्यद्वये हीनकर कनिष्ठ -यगुलाधिकम् ॥२०॥
कुर्याद्विवत्रिक्रमाद्धीनमुच्छ्राये द्विजसत्तमा।
पारिजात[1] चन्द्रविंब सूर्यकात च शेखरम् ॥२१॥
ग्रहाणा पौष्टिके पक्षे यात्राग्रामादिसाधने।
नियोजयेत्तत्रतत्र वेदिकावक्रकत्रयम् ॥२२॥

प्रतिष्ठा मे सुभद्र और सर्वतोभद्र हा होता है। जहाँ जलाशय की प्रतिष्ठा होती है वहाँ विघ्नराज प्रशस्त माना जाता है ॥१५॥ घटके प्रस्थापन मे गजाह्व और तुरगासन होता है। लक्ष होम मे शतपत्र और अयुत होम मे चतुरस्रक हुआ करता है ॥१६॥ जिस यज्ञ का जो बिम्ब होता है वह उसी से योजित करना चाहिए। इससे अन्यथा करने पर दोष होता है और विपरीत करने मे अधोगति हुआ करती है ॥१७॥ चतुरस्रा वेदका दो हाथ की बताई गई है। चार अङ्गुल उच्छ्राय (ऊँचाई) सेमित अथवा छे अङ्गुल ऊँचाईवाली हुआ करती है ॥१८॥ यज्ञ की विधि के विद्वान पुरुष को नव व्यूह मे छै अङ्गुल उच्छ्राय वाली वेदिका वर्जित कर देनी चाहिए। भली भाँति समाहितो

के द्वारा एक अङ्गुल का समुत्सेध करना चाहिए । १६।। कोष्ठ भाग मे तुर्य हस्त, मुष्टि हस्त समुच्छ्रित मध्यद्वय मे हीनकर और कनिष्ठ तीन अंगुल अधिक होता है ।।२०। हे द्विज सत्तमा ! दो तीन के क्रम से उच्छ्राय मे हीन करना चाहिए । पारिजात, चन्द्रबिम्ब, सूर्यकान्त और शेखर इनको ग्रहों के पौष्टिक पक्ष मे तथा बाह्य ग्रामादि साधन म नियोजित करना च हिए । वहाँ वहाँ पर वेदिका चक्र का न्यय करे ।।२१।।२२।।

प्रथमे मुष्टिहस्त स्यात्सपूर्णं शेषमानकै ।
नवलाभे च पद्माब्ज करत्रयमुदाहृतम् ।।२३।।
शेषा चैव वरिष्ठा च लवली भित्ति वेदिका ।
विज्ञेया द्विजशार्दूला यथाकाम्येषु योजयेत् ।।२४।।
अयथाव्यत्यये दोषस्तस्माद्यत्नेन साधयेत् ।
दशहस्ते चाष्टहस्ते अष्टहस्ते च षोडशम् ।।२५।।
मुष्टिग्राहश्च प्रादेश वर्धयेत्षोडशाशके ।
हस्तोत्सेध च कर्तव्य हीने हीन च ह्रासयेत् ।।२६।।
दर्पणाकारक कुर्याद्यागके शांतिकर्मणि ।
हीन कुर्यात्प्रयत्नेन वप्राकार परिस्तवे ।।२७।।
निशार्णगोमयैश्च वेदिका च प्रलेपयेत् ।
स्वर्णरत्नमयैस्तोयैरभिषिचेत् कुशोदके ।।२८।।

प्रथम मे मुष्टि हस्त होना चाहिए जबकि शेष मान वालो के द्वारा सम्पूर्ण हो जाये । नव लाभ मे पद्माब्ज और करत्रय उदाहृत किया गया है ।।२३।। और शेष वरिष्ठा, लवली भित्ति वेदिका जाननी चाहिए । हे द्विज शार्दूलो ! इनको यथा काम्यों मे योजित करना चाहिए ।।२४।। अयथा व्यत्यय म दोष होता है अतएव बड यत्न के साथ साधन करना चाहिए । दशहस्त मे आठ हस्त मे और अष्टहस्त में षोडश का साधन करे ।।२५।। मुष्टिग्राह को और प्रादेश को षोडशांश मे वर्धित करना चाहिए । एक हाथ उत्सेध करना चाहिए । जो हीन हो तो उसमें हीन को ह्रासित करे ।।२६।। शांति कर्म

वाले याग में दर्पण कारक करना चाहिए। परिस्तव में वप्राकार प्रयत्न से हीन करना चाहिए ॥२७॥ निशारण और गोमय से वेदिका का प्रलेपन कराना चाहिए। स्वर्णरत्न से परिपूर्ण कुशोदक जल से अभियोचन करे ॥२८॥

हीनवीर्यगवाना च पुरीष धेनुक तथा।
कपिलायाश्च यत्नेन कुडमडललेपने ॥२९॥
वर्जयेत्सर्वयागेषु स्थडिलेषु प्रयत्नत.।
विना सूत्रै. कीलके म मडले नैव सूत्रयेत् ॥३०॥
तस्मात्प्रयत्नत. कार्यं यत्सूत्र यच्च कीलकम्।
अर्कहस्तमित सूत्र मृदु लाक्षामय तथा ॥३१॥
पीतकार्यसज चैव कीलक स्वर्णनिर्मितम्।
रौप्यताम्रमय कुर्याद्वैष्णवे यागकर्मणि ॥३२॥
गणनायके सुप्रशस्त शंखेपामार्गमेव च।
ग्रहपक्षे तथेशस्य कच्छपस्य द्विजोत्तमा. ॥३३॥
षोडशे चार्कहस्ते च तत्र नेमियुत भवेत् ॥३४॥

कुण्ड के मडल के लेपन करने के कार्य में हीन वीर्य गौओं के पुरीष (गोबर) को तथा धेनुक और कपिला के पुरीष को यत्न पूर्वक ग्रहण करना चाहिए ॥२९॥ समस्त यागो में स्थण्डिलो में प्रयत्न पूर्वक वर्जित कर देना चाहिए कीलक में सूत्रो के बिना न करे और मण्डल में सूत्रपन न करे ॥३०॥ इसलिए जो सूत्र हो और जो कीलक हो उसे प्रयत्न पूर्वक करना चाहिए। सूत्र अर्क (बारह) हाथ मित हो तथा लाक्षामय मृदु होना चाहिए ॥३१॥ वैष्णव याग कर्म में कीलक पीत काय सज, स्वर्ण निर्मित तथा रौप्य ताम्रमय करना चाहिए ॥३२॥ गणनायक म शंख और अपामार्ग ही प्रशस्त होता है। हे द्विजोत्तमा ! ग्रह पक्ष में ईश का, कच्छप का प्रशस्त है। षोडश में और अर्क हस्त में वहाँ नेमियुत होना चाहिए ॥३३॥३४॥

॥ मध्यम पर्व समाप्त ॥

भविष्य पुराण

प्रतिसर्गपर्व

★

॥ सुदर्शनान्तनरपतिराज्यकालवृत्तान्त ॥

भविष्याख्ये महाकल्पे ब्रह्मायुषि परार्द्धके ।
प्रथमेऽब्देह्नि तृतीये प्राप्ते वैवस्वतेऽन्तरे ॥१॥
अष्टाविंशे सत्ययुगे के राजानोऽभवन्मुने ।
तेषां राज्यस्य वर्षाणि तन्मे वद विचक्षण ॥२॥
कल्पाख्ये श्वेतवाराहे ब्रह्माब्दस्य दिनत्रये ।
प्राप्ते सप्तमुहूर्ते च मनुर्वैवस्वतोऽभवत् ॥३॥
स तप्त्वा सरयूतीरे तपो दिव्य शत समा ।
तच्छिक्कातोऽभवत्पुत्र इक्ष्वाकु स महीपति ॥४॥
ब्रह्मणो वरदानेन दिव्य यान स आप्तवान् ।
नारायण पूजयित्वा हरौ राज्य निवेद्य च ॥५॥
षट्त्रिंशच्च सहस्राणामब्द राज्य सदाऽकरोत् ।
तस्माज्जातो विकुक्षिश्च शतहीन तदब्दकम् ॥६॥
राज्य कृत्वा दिव यातस्तस्माज्जातो रिपुंजय ।
शतहीन कृत राज्य तत्ककुत्स्थसुत स्मृत ॥७॥

इस अध्याय में मङ्गलाचरण के साथ प्रश्न करने पर सूत जी के द्वारा सुदर्शनान्त नरपति राज्य काल का वृत्तान्त वर्णित किया गया है। शौनक जी ने कहा—भविष्य नामक महाकल्प में ब्रह्मा की आयु के परार्द्ध में प्रथम वर्ष

के दिन मे तृतीय वैवस्वत के अन्तर मे अट्ठाईसवें सत्ययुग मे कौन राजा हुए ? हे मुने ! हे विचक्षण ! उनके राज्य के वर्षों को मुझसे कहो ॥१॥२॥ श्री सूत जी ने कहा — श्वेत वाराह नामक कल्प मे ब्रह्मा जी के वर्ष के तीन दिन मे सप्त मुहूर्त के प्राप्त होने पर वैवस्वत मनु हुए थे ॥३॥ उस वैवस्वत मनु ने सरयू नदी के तट पर दिव्य तप करके जोकि सौ वर्ष तक तपस्या की थी, उसकी तपस्या के प्रभाव से उसको इक्ष्वाकु महीपति पुत्र हुआ था ॥४॥ उस इक्ष्वाकु राजा ने ब्रह्मा जी के वरदान से एक परम दिव्य यान प्राप्त किया था। उस राजा ने नारायण का पूजन करके हरि के लिये राज्य को समर्पित करते हुए छत्तीस हजार वर्ष तक उस समय मे राज्य किया था। उससे विकुक्षि नामक पुत्र उत्पन्न हुआ था। उसने भी पिता के शासन काल से एकसौ वर्ष कम राज्य किया था और फिर वह स्वर्ग लोक मे चला गया था। उससे रिपुञ्जय उत्पन्न हुआ। इसने भी शतहीन राज्य किया था। इसका पुत्र ककुत्स्थ कहा गया है ॥५॥६॥७॥

शतहीनं कृतं राज्यं ततोऽनेनांस आत्मजः ।
शतहीन कृत राज्यं तस्माज्जातो नृप पृथुः ॥८॥
शतहीनं कृत राज्यं विष्वगश्वश्च तत्सुतः ।
शतहीनं कृतं राज्यं तस्मादार्द्रो नृपोऽभवत् ॥९॥
शतहीनं कृत राज्य भद्राश्वस्तत्सुतोऽभवत् ।
शतहीनं कृतं राज्यं युवनाश्वस्तु तत्सुतः ॥१०॥
शतहीनं कृतं राज्यं श्रवस्थस्तत्सुतोऽभवत् ।
सत्यपादश्च संजातः प्रथमो भारतेऽन्तरे ॥११॥
उदयादस्तपर्यंत तेनृपभूमिमंडलम् ।
भुक्त नीतिपरैर्देवैः श्रवस्थेन सु भूतले ।
शतहीनं कृत राज्यं वृहदश्वस्ततोऽभवत् ॥१२॥
शतहीनं कृतं राज्यं तस्मात्कुवलयाश्वकः ।
शतहीनं कृतं राज्यं दृढाश्वस्तत्सुतोऽभवत् ॥१३॥

सहस्रहीन राज्य तत्तस्मात्पुत्रो निकुम्भक ।
सहस्रहीन राज्य तत्सकटाश्वस्तु तत्सुत ॥१४॥

इसने शतहीन राज्य किया फिर इससे ओस आत्मज ने जन्म ग्रहण किया था। इसका राज्य काल एक शतहीन रहा था। उससे पृथु नृप उत्पन्न हुआ था। इसने भी शतहीन राज्य किया था। इसका पुत्र विश्वगश्व हुआ और उसने शतहीन राज्य किया था। उससे आर्द्र नाम वाला सुत समुद्भूत हुआ था ॥८॥९॥ इसने शतहीन राज्य किया था। इसका पुत्र भद्राश्व हुआ था। इसने भी शतहीन राज्य किया था। इसका पुत्र युवनाश्व हुआ था ॥१०॥ इसका शासन काल भी एक सौ वर्ष कम पिता से हुआ था। इसका पुत्र श्रवस्य हुआ था और सत्यपाद उत्पन्न हुआ था जो कि भारत अन्तर मे प्रथम था ॥११॥ इन राजाओं ने उदय से अस्त पर्यन्त नीतिपरायण होकर इस भूमण्डल का भोग किया था। श्रवस्य ने तो भूतल मे शतहीन राज्य किया था। इससे फिर वृहदश्व उत्पन्न हुआ था जिसने शतहीन शासन किया था। उस वृहदश्व से कुवलयाश्वक का जन्म हुआ था। इसने भी शतहीन राज्य किया था। कुवलयाश्वक का पुत्र दृढाश्व हुआ था। इसने अपने पिता से एक सहस्र वर्ष कम राज्य किया था। इसका पुत्र निकुम्भक हुआ था। इसने भी सहस्रहीन राज्य किया था। इसका पुत्र सकटाश्व समुत्पन्न हुआ था ॥१२॥१३॥१४॥

सहस्रहीन राज्य तत्तस्माज्जात प्रसेनजित् ।
सहस्रहीन राज्य तद्रवणाश्वस्तु तत्सुत ॥१५॥
सहस्रहीन राज्य तन्माधाता तत्सुतोऽभवत् ।
शतहीन कृत राज्य पुरुकुत्सस्तु तत्सुत ॥१६॥
शतहीन कृत राज्य त्रिशदश्वस्तु तत्सुत ।
रथे यस्य स्मृता वाहा वाजिनस्त्रिशतो वरा ॥१७॥
अनरण्यस्ततो जातो ह्यष्टाविंशत्सहस्रकम् ।
राज्य द्वितीयचरणे स्मृत सत्ययुगस्य वै ॥१८॥
पृषदश्वस्ततो जातो राज्य पञ्चसहस्रकम् ।
तदब्द भूतले कृत्वा पितृलोकमुपाययौ ॥१९॥

हर्यश्वस्तु ततो जातो विष्णुभक्तकुले नृपः ।
सहस्रहीनं राज्यं तत्सुतो वसुमान्स्मृतः ॥२०॥
सहस्रहीनं राज्यं तत्रिधन्वा तनयस्ततः ।
सहस्रहीनं राज्यं तत्तेन राज्ञा च सत्कृतम् ॥२१॥

सकटाश्व ने सहस्रहीन राज्य किया था और प्रसेनजित् नामक पुत्र को जन्म दिया था। इसका राज्य काल सहस्रहीन था। इसका पुत्र तद्रवणाश्व हुआ था। इसने सहस्रहीन राज्य किया था। इसका पुत्र मान्धाता नाम वाला राजा हुआ था। इसने शतहीन राज्य का उपभोग किया था। इसका पुत्र पुरुकुत्स हुआ था। इसने शतहीन शासन किया था। इसका पुत्र त्रिशदश्व हुआ था जिसके रथ मे तीन बहुत श्रेष्ठ अश्व वहन करने वाले थे ॥१५॥१६॥१७॥ उससे फिर अनरण्य उत्पन्न हुआ था जिसका राज्य अट्ठाईस सहस्र वर्ष तक रहा था। यह सत्ययुग के द्वितीय चरण मे कहा गया है ॥१८॥ इसके पश्चात् उससे पृषदश्व ने जन्म ग्रहण किया था जिसके राज्य का कार्य काल छै सहस्र वर्ष था। यह इस भूतल मे राज्य का शासन करके फिर पितृ लोक मे चला गया था ॥१९॥ उससे फिर हर्यश्व समुत्पन्न हुआ था जोकि नृप विष्णु के भक्तो के कुल मे हुआ था। उसने सहस्रहीन राज्य किया था। उसका पुत्र वसुमान कहा गया है ॥२०॥ वसुमान का राज्य काल भी सहस्रहीन था। इससे तत्रिधन्वा पुत्र हुआ था। इसका राज्यशासन का समय सहस्रहीन था। उस राजा ने सत्कृत किया था ॥२१॥

सत्यपादः समाप्तोऽयं द्वितीयो भारतेऽन्तरे ।
त्रिधन्वनश्च नृपतेस्त्रय्यारुण्यस्तु वै सुतः ॥२२॥
सहस्रहीनं राज्यं तत्कृत्वा स्वर्गमुपाययौ ।
तस्माज्जातस्त्रिशंकुश्च राज्यं वर्षसहस्रकम् ॥२३॥
छद्मना हीनतां जातो हरिश्चन्द्रस्तु तत्सुतः ।
राज्य विंशत्सहस्रं च रोहितो नाम तत्सुतः ॥२४॥
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं हारीतस्तनयोऽभवत् ।
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं चंचुभूपश्च तत्सुतः ॥२५॥

पितुस्तुल्य हि राज्य तद्विजयो नाम तत्सुत ।
पितुस्तुल्य हि राज्य तद्रु रुक्स्तनयस्तत ॥२६॥
पितुस्तुल्य कृत राज्य सगरस्तनयोऽभवत् ।
भूपाश्च वाहुसेनान्ता वैष्णवा. परिकीर्तिता ॥२७॥

भारत अतर मे यह द्वितीय सत्य पाद समाप्त हुआ त्रिधन्वा राजा का पुत्र त्रयारण्य हुआ था ॥२२॥ यह भी सहस्रहीन राज्य करके अन्त मे स्वर्ग को चला गया था । उससे फिर त्रिशकु समुत्पन्न हुआ था जिसका राज्य काल एक सहस्र वर्ष हुआ था ॥२३॥ यह क्रम से हीनता को प्राप्त हुआ था । इसका पुत्र हरिश्चन्द्र हुआ था जिसने बीस सहस्र वर्ष तक राज्य का उपभोग किया था । इसके पुत्र का नाम रोहित हुआ था इसने भी अपने पिता के समान ही राज्य किया था । इसके पुत्र का नाम हारीत था । इसका राज्य काल पिता के ही तुल्य रहा था । इसके पुत्र का नाम चचुभूप हुआ था । पिता के बराबर इसका राज्य रहा था । इसके पुत्र का नाम विजय था जोकि पितृ तुल्य राज्य करने वाला हुआ । इसके पुत्र तद्रूरुक हुआ था । इसका भी राज्य काल पिता के ही समान रहा था । उसका पुत्र सगर हुआ था । बाहु सेना के अन्त तक होने वाले भूप समस्त वैष्णव कहे गये हैं ॥२४॥२५॥२६॥२७॥

राज्यमान कृत सम्यग्भूपैर्वैवस्वतादिभि. ।
मणिस्वर्णसमृद्धिश्च वह्वन्न वहुदुग्धकम् ॥२८॥
पूर्णो धर्मस्तदा भूम्या मुने सत्ययुगस्य वै ।
तृतीयचरणे मध्ये सगरो नाम भूपति ॥२९॥
शिवभक्त सदाचारस्तत्पुत्रा सागरा स्मृता ।
त्रिशतसहस्रवर्षं तद्राज्य वै मुनिभि स्मृतम् ॥३०॥
नष्टेपु सागरेष्वेवमसमञ्जस आत्मज ।
शतहीन कृत राज्यमशुमास्तत्सुतोऽभवत् ॥३१॥
शतहीन कृत राज्य दिलीपस्तत्सुतोऽभवत् ।
शतहीन कृत राज्य तस्माज्जातो भागीरथ ॥३२॥

शतहीन कृत राज्य श्रुतसेनस्ततोऽभवत् ।
शतहीन कृत राज्य नाभागस्तनयस्तत ॥३३॥
शतहीन कृत राज्यमम्वरीपस्ततोऽभवत् ।
शैवा पट्ट श्रुतसेनान्ता नाभागोवैष्णवो नृप ॥३४॥
सत्यपाद समाप्तोऽय तृतीयो भारतेंतरे ।
अवरीपेण भूपेन शतहीन कृत पदम् ॥३५॥
चतुर्थे चरण तस्य चाष्टादश सहस्रकम् ।
अब्द राज्य शुभ ज्ञात कर्मभूम्या च भारते ॥३६॥
एकोनत्रिंशद्वर्षाणि राज्य तत्रिशतानि च ।
शतहीन कृत राज्य सिंधुद्वीपोऽम्वरीपज ॥३७॥

वैवस्वत आदि राजाओ ने भली भाँति राज्य मान लिया था। उस समय उनके राज्य मे मणि, स्वर्ण की समृद्धि थी। बहुत अधिक धन अत्यधिक दूध पूर्ण धम उस समय मे भूमि मे था। हे मुने! सत्य युग के तृतीय चरण मे मध्य में सगर नामधारी राजा हुआ था ॥२८॥२९॥ वह राजा सगर शिव का परम भक्त और सदाचार वाला था। उसके पुत्र सब सागर इस नाम से प्रसिद्ध हुए थे। उनका राज्य मुनियो ने तीस सहस्र वर्ष तक बताया है ॥३०॥ सागरो के नष्ट हो जाने पर असमञ्जस पुत्र हुआ था। इसने शतहीन राज्य किया था और इसका पुत्र अंशुमान नाम वाला हुआ था ॥३१॥ इसका राज्यकाल शतहीन रहा था। इसके पुत्र का नाम दिलीप राजा हुआ। इसने भी शतहीन राज्य किया था। इससे फिर भगीरथ ने जन्म ग्रहण किया था। इसका राज्य शतहीन हुआ। इसके पुत्र का नाम श्रुतसेन हुआ था। इसने शत कम राज्य किया था। इसके नाभाग नाम वाला पुत्र उत्पन्न हुआ था ॥३२॥३३॥ इसका राज्य काल शतहीन था। इसके पुत्र का नाम अम्बरीष हुआ था। श्रुतसेन के अन्त तक यह छै राजा शैव थे केवल नाभाग नृप ही एक विष्णु का भक्त वैष्णव हुआ था ॥३४॥ भारतेऽन्तर मे यह तृतीय सत्य युग का पाद समाप्त हो गया। राजा अम्बरीष ने शतहीन पद किया था ॥३५॥ चतुर्थ चरण मे उसका अठारह

सहस्र वर्ष तक शुभ राज्य इस भारत मे कर्म भूमि मे जाना गया है ॥३६॥ तीनसौ उनतीस वर्ष तक राज्य हुआ था। अम्बरीप के पुन सिन्धुद्वीप ने शत ही। राज्य किया था ॥३७॥

शतहीन कृत राज्यमय ताश्वरसतोऽभवत् ।
शतहीन कृत राज्यमृतुपर्णस्तु तत्सुत ॥३८॥
शतहीन कृत राज्य सर्वकामो नृपस्तत ।
शतहीन कृत राज्य नृप कल्माषपादक ॥३९॥
शतहीन कृत राज्य सुदासस्तनयोऽभवत् ।
तस्मादशमकश्चैव मदयन्त्या वशिष्ठज ॥४०॥
शतहीन कृत राज्य हरिवर्मा ततोऽभवत् ।
सप्त भूपा सुदासान्ता वैष्णवा परिकीर्तिता ॥४१॥
गुरुशापात्तु सौदासो राज्याङ्ग गुरवेऽर्पयत् ।
गोकर्णलिगभक्तश्च शैव समय उच्यते ॥४२॥

इसके पश्चात् उसके पुत्र अयुताश्व ने शतहीन राज्य किया था। इसके पुत्र ऋतुपर्ण नामधारी हुआ था जिसने शतहीन राज्य किया। इसके सर्वकाम नामक नृप हुआ। इसका राज्य काल शतहीन था। फिर कल्माष पादक राजा हुआ इसने शतहीन राज्य शासन किया और इसके पुत्र सुदास हुआ था। उसके अदशमक मदयन्ती से वशिष्ठ के द्वारा ज म ग्रहण करने वाला हुआ था। इसने शतहीन राज्य किया। इसके बाद हरिवर्मा समुत्पन्न हुआ था। ये सुदास के अन्त तक सात भूप वैष्णव कहे गये है। सौदास ने गुरु के शाप से राज्याङ्ग को गुरु जी के लिये समर्पित कर दिया था। गोकर्णलिङ्ग का भक्त था और उस समय शैव कहा जाता था ॥३८॥३९॥४०॥४१॥४२॥

हरिवर्मा शमकजो वैश्यवत्साधुपूजव ।
ऊनत्रिंशतसहस्राणि तथा सप्तशतानि वै ॥४३॥
हरिवर्माऽकरोद्राज्य तस्माद्दशरथोऽभवत् ।
पितुस्तुल्य कृत राज्य तस्माद्दिलीपयस्सुत ॥४४॥

पितुस्तुल्य कृत राज्य भूपो विश्वासहस्तत ।
राज्य दशसहस्र तन्नियज्ञ प्राकृतो नृप ॥४५॥
तदधर्मप्रतापेन ह्यनावृष्टिस्तदाऽभवत् ।
शतवर्षमना वृष्टिस्सर्वंराज्य व्यनाशयत् ॥४६॥
यज्ञ कृत्वा वशिष्ठस्तु राज्ञीवचनतत्पर ।
यज्ञात्खट्वाग उत्पन्न खट्वाग शस्त्रमुद्वहन् ॥४७॥
इन्द्रसाहाय्यमगमद्राज्य त्रिंशत्सहस्रकम् ।
कृत्वा तत्र वर लब्ध्वा देवेभ्यो मुक्तिता गत ॥४८॥
खट्वागाद्दीर्घबाहुश्च राज्य विंश सहस्रकम् ।
तस्मात्सुदर्शनो जातो देवीपूजनतत्पर ॥४६॥

हरि वर्मा शमकज था और वैश्य की भाँति साधु पूजक हुआ था। हरिवर्मा ने उनतीस सहस्र सात सौ वर्ष तक राज्य का उपभोग किया था। इससे फिर दशरथ उत्पन्न हुआ था। इसने भी अपने पिता के ही तुल्य राज्य किया था। इसके दिल्लीवय पुत्र उत्पन्न हुआ था ॥४३॥४४॥ इसका राज्यकाल भी पिता के बराबर ही हुआ था। इससे विश्वासह समुत्पन्न हुआ था जिसने दश सहस्र वर्ष पर्यन्त राज्य किया था। तन्नियज्ञ प्राकृत नृप था ॥४५॥ उसके अधर्म के प्रताप से उस समय में बड़ी भारी अनावृष्टि हुई थी। एक सौ वर्ष तक वृष्टि का सवथा अभाव रहा था जिसके कारण से समस्त राज्य विनष्ट हो गया था ॥४६॥ वशिष्ठ मुनि ने राज्ञी के वचन मे तत्पर होकर यज्ञ किया था। उस यज्ञ से खटवाङ्ग समुत्पन्न हुआ जोकि खटवाङ्ग शस्त्र को धारण किये था ॥४७॥ तीस सहस्र वर्ष तक राज्य इन्द्र की सहायता में चला गया था। वहाँ पर वरदान प्राप्त करके देवों से मुक्ति को प्राप्त हुआ था ॥४८॥ खटवाङ्ग से दीर्घ बाहु हुआ जिसने बीस सहस्र वर्ष तक राज्य किया था। उससे फिर सुदर्शन नामक उत्पन्न हुआ था जो देवी के पजनार्चन मे तत्पर रहता था ॥४६॥

वैष्णवा दाशरथ्य तास्त्रयो विख्यातसद्बला ।
खट्वागो दीर्घबाहुश्च वैष्णवौ परिकीर्तितौ ॥५०॥

सुदर्शनो महाप्राज्ञः काशीराजसुतः नृपः ।
उद्वह्य भूपतीञ्जित्वा देवीसेवाप्रसादतः ॥५१॥
राज्य भारतखण्डान्त मदधर्द्धर्मतो नृप. ।
वर्षपञ्चसहस्राणि राज्यं चक्रे स भूपतिः ॥५२॥
स्वप्नमध्ये वचः प्रोक्त महाकाल्या नृपाय वै ।
वत्स त्व प्रियया सार्द्धं वशिष्ठादिभिरन्वित. ॥५३॥
हिमालय गिरिं प्राप्य वास कुरु महामते ।
महावायुप्रभावेन क्षयो भरतखडके ॥५४॥
रत्नाकर. पश्चिमोऽब्धिस्तस्य द्वीपा क्षय गताः ।
महोदधिः पूर्वतोऽब्धिस्तस्य द्वीपाः क्षय गताः ॥५५॥
वाडवोऽब्धिर्दक्षिणे च तस्य द्वीपा. क्षय गता. ।
हिमाब्धिरुत्तरे तस्य सगरैः खनितो हि सः ॥५६॥

दाशरथि के अन्त तक तीन वैष्णव और विख्यात वात्सल्य वाले राजा हुए थे। खट्वाङ्ग और दीर्घ बाहु भी वैष्णव कहे गये हैं ॥५०॥ सुदर्शन महान पण्डित था जोकि काशी राजका सुत नृप था। भूपतियों को जीतकर देवी की सेवा के प्रसाद से विजय प्राप्त की थी ॥५१॥ इस नृप ने भरतखण्ड में पूर्ण धर्म से राज्य किया था। इस राजा का राज्य काल पाँच हजार वर्ष तक रहा था ॥५२॥ महाकाली ने स्वप्नके मध्य मे राजा से ये वचन कहे थे कि हे वत्स ! हे महामतिवाले ! तू अपनी प्रिया के साथ वशिष्ठ आदि से अन्वित होकर हिमाचल पर्वत पर चला जा और वहाँ अपना निवास कर। महान वायु का एक ऐसा प्रभाव होगा कि इस भरत खण्ड का विनाश हो जायगा ॥५३॥५४॥ इसका रत्नाकर पश्चिम सागर है उसके समस्त द्वीप क्षीण हो गये हैं। महोदधि पूर्व सागर है उसके द्वीप भी क्षय को प्राप्त हो गये है। दक्षिण मे वाडव अब्धि है उसके द्वीप क्षय को प्राप्त हो चुके है। हिमाब्धि उत्तर मे है उसे सगर ने खनित है ॥५५॥५६॥

ये द्वीपास्तु सुविख्यातास्तेऽपि सर्वे क्षय गताः ।
भारतो वर्ष एवासौ वत्सरे सप्तमेऽहनि ॥५७॥

सजीव प्रलय यायात्तस्मात्त्व जीवितो भव ।
तथेति मत्वा स नृप पर्वत वै हिमालयम् ॥५८॥
प्राप्तवान्मुख्यभूपैश्च मुख्यवैश्यैर्द्विजै सह ।
पञ्चवर्ष प्रमाणेन वायुस्तेज क्रमाज्जलम् ॥५६॥
शर्करा च मही प्राप्तास्ततो जीवा क्षय गता ।
पञ्चवर्षमिते काले जल जाता वसुन्धरा ॥६०॥
शान्तो भूत्वा पुनर्वायुर्जल सर्वमशोषयत् ।
दशवर्षान्तरे भूमि स्थली भूत्वा प्रदृश्यते ॥६१॥

जितने भी प्रसिद्ध द्वीप है वे सब क्षय को प्राप्त हो चुके है। भारतवर्ष ही यह है जो सातवें वर्ष मे दिन मे सजीव प्रलय को प्राप्त होगा। इससे तू जीवित रह। इस महाकाली के वचन को स्वीकार करके वह राजा हिमाचल पर्वत पर चला गया था। उसके साथ मुख्य भूप थे, प्रमुख वैश्य थे और प्रधान द्विज भी चले गये थे। पाँच वर्ष के प्रमाण से वायु तेज, जल क्रम से शर्करा मही को प्राप्त हुई और इसके अन्तर समस्त जीव क्षय को प्राप्त हो गये थे। पाँच वर्षमित काल में इस वसुन्धरा पर जलही हो गया था। फिर वायु शान्त होकर उसने समस्त जल का शोषण कर लिया था। इस तरह दश वर्ष के अन्तर में यह भूमि स्थली होकर दिखाई देती है ॥५७॥५८॥५६॥६०॥६१॥



॥ त्रेतायुगीयभूपवृत्तान्तवर्णनम् ॥

वैशाखशुक्लपक्षे तु तृतीयागुरुवासरे ।
सुदर्शनो जनै सार्द्धमयोध्यामगमत्पुन ॥१॥
मायादेवीप्रभावेण पुर सर्वं मनोहरम् ।
महद्वृद्धियुत प्रात ब्रह्मश्च सर्वरत्नकम् ॥२॥
दशवर्ष सहस्राणि राज्य कृत्वा सुदर्शन ।
प्राप्तवाञ्छाश्वत लोक दिलीपस्तत्सुतोऽभवत् ॥३॥

नन्दिनीवरदानेन तत्पुत्रो रघुरुत्तम ।
दशवर्षसहस्राणि दिलीपो राज्यसत्कृत ॥४॥
राज्य कृत च रघुणा दिलीपान्ते पितुस्समम् ।
रघुवशस्तत ख्यातस्त्रेताया भृगुनन्दन ॥५॥
विप्रस्य वरदानेन तत्पुत्रोऽज इति स्मृत ।
पितुस्तुल्य कृत राज्य तस्माद्दशरथोऽभवत् ॥६॥
पितुस्तुल्य कृत राज्य तस्माद्रामो हरि स्वयम् ।
एकादश सहस्राणि रामराज्य प्रकीर्तितम् ॥७॥

इस अध्याय में त्रेतायुग के भूपो का वृत्तान्त वर्णित किया जाता है। सूत जी ने कहा-वैशाख मास के शुक्ल पक्ष मे तृतीया तिथि के दिन जबकि गुरुवार था सुदर्शन जनो के साथ फिर अयोध्या को गये थे ॥१॥ माया देवी के प्रसाद के प्रभाव से समस्त नगर परम मनोहर हो गया था जिसमे महान् ऋद्धिभरी हुई थी, बहुत अधिक धन से सम्पन्न था और सब प्रकार के रत्नो से परिपूर्ण हो रहा था ॥२॥ दश सहस्र वर्ष तक सुदर्शन ने यहाँ राज्य करके अन्त में शाश्वत लोक को वह प्राप्त हो गये थे। उसके दिलीप नामक पुत्र हुआ था ॥३॥ नन्दिनी गौ के वरदान प्राप्त करने से दिलीप के उत्तम पुत्र रघु नाम धारी हुआ था। दशसहस्र वर्ष तक दिलीप ने राज्य किया था ॥४॥ दिलीप के अन्त हो जाने पर रघु नृप ने पिता के समान ही राज्य के सुखो का उपभोग किया था। हे भृगुनन्दन ! तब से ही त्रेता म यह रघुवश प्रख्यात हुआ था ॥५॥ विप्र के वरदान से रघु नृपति के अज नामक पुत्र समुत्पन्न हुआ था। इसने भी अपने पिता के तुल्य ही राज्य का आनन्द प्राप्त किया था। इसके दशरथ नामक पुत्र का जन्म हुआ था। इस दशरथ नृप ने पिता के समान ही राज्य भोगा था। फिर महाराज दशरथ के श्री राम पुत्र रूप मे अवतीर्ण हुए जो कि स्वयं भगवान् हरि ही थे। एकादश सहस्र वर्ष तक श्री राम का राज्य काम कहा गया है ॥६॥७॥

तस्य पुत्र कुशो नाम राज्य दशसहस्रकम् ।
अतिथिर्नाम तत्पुत्र कृत राज्य पितु समम् ॥८॥

निबन्धो नाम तत्पुत्र. कृतं राज्यं पितुस्समम् ।
तस्माज्जातो नलो नाम त्रेतायां शक्तिपूजकः ॥६॥
पिस्तुतुल्यं कृतं राज्यं तस्मान्नाभः सुतोऽभवेत् ।
पितुस्तुल्यं कृतं राज्य पुंडरीकः सुतोऽभवत् ॥१०॥
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं क्षेमधन्वा तु तत्सुतः ।
पितुस्तुल्यं कृत राज्य द्वारको नाम तत्सुतः ॥११॥
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं तस्माज्जातो ह्यहीनज. ।
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं करुर्नाम सुतस्ततः ॥१२॥
कुरुक्षेत्र कृतं तेन त्रेताया शतयोजनम् ।
त्रेतापादस्समाप्तोऽयं प्रथमो भारतेऽन्तरे ॥१३॥
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं पारियात्रः सुतोऽभवत् ।
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं दलपालस्सुत स्ततः ॥१४॥

उन भगवान दशरथि श्री राम के कुश नामधारी पुत्र हुए जिसने दश सहस्र वर्ष तक राज्य किया था। अतिथि नामक उसके पुत्र हुआ था। इसने अपने पिता के समान ही राज्य शासन किया था ॥८॥ उसके निबन्ध नामक पुत्र हुआ जोकि पिता के समान राज्य सुख भोक्ता हुआ है। इससे नल नाम वाला हुआ था जोकि त्रेता मे शक्ति की पूजा करने वाला हुआ था ॥६॥ इस नल ने पिता के तुल्य ही राज्य किया था। इसके नाभ पुत्र उत्पंन्न हुआ था। इसका राज्य काल पिता के समान ही था। उसका पुण्डरीक पुत्र हुआ था। यह भी पितृ तुल्य राज्य वाला हुआ ॥१०॥ क्षेम धेन्वा उसका आत्मज उत्पन्न हुआ जिसका राज्य भी पिता के समान था। इसके पुत्र द्वारक ने जन्म ग्रहण किया था जिसका राज्य पितृतुल्य था ॥११॥ द्वारक से अहीन पुत्र हुआ इसका राज्य भी पिता के समान ही था। करु नाम वाला उसका पुत्र हुआ था ॥१२॥ उसने त्रेता मे शत योजन वाला कुरु क्षेत्र किया था। भारत में अन्तर मे यह प्रथम त्रेता का चरण समाप्त हुआ ॥१३॥ इसने भी अपने पिता के समान ही राज्य शासन किया था। इसका पुत्र पारियात्र नामधारी समुत्पन्न

निबन्धो नाम तत्पुत्र कृत राज्य पितुस्समम् ।
तस्माज्जातो नलो नाम त्रेतायां शक्तिपूजक ॥६॥
पिस्तुतुल्य कृत राज्य तस्मान्नाभ सुतोऽभवेत् ।
पितुस्तुल्य कृत राज्य पु डरीक सुतोऽभवत् ॥१०॥
पितुस्तुल्य कृत राज्य क्षेमधन्वा तु तत्सुत ।
पितुस्तुल्य कृत राज्य द्वारको नाम तत्सुत ॥११॥
पितुस्तुल्य कृत राज्य तस्माज्जातो ह्यहीनज ।
पितुस्तुल्य कृत राज्य करूर्नाम सुतस्तत ॥१२॥
कुरुक्षेत्र कृत तेन त्रेतायां शतयोजनम् ।
त्रेतापादस्समाप्तोऽय प्रथमो भारतेऽन्तरे ॥१३॥
पितुस्तुल्य कृत राज्य पारियान सुतोऽभवत् ।
पितुस्तुल्य कृत राज्य दलपालस्सुत स्तत ॥१४॥

उन भगवान दशरथि श्री राम के कुश नामधारी पुत्र हुए जिसने दश सहस्र वर्ष तक राज्य किया था। अतिथि नामक उसके पुत्र हुआ था। इसने अपने पिता के समान ही राज्य शासन किया था ॥८॥ उसके निबन्ध नामक पुत्र हुआ जोकि पिता के समान राज्य सुख भोक्ता हुआ है। इससे नल नाम वाला हुआ था जोकि त्रेता में शक्ति की पूजा करने वाला हुआ था ॥६॥ इस नल ने पिता के तुल्य ही राज्य किया था। इसके नाभ पुत्र उत्पन्न हुआ था। इसका राज्य काल पिता के समान ही था। उसका पुण्डरीक पुत्र हुआ था। वह भी पितृ तुल्य राज्य वाला हुआ ॥१०॥ क्षेम धेन्वा उसका आत्मज उत्पन्न हुआ जिसका राज्य भी पिता के समान था। इसके पुत्र द्वारक ने जन्म गृहण किया था जिसका राज्य पितृतुल्य था ॥११॥ द्वारक से अहीन पुत्र हुआ इसका राज्य भी पिता के समान ही था। करू नाम वाला उसका पुत्र हुआ था ॥१२॥ उसने त्रेता में शत योजन वाला कुरुक्षेत्र किया था। भारत के अन्तर में यह प्रथम त्रेता का चरण समाप्त हुआ ॥१३॥ इसने भी अपने पिता के समान ही राज्य शासन किया था। इसका पुत्र पारियान नामधारी समुत्पन्न

हुआ था। उसका पितृ तुल्य राज्य रहा था। इसके पुत्र का नाम दलपाल हुआ था ॥१४॥

पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं छद्मकारी तु तत्सुतः ।
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं तस्मादुक्थः सुतोऽभवत् ॥१५॥
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं वज्रनाभिस्ततोऽभवत् ।
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं शङ्खनाभिस्ततोऽभवत् ॥१६॥
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं व्युत्थनाभिस्ततोऽभवत् ।
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं विश्वपालस्ततोऽभवत् ॥१७॥
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं स्वर्णनाभिस्तु तत्सुतः ।
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं पुष्पसेनस्तु तत्सुतः ॥१८॥
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं ध्रुवसंधिस्तु तत्सुतः ।
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यमपवर्मा तु तत्सुतः ॥१९॥
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं शीघ्रगन्ता तु तत्सुतः ।
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं मरुपालस्तु तत्सुतः ॥२०॥
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं प्रसूवश्रुत उच्यते ।
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं सुसंधिस्तनयोऽभवत् ।
त्रेतापादः समाप्तोऽयं प्रथमो भारतेंतरे ॥२१॥

दलपाल का राज्य पितृ तुल्य था। इसके पुत्र का नाम छद्मकारी हुआ था। छद्मकारी का उक्थ पुत्र हुआ। उक्थ का वज्रनाभि पुत्र हुआ। इसके शङ्खनाभि पुत्र हुआ। इसके व्युत्थनाभि पुत्र हुआ। इसके विश्वपाल पुत्र हुआ। इन सबका राज्य काल अपने अपने पिताओं के समान ही हुआ था ॥१५॥१६॥१७॥ इसके पुत्र स्वर्ण नाभि पुत्र उत्पन्न हुआ। स्वर्ण नाभि का पुत्र पुष्पसेन उत्पन्न हुआ। इसके पुत्र का नाम ध्रुव संधि था। इसका पुत्र अप वर्मा हुआ। इसके शीघ्रगन्ता पुत्र हुआ। उसके पुत्र का नाम मरुपाल हुआ जो कि प्रसूव श्रुत कहा जाता है। इसके पुत्र का नाम सुसंधि हुआ था। इन सबका राज्य काल भी पिताओं के तुल्य ही हुआ था। यह भारतेऽन्तर में प्रथम त्रेता पाद समाप्त हुआ था ॥१८॥१९॥२०॥२१॥

उदयादुदय यावद्राज्ञा तत्र सुसंधिना ।
पितुस्तुल्य कृत राज्य मामर्वस्तनयस्तत ॥२२॥
पितुस्तुल्य कृत राज्य महाऽश्वस्तनयोऽभवत् ।
पितुस्तुल्य कृत राज्य वृहद्वाल सुतस्तत ॥२३॥
पितुस्तुल्य कृत राज्य वृहदेशान एव तत् ।
पितुस्तुल्य कृत राज्य मुरुक्षेपस्ततोऽभवत् ॥२४॥
पितुस्तुल्य कृत राज्य वत्सपालस्तु तत्सुत ।
पितुस्तुल्य कृत राज्य वत्स व्यूहस्ततोऽभवत् ॥२५॥
पितुस्तुल्य कृत राज्य प्रतिव्योमा ततो नृप ।
पितुस्तुल्य कृत राज्य सुतो देवकरस्तत ॥२६॥
पितुस्तुल्य कृत राज्य सहदेवस्ततोऽभवत् ।
पितुस्तुल्य कृत राज्य बृहदश्वस्ततो नृप ॥२७॥
पितुस्तुल्य कृत राज्य भानुरत्नस्ततोऽभवत् ।
पितुस्तुल्य कृत राज्य सुप्रतीकस्ततोऽभवत् ॥२८॥

जहाँ तक उदय से उदय होता है वहाँ तक सुसन्धि राजा ने राज्य पिता के तुल्य ही किया था। इसके मामर्व पुत्र हुआ था। इसके महाश्व पुत्र हुआ था। महाश्व पुत्र का नाम वृहद्वाल था। इसके वृहदेशान हुआ। इसके मुरुक्षेप नामक पुत्र हुआ। इसके पुत्र का नाम वत्स पाल हुआ। इससे वत्स व्यूह नाम वाला पुत्र हुआ था। वत्स व्यूह से प्रति व्योमा पुत्र का जन्म हुआ था। ये सब अपने अपने पिताओ के समान ही राज्य करने वाले हुए थे। इनके देवकर हुआ जो पितृ तुल्य राज्य वाला था ॥२२॥२३॥२४॥२५॥२६॥ उनके पुत्र का नाम सहदेव हुआ था। सहदेव के वृहदश्व पुत्र हुआ था। इसके पुत्र का नाम भानुरत्न हुआ था। इससे सुप्रतीक नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। इन सबका राज्योपभोग अपने पिताओ के समान हुआ था ॥२७॥२८॥

पितुस्तुल्य कृत राज्य मरुदेवस्सुतस्तत ।
पितुस्तुल्य कृत राज्य सुनक्षत्रस्ततोऽभवत् ॥२९॥

पितुस्तुल्य कृत राज्य सुत केशीनरस्तत ।
पितुस्तुल्य कृत राज्यमन्तरिक्षस्ततो नृप ॥३०॥
पितुस्तुल्य कृत राज्य सुवर्णांगो नृपोऽभवत् ।
पितुस्तुल्य कृत राज्य तस्य पुत्रो ह्यमित्रजित् ॥३१॥
पितुस्तुल्य कृत राज्य बृहद्राजस्ततोऽभवत् ॥३२॥
पितुस्तुल्य कृत राज्य धर्मराजस्ततो नृप ।
पितुस्तुल्य कृत राज्य तस्माज्जात कृतञ्जय ॥३३॥
पितुस्तुल्य कृत राज्य तस्माज्जातो रणञ्जय ।
पितुस्तुल्य कृत राज्य सञ्जयस्तत्सुत स्मृत ॥३४॥
पितुस्तुल्य कृत राज्य तत्पुत्र शाक्यवर्धन ।
पितुस्तुल्य कृत राज्य क्रोधदानस्तु तत्सुत ॥३५॥

सुप्रतीक के पुत्र का नाम मरुदेव था। इससे सुनक्षत्र नामक पुत्र ने जन्म ग्रहण किया था। इसके केशीनर पुत्र हुआ। इसके पुत्र का नाम अन्तरिक्ष नृप हुआ था। इसके पश्चात् सुवर्णाङ्ग हुआ। सुवर्णाङ्ग के पुत्र का नाम अमित्रजित् था। इससे बृहद्राज उत्पन्न हुआ। बृहद्राज का पुत्र धर्मराज और धर्मराज से कृतञ्जय पुत्र हुए। कृतञ्जय के पुत्र का नाम रणञ्जय हुआ। इसके जो पुत्र उत्पन्न हुआ उसका नाम सञ्जय कहा गया था। इसके पुत्र का नाम शाक्य वर्धन था। इससे फिर क्रोध दान नाम के पुत्र की उत्पत्ति हुई थी। ये सभी अपने-अपने पिताओं के समान ही राज्यभोग करने वाले हुए हैं ॥२९॥३०॥ ३१॥३२॥३३॥३४॥३५॥

पितुस्तुल्य कृत राज्य तस्मादतुलविक्रम ।
पितुस्तुल्य कृत राज्य स्तस्माज्जात प्रसेनजित् ॥३६॥
पितुस्तुल्य कृत राज्य तत्पुत्र शूद्रक स्मृत ।
पितुस्तुल्य कृत राज्य सुरथस्तत्सुतोऽभवत् ॥३७॥
पितुरर्द्धं कृत राज्य सर्वे तु रघुवंशजा ।
पञ्चषष्टि मिता भूपा देवीपूजनतत्परा ॥३८॥

हिंसायज्ञपराः सव स्वर्गलोकमितो गता. ।
बुद्धा जाताश्च ये पुत्रास्ते सर्वे वर्णसंकराः ॥३९॥
त्रेतातृतीयचरणप्रारम्भेन नवता गताः ।
इन्द्रेण प्रेषितो भूमौ चन्द्रमा रोहिणीपतिः ॥४०॥
प्रयागनगरे रम्ये भूमिराज्यमचीकरत् ।
विष्णुभक्तश्चन्द्रमाश्च शिवपूजनतत्पर. ॥४१॥
मायादेवीप्रसन्नार्थे शत यज्ञमचीकरत् ।
अष्टादशसहस्राणि राज्यं कृत्वा दिव गतः ॥४२॥

क्रोधदान के अतुल विक्रम पुत्र का जन्म हुआ था जिसने पितृ तुल्य राज्य किया था। इससे प्रसेनजित् पुत्र हुआ, प्रसेनजित से शूद्रक की उत्पत्ति हुई इससे सुरथ ने जन्म ग्रहण किया। इन सबने पितृ तुल्य राज्यो के सुख का उपभोग किया था। समस्त रघुवंश मे उत्पन्न होने वालो ने पिता का आधा राज्य किया था। ये पैंसठ राजा हुए हैं जो पिता थे और देवी के पूजन करने मे तत्पर रहा करते थे ॥३६॥३७॥३८॥ ये सब हिंसा यज्ञो के परायण थे और सभी यहाँ से स्वर्ग लोक मे चले गये थे। जो पुत्र बुद्ध उत्पन्न हुए थे सब वर्ण सङ्कर थे ॥३९॥ त्रेता के तृतीय चरण के प्रारम्भ होने से ये नवीनता को प्राप्त हुए थे। इन्द्रदेव ने इस भूमण्डल मे रोहिणी पति चन्द्रमा को प्रेषित किया था ॥४०॥ उसने रम्य प्रयाग नगर में भूमि का राज्य किया था। चन्द्रमा विष्णु का भक्त और शिव की पूजा करने में सदा तत्पर रहा करता था ॥४१॥ इसने माया देवी की प्रसन्नता के लिये सौ यज्ञ किये थे। अठारह सहस्र वर्ष तक यहाँ पर राज्य सुख का अनुभव करके स्वर्ग लोक को गया था ॥४२॥

तस्य पुत्रो बुधो नाम मेरुदेवस्य वै सुत' ।
इलामुद्वाह्य धर्मेण तस्माज्जातः पुरूरवाः ॥४३॥
चतुर्दशसहस्राणि भूमिराज्यमचीकरत् ।
उर्वशी सोऽपि स्वर्वेश्या समये नैव भोग्यवान् ॥४४॥

आयुर्नाम सुतो जातो धर्मात्मा विष्णुतत्पर ।
षट्त्रिंशच्च सहस्राणि राज्य कृत्वा पुरूरवा ॥४५॥
गंधर्वलोक सप्राप्य मोदते दिवि देववत्।
पितुस्तुल्य कृत राज्यमायुषो नहुषस्सुत ॥४६॥
पितुस्तुल्य कृत राज्य तत शक्रत्वमागत ।
त्रिलोकी स्ववश चक्रे वर्षमेकसहस्रकम् ॥४७॥

इसके पुत्र का नाम बुध हुआ था जाकि मेरुदेव का पुत्र था। इसने इला से धर्म विधिके साथ विवाह किया था और उमसे पुरूरवा पुत्र उत्पन्न हुआ था ॥४३॥ इस पुरूरवा राजा ने चौदह सहस्र वर्ष तकराज्य किया था। उसने भी समय पर उर्वशी नाम वाली स्वर्ग की अप्सरा से भोग किया था ॥४४॥ इससे आयु नामधारी पुत्र समुत्पन्न हुआ था जोकि परम धर्मात्मा था और विष्णु भगवान की आराधना मे तत्पर रहा करता था। पुरूरवा छत्तीस हजार वर्ष तक राज्य करके फिर गन्धर्व लोक में पहुँचा और स्वग में देवो की भाति आनन्दोप भोग करता था। पितृतुल्य आयु ने राज्य किया। इसक नहुष नामक पुत्र ने जन्म ग्रहण किया था ॥४५॥४ ॥ इस राजा नहुष ने अपने के बराबर ही समय तक राज्य शासन किया और फिर इन्द्रत्व की पदवी प्राप्त की थी। एक सहस्र वर्ष पर्यन्त इसने त्रिलोकी को अपने वश में कर लिया था ॥४७॥

मुनेर्दुर्वासस शापान्नृपोऽजगरता गत ।
पञ्च पुत्रा ययातेश्च त्रयो म्लेच्छत्वमागता ॥४८॥
द्वौ तथार्यत्वमापन्नौ यदुर्ज्येष्ठ पुरुलघु ।
तपोबलप्रभावेण राज्य लक्षाब्दसमितम् ॥४९॥
कृत्वा विष्णुप्रसादेन ततो वैकुण्ठमागत ।
यदो पुत्र स्मृत क्रोष्टा राज्य षष्टिसहस्रकम् ॥५०॥
वृजिनघ्नस्सुतस्तस्माद्राज्य विंशत्सहस्रकम् ।
तस्मात्स्वाहार्चन पुत्र कृत राज्य पितुस्समम् ॥५१॥
तस्माच्चित्ररथ पुत्र कृत राज्य पितुस्समम् ।
अरविंदस्सुतस्तस्मात्कृत राज्य पितु समम् ॥५२॥

अथ श्रवास्ततो जातस्तेजस्वी विष्णुतत्पर ।
पितुरर्द्धं कृत राज्य तत्पुत्रस्तामस स्मृत ॥५३॥
पितुस्तुल्य कृत राज्य तस्मादुशनस्सुत ।
पितुस्तुल्य कृत राज्य शीताशुकनृपोऽभवत् ॥५४॥
पितुस्तुल्य कृत राज्य कमलाशुस्ततोऽभवत् ॥५५॥
पितुस्तुल्य कृत राज्य पारावतसुतस्तत ।
पितुस्तुल्य कृत राज्य जामघस्तत्सुतोऽभवत् ॥५६॥

महाक्रोधी दुर्वासा मुनि के शाप से नृप अजगर हो गया था । ययाति राजा के पाँच पुत्र थे उनमें तीन पुत्र म्लेच्छ हो गये थे ॥४८॥ दो शेष थे वे आर्यत्व को प्राप्त हुए । उनमें ज्येष्ठ यदु था और लघु पुरु था । तपस्या के बल प्रभाव से एक लाख वर्ष तक राज्य सुख भोगकर भगवान् विष्णु के प्रसाद से उसके पश्चात् वैकुण्ठ लोक चला गया था । यदु का पुत्र क्रोष्टा था जिसने साठ हजार वर्ष पर्यन्त राज्य किया था ॥४६॥५०॥ इसका पुत्र वृजिनघ्न हुआ । उसने बीस सहस्र वर्ष तक राज्य किया था । उससे स्वाहार्जिन नामक पुत्र हुआ जिसने अपने पिता के बराबर ही समय तक राज्य किया था ॥५१॥ इसका पुत्र चित्ररथ हुआ जिसने भी पितृ तुल्य राज्य किया था । इस चित्ररथ के यहाँ अरविन्द नामक पुत्र ने जन्म लिया था । इसने पिता के समान राज्य किया था ॥५२॥ इसके अनन्तर उससे श्रवा ने जन्म ग्रहण किया था जो बड़ा तेजस्वी और विष्णु की भक्ति में तत्पर रहा करता था । इसने पिता के समय से आधे समय तक राज्य किया था । इसका पुत्र तामस उत्पन्न हुआ था इसने पितृ तुल्य राज्य किया था । इससे उत्पन्न हुआ उशन के शीतांशुक नृप पुत्र रूप में हुआ था । शीतांशुक का पुत्र कमलांशु हुआ और फिर पारावत पुत्र हुआ इन सबने अपने पिता के समय के तुल्य ही राज्य सुख प्राप्त किया था । इसका पुत्र जामघ नामवाला उत्पन्न हुआ था ॥५३॥५४॥५५॥५६॥

पितुस्तुल्य कृत राज्य विदर्भस्तत्सुतोऽभवत् ।
पितुस्तुल्य कृत राज्य क्राथो नाम सुतस्तत ॥५७॥

पितुस्तुल्य कृत राज्य कुन्तिभोजस्तु तत्सुत ।
पुरुदैत्यसुतापुत्र पाताले वृषपर्वण ॥५८॥
उषित्वा नगरे तस्मिन्मायाविद्यस्ततोऽभवत् ।
प्रयागस्य प्रतिष्ठाने पुरे राज्यमथाकरोत् ॥५६॥
दशवर्षसहस्राणि राज्य कृत्वा दिव गत ।
देवीभक्त स नृपतिस्तत्पुत्रो जनयेजय ॥६०॥
पितुस्तुल्य कृत राज्य प्रचिन्वास्तत्सुतोऽभवत् ।
पितुस्तुल्य कृत राज्य प्रवीररस्तनयोऽभवत् ॥६१॥
पितुस्तुल्य कृत राज्य नभस्यस्तनयोऽभवत् ।
पितुस्तुल्य कृत राज्य भवदस्तत्सुतस्स्मृत ॥६२॥
पितुस्तुल्य कृत राज्य सुद्युम्नस्तनयोऽभवत् ।
पितुस्तुल्य कृत राज्य पुत्रो वाहुगर स्मृत ॥६३॥

इस जामघ ने भी पितृ तुल्य राज्य किया था । इसके जो पुत्र हुआ उसका नाम विदर्भ था और विदर्भ के क्राथ आत्मज उत्पन्न हुआ था। इन दोनो ने पिताओ के समान ही राज्य किया था । क्राथ का पुत्र कुन्तिभोज हुआ था । पुरु दैत्यसुता का पुत्र था । वृषपर्वा ने पाताल निवास कर लिया था । उस नगर में उसका पुत्र मायाविद्य हुआ था । इसने प्रयाग के प्रतिष्ठान पुर मे राज्य शासन किया था ॥५७॥५८॥५६॥ इसने दश सहस्र वर्ष पर्यन्त राज्य करके अन्त मे यह स्वर्ग लोक मे चला गया था । यह राजा देवी का परमभक्त हुआ है । इसका पुत्र जनयेजय हुआ था ॥६०॥ इसका राज्य काल भी पिता के समान ही था । इसका पुत्र प्रचिन्वान् हुआ था उसके प्रवीर हुआ और प्रवीर का पुत्र नभस्य उत्पन्न हुआ था फिर इसके भवद पुत्र हुआ, इन सब का राज्य करने का समय अपने अपने पिताओ के समान ही था। भवद का पुत्र सुद्युम्न नाम वाला नृपति हुआ था । इसने भी अपने पिता के समान ही राज्य किया था । इसके वाहुगर नामक पुत्र उत्पन्न हुआ था ॥६१॥६२॥६३॥

पितुस्तुल्य कृत राज्य सयातिस्तनयोऽभवत् ।
पितुस्तुल्य कृत राज्य धनयातिस्ततोऽभवत् ॥६४॥

पितुस्तुल्य कृत राज्यमैन्द्राश्वस्तनयोऽभवत् ।
पितुस्तुल्य कृत राज्य तस्माद्र तिनर सुत ॥६५॥
पितुस्तुल्य कृत राज्य तत्पुत्र सुतपा स्मृत ।
पितुस्तुल्य कृत राज्य सवरणस्तनयस्तत ॥६६॥
हिमालयगिरौ प्राप्ते तप क्तु मनो दधत् ।
शतवर्ष तत सूर्यस्तपती नाम कन्यकाम् ॥६७॥
सवरणाय ददौ तुष्टो रविलोक नृपो गत ।
ततो मायाप्रभावेन युग प्रलयमागतम् ॥६८॥
चत्वार सागरा वृद्धा भारत क्षयता गतम् ।
द्विवर्षे सागरे भूमिरुपित्वा भूधरैस्सह ॥६९॥
महावायुप्रभावेन सागरा शुष्कता गता ।
अगस्त्यतेजसा भूमि स्थलो भूत्वा प्रदृश्यते ॥७०॥
पञ्चवर्षान्तरे भूमिर्वृक्षदूर्वादिसयुता ।
सूर्याज्ञया च सवर्णस्तपत्या मुनिना सह ॥७१॥
वशिष्ठेन त्रिवर्णैश्च मुख्यै सार्द्ध समागत ॥७२॥

वायु के प्रभाव से ये सागर शुष्क हुए थे। अगस्त्य के तेज से यह भूमि शुष्क होकर दिखलाई देने लगी थी। पाँच वर्ष के अन्तर हो जाने पर यह समस्त भूमण्डल वृक्ष तथा दूब आदि से युक्त हुआ था। भगवान सूर्य की आज्ञा से सवरण तपनो को साथ में लेकर मुनि वशिष्ठ और प्रमुख त्रिवर्णों के साथ यहाँ आये थे ॥६९॥७०॥७१॥७२॥



॥ द्वापरयुगीयभूपवृत्तान्तवर्णनम् ॥

सवर्णश्च महीपाल कस्मिन्काले समागत ।
लोमहर्षण मे ब्रूहि द्वापरस्य नृपास्तथा ॥१॥
भाद्रस्य कृष्णपक्षे तु त्रयोदश्यां भृगौ दिने ।
सवर्णो मुनिभि सार्द्धं प्रतिष्ठाने समागत ॥२॥
प्रतिष्ठान कृत रम्य पञ्चयोजनमायतम् ।
अर्द्धक्रोशोनत हर्म्यं रचित विश्वकर्मणा ॥३॥
बुद्धिवशे प्रसेनस्य सत्ताया भूपति कृत ।
यदुवशे सात्वतश्च मधुराभूपति कृत ॥४॥
म्लेच्छवशे श्मश्रुपालो मरुदेशस्य भूपति ।
क्रमेण वर्द्धिता भूपा प्रजाभि सहिता भुवि ॥५॥
दशवर्षसहस्राणि सवर्णो भूपति स्मृत ।
तस्यात्मजोऽयमर्चाङ्ग कृत राज्य पितुस्समम् ॥६॥
तस्य पुत्र सूरिजापी पितुरर्द्ध च राज्यकृत् ।
सूर्ययज्ञस्तस्य पुत्र सौरयज्ञपरायण ॥७॥

इस अध्ययाय मे द्वापर युग के होने वाले भूपो के वृत्तान्त का वर्णन किया जाता है। शौनक मुनि ने कहा—हे लोमहर्षण ! वह सवरण राजा किस समय म आया था—यह बताइये और अब द्वापर युग के राजाओं के विषय मे

मुझे वर्णन करने की कृपा करें। सूतजी ने कहा— भाद्रपद मास के कृष्ण पक्ष में त्रयोदशी तिथि के दिन शुक्रवार में राजा सवर्ण मुनियों के साथ प्रतिष्ठान में आया था ॥१॥२॥ उस प्रतिष्ठान को पाँच योजन के विस्तार वाला परम सुन्दर बनाया था। विश्व कर्मा ने आधे कोश जितना ऊँचा हर्म्य बना दिया था ॥३॥ बुद्धि वश में प्रसेन को सत्ता का राजा किया गया था। यदुवश में सात्वत मथुरा का भूपति किया गया ॥४॥ म्लेच्छ वश से श्मश्रु पान मरु देश का राजा हुआ था। इस तरह क्रम से भूपगण इस भूमण्डल में क्रम से बढ़ते हुए चले गए थे और उनकी प्रजा भी साथ बढ़ती रही थी ॥५॥ दश सहस्र वर्ष तक सवर्ण राजा कहा गया था। उसका पुत्र अर्चाङ्ग हुआ जिसने अपने पिता के समान ही राज्य किया था ॥६॥ इसका पुत्र सूरिशारी हुआ था जिसका राज्यकाल पिता से आधा रहा था। इसका पुत्र सूरियश हुआ जोकि तीरथश में परायण था ॥७॥

शतहीन कृत राज्य तस्मादातिथ्यवर्धन ।
शतहीन कृत राज्य द्वादशात्मा तु तत्सुत ॥८॥
शतहीन कृत राज्य तस्माज्जातो दिवाकर ।
शतहीन कृत राज्य तस्माज्जात प्रभाकर ॥९॥
शतहीन कृत राज्य भास्वदात्मा च तत्सुत ।
शतहीन कृत राज्य वियस्वज्ञस्तदात्मज ॥१०॥
शतहीन कृत राज्य हरिदश्वार्चनस्तत ।
शतहीन कृत राज्य तस्माद्वैकर्तन सुत ॥११॥
शतहीन कृत राज्य स्तस्मादर्कैष्टिमान्सुत ।
शतहीन कृत राज्य तस्मान्मार्तण्डवत्सल ॥१२॥
शतहीन कृत राज्य मिहिरार्यस्तु तत्सुत ।
शतहीन कृत राज्य तस्मादरुणपोषण ॥१३॥
शतहीन कृत राज्य तस्माद्द्युमणिवत्सल ।
शतहीन कृत राज्य तस्मात्तरणियज्वन ॥१४॥

इस सूर्यध्वज राजा ने शतहीन राज्य किया था। इसके आतिथ्य वर्धन पुत्र हुआ। इसका राज्यकाल भी पिता से एक सौ वर्ष कम हुआ था। इसके द्वादशात्मा नामक पुत्र ने जन्म लिया था। इसका शतहीन राज्य था। द्वादशात्मा के दिवाकर पुत्र उत्पन्न हुआ, इसके प्रभाकर सुत हुआ, फिर इसके भास्वदात्मा पुत्र हुआ। इस भास्वदात्मा के विवस्वज्ज पुत्र हुआ। इसके हरिदश्वावर्धन उत्पन्न हुआ। इसके वैकर्त्तन पुत्र ने जन्म ग्रहण किया था, इन सबका राज्य काल अपने पिताओं से सौ सौ वर्ष कम होता चला आया था ॥८॥६॥ ॥१०॥११॥ वैकर्त्तन के अर्केष्टिमान् पुत्र हुआ जिसने शतहीन राज्य किया था। अर्केष्टिमान् के मार्त्तण्ड वत्सल नामक पुत्र की उत्पत्ति हुई थी जिसका राज्य शतहीन था। उसका पुत्र मिहिरार्थ नामधारी हुआ था। इसने भी शतहीन राज्य किया था। इसका पुत्र अरुण पोषण उत्पन्न हुआ जिसने शतहीन राज्य किया। इसके धुमणिवत्सल पुत्र हुआ। इसने भी एक सौ वर्ष कम राज्य किया था। धुमणिवत्सल का पुत्र तरणि यज्ञक उत्पन्न हुआ था ॥१२॥ ॥१३॥१४॥

शतहीन कृत राज्य तस्मान्मैत्रेष्टिवर्धन ।
शतहीन कृत राज्य चित्रभानुर्जकस्तत ॥१५॥
शतहीन कृत राज्य तस्माद्वैरोचन स्मृत ।
शतहीन कृत राज्य हसन्यायी तु तत्सुत ॥१६॥
पितुस्तुल्य कृत राज्य तस्माद्वेद प्रवर्धन ।
शतहीन कृत राज्य तस्मात्सावित्र उच्यते ॥१७॥
शतहीन कृत राज्य धनपालस्ततोऽभवत् ।
शतहीन कृत राज्य म्लेच्छहन्ता सुत स्मृत ॥१८॥
शतहीन कृत राज्य तस्मादानदवर्द्धन ।
शतहीन कृत राज्य धर्मपालसुतस्तत ॥१६॥
शतहीन कृत राज्य ब्रह्मभक्त सुतस्तत ।
पितुस्तुल्य कृत राज्य तस्माद्ब्रह्मेष्टिवर्द्धन ॥२०॥

पितुस्तुल्य कृत राज्य तस्मादात्मप्रपूजक ।
पितुस्तुल्य कृत राज्य परमेष्ठी सुतस्तत ॥२१॥

तरणि यजक का पुत्र मैत्रेष्टिवर्धन हुआ था। इसका पुत्र चित्रभानुर्जक उत्पन्न हुआ। इसका पुत्र वैरोचन हुआ था। वैरोचन का हम न्यायी आत्मज हुआ और हम न्यायी का वेदप्रवर्धन पुत्र हुआ था। तरणि यजक से हम न्यायी तक सबका राज्यकाल शतहीन हुआ था। केवल हम न्यायी का राज्यकाल अपने पिता के समान था। वेद-प्रवर्धन ने शतहीन राज्य किया था। इसके सावित्र नामक पुत्र ने जन्म ग्रहण किया था ॥१५॥१६॥१७॥ सावित्र ने शतहीन राज्य किया था। इसके फिर धनपाल नामक पुत्र हुआ। इसका राज्य काल भी शतहीन था। इसका पुत्र म्लेच्छ हन्ता हुआ, इसका पुत्र आनन्द वर्धन हुआ, इसका पुत्र धर्मपाल हुआ। धर्मपाल का पुत्र ब्रह्मभक्त उत्पन्न हुआ था। इनका सबका राज्य काल शतहीन था। ब्रह्मभक्त ने अपने पिता के राज्यकाल के बराबर ही राज्य किया था। इसके ब्रह्मेष्टि वर्धन पुत्र हुआ, इससे आत्मप्रपूजक राजा ने जन्म प्राप्त किया था। इसका पुत्र परमेष्ठी उत्पन्न हुआ। इन सब ने पितृतुल्य ही राज्यकाल का सुखोपभोग किया था ॥१८॥१९॥२०॥२१॥

पितुस्तुल्य कृत राज्य तस्माद्धैरण्यवर्द्धन ।
शतहीन कृत धातृयाजी तु तत्सुत ॥२२॥
पितुस्तुल्य कृत राज्य तद्विधातृप्रपूजक ।
पितुस्तुल्य कृत राज्य तस्माद्‌ द्रुहिण क्रतु ॥२३॥
पितुस्तुल्य कृत राज्य तस्माद्‌ध्‌यच्य उच्यते ।
शतहीन कृत राज्य तत्पुत्र पद्मनाभक ॥२४॥
पितुस्तुल्य कृत राज्य शमवर्ती तु तत्सुत ।
पितुस्तुल्य कृत राज्य श्राद्धदेवस्तु तत्सुत ॥२५॥

पितुस्तुल्य कृत राज्य तस्माद्ध पितृवर्द्धन ।
पितुस्तुल्य कृत राज्य सोमदत्तस्तु तत्सत ॥२६॥
पितुस्तुल्य कृत राज्य सोमदत्तिस्तदात्मज ।
पितुस्तुल्य कृत राज्य तस्माद्ध सोमवर्द्धन ॥२७॥
पितुस्तुल्य कृत राज्यमवतस सुतस्तत ।
पितुस्तुल्य कृत राज्य प्रतमस्तनयस्तत ॥२८॥

परमेष्ठी का हैरण्य वर्धन पुत्र हुआ । इसने शतहीन राज्य किया था । इसका धातृयाजी पुत्र हुआ जिसने अपने पिता के समान ही राज्य किया था। इसका पुत्र धातृअपूजक नाम वाला उत्पन्न हुआ था । उससे द्रुहिणक्रतु हुआ । उससे वैरञ्चय हुआ । वैरञ्चय का पुत्र कमलासन हुआ था । उसका शमवर्त्ती हुआ और शमवर्ती का पुत्र श्राद्धदेव हुआ था । इन सबने अपने अपने पिताओं के समान ही राज्य सुख प्राप्त किया था ॥२२॥२३॥२४॥२५॥ श्राद्धदेव से पितृवर्धन की उत्पत्ति हुई और इससे सोमदत्त ने जन्म प्राप्त किया था । सोमदत्त से सोमदत्ति सम्भूत हुआ था और फिर इससे सोम वर्द्धन नामधारी पुत्र ने जन्म लिया था । इससे अवतस नामक पुत्र की उत्पत्ति हुई । इसका पुत्र प्रतस हुआ था । इन सभी ने पितृतुल्य राज्य का सुख भोग किया था ॥२६॥ ॥२७॥२८॥

पितुस्तुल्य कृत राज्य परातसस्तदात्मज ।
पितुस्तुल्य कृत राज्यमयतसस्ततोऽभवत् ॥२९॥
पितुस्तुल्य कृत राज्य समातसस्तु तत्सुत ।
पितुस्तुल्य कृत राज्यमनुतसस्तदात्मज ॥३०॥
पितुस्तुल्य कृत राज्यमधित सस्तोऽभवत् ।
पितस्तुल्य कृत राज्यमभितसस्तदात्मज ॥३१॥
पितुस्तुल्य कृत राज्य समुतसस्ततोऽभवत् ।
पितुस्तुल्य कृत राज्य ततोनाम सुतोऽभवत् ॥३२॥

पितुस्तुल्य कृत राज्य दुष्य तस्तनयस्तत ।
शकु तलाया तस्माच्च भरतोनाम भूपति ॥३३॥
पितुस्तुल्य कृत राज्य दुष्यत स्वर्गति गत ।
भरतोनाम तत्पुत्रो देवपूजन तत्पर ॥३४॥
महामायाप्रभावेन पट्त्रिंशद्वर्ष जीवनम् ।
पट्त्रिंशाब्दसहस्राणि नृपायुर्वद्धित तथा ॥३५॥

प्रतम नामक नृप का पुत्र परातम उत्पन्न हुआ था। परातस के अप तस और इनका पुत्र समातन हुआ था। समातस के पुत्र का नाम अनुतग था। इससे फिर अधिनस नामधारी पुत्र उत्पन्न हुआ। इसके पुत्र का नाम अभितम था और अभितस का पुत्र समुत्त स हुआ। इसके यहाँ तम नामक पुत्र ने जन्म लिया था। तस के यहाँ दुष्यन्त पुत्र की उत्पत्ति हुई थी। इन सबन अपने पिताओ के समान ही राज्यशासन के सुख का उपभोग किया था। दुष्यन्त नृप स शकुन्तला मे भरत नाम वाला प्रतापी पुत्र उत्पन्न हुआ था दुष्यन्त न पितृ तुल्य राज्य भोग कर स्वर्ग की प्राप्ति की थी। भरत नामधारी जो दुष्यन्त का पुत्र था वह सर्वदा देवो के यजनार्चन म तत्पर रहा करता था। महामाया के प्रभाव स छत्तीस वर्ष के जीवन को छत्तीस हजार वर्ष की आयु वाला बढ़ा दिया गया था ॥२६॥३०॥३१॥३२॥३३॥३४॥३५॥

तस्य नाम्ना स्मृत खडो भारतोनाम विश्रुत ।
तेन भूमेर्विभागश्च कृत राज्य पृथक चिरम् ॥३६॥
दिव्य वर्ष शत राज्य तस्माज्जातो महाबल ।
दिव्य वर्षशत राज्य भरद्वाजस्ततोऽभवत् ॥३७॥
दिव्य वर्ष शत राज्य तस्माद्भुवनमन्युमान् ।
अष्टादशसहस्राणि समा राज्य प्रकीर्तितम् ॥३८॥
बृहत्क्षेत्रस्ततो ह्यासीत्पितुस्तुल्य कृत पदम् ।
गृहोत्रस्तनयस्तस्य पितुस्तुल्य कृत पदम् ॥३६॥

वीतिहोत्रस्तस्य सुतो राज्यं दशसहस्रकम् ।
यज्ञहोत्रस्ततोऽप्यासीत्पितुस्तुल्यं कृत पदम् ॥४०॥
शक्रहोत्रस्ततो जातः पितुस्तुल्यं कृत पदम् ।
प्रसन्नो भगवानिन्द्रस्त नृप स्वर्गमाप्तवान् ॥४१॥
तदायोध्यापतिः श्रीमान्प्रतापेंद्रो महाबलः ।
भारत वर्षमदधद्वर्षं दशसहस्रकम् ॥४२॥

उस भरत नृप के नाम से ही खण्ड कहा गया है जिसको भारत कहा जाता है । उसने भूमिका विभाग किया था और चिरकाल तक पृथक् राज्य बना दिया था ॥३६॥ दिव्य वर्ष दश राज्य था उससे महाबल उत्पन्न हुआ । यह दिव्य वर्ष दश राज्य था जिससे भरद्वाज हुए । यह दिव्य वर्ष दश राज्य था जिससे भवन मन्युमान् हुआ था । इस तरह अठारह सहस्र वर्ष राज्य कहा गया है ॥३७॥३८॥ इससे बृहत्क्षेत्र था जिसने पिता के तुल्य पद किया था । उसका तनय सुहोत्र था । इसने भी पिता के तुल्य पद किया था । उसका पुत्र वीतहोत्र हुआ था जिसने दश सहस्र वर्ष तक राज्य किया था । उसका पुत्र यज्ञहोत्र था । इसने भी पिता के समान ही पद किया था इसके बाद उस यज्ञहोत्र से शक्रहोत्र उत्पन्न हुआ जो कि पितृतुल्य पद करने वाला था । इन्द्र ने परम प्रसन्न होकर उस राजा को स्वर्ग प्राप्त करा दिया था । तब अयोध्या के पति श्रीमान् महाबल प्रतापेन्द्र ने भारतवर्ष दश सहस्र वर्ष तक धारण किया था ॥३९॥४०॥४१॥४२॥

मण्डलीकस्तस्य सुत. पितुस्तुल्य कृत पदम् ।
विजयेंद्रस्तस्य सुत. पितुस्तुल्य कृतं पदम् ॥४३॥
धनुर्दीप्तस्तस्य सुत. पितुस्तुल्य कृत पदम ।
इन्द्राज्ञया शक्रहोत्रो घृताच्या सह भूतले ॥४४॥
प्राप्तवान्सधनुर्दीप्तं जित्वा राज्यमचीकरत् ।
हस्तीनाम सतो जात ऐरावतसुत गजम् ॥४५॥
आरुह्य पश्चिमे देशे हस्तिनानगरी कृता ।
दशयोजनविस्तीर्णा स्वर्गगायास्तटे शुभा ॥४६॥

राज्य दशसहस्र च तत्र वास चकार स ।
तत्पुनस्त्वजमीढाख्य पितुस्तुल्य कृत पदम् ॥४७॥
तस्माज्जातो रक्षपाल पितुस्तुल्य कृत पदम् ।
सुशम्यग्णस्तस्य सुत पितुस्तुल्य कृत पदम् ॥४८॥
तस्य पुत्र कुरुर्नाम पितुरद्ध कृत पदम् ।
इन्द्रस्य वरदानेन सदेह स्वर्गमागत ॥४९॥

उसके पुत्र का नाम मण्डलीक था जिसने पिता के तुल्य पद किया था। उसका पुत्र विजयेन्द्र हुआ था जिसने भी पिता के समान ही पद को किया था ॥४३॥ धनुर्दीत उसका पुत्र हुआ जिसने पितृतुल्य पद किया था। इन्द्र की आज्ञा से शक्रहोत्र ने भूमण्डल म घृताची के साथ रहा था। उसने धनुर्दीत को जीतकर राज्य के सुख का उपभोग किया था। उसके हस्ती नाम वाला पुत्र हुआ था जिसने ऐरावत के पुत्र गज पर आरोहण करके पश्चिम देश म हस्तिना नगरी की थी। यह नगरी दश योजन के विस्तार वाली थी और स्वगङ्गा के तट पर स्थित यह परम शुभ थी ॥४४॥४५॥४६॥ उसने वहीं पर निवास करके दश सहस्र वर्ष तक राज्य शासन किया था। उसका पुत्र अज मीढ हुआ था जिसने पिता के तुल्य ही पद किया था ॥४७॥ उससे फिर रक्ष पाल की उत्पत्ति हुई थी। जो कि पितृतुल्य पद के करने वाला था। उसका पुत्र सुशम्यग्ण हुआ जिसने पिता के समान ही पद को किया था ॥४८॥ उसका पुत्र कुरु समुत्पन्न हुआ था। उसने पिता का आधा ही पद किया था। यह इन्द्रदेव के वरदान से सदेह अर्थात् इसी शरीर से स्वर्ग को प्राप्त हुआ था। ॥४९॥

तदा सात्वतवंशऽस्तिन्वृष्णिर्नाम महायश ।
मथुरायां स्थितो राज्य सर्वं स्वयदमातवान् ॥५०॥
भगवतो वरदानेन हरेरद्भुतकर्मण ।
पञ्चपगसहस्र च सर्वं राज्य चकार ह ॥५१॥

निरावृत्तिस्तस्य सुत. पितुस्तुल्य कृतं पदम् ।
दशारी तस्य तनय पितुस्तुल्य कृत पदम् ॥५२॥
वियामुनस्तस्य सुत पितुस्तुल्य कृत पदम् ।
जीमूतस्तस्य तनय पितुस्तुल्य कृत पदम् ॥५३॥
विकृतिस्तस्य तनय. पितुस्तुल्य कृत पदम् ।
तस्माज्जातो भीमरथ पितुस्तुल्य कृत पदम् ॥५४॥
तस्माज्जातो नवरथ पितुस्तुल्य कृत पदम् ।
तस्माज्जातो दशरथ पितुस्तुल्य कृत पदम् ॥५५॥
तस्माज्जातश्च शकुनि पितुस्तुल्य कृत पदम् ।
तस्माज्जात. कुशु भश्च पितुस्तुल्य कृत पदम् ॥५६॥

उस समय सात्वत वंश मे वृष्णि नाम वाला महान् बलवान् हुआ था। इसने अपनी स्थिति मथुरा मे बनाई थी और समस्त राज्य को अपने वश मे कर लिया था ॥५०॥ अद्भुत कर्मों के करने वाले भगवान् हरि के वरदान से इसने पाँच सहस्र वर्ष पर्यन्त स पूर्ण राज्य को वशीकृत कर लिया था ॥५१॥ उसके यहाँ निरावृत्ति नामक पुत्र ने जन्म लिया था। इसने पिता के तुल्य पद किया था। उसका पुत्र दशारी हुआ और दशारी का पुत्र वियामुन हुआ। उसका पुत्र जीमूत हुआ और जीमूत का पुत्र विकृति नामक उत्पन्न हुआ था। विकृति के भीमरथ और भीमरथ के नवरथ पुत्र हुआ। नवरथ से दशरथ नामधारी पुत्र ने जन्म लिया और इससे शकुनि उत्पन्न हुआ। शकुनि से कुशुम्भ नामक पुत्र समुत्पन्न हुआ था इन सभी ने अपने पिता के तुल्य पद को किया था ॥५२॥५३॥५४॥५५॥५६॥

तस्माज्जातो देवरथ पितुस्तुल्य कृत पदम् ।
देवक्षेनस्तस्य सुत पितुस्तुल्य कृत पदम् ॥५७॥
तस्य पुत्रो मधुर्नाम पितुस्तुल्य कृत पदम् ।
ततो नवरथ पुत्र पितुस्तुल्य कृत पदम् ॥५८॥

कुरुवत्सस्तस्य सुत पितुस्तुल्य कृत पदम् ।
तस्मादनुरथ पुत्र पितुस्तुल्य कृत पदम् ॥५६॥
पुरुहोत्र सुतस्तस्य पितुस्तुल्य कृत पदम् ।
विचित्राङ्गस्तस्य सुत पितुस्तुल्य कृत पदम् ॥६०॥
तस्मात्सात्वतवान्पुत्र पितुस्तुल्य कृत पदम् ।
भजमानस्तस्यसुत पितुस्तुल्य कृत पदम् ॥६१॥
विदूरथस्तस्य सुत पितुस्तुल्य कृत पदम् ।
सुरभक्तस्तस्य कृत पितुस्तुल्य कृत पदम् ॥६२॥

कुसुम्भ के देवरथ पुत्र पैदा हुआ था और इसका पुत्र देवक्षेत्र नाम वाला हुआ। इसका पुत्र मधु हुआ था। फिर उसका पुत्र नवरथ उत्पन्न हुआ। नवरथ का पुत्र कुरुवत्स हुआ और उससे अनुरथ नाम वाले पुत्र की उत्पत्ति हुई। अनुरथ का पुत्र पुरुहोत्र हुआ और उसका पुत्र विचित्राङ्ग नाम वाला उत्पन्न हुआ था। उससे सात्वत वान् नामधारी पुत्र की उत्पत्ति हुई और उसका पुत्र भजमान नाम वाला उत्पन्न हुआ था। भजमान का पुत्र विदूरथ हुआ और विदूरथ के यहाँ सुरभक्त नामधारी पुत्र ने जन्म लिया था। ये सभी पिता के समान पद के करने वाले हुए हैं ॥५७॥५८॥५९॥६०॥६१॥६२॥

तस्माच्च सुमना पुत्र पितुस्तुल्य कृत पदम् ।
ततिक्षेत्रस्तस्य सुत पितुस्तुल्य कृत पदम् ॥६३॥
स्वायम्भुवस्तस्य सुत पितुस्तुल्य कृत पदम् ।
हरिदीपक एवाग्रो तस्य राज्य पितुस्समम् ॥६४॥
देवमेधास्सुतस्तस्य पितुस्तुल्य कृत पदम् ।
सुरपालस्तदा जात पितुस्तुल्य कृत पदम् ॥६५॥
द्वापरान्ते गुरुर्देव द्वापर त्रितय पदे ।
व्यतीत च सुरदयास्य स्वर्गंदायाय गति प्रभु ॥६६॥
जातो भारत पदे सुरकोष तत्र सुखम् ।
विरजोजातस्मिन्नीर्णं पुण्य क्षत्र स्मृत बुधै ॥६७॥

द्वादशाब्दसहस्रं च कुरुणा राज्यसात्कृतम् ।
तस्माज्जह्नुस्सुतो जातः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् ॥६८॥
तस्मात्सुरथो जातः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् ।
विदूरथस्तस्य सुतः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् ॥६९॥
सार्वभौमस्तस्य सुतः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् ।
जयसेनस्तस्य सुतः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् ॥७०॥

सुरभक्त से सुमना नामक पुत्र ने जन्म ग्रहण किया था जिसने पिता के तुल्य पद को किया था । उसका पुत्र ततिसेत्र उत्पन्न हुआ जिसने पद को पिता के समान ही रखा था । स्वायम्भुव उसका आत्मज हुआ जो पिता के ही समान पद को रखने वाला था । यह हरिदीपक ही था जिसका कि राज्य पिता के ही समान था ॥६३॥६४॥ उसका पुत्र देवमेधा हुआ और देवमेधा का पुत्र सुरपाल हुआ था इन दोनों ने पितृतुल्य पद किया था ॥६५॥ इन्द्रदेव की आज्ञा से द्वापर के तीसरे चरण के व्यतीत होने पर कुरु स्वर्ग की अप्सरा सुकेशी का पति हुआ था और वह यहाँ भारत खण्ड में आया तथा उसने यहाँ आकर कुरु क्षेत्र की रचना की थी । यह कुरुक्षेत्र बीस योजन के विस्तार वाला था जिसको महा मनीषियों ने परम पुण्य का क्षेत्र बतलाया है ॥६६॥६७॥ बारह सहस्र वर्ष पर्यन्त इसे कुरु ने राज्य सात् किया था अर्थात् अपना राज्य जैसा ही बना लिया था । उससे फिर जह्नु नामक पुत्र उत्पन्न हुआ था जिसने पिता के समान ही पद को किया था । उससे सुरथ हुआ और सुरथ से विदूरथ तथा विदूरथ से सार्वभौम एवं सार्वभौम से जयसेन पुत्र उत्पन्न हुआ था । इन सभी ने पिता के समान ही पद को किया था ॥६८॥६९॥७०॥

तस्मादर्णव एवासौ पितुस्तुल्यं कृतं पदम् ।
चतुस्सागरगामी च पितुस्तुल्यं कृतं पदम् ॥७१॥
अयुतायुस्तस्य सुतो राज्यं दशसहस्रकम् ।
अक्रोधनस्तस्य सुतः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् ॥७२॥

तस्माद्दक्षस्सुतो जात पितुस्तुल्य कृत पदम् ।
भीमसेनस्तस्य सुत पितुस्तुल्य कृत पदम् ॥७३॥
दिलीपस्तस्य तनय पितुस्तुल्य कृत पदम् ।
प्रतीपस्तस्य तनयो राज्य पचसहस्रकम् ॥७४॥
शतनुस्तस्य पुत्रश्च राज्यमेकसहस्रकम् ।
विचित्रवीर्यस्ततपुत्रो राज्य वै द्विशत समा ॥७५॥
पाडुश्च तनयो यस्मिन्राज्य पचशत कृतम् ।
युधिष्ठिरस्तस्य सुतो राज्य पचाशदब्दकम् ॥७६॥
सुयोधनेन षष्टचब्द कृत राज्य तत परम् ।
युधिष्ठिरेण निधन तस्य प्राप्त कुरुस्थले ॥७७॥

जयसेन का पुत्र अर्णव हुआ और चतु सागर गामी हुआ । इसका पुत्र अयुतायु हुआ उपर्युक्त दोनो ने पिता के समान पद किया था और अयुतायु न दश सहस्र वर्ष तक राज्य किया था । इसका पुत्र अक्रोधन हुआ, उसका पुत्र ऋक्ष नाम वाला हुआ, ऋक्ष का पुत्र भीमसेन हुआ, भीमसेन का दिलीप पुत्र उत्पन्न हुआ था, इन सबने पिता के समान ही पद को बनाया था, दिलीप का पुत्र प्रतीप हुआ था जिसने पाँच सहस्र वर्ष पर्यन्त राज्य के सुख का भोग किया था ॥७१॥७२॥७३॥७४॥७५॥ प्रतीप के यहाँ शन्तनु नाम वाले पुत्र ने जन्म लिया था जिसने एक सहस्र वर्ष पर्यन्त राज्य का शासन किया था । इसका पुत्र विचित्र वीर्य नाम वाला हुआ था जिसने केवल दो सौ वर्ष तक ही राज्य किया था । इसका पुत्र पाण्डु हुआ था जिसने पाँच सौ वर्ष तक राज्य किया था । उसका पुत्र युधिष्ठिर हुआ था जिसने पचास वर्ष तक राज्य किया था । इसके बाद सुयोधन ने साठ वर्ष तक राज्य का शासन किया था । युधिष्ठिर के द्वारा उसका निधन कुरुक्षेत्र में हुआ था ॥७६॥७७॥

पूव देवासुरे युद्धे ये दैत्याश्च सुरैर्हता ।
ते सर्वे शतनो राज्ये जन्मवन्त प्रतस्थिरे ॥७८॥
लक्षमक्षौहिणी तेषा तद्भारेण वसुन्धरा ।
शरण्य शरणं प्राप्तावतार च ततो हरे ॥७६॥

स सौरेवंसुदेवस्य देवकया जन्मनाविशत् ।
एव कृष्णो महावीर्यो रोहिणीनिलय गत ८०॥
पचत्रिंशदुत्तर च शत वर्ष च भूतले ।
उषित्वा कृष्णचन्द्रश्च ततो गोलोकमागत ॥८१॥
चतुर्थ चरणान्ते च हरेर्जन्म स्मृत बुधै ।
हस्तिनापुरमध्यस्याभिमन्योस्तनयस्तत ॥८२॥
राज्यमकसहस्र च ततोऽभूज्जनमेजय ।
त्रिसहस्र कृत राज्य शतानीकस्ततोऽभवत् ॥८३॥
पितुस्तुल्य कृत राज्य यज्ञदत्तस्तत सुत ।
राज्य पचसहस्र च निश्चक्रस्तनयोऽभवत् ॥८४॥

पहिले होने वाले देवो और असुरो के युद्ध मे जो असुर देवो के द्वारा मारे गये थे उन सबने राजा शान्तनु के राज्य मे आकर जन्म धारण कर लिया था ॥७८॥ उनकी एक लक्ष अक्षौहिणी सेना थी। जिसके भार से यह पृथिवी एकदम दबकर परम उत्पीडित हुई थी और इन्द्रदेव की शरणागति मे पहुँची थी। इसके पश्चात् भगवान् हरि का अवतार हो गया था ॥७९॥ भगवान् हरि ने सौरि वसुदेव की पत्नी देवकी मे जन्म के द्वारा प्रवेश किया था। इस प्रकार इसे महान् वीर्य वाले भगवान् कृष्ण रोहिणी के निलय मे गए थे ॥८०॥ भगवान् श्रीकृष्ण ने इस भूतल म एक सौ पैंतीस वर्ष तक निवास करके अन्त मे गो लोक धाम मे चले गये थे ॥८१॥ विद्वानो ने चतुर्थ चरण के अन्त मे भगवान् हरि का जन्म बतलाया है। हस्तिनापुर के मध्य मे अभिमन्यु के पुत्र जनमेजय का राज्यकाल एक सहस्र वर्ष तक रहा था जो कि त्रिसहस्र राज्य किया गया था। इसके पश्चात् शतानिक हुआ था। इसने पिता के तुल्य ही राज्य किया था। इसका पुत्र यज्ञदत्त हुआ जिसने पाँच सहस्र वष पर्यन्त राज्य किया था। इसके पश्चात निश्चक्र हुआ था ॥८२॥८३॥८४॥

सहस्रमक राज्य तदुष्टपालस्ततोऽभवत् ।
पितुस्तुल्य कृत राज्य तस्माच्चि?रयस्सुत ॥८५॥

पितुस्तुल्य कृत राज्य धृतिमास्तनय स्तत ।
पितुस्तुल्य कृत राज्य सुपेणस्तनयोऽभवत् ॥८६॥
पितुस्तुल्य कृत राज्य सुनीथस्तनयोऽभवत् ।
पितुस्तुल्य कृत राज्य मखपाल सुतोऽभवत् ॥८७॥
पितुस्तुल्य कृत राज्य न चक्षुस्तनयस्तत ।
पितुस्तुल्य कृत राज्य सुखवतस्ततोऽभवत् ॥८८॥
पितुस्तुल्य कृत राज्य तस्मात्पारिप्लवस्सुत ।
पितुस्तुल्य कृत राज्य सुनयस्तत्सुतोऽभवत् ॥८९॥
पितुस्तुल्य कृत राज्य मेधावी तत्सुतोऽभवत् ।
पितुस्तुल्य कृत राज्य तस्माज्जातो कृपजय ॥९०॥
पितुस्तुल्य कृत राज्य मृदुस्तत्तनयोऽभवत् ।
पितुस्तुल्य कृत राज्य तिग्मज्योतिस्तु तत्सुत ॥९१॥

निश्चक्र ने एव सहस्र वप पय त राज्य किया था। इससे तदुपरान्त हुआ। उसका पुत्र चित्ररथ उत्पन्न हुआ। चित्ररथ का पुत्र धृतिमान् उत्पन्न हुआ। इसका पुत्र सुपेण हुआ था। सुपेण का पुत्र सुनाथ हुआ। इसका पुत्र मखपाल नाम वाला उत्पन्न हुआ था। इसका पुत्र नचक्षु हुआ था इन सभी ने अपने अपने पिताओं के समान ही राज्य के सुख का उपभोग किया था। फिर नचक्षु का पुत्र सुखवन्त पैदा हुआ था ॥८५॥८६॥८७॥८८॥ इसने पिता के तुल्य ही राज्य किया था। इसका पुत्र पारिप्लव नामधारी समुत्पन्न हुआ था जिसने पिता के समान ही राज्य किया था। पारिप्लव का पुत्र सुनय उत्पन्न हुआ था। इसका पुत्र मधावी नामक हुआ। इससे फिर नृपञ्जय नामधारी पुत्र ने जन्म ग्रहण किया था। इसके मृदु नामक आत्मज उत्पन्न हुआ और मृदु से तिग्मज्योति सज्ञा वाले आत्मज ने जन्म धारण किया था। ये सभी ऐसे हुए हैं जिन्होने अपने पिता के तुल्य ही सब प्रकार से राज्य के सुख का उपभोग किया था। ॥८९॥९०॥९१॥

पितुस्तुल्य कृत राज्य तस्माज्जातो बृहद्रथ ।
पितुस्तुल्य कृत राज्य वसुदानस्ततोऽभवत् ॥९२॥

पितुस्तुल्य कृत राज्य शतानीकस्ततोऽभवत् ।
पितुस्तुल्य कृत राज्य तस्मादुद्यान उच्यते ॥६३॥
पितस्तल्य कृत राज्य तस्माज्जातो ह्यहीनर ।
पितस्तुल्य कृत राज्य निर्मित्रस्तनयोऽभवत् ॥६४॥
पितुस्तुल्य कृत राज्य क्षेमकस्तत्सुतोऽभवत् ।
राज्य त्यक्त्वा स मेधावी कलापग्राममाश्रित ॥६५॥
म्लेच्छैश्च मरण प्राप्तो यमलोकमतो गत ।
नारदस्योपदेशेन प्रद्योतस्तनयस्तत ॥६६॥
म्लेच्छयज्ञ कृतस्तेन म्लेच्छा हननमागता ६७॥

तिग्म ज्योति राजा के वृहद्रथ नामक पुत्र की उत्पत्ति हुई थी। इसने पिता के ही समान राज्य के समस्त कार्य किए थे। उसके पुत्र का नाम वसुदान था जिसने अपने राज्य का शासन बिल्कुल पिता के ही तुल्य किया था। वसुदान के पुत्र का नाम शतानीक हुआ था। इसने भी राज्य का कार्य अपने पिता के ही समान किया था। शतानीक से उद्यान की उत्पत्ति हुई थी। उद्यान ने भी अपने पिता के नीति, नियमानुसार राज्य शासन किया था। उद्यान के पुत्र अहीनर हुए जोकि पितृतुल्य ही राज्य के कार्य करने वाले थे। इनके पुत्र का नाम निर्मित्र था। इसने भी पिता के ही अनुसार राज्य किया था। इसके पुत्र का नाम क्षेमक था जिसने राज्य का त्याग कर दिया था और यह मेधावी कलाप ग्राम मे आश्रित होकर रहने लगा था ॥६२॥६३॥६४॥६५॥ म्लेच्छो ने इसको मार डाला था और वह यमलोक को चला गया। इसके पुत्र का नाम प्रद्योत था जिसने देवर्षि नारदजी के उपदेश से म्लेच्छ यज्ञ किया था और इसका परिणाम यह हुआ कि समस्त म्लेच्छ मारे गये थे ॥६६॥६ ॥



॥ म्लेच्छयज्ञवृत्तान्तवर्णनम्, कलिकृतविष्णुस्तुतिः ॥

कथ यज्ञ कृतस्तेन प्रद्योतेन विचक्षण ।
सर्व कथय मे तात त्रिकालज्ञ महामुने ॥१॥

एकदा हस्तिनगरे प्रद्योत क्षेमकात्मज ।
आस्थित स कथामध्ये नारदोऽभ्यागमत्तदा ॥२॥
त दृष्ट्वा हर्षितो राजा पूजयामास धर्मवित् ।
सुखोपविष्ट स मुनि प्रद्योत नृपमब्रवीत् ॥३॥
म्लेच्छैर्हतस्तव पिता यमलोकमतो गत ।
म्लेच्छयज्ञप्रभावेण स्वर्गतिर्भविता हि स ॥४॥
तच्छ्रुत्वा क्रोधताम्राक्षो ब्राह्मणान्वेदवित्तमान् ।
आहूय स कुरुक्षेत्रे म्लेच्छयज्ञ समारभत् ॥५॥
यज्ञकुण्ड चतुष्कोण योजनान्येव षोडश ।
रचित्वा देवता ध्यात्वा म्लेच्छांश्च जुहुयान्नृप ॥६॥
हारहूणान्बर्बरांश्च गुरुण्डांश्च शकान्खसान् ।
यवनान्पल्लवांश्चैव रोमजान्खरसम्भवान् ॥७॥
द्वीपस्थितान्कामरूश्च चीनान्सागरमध्यगान् ।
आहूय भस्मसात्कुर्वन्वेदमन्त्रप्रभावत ॥८॥

इस अध्याय में म्लेच्छों के हनन के लिए किए गये यज्ञ का वृत्तान्त तथा कलि के द्वारा की गई स्तुति का वर्णन किया जाता है। शौनकजी ने कहा— हे विचक्षण! उस राजा प्रद्योत ने यज्ञ क्यों किया था? हे तात! हे तीनों कालों के हाल को जानने वाले! हे महा मुनिवर! मुझे यह समस्त वृत्तान्त बतलाने की कृपा करें। श्री सूतजी ने कहा— एक बार हस्तिनापुर में क्षेमक के पुत्र प्रद्योत बैठे हुए थे और वे कथा के मध्य में उस समय आस्थित हो रहे थे कि उसी समय वहाँ पर देवर्षि नारदजी आ गये थे ॥१।२॥ उस समय श्रीनारद मुनि को देखकर राजा परम हर्षित हुये और धर्म के नियमों के ज्ञाता राजा ने विधिवत् उनका पूजन किया था। सुखपूर्वक बैठकर उस मुनिवर ने राजा प्रद्योत से कहा—देखो म्लेच्छों ने तुम्हारे पिता क्षेमक नृप को मार दिया था और वह यमलोक वासी हो गये थे। इसलिए म्लेच्छ यज्ञ का प्रयत्न करना चाहिए जिसके प्रभाव से यह तुम्हारे पिता की स्वर्ग की गति हो जायगी ॥३॥

।।४।। इस वृत्तान्त को प्रद्योत ने सुनकर क्रोध से लाल आँखें करली थी और उसने तुरन्त ही वेद के ज्ञाता विद्वान् ब्राह्मणो को बुलाकर कुरुक्षेत्र मे म्लेच्छो के हनन करने के लिये यज्ञ का आरम्भ करा दिया था ।।५।। चार कोणो वाला यज्ञ कुण्ड जोकि षोडश योजन का था बनवाकर देवो का ध्यान किया गया था और राजा ने म्लेच्छो की आहूतियाँ देना प्रारम्भ कर दिया था ।।६।। म्लेच्छ कितने ही प्रकार के थे, उनमे हार, हूण, बर्बर, गुरुण्ड, शक, खस, यवन, पल्लव रोमज और खरसम्भव इन सब जाति भेद वाले म्लेच्छो का तथा जो द्वीपों म स्थित थे एव कामरू थे, चीन और सागरो के मध्य म निवास करते थे उन सबको आहूत करके वेद के मन्त्रो के प्रभाव से भस्म सात् कर दिया था ।।७।।८।।

ब्राह्मणान्दक्षिणा दत्वा अभिषेकमकारयत् ।
क्षेमको नाम नृपति स्वर्गलोक ततो गत ।।९।।
म्लेच्छहता नाम तस्य विख्यात भुवि सर्वत ।
राज्य दशसहस्राब्द कृत तेन महात्मना ।।१०।।
स्वर्गलोक गतो राजा तत्पुत्रो वेदवान्स्मृत ।
द्विसहस्र कृत राज्य तदा म्लेच्छ कलि स्वयम् ।
नारायण पूजयित्वा दिव्य स्तुतिमथाकरोत् ।।११।।
नमोऽनताय महते सर्वकालप्रवर्तिने ।।१२।।
चतुर्युगकृते तुभ्य वासुदेवाय साक्षिणे ।
दशावताराय हरे नमस्तुभ्य नमोनम ।।१३।।
नम शक्त्यवताराय रामकृष्णाय ते नम ।
नमो मत्स्यावताराय महते गौरवासिने ।।१४।।
नमो भक्तावताराय कल्पक्षेत्रनिवासिने ।
राज्ञा वेदवता नाथ मम स्थान विनिनाशितम् ।
मम प्रियस्य म्लेच्छस्य तत्पित्रा वशनाशनम् ।।१५।।

इसके पश्चात् राजा ने ब्राह्मणो को दक्षिणा दी और अभिषेक कराया था । इसका यह फल हुआ कि म्लेच्छ तो नष्ट हो ही गये थे और उसका पिता

क्षेमक भी स्वर्गलोक के निवासी हो गये ॥६॥ तब से उस राजा का नाम इस भूमण्डल में सर्वत्र म्लेच्छ हन्ता यह नाम प्रसिद्ध हो गया था। उस महान् आत्मा वाले ने यह दश सहस्र वर्ष तक राज्य किया था फिर अन्त मे राजा प्रद्योत स्वर्गलोक मे चला गया था। उसका पुत्र वेदवान् कहा गया है। दो सहस्र राज्य किया था। उस समय कलि स्वयं म्लेच्छ था। इसने भगवान् नारायण का पूजन किया और स्तुति करना आरम्भ कर दिया था। कलि ने कहा—समस्त कालो के प्रवर्त्तक, महान् अनन्त स्वरूप चारो युगों के करने वाले साक्षीरूप वासुदेव भगवान् आपके लिए मेरा नमस्कार है ॥ ०॥११॥१२॥ हे हरे ! दश अवतार धारण करने वाले आपके लिए बार बार नमस्कार है। शक्ति के अवतार राम एवं कृष्ण के रूप वाले आपके लिए प्रणाम है। मत्स्य का अवतार धारण करने वाले महान् और गौरवासी आपके लिये नमस्कार है ॥१३॥१४॥ भक्तों के लिए अवतार लेने वाले अथवा भक्तो के रूप मे अवतार धारण करने वाले तथा कल्पक्षेत्र के निवास करने वाले आपके लिए नमस्कार है। हे नाथ ! वेदवान् राजा ने मेरा स्थान विनाश कर दिया है और मेरे परम प्रिय म्लेच्छ का उसके पिता ने वंश ही नष्ट कर दिया है ॥१५॥

इति स्तुतस्तु कलिना म्लेच्छस्य सह भार्यया ॥१६॥
प्राप्तवान्स हरि साक्षाद्भगवान्भक्तवत्सल ।
कलि प्रोवाच स हरिर्युष्मदर्थे युगोत्तमम् ॥१७॥
बहुरूपमहं कृत्वा तवेच्छा पूरयाम्यहम् ।
आदमो नाम पुरुष पत्नी हव्यवती तथा ॥१८॥
विष्णुकर्दमतो जातौ म्लेच्छवंशप्रवर्धनौ ।
हरिस्त्वन्तर्दधे तत्र कलिरानंदसंकुल ॥१६॥
गिरिं नीलाचलं प्राप्य किंचित्कालमवासयत् ।
पुत्रो वेदवतो जात सुनन्दो नाम भूपति ॥२०॥
पितु स्तुल्य कृत राज्यमनपत्यो मृति गत ।
आर्यदेशा क्षीणवतो म्लेच्छवंशा बलान्विता ॥२१॥

सूतजी ने कहा—इस प्रकार से म्लेच्छ की भार्या के साथ कलि के द्वारा भगवान् की स्तुति की गई थी। तब तो भक्तों पर प्यार करने वाले भगवान् हरि वहाँ साक्षात् प्राप्त हुए और उन्होंने कलि से कहा—देखो, तुम्हारी भलाई के लिए युगात्तम बहुत से रूप मैं धारण करके तुम्हारी इच्छा का पूर्ण करूँगा। आदम नाम वाला पुरुष तथा हव्यवती नाम वाली पत्नी थी ॥१६॥१७॥१८॥ विष्णु कर्दम से म्लेच्छों के वंश के प्रवर्धन करने वाले उत्पन्न हुए थे। भगवान् हरि वहाँ अन्तर्धान हो गये और कलि आनन्द से संकुल हो गया था ॥१९॥ नीलाचल नामक पर्वत पर जाकर कुछ समय तक वास कराया था। वेदवान् का सुनन्द नाम वाला पुत्र उत्पन्न हुआ जो कि राजा हुआ था। उसने पिता के समान राज्य का शासन किया था किन्तु उसके कोई सन्तान नहीं हुई थी और वह निस्सन्तान ही मृत हो गया था। आर्य देश उस समय क्षीणता से युक्त हो गये थे तथा म्लेच्छ देश बलवान् हो रहे थे ॥२०॥२१।

भविष्यति भृगुश्रेष्ठ तस्मात्त्वं तुहिनाचलम् ।
गत्वा विष्णुं समाराध्य गमिष्यामो हरेः पदम् ॥२२॥
इति श्रुत्वा द्विजाः सर्वे नैमिषारण्यवासिनः ।
अष्टाशीतिसहस्राणि गतास्ते तुहिनाचलम् ॥२३॥
विशालायां समासाद्य विष्णुगाथा प्रचक्षिरे ।
इति व्यासेन कथितं वाक्यं कलिविशारदम् ।
श्रोतारं स्वमनं कृत्वा भविष्यं समुदीरयत् ॥२४॥
मनः शृणु ततो गाथा भावी सूतेन वर्णिताम् ।
कलेर्युगस्य पूर्णां तां तच्छ्रुत्वा तृप्तिमावह ॥२५।
षोडशाब्दसहस्रे च शेषे तद्वापरे युगे ।
बहुकीर्तिमती भूमिरार्यदेशस्य कीर्तिता ॥२६॥
क्वचिद्विप्राः स्मृता भूपाः क्वचिद्राजन्यवंशजाः ।
क्वचिद्वैश्याः क्वचिच्छूद्राः कुत्रचिद्वर्णसंकराः ॥२७॥
द्विशताष्टसहस्रे द्वे शेषे तु द्वापरे युगे ।
म्लेच्छदेशस्य या भूमिर्भविता कीर्तिमालिनी ॥२८॥

त्रिंशोत्तर नवशत तस्यायु परिकीर्तितम् ।
फलाना हवन कुर्वन्पत्न्या सह दिव गत ॥३४॥
तस्माज्जात सुत श्रेष्ठ श्वेतनामेति विश्रुत ।
द्वादशोत्तरवर्ष च तस्यायु परिकीर्तितम् ॥३५॥

जो आत्मा के ध्यान म ही परायण है उसने इन्द्रियो का दमन करके उससे यह आदम नाम वाला पुरुष हुआ और उसकी पत्नी हव्यवती नाम वाली कही गई है । प्रदान नगर के ही पूर्व भाग मे महावन ईश्वर के द्वारा किया गया परम सुन्दर और चार कोस विस्तार वाला कहा गया है ॥२९॥३०॥ वहाँ पाप वृक्ष के नीचे जाकर पत्नी के दर्शन म तत्पर था । कलि वहाँ शीघ्र आ गया जो कि सप का रूप किये हुए था ॥३१॥ उस धूर्त्त ने विष्णु की आज्ञा को वचित कर दिया था और वह भङ्गता को प्राप्त हो गई । पति ने लोक माग प्रद रम्य फल खाये । उन दोनो ने उदुम्बर के पत्तो से वायु का अशन किया था । इसके अनन्तर सुत पुत्र हुए जो कि सबके सब म्लेच्छ हो गय थे ॥३२॥३३॥ नौ सौ तीमवर्ष उसकी आयु बताई गई थी । फलो का हवन करता हुआ यह पत्नी के साथ दिव लोक को चला गया था । उससे श्वेन नाम वाला श्रेष्ठ पुत्र उत्पन्न हुआ था जो कि परम प्रसिद्ध था और उसकी आयु द्वादशोत्तर वर्ष बताई गई है ॥३४॥३५॥

अनुहस्तस्य तनय शतहीन कृत पदम् ।
कीनाशस्तस्य तनय पितामहसम पदम् ॥३६॥
महल्ललस्तस्य सुत पचहीन शत नव ।
तेन राज्य कृत तत्र तस्मान्मानगर स्मृतम् ॥३७॥
तस्मान्न विरदो जातो राज्य षष्ठ्युत्तर समा ।
ज्ञेय नवशत तस्य स्वनाम्ना नगर कृतम् ॥३८॥
हनूकस्तस्य तनयो विष्णु भक्तिपरायण ।
फलाना हवन कुर्वंस्तत्त्व ह्यासि जयन्सदा ॥३९॥
त्रिशत पचषष्टिश्च राज्य वर्षाणि तत्स्मृतम् ।
सदेह स्वर्गमायातो म्लेच्छधर्मपरायण ॥४०॥

आचारश्च विवेकश्च द्विजता देवपूजनम् ।
कृतान्येतानि तेनैव तस्मान्म्लेच्छ स्मृतो बुधैः ॥४१॥
विष्णुभक्तयग्निपूजा च ह्यहिंसा च तपो दम ।
धर्माण्येतानि मुनिभिर्म्लेच्छाना हि स्मृतानि वै ॥४२॥

उसके पुत्र का नाम अनुह था जिसने धनहीन पद किया था। उसका पुत्र कीनाश हुआ जिसने अपने पिता मह के तुल्य पद किया था ॥३६॥ महल्लल उसका पुत्र हुआ पाँच कम नौ सौ वर्ष तक जिसने वहाँ राज्य किया था। इसका मानगर कहा गया है ॥३७॥ और फिर उससे विरद उत्पन्न हुआ था। इसने षष्ठयुत्तर वर्ष पर्यन्त राज्य किया था। अर्थात् नौसौ साठ समझना चाहिए। इसने अपने नाम से नगर किया था ॥३८॥ उसका पुत्र हनूक नामधारी हुआ जो विष्णु की भक्ति में परायण रहता था। यह फलों का हवन करता हुआ सदा तत्व को उत्पन्न किया करता था ॥३९॥ उसका राज्य करने का काल तीन सौ पैंसठ वर्ष कहा गया है। यह इसी देहके साथ स्वर्ग में आया था जो कि म्लेच्छ धर्म परायण था ॥४०॥ आचार और विवेक, द्विजता और देव पूजन ये सब उसने ही की थीं। इसलिए बुधों के द्वारा म्लेच्छ कहा गया है ॥४१॥ विष्णु की भक्ति, अग्नि पूजा, अहिंसा, तप, दम ये धर्म मुनियों ने म्लेच्छों के बताए हैं ॥४२॥

मतोच्छिलस्तस्य सुतो हनुयस्यैव भार्गव ।
राज्य नवशत तस्य सप्ततिश्च स्मृता समा ॥४३॥
लोमकस्तस्य तनयो राज्य सप्तशत समा ।
सप्तसप्ततिरेवास्य तत्पश्चात्स्वर्गति गत ॥४४॥
तस्माज्जात सुतो न्यूहो निर्गतस्तूह एव स ।
तस्मान्न्यूह स्मृत प्राज्ञै राज्य पचशत कृतम् ॥४५॥
सीम शमश्च भावश्च त्रय पुत्रा बभूविरे ।
न्यूह स्मृतो विष्णुभक्तस्सोऽह ध्यानपरायण ॥४६॥
एकदा भगवान्विष्णुस्तत्स्वप्ने तु समागत ॥४७॥

वत्स न्यूह श्रृणुष्वेद प्रलय सप्तमेऽहनि ।
भविता त्व जनैस्सार्धं नावमारुह्य सत्वरम् ॥४८॥
जीवन कुरु भक्तेंद्र सर्वश्रेष्ठो भविष्यसि ।
तथेति मत्वा स मुनिर्नाव कृत्वा सुपुष्टिताम् ॥४९॥
हस्तत्रिशतलम्बा च पचाशद्धस्तविस्तृताम् ।
त्रिंशद्धस्तोच्छ्रिता रम्या सवजीवसमन्विताम् ॥५०॥

इसका पुत्र मतोच्छिल हुआ था जोकि हनूर का ही था । हे भार्गव ! उसका राज्य करने का समय नौ सौ सत्तर वर्ष कहा गया है ॥४३॥ उसका पुत्र लोमक नामधारी उत्पन्न हुआ था । उसका राज्य काल सात सौ वर्ष कहा गया है । सतत्तर ही वर्ष ऊपर थे । इसके पश्चात वह स्वर्गति को प्राप्त हो गया था ॥४४॥ उससे न्यूह नामक पुत्र उत्पन्न हुआ था । वह तूह ही निगत हुआ था । इसके यूह प्राणो क द्वारा कहा गया है । इसने पाच सौ वर्ष तक राज्य किया था ॥४५॥ सीम, शाम और भाव ये तीन पुत्र हुए थे । न्यूह विष्णु का भक्त कहा गया है जोकि सोऽह के ध्यान मे परायण रहा करता था ॥४६॥ एक बार भगवान विष्णु उसके स्वप्न में आ गये थ । और स्वप्न में ही विष्णु ने कहा—हे वत्स यूह ! यह मेरा वचन श्रवण करलो आज से सातवें दिन में प्रलय होगा । तुम मनुष्यो के साथ नाव मे शीघ्र समारोहण करके जीवन की रक्षा करना । हे भक्तेन्द्र ! तू सर्वश्रेष्ठ हो जायगा । उस स्वप्न मे दी हुई आज्ञा को स्वीकार करके उसने सुपुष्टित नाव बनवाई थी जो तीनसौ हाथ लम्बी और पचास हाथ विस्तृत (चौडी) थी । यह तीस हाथ ऊँची थी एव बहुत रम्य थी ज कि समस्त जीवो से समन्वित थी ॥४७॥४८॥४९॥५०॥

आरुह्य स्वकुलैस्सार्द्धं विष्णुध्यानपरोऽभवत् ।
सावर्तको मेघगणो महेद्रेण समन्वित ॥५१॥
चत्वारिंशद्दिनान्येव महावृष्टिमकारयत् ।
सर्वं तु भारत वर्षं जलै प्लाव्य तु सिंधव ॥५२॥
चत्वारो मिलिता सर्वे विशालाया न चागता ।
अष्टाशीतिसहस्राणि मुनयो ब्रह्मवादिन ॥५३॥

न्यूहश्च स्वकुलैस्सार्धं शेषास्सर्वे विनाशिताः ।
तदा च मुनयस्सर्वे विष्णुमायां प्रतुष्टुवुः ॥५४॥

उस नौका पर अपने कुलो के साथ उसने समारोहण किया और विष्णु के ध्यान मे तत्पर हो गया था । महेन्द्र के द्वारा समन्वित सावर्त्तक मेघो के गण चालीस दिन मे ही वहाँ महावृष्टि कराई थी । यह सम्पूर्ण भारतवर्ष जलो से प्लावित होकर सिन्धु बन गया था ॥५१॥५२॥ चारो सागर मिल गये और विशाला मे नही आये थे । अट्ठासी हजार मुनिगण वहाँ पर ब्रह्मवाद को करने वाले उपस्थित थे ॥५३॥ और न्यूह अपने कुलो के साथ वहाँ था बाकी अन्य सब विनाशित हो गये थे । तब सब मुनिगण ने विष्णु भगवान् की माया का स्तवन किया था ॥५४॥

नमो देव्यै महाकाल्यै देवक्यै च नमोनमः ।
महालक्ष्म्यै विष्णुमात्रे राधा देव्यै नमोनमः ॥५५॥
रेवत्यै पुष्पवत्यै च स्वर्णवत्यै नमोनमः ।
कामाक्षायै च मायायै नमो मात्रे नमोनमः ॥५६॥
महावातप्रभावेन महा मेघरवेण च ।
जलधाराभिरुग्राभिर्भयं जातं हि दारुणम् ॥५७॥
तस्माद्भयाद्रक्ष रवि त्वमस्मान्संरक्ष किंकरान् ।
तदा प्रसन्ना सा देवी जलं शान्त तया कृतम् ॥५८॥
अब्दान्तरे मही सर्वा स्थली भूत्वा प्रदश्यते ।
आराच्च शिपिणा नाम हिमाद्रेस्तटभूमयः ॥५९॥
न्यूहस्तत्र स्थितो नाव मारुह्य स्वकुलैस्सह ।
जलान्ते भूमिमागत्य तत्र वासं करोति सः ॥६०॥

मुनिगण ने महा—महाकाली देवी के लिए हम सबका नमस्कार है और देवकी के लिये नमस्कार है, बार-बार नमस्कार है । महालक्ष्मी, विष्णु की माता, राधादेवी के लिए बार-बार हमारा सबका नमस्कार है ॥५५॥ रेवती, पुष्पवती, स्वर्णवती के लिये नमस्कार है ।

कामाक्षा, माया माता के लिये बार बार नमस्कार है ॥५६॥ इस महान् वायु के प्रभाव से और इस महान मेघा के गर्जन से तथा इन परम उग्र जल की धाराओं से दारुणभय उत्पन्न हो गया है। हे भैरवि ! इस भय से तू हम किंकरा की रक्षा कर। उस समय वह देवी प्रसन्न हो गई और उसने जल की वर्षा को नाश कर दिया था ॥५७॥५८। एक ही वर्ष के अन्दर समस्त पृथ्वी स्थली होकर दिखाई देने लगी और शीघ्र ही हिमाद्रि की तटभूमि में सिपिणा नाम का एक स्थान है वहाँ पर अपने कुना के साथ नाव पर सवार हाकर न्यूह वहा पर स्थित था। जल के अन्त में वह भूमि पर उतर आया था और निवास करना है ॥५९॥६०॥



॥ म्लेच्छावश वर्णन ॥

साम्प्रत वतत यो वै प्रलयाते मुनीश्वर।
दिव्यदृष्टिप्रभावेन ज्ञात ब्रूहि तत परम् ॥१॥
न्यूहो नाम स्मृतो म्लेच्छो विष्णुमोह तदाकरोत्।
तदा प्रसन्नो भगवास्तस्य वश प्रवर्द्धित ॥२॥
म्लेच्छभापा कृता तेन वेदवाक्यपराङमुखा।
कलेश्च वृद्धये ब्राह्मी भापा कृत्वाऽपशब्दगाम् ॥३॥
न्यूहाय दत्तवान्देवो बुद्धीशो बुद्धिग स्वयम्।
विलोम च कृत नाम न्यहेन त्रिसुतस्य वै ॥४॥
सिमश्च हामश्च तथा याकूतो नाम विश्रुत।
याकूत सप्तपुत्रश्च जुम्रो माजूज एव स ॥५॥
मादी तथा च यूनानस्तूवलोमसकस्तथा।
तीरासश्च तथा तेपा नामनिर्देश उच्यते ॥६॥
जुम्रा दश कनाञ्जश्च रिफतश्च तजर्रुम।
तन्नाम्ना च स्मृता देशा यूनाद्या ये सुता स्मृता ॥७॥

द्विसहस्रे शताब्दान्ते वुद्धा पुनरथाब्रवीत् ।
सिमवश प्रवक्ष्यामि सिमो ज्येष्ठ स भूपति ॥१३॥
राज्य पचशत वर्ष तेन म्लेच्छेन सत्कृतम् ।
अर्कन्सदस्तस्य सुतश्चतु स्त्रिशच्च राज्यकम् ॥१४॥
चतुश्शत . पुनर्ज्ञे य सिह्लस्तत्तनयोऽभवत् ।
राज्य तस्य स्मृत तत्र षष्ट्युत्तरचतु शतम् ॥१५॥

द्वितीय तनय याम से वे ही चार पुत्र हुए थे । कूश, मिश्र, कूज और कनग्री–ये उनके नाम थे ॥६॥ इस तरह से म्लेच्छो के देश प्रसिद्ध हुए थे । कुश के छै पुत्र कहे गये हैं । वह अथवा हबील, सर्व तोरगम, सवनिका, निमरूह, महाबल ये नाम उनके हुए थे । उनके पुत्र कलन और सिना रोरक कहे जाते हैं ॥१०॥११॥ अक्द, बाबुन, रसना देशक ये उनके नाम थे । इस प्रकार से सूत जी मुनिगण को सुना कर योग निद्रा के वशीभूत हो गये थे ॥१२॥ दो हजार सौ वर्षों के अ त म वे बुद्ध हुए और इसके अनन्तर फिर उन्होने कहा अब में सिम क वश का वर्णन करूँगा सिम सबमें बडा था अतएव वह ही राजा हुआ था । ॥१३॥ उस म्लेच्छ ने पाँच सौ वर्ष पर्यन्त राज्य किया था । अर्कन्सद उसका पुत्र हुआ था । इसने चार सौ बीस वर्ष तक राज्य का शासन अपने हाथ मे रक्खा था । इसके एक पुत्र था जिसका नाम सिह्ल हुआ था । इसका राज्य काल चारसो साठ वर्ष पयन्त बताया गया है ॥१४॥१५॥

इब्रतस्य सुतो ज्ञे य पितुस्तुल्य कृत पदम् ।
फलजस्तस्य तनयश्चत्वारिंशद्वय शतम् ॥१६॥
राज्य कृत तु तस्माच्च रऊ नाम सुत स्मृत ।
सप्तत्रिंशच्च द्विशत तस्य राज्य प्रकीर्तितम् ॥१७॥
तस्माच्च जूज उत्पन्न पितुस्तुल्य कृत पदम् ।
नहूरस्तस्य तनयो वय षष्ट्युत्तर शतम् ।
राज्य चकार नृपतिर्वहुशत्रून्विहिंसयन् ॥१८॥

ताहरस्तस्य तनय पितुस्तुल्य कृत पदम् ।
तस्मात्पुनोऽविरामश्च नहूरो हारनक्षय ॥१६॥
एव तेषा स्मृता वशा नाममात्रेण कीतिता ।
सरस्वत्याश्च शापेन म्लेच्छभाषा महाधमा ॥२०॥
तेषा वृद्धि कलौ चासीत्सक्षेपेण प्रकीर्तिता ।
सस्कृतस्यैव वाणी तु भारत वर्षमुह्यताम् ॥२१॥
अन्यखण्ड गता सैव म्लेच्छा ह्यानदिनोऽभवन् ।
एव ते विप्र कथिता विष्णुभक्तद्विजैस्सह ॥२२॥

इसके पुत्र का नाम इव्रतस्य था जिसने अपने पिता के समान ही पद किया था। उसका पुत्र फनज हुआ था जिसने दो सौ चालीस वर्ष तक राज्य किया था। उससे रुकना मधारी पुत्र की उत्पत्ति हुई थी। उसके राज्य करने का समय दो सौ तैंतीस वर्ष बताया गया है ॥१६॥१७॥ उससे फिर जूज नामक पुत्र उत्पन्न हुआ था जिसने अपने पिता के समान ही अपना सब काम पूर्ण किया था। नहूर उसका पुत्र हुआ जिसकी आयु एक सौ साठ वर्ष की थी। इसने अपने बहुत सारे शत्रुओं का विनाश करते हुए राज्य का शासन चलाया था ॥१८॥ ताहर नाम वाला उसका पुत्र उत्पन्न हुआ था जिसने अपने पिता के ही समान सभी कुछ कार्य करके पद को सँभाला था। इससे अविराम नामधारी पुत्र उत्पन्न हुआ था और दूसरे नहूर एवं हारन हुए थे। इस तरह तीन पुत्र हुए थे ॥१९॥ इस प्रकार से उनके वंश बताये गये हैं और उनके नाम मात्र से ही कहे गये हैं। म्लेच्छों की भाषा को भगवती सरस्वती का शाप हो गया था। इसीलिए यह भाषा महा अधम भाषा कही जाती है। ॥२०॥ उनकी वृद्धि कलियुग में थी जो कि अति संक्षेप से कही गई है। संस्कृत ही की एक वाणी है जिससे भारतवर्ष प्रमुदित हो रहा है ॥२१॥ अन्य खण्ड में गई हुई वही भाषा म्लेच्छा हो गई क्योंकि म्लेच्छ लोगों ने ही उसका आनन्द लिया था। इस प्रकार से हे विप्र! तुम्हारे सामने मैंने सब वर्णन कर दिया है जो कि विष्णु भगवान के परम भक्त द्विज हैं उनके साथ सबका पूर्ण वर्णन हुआ है ॥२२॥

तच्छ्रुत्वा मुनयस्सर्वे विशालाया निवासिन ।
नर नारायण देव सपूज्य विनयान्विता ॥२३॥
ध्यान चक्रर्मुदा युक्ता द्विशत परिवत्सरान् ।
तत्पश्चाद्बोधितास्सर्वे शौनकाद्या मुनीश्वरा ॥२४॥
सध्यातर्पणदेवार्चा कृत्वा ध्यात्वा जनार्दनम् ।
लोमहर्षणमासीन पप्रच्छुर्विनयान्विता ॥२५॥
व्यासशिष्य महाभाग चिर जीव महामते ।
साप्रत वर्तते यो वै राजा तन्मे वद प्रभो ॥२६॥
त्रिसहस्राब्दसप्राप्ते कलौ भार्गवनदन ।
आवन्ते शखनामास्त्रौ साप्रत वर्तते नृप ॥२७॥
म्लेच्छदेशे शकपतिरथ राज्य करोति वै ।
शृणु तत्कारण सर्वे यथा यस्य विवर्धनम् ॥२८॥

श्री व्यास जी ने कहा—विशाला में निवास करने वाले समस्त मुनियो ने यह श्रवण करके नर नारायण देव की पूजा की और परम विनय से अन्वित हुए ॥२३॥ उन समस्त मुनियो ने परम आनन्द के साथ दो सौ वर्ष पर्यंत ध्यान किया था । इसके अनन्तर शौनकादि समस्त मुनीश्वरो को बोध प्राप्त हुआ था ॥२४॥ सन्ध्या तर्पण और देवताओ की अर्चा करके तथा भगवान् जनार्दन का ध्यान करके विनय से युक्त होकर उन मुनियो ने बैठे हुए सूत जी से पूछा था ॥२५॥ हे व्यास जी के शिष्य ! हे महान् भाग्य वाले ! हे महामते! आप चिरकाल तक जीवित रहे । हे प्रभो ! इस समय में जो राजा विद्यमान हो उसके विषय में हमको बताने की कृपा करें ॥२६॥ सूत जी कहा—हे भार्गव नन्दन ! तीन सहस्र वर्ष कलियुग के सम्प्राप्त होने पर इस समय मे आवन्त मे शङ्ख नाम वाला वर्त्तमान है ॥२७॥ म्लेच्छ देश मे शको का पति राज्य शासन कर रहा है । आप सब लोग उसके कारण का श्रवण करो जिस प्रकार से जिसकी वृद्धि हुई है ॥२८॥

द्विसहस्र कलौ प्राप्ते म्लेच्छवशविवर्द्धिता ।
भूमिर्म्लेच्छमयी सर्वा नानापथविवर्द्धिता ॥२९॥

ब्रह्मावर्तमृते तत्र सरस्वत्यास्तटं शुभम्।
म्लेच्छाचार्यश्च मूशाख्यस्तन्मतैः पूरितं जगत् ॥३०॥
देवार्चनं वेदभाषा नष्टा प्राप्ते कलौ युगे।
तल्लक्षणं शृणु मुने म्लेच्छभाषाश्चतुर्विधाः ॥३१॥
व्रजभाषा महाराष्ट्री यावनी च गुरुंडिका।
तासां चतुर्लक्षविधा भाषाश्चान्यास्तथैव च ॥३२॥
पानीयं च स्मृत पानी बुभुक्षा भूख उच्यते।
पानीयं पापडीभाषा भोजनं कक्कनं स्मृतम् ॥३३॥
इष्टिशुद्धरवः प्रोक्त इस्तिनी मसपावनी।
आहुतिर्वै आजु इति ददाति च दधाति च ॥३४॥
पितृपैतरभ्राता च बादरः पतिरेव च।
सेति सा यावनी भाषा ह्यश्वश्चास्पस्तथा पुनः ॥३५॥
जानुस्थाने जैनुशब्दः सप्तसिधुस्तथैव च।
सप्तहिन्दुर्यावनी च पुनर्ज्ञेया गुरुंडिका ॥३६॥

जब दो सहस्र वर्ष कलियुग के प्राप्त हो गये तो यहाँ म्लेच्छो के वश की वृद्धि हुई है। यह समस्त भूमण्डल म्लेच्छो से परिपूर्ण हो गया था और इस वृद्धि के अनेक मार्ग थे ॥२९॥ ब्रह्मावर्त्त मृत मे वहाँ पर सरस्वती नदी का परम शुभ तट है। वहाँ पर ही मूसा नाम वाला म्लेच्छो का आचार्य रहता था। उसके मत से यह समस्त जगत् पूरित हो गया था ॥३०॥ कलियुग के प्राप्त होने पर देवो का अर्चन और वेदो की भाषा यह सब नष्ट हो गये थे। हे मुने ! उसका लक्षण सुनो। म्लेच्छो की भाषा चार प्रकार की है ॥३१॥ व्रजभाषा, महाराष्ट्री भाषा, यावनी भाषा और गुरुण्डिका भाषा ये चार भाषाएँ है। उन चारो की चार लाख प्रकार की भाषाएँ हैं और उसी भाँति अन्य भाषाएँ भी हैं ॥३२॥ पानीय को पानी और बुभुक्षा को भूख कहा जाता हैं। पानीय पापडी भाषा और भोजन को कक्कन कहा गया है॥३३॥ इष्टि शुद्धख कहा गया है और इस्तिनी को मस पावनी, आहुति को आजु और ददाती को

दधाति कहा जाता है ।।३४।। पितृ को पेतर, भ्राता को बादर और पति ही कहा जाता है । वह यावनी भाषा है इसमें अश्व को अास्य जाता है।।३५।। जनु के स्थान मे जैनु शब्द तथा सप्त सिन्धु को सप्त हिन्दु यह यावनी भाषा में कहा जाता है । अब गुरुण्डिका भाषा के विषय में कुछ ज्ञान प्राप्त करना चाहिए ।।३६।।

रविवारे च सडे च फाल्गुने चैव फर्वरी ।
षष्टिश्च सिक्सटी ज्ञेया तदुदाहारमीदृशम् ।।३७।।
या पवित्रा सप्तपुरी तासु हिंसा प्रवर्तते ।
दस्यव शबरा भिल्ला मूर्खा आर्ये स्थिता नरा ।।३८।।
म्लेच्छदेशे बुद्धिमतो नरा वै म्लेच्छधर्मिण ।
म्लेच्छाधीना गुणा सर्वेऽवगुणा आर्यदेशके ।।३९।।
म्लेच्छराज्य भारते च तद्द्वीपेषु स्मृत तथा ।
एव ज्ञात्वा मुनि श्रेष्ठ हरिं भज महामते ।।४०।।
तच्छ्रुत्वा मुनय सर्वे रोदन चक्रिरे बहु ।।४१।।

गुरुण्डिका भाषा मे रविवार के स्थान पर 'सन्डे' का प्रयोग होता है और फाल्गुन के स्थान 'फरवरी' को प्रयुक्त किया करते हैं । षष्टि के स्थान मे 'सिक्सटी' होता है । इसी प्रकार के उसके उदाहरण होते हैं सो जान लेनी चाहिए ।।३७।। जो सात परम पवित्र पुरियाँ मानी गई है उनमे अब हिंसा की प्रवृत्ति दिखाई देती है । इस आर्यों के देश मे दस्युलोग, शबर, भिल्ल, मूर्ख मनुष्य स्थित रहते हैं ।।३८।। म्लेच्छ देश मे बुद्धिमान मनुष्य भी म्लेच्छो के जैसे धर्मों का आचरण करने वाले होते हैं । समस्त गुण म्लेच्छो के ही वहा अधीन होते हैं और इस आर्य देश मे अब अवगुण भरे हुए हैं ।।३९।। भारत मे म्लेच्छो का राज्य है और उसक द्वीपो मे भी उन्ही का राज्य फैला हुआ है। हे मुनियो में श्रेष्ठ ! इस प्रकार से समझकर हे, महामते ! हरि भगवान का भजन करना चाहिए ।।४०।। यह सूत जी का कथन सुनकर समस्त मुनियो ने अत्यधिक रुदन किया था ।।४१।।

———

।। आर्यवर्त मे म्लेच्छो का आगमन ।।

ब्रह्मावर्ते कथ म्लेच्छा न प्राप्ता कारण वद ।
सूत प्राह शृणुष्वेद सरस्वत्या प्रभावत ।।१।।
म्लेच्छा प्राप्ता न तत्स्थाने काश्यपो नाम वद्द्विज ।
कलौ प्राप्ते सहस्राब्दे स्वर्गाप्राप्त सुराज्ञया ।।२।।
आर्यावती च तत्पत्नी दश पुत्रानकल्मषान् ।
काश्यपात्सा लब्धवती तेषा नामानि मे शृणु ।।३।।
उपाध्यायो दीक्षितश्च पाठक शुक्लमिश्रकौ ।
अग्निहोत्री द्विवेदी च त्रिवेदी पाण्ड्य एव च ।।४।।
चतुर्वेदीति कथिता नामतुल्यगुणा स्मृता ।
तेषा मध्ये काश्यपश्च सर्वज्ञानमसन्वित ।।५।।
काश्मीरे प्राप्तवान्सोऽपि जगदम्बा सरस्वतीम् ।
तुष्टाव पूजन कृत्वा रक्तपुष्पैस्तथाक्षतै ।।६।।
धूपैर्दीपैश्च नैवेद्यं पुष्पाजलिसमन्वित ।।७।।

इस अध्याय में आर्यावर्त मे म्लेच्छो के आगमन का कारण और काश्यप ब्राह्मणो के वृत्तान्त का वर्णन किया जाता है। शौनक जी ने कहा—ब्रह्मावर्त में म्लेच्छ लोग कैसे प्राप्त नही हुए इसका क्या कारण था इसे कृपा कर बताइये। सूत जी न कहा—सुनो, यह सरस्वती नदी के प्रभाव स ही ऐसा हुआ था ।।१।। उस स्थान मे म्लेच्छ लोग नही पहुचे थे क्योकि काश्यप नामधारी द्विज वहाँ पर कलियुग के एक सहस्र वर्ष हो जाने पर सुरा की आज्ञा से वहाँ स्वर्ग से प्राप्त हो गया था ।।२।। उस द्विज की पत्नी का नाम आर्यवती था। उसने काश्यप से दश निष्पाप पुत्रो को प्राप्त किया था। अब उन दश पुत्रो के नामो का तुम श्रवण करो ।।३।। उपाध्याय, दीक्षित, पाठक, शुक्ल, मिश्र, अग्निहोत्री, द्विवेदी, त्रिवेदी और पाण्ड्य ये उन दशा के नाम थे ।।४।। चतुर्वेदी भी एक नाम था जो कि नामो के तुल्य ही गुण वाले थे। उन सब म काश्यप परम ज्ञान वाला बुद्धिमान था ।।५।। वह भी फिर काश्मीर म प्राप्त हो

गया था वहाँउसने जगदम्बा सरस्वती का रक्त पुष्प और अक्षतो द्वारा पूजन करके उसे सन्तुष्ट किया था ॥६॥ धूप और दीप तथा नैवेद्य के साथ पुष्पाञ्जलि से वह समन्वित था ॥७॥

मात शकरदयि ते मयिते करुणा कुतो नास्ति ।
भोऽसि त्व जगदवा जगत किं मा वहिर्न यसि ॥८॥
देवि त्व सुरहेतोर्धर्मद्रोहिणमाशु हसि मात ।
उत्तमसस्कृतभापा त्व कुरु म्लेच्छाश्च मोहये शीघ्रम् ॥९॥
अव त्व वहुरूपा हुकारा द्धूम्रलोचन हसि ।
भीम दुर्गा दैत्य हत्वा जगता सुख नयसि ॥१०॥
दभ मोह घोर गर्वं हत्वा सदा सुख शेपे ।
बोधय मातर्जगतो दुष्टाम्रष्टान्कुरु त्व वै ।
तदा प्रसन्ना सा देवी भो मुनेस्तस्य मानसे ॥११॥
वास कृत्वा ददौ ज्ञान मिश्रदेशे मुनिर्गत ।
सर्वान्म्लेच्छान्मोहयित्वा कृत्वाथ तान्द्विजन्मन ॥१२॥
सख्यादशसहस्र च नरवृन्द द्विजन्मनाम् ।
द्विसहस्र स्मृता वैश्या शेपा शूद्रसुता स्मृता ॥१३॥
तै साद्धंमार्यदेशे स सरस्वत्या प्रसादत ।
अवसद्धै मुनि श्रेष्ठो मुनिकार्यरत सदा ॥१४॥

काश्यप ने कहा—हे माता, हे शङ्कर की पत्नी ! मेरे ऊपर आपकी करुणा क्यो नही होती है ? आप तो इस समस्त जगत् की अम्बा हैं क्या इस जगत से भी मुझे कहीं बाहर रखना चाहती है ? ॥८॥ हे देवी ! हे माता ! आप देवो के हित सम्पादन करने के लिये धर्म के द्रोह करने वाले को शीघ्र ही मार देती हैं। आप सर्वोत्तम सस्कृत भापा का विस्तार आप करो और इन म्लेच्छो को शीघ्र ही मोहित कर दो ॥९॥ हे अम्ब ! आपके वहुत से रूप हैं। आप तो एक हुङ्कार से ही धूम्र लोचन दैत्य का वध कर देती हैं। दुर्गा भीम दैत्य का हनन कर जगत् को सुख

किया करती हैं ॥१०॥ दम्भ, मोह, घोर गर्व का हनन करके सदा सुख पूर्वक शयन करती हैं। हे माता ! जगत् को ज्ञान प्रदान करो और आप इन समस्त दुष्टों को नष्ट करो इस प्रकार से स्तवन करने पर उस समय वह देवी परम प्रसन्न हुई और उसने फिर उसी मुनि के मानस मे वास करके ज्ञान का प्रदान किया था। वह मुनि मिश्र देश को चले गये थे। समस्त म्लेच्छों को मोहित कर उन्हे द्विजन्मा किया था ॥११॥१२॥ दश सहस्र नरों का वृन्द था उनमे द्विजन्माओं की संख्या दो सहस्र थी शेष वैश्य थे और शूद्र सुत बनाये गये हैं ॥१३॥ उनके साथ उस आर्य देश मे वह सरस्वती के प्रसाद से वहाँ बसा था। वह मुनियों मे श्रेष्ठ सदा मुनियों के कार्यों में ही रत रहा करता था ॥१४॥

तेषामार्यसमूहानां देव्याश्च वरदानतः ।
वृद्धिर्भवति बहुला चतुष्कोटिनराः स्त्रियः ॥१५॥
तेषां पुत्रांश्च पौत्राश्च तद्भूपः काश्यपो मुनिः ।
विंशोत्तरशतं वर्षं तस्य राज्यं प्रकीर्तितम् ॥१६॥
राज्यपुत्राख्यदेशे च शूद्राश्चाष्टसहस्रकाः ।
तेषां भूपश्चार्यपृथुस्तस्माज्जातस्स मागधः ॥१७॥
मागधं नाम तत्पुत्रमभिषिच्य ययौ मुनिः ।
इति श्रुत्वा भृगुश्रेष्ठः शौनको हर्षमागतः ॥१८॥
सूतं पौराणिकं नत्वा विष्णुध्यानपरोऽभवत् ।
पुनश्च श्रुतिवर्षान्ते बोधिता मुनयस्तथा ॥१७॥
नित्यनैमित्तिकं कृत्वा पप्रच्छुरिदमादरात् ।
लोमहर्षण मे ब्रूहि के राजानश्च मागधात् ।
कलौ राज्यं कृतं यैस्तु व्यासशिष्य वदस्वनः ॥२०॥

उन आर्यों के समूहों मे देवी के वरदान से वृद्धि बहुत अधिक हुई और चार करोड़ पुरुष तथा स्त्रियाँ थे ॥१५॥ उन स्त्री और पुरुषों के पुत्र तथा पौत्र भी थे। उन सबका भूप काश्यप मुनि हुआ था। एक सौ बीस वर्ष तक उस काश्यप का राज्य-शासन करने का काल कहा गया है ॥१६॥ राज्य पुत्र नाम

वाले देश मे आठ सहस्र शूद्र थे और उनका राजा आर्य पृथु था। उससे मागध उत्पन्न हुआ था ॥१७॥ उसके पुत्र मागध का राज गद्दी पर पर अभिषेक करके मुनि चला गया था। यह श्रवण कर भृगु श्रेष्ठ शौन को परम हर्ष उत्पन्न हुआ था ॥१८॥ फिर उसने पौराणिक सूत जी को प्रणाम करके वह विष्णु के ध्यान मे परायण हो गया था और फिर श्रुति वर्ष के अन्त मे मुनियो को बोधित किया था ॥१९॥ मुनियो ने अपना नित्य किये जाने वाला और निमित्त को लेकर किय जाने वाला समस्त कर्म पूर्ण करके सूत जी से परम आदर के साथ पूछा था—हे लोमहर्षण ! मागध से कौन राजाओ ने कलियुग में राज्य किया था। हे व्यास जी के शिष्य ! आप यह सब बतलाइये ॥२०॥

मागधो मागधे देशो प्रातवान्काश्यपात्मज ॥२१॥
पितृराज्य स्मृत तेन स्वार्यदेश पृथक्कृत ।
पाचालात्पूर्वतो देशो मागध परिकीर्तित ॥२२॥
आग्नेय्या च कलिंगश्च तथावन्तस्तु दक्षिणे।
आनर्तदेशो नैऋंत्या सिंधुदेशस्तु पश्चिमे ॥२३॥
वायव्या कैकयो देशो मद्रदेशस्तथोत्तरे।
ईशाने चैव कोणिन्दश्चार्यदेशश्च तत्कृत ॥२४॥
देशनाम्ना तस्य सुता मगधस्य महात्मन ।
तेभ्योशानि प्रदत्तानि तत्पश्चात्क्रतुमुद्वहन् ॥२५॥
बलभद्रस्तदा तुष्टो यज्ञभावेन भावित ।
शिशुनाग क्रतोर्ज्जातो बलभद्रांशसभव ॥२६॥
शतवर्ष कृत राज्य काकवर्मा सुतोऽभवत् ।
तद्राज्य नवतिवर्ष क्षेमधर्मा ततोऽभवत् ॥२७॥
अशीतिवर्ष राज्य तत्क्षेत्रौजास्तत्सुतोऽभवत् ।
दशहीन कृत राज्य वेदमिश्रस्ततोऽभवत् ॥२८॥

श्री सूत जी ने कहा—काश्यप का पुत्र मागध मागध देश मे प्राप्त हुआ था। उसने पिता के राज्य का स्मरण किया और आर्य देश

को पृथक किया था ॥२१॥ पाचाल से पूर्व का देश ही मागध देश कहा गया है ॥२२॥ कलिङ्ग देश दक्षिण दिशा में है और अवन्त देश दक्षिण दिशा में है। आनर्त्त देश नैर्ऋत्य कोण में है और सिन्धु देश पश्चिम दिशा में है ॥२३॥ वायव्य कोण में कैकण नाम वाला देश स्थित है तथा भद्र देश उत्तर दिशा में है। ईशान दिशा में कौणिन्द देश स्थित है और माय देश तरद्भुत है ॥२४॥ उस महात्मा मगध के देश व नाम पुत्र थे। उनके लिये अंश दिये गये थे। इसके पश्चात् उन्होंने क्रतु का उद्वहन किया था ॥२५॥ यज्ञ भाव से परम भावित होकर भगवान बलभद्र सन्तुष्ट हो गये थे। क्रतु से बलभद्र के अंश से सम्भव शिशु नाग उत्पन्न हुआ था ॥२६॥ उसने एक सौ वर्ष तक राज्य का शासन किया था। उसका पुत्र काक वर्मा ने जन्म ग्रहण किया था। उसका राज्य काल नब्बे वर्ष का था। इसके पश्चात् उसका पुत्र क्षेमधर्मा उत्पन्न हुआ ॥२७॥ इसने अस्सी वर्ष पर्यन्त राज्य शासन किया था फिर उसका क्षेत्रौजा नामधारी पुत्र उत्पन्न हुआ था। इसने अपने पिता के राज्य काल से दश वर्ष कम राज्य किया था। इसका पुत्र वेदमिश्र उत्पन्न हुआ था ॥२८॥

दशहीनं कृतं राज्यं ततोऽजातरिपुस्सुत ।
दशहीनं कृतं राज्यं दर्भकस्तत्सुतोऽभवत् ॥२९॥
दशहीनं कृतं राज्यमुदयाश्वस्ततोऽभवत् ।
दशहीनं कृतं राज्यं नन्दवर्धन एव तत् ॥३०॥
दशहीनं कृतं राज्यं तस्मान्नन्दसुतोऽभवत् ।
पितृतुल्यं कृतं राज्यं शूद्रीगर्भसमुद्भव ॥३१॥
नन्दराज्ञः प्रनन्दश्च दशवर्षं कृतं पदम् ।
तस्माज्जातः परानन्दः पितृतुल्यं कृतं पदम् ॥३२॥
तस्माज्जातस्समानन्दो विंशोऽब्दं कृतं पदम् ।
तस्माज्जातः प्रियानन्दः पितृतुल्यं कृतं पदम् ॥३३॥
देवानन्दस्तस्य सुतः पितृतुल्यं कृतं पदम् ।
यज्ञभङ्गः सुतस्तस्मात्पितुरर्द्धं कृतं पदम् ॥३४॥

मौर्यानन्दस्तस्य सुतः पितुस्तुल्य कृत पदम्।
महानन्दस्ततो जात पितुस्तुल्य कृत पदम् ॥३५॥

वेदमिश्र ने भी पिता से दश वर्ष हीन राज्य किया था। इसके पश्चात् इसका पुत्र प्रजातीरपु हुआ। इसका राज्य काल दशहीन था। फिर इसने दर्भक नामक पुत्र की उत्पत्ति हुई। इसने दशहीन राज्य किया था। फिर इससे उदयाश्व का जन्म हुआ। इसका भी दशहीन राज्य काल था। फिर नन्दवर्धन उत्पन्न हुआ। इसका दश वर्ष कम राज्य काल था। इससे नन्द सुत की उत्पत्ति हुई जिसने अपने पिता के समान ही राज्य किया था। यह शूद्री के गर्भ से सम्भूत हुआ था ॥२९॥ ३०॥३१॥ नन्द से प्रनन्द की उत्पत्ति हुई थी। इसने दश वर्ष ही पद किया था। इससे परानन्द समुत्पन्न हुआ था जिसने कि अपने पिता के समान ही पद किया था अर्थात राज्य शासन किया था ॥३२॥ इससे समानन्द का जन्म हुआ था जिसने विंशोदद्वर्ष पर्यन्त राज्य किया था। इससे प्रियानन्द ने जन्म ग्रहण किया था जिसने अपने पिता के बराबर ही पद किया था ॥३३॥ फिर देवानन्द उसकापुन उत्पन्न हुआ था। इसने पिता केतुल्य ही राज्य किया था। उसका आत्मज यज्ञभङ्ग नामक हुआ था जिसने अपने पिता से आधे समय तक पद को सँभाला था ॥३४॥ इसके मौर्यानन्द नामधारी पुत्र ने जन्म ग्रहण किया था जिसने बिल्कुल अपने पिता के तुल्य ही पद किया था। उससे फिर महानन्द समुत्पन्न हुआ जिसका राज्य काल अपने पिता के तुल्य ही हुआ था ॥३५॥

एतस्मिन्नेव काले तु कलिना सस्मृतो हरि ।
काश्यपादुद्भवो देवो गौतमो नाम विश्रुत ॥३६॥
बौद्धधर्मं च सस्कृत्य पट्टणे प्राप्तवान्हरि ।
दशवर्ष कृत राज्य तस्माच्छाक्यमुनि स्मृत ॥३७॥
विंशद्वर्ष कृत राज्य तस्माच्छुद्धोदनोऽभवत् ।
त्रिंशद्वर्ष कृत राज्य शाक्यसिहस्ततोऽभवत् ॥३८॥

शताद्रौ द्विसस्रेऽब्दे व्यतीते सोऽभवन्नृप ।
कले प्रथमचरणे वेदमार्गो विनाशित ॥३६॥
षष्टिवर्षं कृत राज्य सर्वबौद्धा नरा स्मृता ।
नरेषु विष्णुर्नृपतिर्यथा राजा तथा प्रजा ॥४०॥
विष्णोर्वीर्यानुसारेण जगद्धर्म प्रवर्त्तते ।
तस्मिन्हरौ ये शरण प्राप्ता माया पतौ नरा ॥४१॥
अपि पापसमाचारा मोक्षवत प्रकीर्तिता ।
शाक्यसिंहाद्बुद्धसिंह पितुरर्द्धं कृत पदम् ॥४२॥

इसी काल मे कलि ने हरि का सस्मरण किया । काश्यप से उद्भव देव गौतम नाम से प्रसिद्ध हुए ॥३६॥ इनने बौद्ध धम का सस्कार करके हरिपट्टण मे प्राप्त हुए । दशवर्ष पर्यन्त वहाँ राज्य किया और फिर उनसे शाक्य मुनि स्मृत हुए ॥३७॥ इन्होने बीस वर्ष तक राज्य किया था । इनसे शुद्धोदन हुए । इन्होने तीस वर्ष तक राज्य किया था । इनसे शाक्य सिंह समुद्भूत हुए ॥३८॥ शताद्रि मे दो सहस्र वर्ष व्यतीत हो जाने पर वह नृपति हुए थे । कलि के प्रथम चरण म ही वेद का जो मार्ग था वह विनाशित हो गया था ॥३६॥ इस तरह इन समस्त बौद्ध नरो ने साठ वर्ष तक राज्य किया था और ये नर कहे गये है । नरो मे विष्णु ऐसे नृपति थे कि जैसे राजा थे वैसी ही प्रजा भी थी ॥४०॥ विष्णु के वीर्य के अनुसार से ही जगद्धर्म प्रवृत्त होता है । उस हरि के जो शरण में प्राप्त हुए हैं जोकि हरि माया के पति हैं, वे नर पाया चरण करने वाले भी हैं तो भी हरि की शरणागति के प्रभाव से मोक्ष वाले कहे गये हैं । शाक्य सिंह से बुद्धसिंह हुआ जिसने अपने पिता से आधे समय तक ही राज्य किया था ॥४१॥४२॥

चन्द्रगुप्तस्तस्य सुत पौरसाधिपते सुताम् ।
सुलूवस्य तयोद्वाह्य यावनीबौद्धतत्पर ॥४३॥
षष्टिवर्षं कृत राज्य विंदुसारस्ततोऽभवत् ।
पितृस्तुल्य कृत राज्यमशोकस्तनयोऽभवत् ॥४४॥

एतस्मिन्नेव काले तु कान्यकुब्जो द्विजोत्तम ।
अर्बुदं शिखरं प्राप्य ब्रह्महोममथाकरोत् ॥४५॥
वेदमन्त्रप्रभावाच्च जाताश्चत्वारिक्षत्रिया ।
प्रमरस्सामवेदी च चपहानिर्यजुर्विद ॥४६॥
त्रिवेदी च तथा शुक्लोथर्वा स परिहारक ।
ऐरावतकुले जातान्गजानारुह्यते पृथक् ॥४७॥
अशोकं स्ववशं चक्रुस्सर्वे बौद्धा विनाशिता ।
चतुर्लक्षा स्मृता बौद्धा दिव्यशस्त्रैः प्रहारिता ॥४८॥
अवन्ते प्रमरो भूपश्चतुर्योजनविस्तृताम् ।
अम्बावती नाम पुरीमध्यास्य सुखितोऽभवत् ॥४९॥

इसके पुत्र का नाम चन्द्रगुप्त था जिसने पौरसाधिपति सुलूव की पुत्री के साथ विवाह किया था और यावनी बौद्ध तत्पर हो गया था। इसने साठ वर्ष पर्यन्त राज्य का शासन किया था। इसके बिन्दुसार नामक पुत्र उत्पन्न हुआ था। इसने पिता के तुल्य ही राज्य किया था। इसके सम्राट अशोक समुत्पन्न हुआ था ॥४३॥४४॥ इसी समय मेंकान्य कुब्ज द्विज श्रेष्ठ ने अर्बुद की शिखर पर जाकर ब्रह्म होम किया था ॥४५॥ वेदों के मन्त्रों के प्रभाव से चार क्षत्रिय उत्पन्न हुए थे। प्रमर, साम वेदी, चपहानि और यजुर्विद। और त्रिवेदी तथा शुक्ल *अथवा वह परिहारक था। इनके द्वारा ऐरावत के कुल में उत्पन्न* गजों पर पृथक् आरोहण किया जाता था ॥४६॥४७॥ इन्होंने अशोक को अपने वश में कर लिया था और समस्त बौद्ध विनाशित कर दिये थे। चार लाख की संख्या में बौद्ध बताये गये हैं। ये सभी दिव्य शस्त्रों के द्वारा प्रहारित कर *दिये गये थे ॥४८॥ अवन्त देश में प्रमर भूप था जो चार योजन के* विस्तार वाली अम्बावती नाम की पुरी में अधिष्ठित होकर बहुत ही सुखित हुआ था ॥४९॥

।। कलिंजर अजमरपुर आदि वर्णन ।।

चित्रकूटगिरेर्देशे परिहारो महीपति ।
कलिजरपुर रम्यमक्रोशायतन स्मृतम् ।।१।।
अध्यास्य बौद्धहता सुखितोभवदूर्जित ।
राजपुत्राख्यदेशे च चपहानिमहीपति ।।२।।
अजमेरपुर रम्य विधिशोभासमन्वितम् ।
चातुर्वर्ण्ययुत दिव्यमध्यास्य सुखितोऽभवत् ।।३।।
शुक्लो नाम महीपालो गत आनतऽमण्डले ।
द्वारका नाम नगरीमध्यास्य सुखितोऽभवत् ।।४।।
तेषामग्न्युद्भवाना च ये भूपा राज्यसत्कृता ।
तान्मे ब्रूहि महाभाग सूतो वाक्यमथाब्रवीत् ।।५।।
गच्छध्व ब्राह्मणा सव योगनिद्रावशो ह्यहम् ।
तच्छ्रुत्वा मुनय सर्वे विष्णोर्ध्यान प्रचक्रिरे ।।६।।
पूर्णे द्व च सहस्रान्ते सूतो वचनमब्रवीत् ।
सप्तत्रिंशशते वर्षे दशाब्दे चाधिके कलौ ।।७।।

इस अध्याय म कलिजरपुर अजमरपुर और द्वारका नगरियो मे प्रमर-चप हानि तथा शुक्लो की स्थिति का वर्णन किया जाता है । श्री सूतजी ने कहा—चित्रकूट गिरि के देश मे परिहार नाम वाला राजा था । वहाँ कलिंजर-पुर परम रम्य और मक्रोशायतन कहा गया है ।।१।। वह बौद्धो का हनन करने वाला वहाँ निवास करके ऊर्जित सुखित हुआ था । और राजपुत्र नामक देश मे चपहानि महीपति हुआ था ।।२।। अजमेरपुर अत्यन्त रमणिक था जो विधि शोभा से पूर्ण तथा समन्वित था । यह पुर चारों वर्णों से युक्त एव दिव्य था । इसम निवास करके परम सुखित हुआ था ।।३।। शुक्ल नामधारी राजा आनत्त मण्डल मे चला गया था । वह द्वारका नाम नगरी म निवास करके परम सुखित हुआ था ।।४।। शौनक ने कहा—उस अग्नि से उद्भवा थे जो राजा राज्य सत्कृत थे, हे महाभाग ! आप उनके विषय म हमको बतलाइये । सूतजी ने यह

वचन कहा—हे ब्राह्मणो ! अब आप चले जाओ। मैं योगनिद्रा के वशीभूत हो गया हूँ। यह सुनकर समस्त मुनियो ने भगवान् विष्णु का ध्यान किया था। ॥५॥६॥ पूरे दो सहस्र वर्ष के पूर्ण हो जाने पर सूतजी ने यह वचन कहे— सैंतीस सौ दश वर्ष कलियुग के अधिक हो जाने पर प्रमर नामक राजा ने छैं वर्ष तक राज्य किया था ॥७॥

प्रमरो नाम भूपाल कृत राज्य च षट्समा ।
महामदस्तनो जात पितुरर्घं कृत पदम् ॥८॥
देवापिस्तनयस्तस्य पितुस्तुल्य कृत पदम् ।
देवदूतस्तस्य सुत पितुस्तुल्य स्मृत पदम् ॥९॥
तस्माद्गधर्वसेनश्च पचाशदब्दभूपदम् ।
कृत्वा च स्वसुत शखमभिषिच्य वन गत ॥१०॥
शखेन तत्पद प्राप्त राज्य त्रिंशत्समा कृतम् ।
देवागना वीरमती शक्रेण प्रेषिता तदा ॥११॥
गधर्वसेन सप्राप्य पुत्ररत्नमजीजनत् ।
सुतस्य जन्मकाले तु नभस पुष्पवृष्टय ॥१२॥
पेतुर्दुदुंभयो नेदुर्वाति वाता सुखप्रदा ।
शिवदृष्टिर्द्विजो नाम शिष्यैस्सार्द्ध वन गत ॥१३॥
विशाद्धि कमयोग च समाराध्य शिवोऽभवत् ।
पूर्णे त्रिशच्छते वर्षे कलौ प्राप्ते भयकरे ॥१४॥

इससे महामह नामक पुत्र की उत्पत्ति हुई जिसने अपने पिता के समय से आधे समय तक ही पद किया था। ८। उसका पुत्र देवापि हुआ जिसने अपने पिता के समान ही राज्य किया था। इसका पुत्र देवदूत नामधारी उत्पन्न हुआ था। इसने पितृतुल्य ही पद किया था। इससे गधवसेन की उत्पत्ति हुई थी। इसका राज्यकाल पचास वर्ष पर्यन्त रहा था। इस राजा ने अपने पुत्र शङ्ख का राज्यासन पर अभिषेक करके वन में प्रस्थान किया था ॥९॥१०॥ राजा शङ्ख

मे राजा होने के पद को प्राप्त करके तीस वर्ष पर्यन्त राज्य था। उस समय वीरमती नाम वाली एक देवाङ्गना इन्द्र के द्वारा वहाँ प्रेषित की गई थी ॥११॥ उसने गन्धर्व सेन के साथ रहकर एक पुत्र रत्न को जन्म दिया था। इस पुत्र का जिस समय जन्म भूमण्डल मे हुआ था उस वक्त आकाश से पुष्पों की वर्षा हुई थी ॥१२॥ दुन्दुभियाँ बजने लगी थी और परम सुख प्रदान करने वाली वायु बह रही थी। इसका नाम शिवदृष्टि द्विज था जोकि अपने शिष्यों के साथ वन मे चला गया था ॥१३॥ वहाँ बीस वर्ष पर्यन्त इसने कर्मयोग का साधन किया था और शिव का स्वरूप धारण किया था। इस समय तीन सौ वर्ष भयङ्कर कलियुग के प्राप्त हो गये थे ॥१४॥

शकाना च विनाशार्थमार्यधर्मविवृद्धये ।
जातश्शिवाज्ञया सोऽपि कैलासाद्गुह्यकालयात् ॥१५॥
विक्रमादित्यनामानं पिता कृत्वा मुमोद ह ।
स बालोऽपि महाप्राज्ञः पितृमातृप्रियकरः ॥१६॥
पञ्चवर्षे वय प्राप्ते तपसोऽर्थे वनं गतः ।
द्वादशाब्दं प्रयत्नेन विक्रमेण कृतं तप ॥१७॥
पश्चादम्बावती दिव्या पुरी यातः श्रियान्वित ।
दिव्य सिंहासनं रम्य द्वात्रिंशन्मूर्तिसंयुतम् ॥१८॥
शिवेन प्रेषित तस्मै सोपि तत्पदमग्रहीत् ।
वैतालस्तस्य रक्षार्थ पार्वत्या निर्मितो गतः ॥१९॥
एकदा स नृपो वीरो महाकालेश्वरस्थलम् ।
गत्वा सम्पूजयामास देवदेवं पिनाकिनम् ॥२०॥
सभा धर्ममयी तत्र निर्मिता व्यूहविस्तरा ।
नानाधातुकृतस्तम्भा नानामणिविभूषिता ॥२१॥

शकों के विनाश करने के लिये और आर्यों के धर्म की वृद्धि करने के लिए वह भी गुह्यकों के आलय कैलास से शिव की आज्ञा प्राप्त कर ही यहाँ

समुत्पन्न हुआ था ॥१५॥ पिता ने इसका नाम राजा विक्रमादित्य रक्खा था। और उसे परम हर्ष हुआ था। वह बालक की अवस्था में ही महान् बुद्धिमान् पण्डित हुआ था और अपने माता-पिता का अत्यन्त प्रियङ्कर था ॥१६॥ जब इसकी पाँच वर्ष की आयु हो गई थी तभी यह तपस्या करने के लिए वन में चला गया था। । वहा इस विक्रमादित्य ने बारह वर्ष तक बड़े ही प्रयत्न से तप किया था ॥१७॥ इसके अनन्तर वह श्री से समन्वित होकर उस दिव्य अम्बावती पुरी म गया था। एक परम सुन्दर एव दिव्य बत्तीस मूर्त्तियों से युक्त सिंहासन उसके लिए शिव ने भेजा था और उसने उसे ग्रहण किया था। उसकी रक्षा करने के लिए पार्वती ने वैताल को निमित्त करके प्रेषित किया था ॥१८॥१९॥ एकबार वह परमवीर राजा महाकालेश्वर के स्थल पर जाकर देवों के भी देव भगवान् शिव की पूजा करने को गया था ॥२०॥ वहाँ व्यूह विस्तार वाली एक धर्ममयी सभा का निर्माण किया गया था जिसमें अनेक धातुओं के स्तम्भ बनाये गये थे जो कि विभिन्न तरह की मणियों से विभूषित किए गये थे ॥२१॥

नानाद्रुमलताकीर्णा पुष्पवल्लीभिरन्विता ।
तत्र सिंहासन दिव्य स्थापित तेन शौनक ॥२२॥
आहूय ब्राह्मणाग्मुख्या वेदवेदागपारगान् ।
पूजयित्वा विधानेन धर्मगाथामथाऽशृणोत् ॥२३॥
एतस्मिनन्तरे तत्र वैतालो नाम देवता ।
स कृत्वा ब्राह्मण रूप जयाशीभि प्रशस्त तम् ॥२४॥
उपविश्यासने विप्रो राजनमिदमब्रवीत् ।
यदि ते श्रवणे श्रद्धा विक्रमादित्यभूपते ॥२५॥
वर्णयामि महाख्यानमितिहाससमुच्चयम् ॥२६॥

यह सभा अनेक प्रकार के वृक्षों से समाकीर्ण था और विभिन्न पुष्पों से समन्वित वल्लियों से युक्त थी। हे शौनक ! वहीं पर ही वह दिव्य सिंहासन उसने स्थापित किया था ॥२२॥ वेदों और वेद के अङ्ग-शास्त्रों के महा मनीषियों एवं

पारङ्गत पण्डित मुख्य ब्राह्मणो का वहाँ समाह्वान करके उनकी पूजा की और विधि विधान से उसने धर्म की गाथाओ का वहाँ श्रवण किया था ॥२३॥ इसी बीच मे वहाँ पर वैताल नाम वाला देवता ने ब्राह्मण का रूप धारण करके जय के आशीर्वादो से उसकी प्रशसा की थी ॥२४॥ वह विप्र आसन पर स्थित होकर राजा से यह बोला—हे विक्रमादित्य नृप ! यदि आपकी श्रवण करने मे बहुत ही श्रद्धा है तो मुझसे श्रवण करो, मैं एक इतिहासो के समुच्चय स्वरूप महान् आख्यान का वर्णन करता हू ॥२५॥२६॥



॥ पद्मावतीकथावर्णनम् ॥

इत्युक्तस्स तु वैतालो महाकालेश्वरस्थित ।
शिव मनसि सस्थाप्य राजानमिदमब्रवीत् ॥१॥
विक्रमादित्यभूपाल श्रृणु गाथा मनोरमाम् ।
वाराणसी पुरी रम्या महेशो यत्र तिष्ठति ॥२॥
चातुर्वर्ण्यप्रजा यत्र प्रतापमुकुटो नृप ।
महादेवी च महिषी धर्मज्ञस्य महीपते ॥३॥
तत्पुत्रो वज्रमुकुटो मन्त्रिण सुतवल्लभा ।
षोडशाब्देऽस्य सप्राप्ते हयारूढो वन गत ॥४॥
अमात्यतनयश्चैव बुद्धिदक्ष इति श्रुत ।
हयारूढो गत सार्धं समानवयसा वने ॥५॥
स दृष्ट्वा विपिन रम्य मृगपक्षिसमन्वितम् ।
मुमोद वज्रमुकुट कामाशयवश गत ॥६॥
तत्र दिव्य सरो रम्य नानापक्षिनिनादितम् ।
तस्य कूल शिवस्थान मुनिवृ दै प्रपूजितम् ॥७॥

इस अध्याय मे पद्मावती की कथा का वर्णन किया जाता है । श्री सूत

जी ने कहा—इस प्रकार से कहे गये वैताल ने जोकि महाकालेश्वर मे स्थित था, भगवान् शिव को मन म सस्थापित करके राजा से यह वचन बोले—॥१॥ हे भूपालविक्रमादित्य ! अब तुम एक परम मनोरथ गाथा का श्रवण करो। वाराणसी पुरी बहुत ही रम्य है जहाँ कि महेश स्वय स्थित रहा करते हैं ॥२॥ वहाँ प्रजा म चारो वर्णों के लोग हैं और वहाँ का प्रताप मुकुट नाम वाला राजा था। इस धर्म के ज्ञाता महीपति की महादेवी नाम वाली रानी थी ॥३॥ उसके पुत्र का नाम वज्रमुकुट था और उसके मन्त्रीगण उस सुत के परम प्रिय थे। जब वह वज्रमुकुट सोलह वर्ष की आयु वाला हो गया तो उस समय अश्व पर आरोहण करके वन को गया था ॥४॥ अमात्य (मन्त्री) का पुत्र बुद्धिदक्ष था, वह भी अश्व पर आरूढ होकर साथ ही म वन को गया था। ये दोनो समान ही उम्र वाले थे ॥५॥ उस राजकुमार ने मृग और पक्षियो से समन्वित सुन्दर वन को देखा और परम प्रसन्नता प्राप्त की थी। वहाँ फिर वह वज्रमुकुट नामक राजकुमार कामाशय वशीभूत हो गया था ॥६॥ वहाँ वन मे एक अत्यन्त रम्य एव परम दिव्य सरोवर था जो कि विभिन्न प्रकार के सुन्दर पक्षियो के निनाद से युक्त हो रहा था। उस सर के तट पर एक भगवान् शिव का स्थान था जो कि मुनियो के समूहो के द्वारा पूजित था ॥७॥

दृष्ट्वा तत्र गतो वीरो परमानन्दमापतु।
एतस्मिन्नतरे भूप कर्णाटकभूपते ॥८॥
दन्तवक्त्रस्य तनया नाम्ना पद्मावती मता।
कामदेव नमस्कृत्य कामिनी कामरूपिणी ॥९॥
चिक्रीड सखिभि क्रिडा सरोमध्ये मनोहरा।
तदा तु वज्रमुकुटो मन्दिरादागतो बहि ॥१०॥
दृष्ट्वा पद्मावती बाला तुल्यरूपगुणान्विताम्।
मूर्च्छित पतितो भूमौ सा दृष्ट्वा तु मुमोह वै ॥११॥
प्रबुद्धो वज्रमुकुटो मा पाहि शिवशङ्कर।
इत्युक्त्वा भूपतनय पुनर्बाला ददर्श ह ॥१२॥

शिरस पद्मकुसुम सा गृहीत्वा तु कर्णयो ।
कृत्वा चखान दशनै पादयोर्दधती पुन ॥१३॥
पुनर्गृहीत्वा तत्पुष्प हृदये सप्रवेशितम् ।
इति भाव च सा कृत्वाऽऽलिभि सार्वं ययौ गृहम् ॥१४॥

उस शिवालय को देखकर वे दानो युवक वहाँ पहुच गये और उन वीरो को परम अधिक आनन्द की प्राप्ति हुई थी । हे भूप ! इसी बीच मे वहाँ पर करणाटक के राजा द तवक्त्र की पद्मावती नाम वाली पुत्री वहाँ आई । वह कामिनी का सहपिणी थी । उसने कामदेव को नमस्कार किया और परम सुन्दरी वह अपनी सखी-सहेलियो के साथ उस सरोवर के मध्य मे क्रीडा करने लगी । उस समय मे राजकुमार बज्रमुकुट मन्दिर से बाहिर आ गया था ।।८।। ।।९।।१०।। उसने गुण और रूप मे समान उस पद्मावती बाला को देखा तो वह मूर्च्छित होकर भूमि पर गिर गया था । वह पद्मावती भी उसे देखकर अत्यन्त मोहित हो गई थी ।।११।। कुछ क्षण के पश्चात् जब बज्रमुकुट को होश हुआ तो वह प्रबुद्ध होकर कहने लगा—हे शिवशङ्कर ! मेरी रक्षा करो । इतना कहकर वह फिर उसी बाला को देखने लगा ।।१२।। उस बाला ने शिर से पद्म के पुष्प को लेकर कानो मे किया और फिर पादो मे करती हुई दबानो से चाबा था और फिर उस पुष्प को लेकर हृदय मे प्रवेशित कर लिया था । इस प्रकार के भाव को उसने करके वह फिर अपनी सखियो के साथ गृह को चली गई थी ।।१३।।१४।।

तीर्थीयं च सम पित्रा सप्राप्ता गिरिजावने ।
तस्या गताया स नृपो मारबाणेन पीडित ॥१५॥
महती मानसी पीडा प्राप्तवान्मोहमागत ।
उन्मादीव ततो भूत्वा खाद्यपानविवर्जित ॥१६॥
ध्यात्वा पद्मावती बाला मौनव्रतमचीकरत् ।
तदा कोलाहलो जात प्रतापमुकुटातिके ॥१७॥

कुमार का दशा प्राप्त इति हाहेति सर्वत ।
त्रिदिनाते मन्त्रिसुतो बुद्धि दक्षो विशारद ।१८॥
अब्रवीद्वज्रमुकुट सत्य कथय भूपते ।
स प्राह् कारण सर्व यथा जात सरोवरे ॥१९॥
तच्छ्रु त्वा बुद्धिदक्षश्च विहस्याह् महीपतिम् ।
महाकष्टेन स देवी मित्रत्व हि गमिष्यति ॥२०॥
करणाटकभूपस्य दतवक्त्रस्त सा सुता ।
पद्मावतीति विख्याता दधती त्वा स्वमानसे ॥२१॥

फिर तीर्थों के लिए पिता के साथ गिरिजा के वन में प्राप्त हुई थी । उसके चले जाने के बाद वह नृप काम के बाण से अत्यन्त पीडित हो गया था । ॥१५॥ बडी भारी मानसिक पीडा को वह प्राप्त हो गया और उसे मोह हो गया था । इसके पश्चात् एक उन्माद के रोगी की भाँति हो गया था जिसने अपना खाना पीना सभी का त्याग कर दिया था ॥१६॥ उसे केवल पद्मावती बाला का ही ध्यान रहा करता था और उसका ध्यान करके वह अहर्निश मौन व्रत में रहता था । तब तो इस बात का प्रताप मुकुट के समीप मे बडा कोलाहल हो गया था ॥१७॥ कुमार की यह क्या दशा हो गई, इसके लिए सभी ओर बडा हा हा कार मच गया था । तीन दिन के बाद म मन्त्री के पुत्र परम पण्डित बुद्धिदक्ष ने वज्रमुकुट से कहा—हे भूपते ! सत्य सत्य बताओ क्या कारण है । तब तो राजकुमार ने समस्त कारण उसे बता दिया था जोकि वन म उस सरोवर में उपस्थित हुआ था ॥१८॥१९॥ यह सुनकर बुद्धिदक्ष हँसकर महीपति से कहने लगा—वह महादेवी तो बहुत कष्ट से मित्रता को प्राप्त होगी । ॥२०॥ यह करणाटक देश के राजा दन्तवक्त्र की पुत्री है । उसका नाम पद्मावती है । वह तुमको अपने मन म धारण किए हुए है ॥२१॥

पुष्पभावेन ज्ञात्वाह त्वा नयामि तदतिके ।
इत्युक्त्वा तस्य पितर प्रतापमुकुट प्रति ॥२२॥

आहाज्ञां देहि भूपाल यास्येहं करणाटके ।
त्वत्सुतस्य चिकित्सार्थं स वज्रमुकुटोऽचिरम् ॥२३॥
आयामि नाऽत्र सन्देहो यदि जीवयसे सुतम् ।
तथेति मत्वा स नृपः प्रादात्पुत्रं च मन्त्रिणे ॥२४॥
हयारूढौ गतौ शीघ्रं दतवक्त्रस्य पत्तने ।
काचिद्वृद्धा स्थिता तत्र तस्या गेहं च तौ गतौ ॥२५॥
बहुद्रव्य ददौ तस्यै बुद्धिदक्षो विशारदः ।
ऊषतुर्मंदिरे तस्मिन्रात्रिं घोरतमोवृताम् ॥२६॥
प्रात काले तु सा वृद्धा गच्छती राजमन्दिरम् ।
तामाह मन्त्रितनयः श्रृणु मातर्वचो मम ॥२७॥
पद्मावती च संप्राप्यैकांते मद्वचन वद ।
ज्येष्ठशुक्लस्य पञ्चम्यामिंदुवारे सरोवरे ॥२८॥
यो दृष्टः पुरुषो रम्यस्त्वदर्थे समुपागतः ।
इति श्रुत्वा ययौ वृद्धा पद्मं तस्यै न्यवेदयत् ॥२६॥

मैं पुण्यमाव से जानकर तुमको उसके समीप मे ले जाता हू । इतना बुद्धिदक्ष ने कहकर फिर उस राजकुमार के पिता प्रतापमुकुट से कहा—हे भूपाल ! आप आज्ञा दीजिए, मैं करणाटक देश को जाऊँगा । मेरा वहाँ गमन आपके पुत्र की चिकित्सा के ही लिए है । वह वज्रमुकुट और मैं शीघ्र ही वहाँ से आते हैं इसमे कुछ भी सन्देह नहीं है । यदि आप पुत्र को जीवित रखना चाहते है तो वहाँ जाने की आज्ञा दे देवें । इसे स्वीकार करके उस र ज ने पुत्र को मन्त्री के सुपुर्द कर दिया था ॥२२॥२३॥२४॥ ये दोनो अश्वो पर आरुढ होकर शीघ्र ही राजा दन्तवक्त्र के नगर मे पहुँचे । वहाँ पर कोई एक वृद्धा स्त्री थी । वे दोनो उसके घर मे चले गये थे ॥२५॥ परम पण्डित बुद्धिदक्ष ने बहुत सारा धन उस वृद्धा को दिया था और उस मन्दिर मे उस घोर अन्धकार वाली रात्रि मे निवास किया ॥२६॥ प्रात.काल जब हुआ तो वह वृद्धा राज मन्दिर मे जाने को थी । उस समय मन्त्री के पुत्र बुद्धिदक्ष ने उससे कहा—हे माता !

मेरी बात सुनो तुम पद्मावती के पास जाकर एकान्त मे मेरा वचन उससे कह देना कि ज्येष्ठ मास के शुक्ल पक्ष की पञ्चमी तिथि म चन्द्रवार के दिन सरोवर म जो रम्य पुरुष तुमने देखा था वह तुम्हारे लिए यहाँ उपस्थित हो गया है। यह सुनकर वृद्धा चली गई थी और उसने यह वृत्त उस पद्मावती से कह दिया था ॥२७॥२८॥२९॥

रुष्टा पद्मावती प्राह चन्दनार्द्राङ्गुलीयिका ।
गच्छ गच्छ महादुष्टे तलेनोरस्यताडयत् ॥३०॥
अङ्गुलीभि कपोलौ च तस्या स्पृष्ट्वा ययौ गृहम् ।
सा तु वृद्धा बुद्धिदक्ष सर्वं भाव न्यवेदयत् ॥३१॥
समित्र दु खित प्राह शृणु मित्र शुच त्यज ।
त्वामाह भूपते कन्या प्राणप्रिय वच शृणु ॥३२॥
त्वदर्थे ताडित वक्ष कदा मित्र भविष्यसि ।
श्रुत्वा तन्मधुर वाक्य रजो देहे समागतम् ॥३३॥
रजस्वलाते भो मित्र तवास्य च वितास्म्यहम् ।
इति श्रुत्वा भूपसुत परमानन्दमाययौ ॥३४॥
त्रिदिनान्ते तु सा वृद्धा पद्मावत्यै न्यवेदयेत् ।
त्वामुत्सुक स भूपालस्तव दर्शनलालस ॥३५॥

चन्दन से आर्द्र अङ्गुलीयक वाली पद्मावती रुष्ट होकर बोली— हे महादुष्टे ! जा–जा उसने तल से उर स्थल मे ताडना की थी ॥३०॥ अगु लियो से उसके कपोलो को छूकर गृह को चली गई थी। फिर उस वृद्धा ने आकर बुद्धिदक्ष को उसका सम्पूर्ण भाव निवेदन कर दिया था ॥३१॥ वह बुद्धि-दक्ष अपने दु खित मित्र से कहने लगा—हे मित्र ! सुनो, अब आप चिन्ता का त्याग कर दो। राजा की कन्या ने तुमसे कहा है कि हे प्राणप्रिय ! मेरा वचन श्रवण करो ॥३२॥ तुम्हारे लिए ही मैंने मेरा वक्ष स्थल ताडित किया है कि कब मित्र बनोगे। उसका मधुर वाक्य सुनकर देह म रज की प्रवृत्ति हो गई

थी ॥३३॥ उसने कहा था कि रज स्वलता के अन्त हो जाने पर हे मित्र ! मैं तुम्हारे मुख का चुम्बन करूँगी। यह सुनकर राजा के पुत्र को परम अधिक आनन्द प्राप्त हुआ था ॥३४॥ जब तीन दिन व्यतीत हो गये तो उस वृद्धा ने पद्मावती के समीप में जाकर निवेदन किया कि वह भूपाल तुम्हारे लिए उत्सुक हो रहा है और तुम्हारे दर्शन की उसको बहुत अधिक लालसा है। ॥३५॥

तं भजस्वाद्य सुश्रोणि सफलं जीवनं कुरु।
इति श्रुत्वा महाहृष्टा सा मस्याद्राङ्गुलीयकम् ॥३६॥
गवाक्षद्वारि निष्कास्य तले पृष्ठे च ताडिता।
तथैव वृद्धा तं प्राप्य मन्त्रिणं चाब्रवीद्वच ॥३७॥
प्रसन्नो बुद्धिदक्षश्च मित्रं प्राह शृणुष्व भो।
पश्चिमे दिशि भो स्वामिन्गवाक्षं तव निर्मितम् ॥३८॥
अर्द्धरात्रे तु सम्प्राप्य भज मां कामविह्वलाम्।
श्रुत्वा तद्वज्रमुकुटः प्रियादर्शनलालसः ॥३९॥
ययौ शीघ्रं महाकामी रमणीं तामरामयत्।
मासान्ते कामशिथिलो मित्रदर्शनलालसः ॥४०॥
पद्मावती प्रिया प्राह शृणु वाक्यं वरानने।
येन प्राप्तवती मह्यं त्वं सुभ्रू सुरदुर्लभा ॥४१॥
तन्मित्रं बुद्धिदक्षश्च किं नु तिष्ठति साम्प्रतम्।
आज्ञां देहि प्रियं मह्यं द्रष्टुं यास्यामि तेऽन्तिकम् ॥४२॥

हे सुश्रोणि ! तुम आज उस राजकुमार का सेवन करो और अपना जीवन सफल बनाओ। यह सुनकर वह अत्यधिक हर्षित हुई और उसने मसी से आर्द्र अङ्गुलीयक को गवाक्ष के द्वार में निकालकर तल में और पृष्ठ में ताडित किया था। उसी प्रकार से वृद्धा ने मन्त्री के पास जाकर कहा—॥३६॥३७॥ तब तो बुद्धिदक्ष परम प्रसन्न होते हुए मित्र से बोला—हे राजकुमार ! सुनो हे स्वामिन् ! उसने पश्चिम दिशा में तुम्हारा गवाक्ष बना दिया है ॥३८॥ आधी

रात मे तुम वहां जाकर उस काम से विह्वला का सेवन करो। यह सुनकर वज्रमुकुट प्रिया के दर्शन की लालसा से पूर्ण हो गया था ॥३६॥ वह राजकुमार शीघ्र ही वहां गया और उस महाकामी ने उस रमणी को खूब रमण कराया था। जब एक मास पूर्ण हो गया तो वह काम से शिथिल हो गया और अपने मित्र के दर्शन करने की लालसा वाला हुआ ॥३६॥४०॥ तब वह राजकुमार वज्रमुकुट पद्मावती से बोला—हे वरानने ! मेरा वचन श्रवण करो जिसके द्वारा तुम देवो को भी दुर्लभा सुभ्रू, मुझे प्राप्त हुई हो वह मेरा मित्र बुद्धिदक्ष है। यह देखना है कि वह अभी तक यहाँ ठहरा है या नही, तुम मुझे आज्ञा दो हे प्रिये ! मैं उससे मिलकर शीघ्र ही तुम्हारे समीप आ जाऊँगा। ॥४१॥४२॥

इति श्रुत्वा वचस्तस्य निष्ठुर कुलिशोपमम् ।
मिष्टान्न सविष कृत्वा मन्त्रिणे सा न्यवेदयत् ॥४३॥
तदा तु बुद्धिदक्षश्च चित्रगुप्तप्रपूजक. ।
ज्ञात्वा तत्कारण सर्व न तु भक्षितवान्स्वयम् ॥४४॥
एतस्मिन्नन्तरे प्राप्तो भूपतिस्त्वरयान्वित ।
विवेकवन्त मित्र त दृष्ट्वा प्राह रुषान्वित. ॥४५॥
कस्मान्न खादित मित्र भोजन मत्प्रियाकृतम् ।
विहस्य बुद्धिदक्षस्तु सारमेये ददौ हि तत् ॥४६॥
भुक्त्वा स मरण प्राप्त. स दृष्ट्वा विस्मितो नृप ।
स्त्रीचरित्र च विज्ञाय स्नेह त्यक्त्वाऽब्रवीत्तु तम् ॥४७॥
मित्रगच्छ गृह शीघ्र मया त्यक्ता च पापिनी ।
स आह शृणु भूपाल गच्छ शीघ्र प्रियान्तिकम् ॥४८॥
तदलकारमाहृत्य त्रिशूल कुरु जानुनि ।
प्रसुप्ता त्यज भो मित्र या हि त्व मा विचारय ॥४६॥
इति श्रुत्वा ययौ भूपस्तथा कृत्वा समागत: ।
स्वमित्रेण ययौ सार्धं श्मशाने रुद्रमण्डपे ॥५०॥

उस राजकुमार का यह वज्र के समान अत्यन्त कठोर वचन सुनकर उसने मिष्ठान्न को विष से युक्त करके मन्त्रि पुत्र को निवेदन किया था ।।४३।। उस समय में चित्रगुप्त के प्रपूजक बुद्धिदक्ष ने उसका समस्त कारण समझ कर स्वयं उसे नहीं खाया था ।।४४।। इसी बीच में शीघ्रता से युक्त भूपति वहाँ आ गया और उसने विवेक वाले मित्र को देखकर क्रोध में भरकर कहा—हे मित्र ! तुमने मेरी प्रिया के द्वारा दिया हुआ भोजन क्यों नहीं खाया है ? यह सुनकर हँसते हुए उस बुद्धिदक्ष ने उसे कुत्ते को दे दिया था । उसे खाकर कुत्ता तुरन्त ही मृत्यु को प्राप्त हो गया था । यह देखकर नृप बहुत विस्मित हुआ और स्त्रियों के चरित्र को समझकर उसने पद्मावती से स्नेह छोड़कर उस अपने मित्र से कहा ।।४५।।४६।।४७।। हे मित्र ! अब शीघ्र ही घर को चलो । मैंने उस पापिनी का त्याग कर दिया है । वह बोला—हे भूपाल ! सुनो तुम शीघ्र ही अपनी प्रिया के समीप में जाओ और उसके अलङ्कारों को लेकर उसके जानु में त्रिशूल कर देना । हे मित्र ! उसे सोती हुई त्याग देना जिससे वह तुझे न विचार सके ।।४८।।४९।। यह सुनकर राजकुमार वहाँ गया और उसी तरह करके आ गया था फिर वह अपने मित्र के साथ रुद्रमण्डप श्मशान में गया था ।।५०।।

शिष्यं कृत्वा नृपं तं स योगिरूपो हि भूषणम् ।
विक्रयार्थं ददौ तस्मै स्वमित्राय स बुद्धिमान् ।।५१।।
स वज्रमुकुटो मत्वा तदाज्ञां नगरं गतः ।
चोरोयमिति तं मत्वा बद्धो राज्ञो हि रक्षिणः ।।५२।।
शीघ्रं निवेदयामासुर्दन्तवक्त्रस्तमब्रवीत् ।
क्व प्राप्तं भूषणम् रम्यं सर्वं कथय पूरुष ।।५३।।
जटिलः प्राह भो राजन्स्मशाने मद्गुरुः स्थितः ।
तेन दत्तं विक्रयार्थं भूषणं स्वर्णांशु ठितम् ।।५४।।
इति श्रुत्वा स नृपतिस्तूर्णमाहूय तद्गुरुम् ।
भूषणं पृष्टवान्राजा योगी प्राह शृणुष्व भो ।।५५।।

श्मशाने सधित मत्र मया योगिस्वरूपिणा ।
पिशाची प्रापिता काचित्तस्याश्चिह्न मया कृतम् ॥५६॥
वामजानुनि शूलेन तया दत्तं हि भूषणम् ।
ज्ञात्वा तत्कारण राजा सुता निष्कासिता गृहात् ॥५७॥

उसने उस नृप को शिष्य बनाकर योगी रूप बुद्धिमान बुद्ध ने भूषण विक्रय के लिए उस अपने मित्र को दे दिया था ॥५१॥ उस वज्रमुकुट ने उसकी आज्ञा को मानकर नगर को प्रस्थान किया था । यह चोर है ऐसा मानकर राजा के रक्षा करने वालो ने उसे बाँध लिया और शीघ्र राजा के पास पहुँचाया गया था । राजा दन्तवक्त्र ने उससे कहा—हे पुरुष ! यह सुन्दर भूषण तुमको कहाँ से मिला है शीघ्र बताओ ॥५२॥५३॥ उस जटिल ने कहा—हे राजन् ! श्मशान मे मेरे गुरु स्थित हैं । उन्होने इस स्वर्णगुण्ठित भूषण को मुझे बेचने के लिए दिया है ॥५४॥ यह सुनकर उस राजा ने उसके गुरु को शीघ्र बुलवाया और राजा ने उस योगी से उस भूषण के विषय मे पूछा था । योगी ने कहा—सुनिये, योगी के रूप म रहने वाले मैंने श्मशान मे मन्त्र सधित किया था तो कोई पिशाची वहाँ प्राप्त हुई थी । मैने उसके चिह्न कर दिया है । वाम जानु मे शूल के द्वारा चिह्न किया है । उसी पिशाची ने यह भूषण मुझे दिया है । राजा ने उसका कारण जानकर अपनी पुत्री पद्मावती को घर से निकाल दिया था ॥५५॥५६॥५७॥

स वज्रमुकुटस्ता तु गृहीत्वा गृहमाययौ ।
विहस्य प्राह वैताल श्रृणु विक्रमभूपते ॥५८॥
कस्मै पाप महत्प्राप्त चतुर्णा मे वदाधुना ।
इति श्रुत्वा वचस्तस्य विक्रमो नाम भूपति ॥५९॥
विहस्य भार्गव प्राह प्राप्त पाप हि भूपते ।
मित्ररायममात्येन स्वामिकार्यं च रक्षिभि ॥६०॥
भूप पुत्रेणार्यसिद्ध कृत तस्माद्व भूपत ।
महत्पाप च सप्राप्त तनासौ नरक गत ॥६१॥

रजोवती सुता दृष्ट्वा न विवाहत यो नर ।
स पापी नरक याति पष्टिवर्षसहस्रकम् ॥६२॥
गाधर्व च विवाह वै कामिन्या च कृत यया ।
तस्या विघ्नकरो यो वै स पापी यमपीडित ॥६३॥
अदृष्ट दोपा य कन्या विवेकेन विना त्यजेत् ।
स पापी नरक याति लक्षवर्षप्रमाणकम् ॥६४॥
इति श्रुत्वा स वैतालो धर्मगाथा नृपेरिताम् ।
प्रसन्नहृदय प्राह भूपति धमतत्परम् ॥६५॥

उस वज्रमुकुट ने उस ग्रहण कर लिया और फिर वह अपने घर मे आ गया था । वैताल हँसकर बोला – हे विक्रम भूपते ! सुनो, और इन चारो मे किसको महान् पाप प्राप्त हुआ, यह मुझे अब आप बतलाइये । सूतजी ने कहा–इस प्रकार का उसका वचन सुनकर हंसकर विक्रम राजा ने भार्गव से कहा—कि पाप राजा को प्राप्त हुआ । अमात्य ने तो मित्र का काय किया था, रक्षा करने वालो ने अपने स्वामी का काय किया था । राजा के पुत्र ने अपना अथ सिद्ध किया था । इसलिए जो महापाप हुआ वह राजा को ही हुआ और वह इस कारण से नरक को गया था ॥५८॥५९॥६०॥६१॥ रजो धम वाली अपनी पुत्री को देखकर भी जो मनुष्य उसका विवाह नही करता है वह महान् पापी होता है और साठ हजार वष तक नरक मे रहता है ॥६२॥ जिस कामिनी ने गान्धव विवाह कर लिया है उसका जो विघ्न करने वाला वह पापी होता है और यम के द्वारा प्रपीडित किया जाता है ॥६३॥ जो विना ही दोपो के दखे हुए विवेक से रहित होकर कन्या का त्याग कर देता है वह पापी मनुष्य नरकगामी होता है और एक लक्ष वष तक नरक मे भोग भोगा करता है ॥६४॥ इस प्रकार से उस वैताल ने नृप के द्वारा कही हुई इस धर्म की गाथा को सुनकर हृदय मे परम प्रसन्नता प्राप्त की थी और फिर वह धर्म म तत्पर राजा से बोला ॥६५॥

॥ मधुमतीवरनिर्णयकथावर्णनम् ॥

प्रसन्नमनस भूप महासिंहासने स्थितम् ।
द्विजवर्य स वेतालो वच प्राह प्रसन्नधी ॥१॥
एकदा यमुनातीरे धर्मस्थलपुरी शुभा ।
धनधान्यसमायुक्ता चतुर्वर्णसमन्विता ॥२॥
गुणाधिपो महीपालस्तत्र राज्य चकार वै ।
हरिशर्मा पुरोधास्तु स्नानपूजनतत्पर ॥३॥
तस्य पत्नी सुशीला च पतिव्रतपरायणा ।
सत्यशील सुतो जातो विद्याध्ययनतत्पर ॥४॥
तस्यानुजा मधुमती शीलरूपगुणान्विता ।
द्वादशाब्दवय प्राप्ते विवाहार्थं पिता यदा ॥५॥
भ्राता बभ्राम तौ सर्वं चिनुतश्च सुतावरम् ।
कदाचिद्राजपुत्रस्य विवाहे समतो द्विज ॥६॥
पठनार्थे तु काश्या वै सत्यशील स्वय गत ।
एतस्मिन्नन्तरे राजन्द्विज. कश्चित्समागत. ॥७॥

इस अध्याय मे मधुमती के वर के निर्णय की कथा का वर्णन किया जाता है। श्री सूतजी ने कहा—उस महान् सिंहासन पर स्थित प्रसन्न मन वाले राजा से प्रसन्न बुद्धि वाले द्विजो मे श्रेष्ठ उस बैताल ने यह वचन कहा—॥१॥ एक बार यमुना नदी के तट पर परम शुभ धर्मस्थल पुरी थी जोकि धन-धान्यादि सबसे पूर्णतया समायुक्त थी और चारो वर्णों के लोग वहाँ निवास किया करते थे। वहाँ पर गुणाधिप महीपाल राज्य-शासन किया करता था। उसका पुरोहित हरिशर्मा नामधारी था जो सदा स्नान एव पूजन म तत्पर रहा करता था। ॥२॥३॥ उसकी पत्नी का नाम सुशीला था जो पति व्रत धर्म मे परायण रहा करती थी। उसके सत्यशील नामक विद्या के अध्ययन मे सदा तत्पर रहने वाला पुत्र समुत्पन्न हुआ था ॥४॥ उसकी अनुजा (छोटी बहिन) मधुमती थी जो

शील-रूप और अनेक सद्गुणों से युक्त थी। जब उसकी अवस्था बारह वर्ष की हो गई तो उसके पिता और भाई उसके विवाह करने के लिए भ्रमण करने लगे। वे दोनों ही सुता के वर के लिए चयन करते थे। किसी समय राजपुत्र के विवाह में संगत द्विज सत्य शील पठन के लिये काशी में स्वयं गया था। हे राजन्! इसी अन्तर में कोई द्विज आया था ॥५॥६॥७॥

वामनो नाम विख्यातो रूपशीलवयोवृत: ।
सुता मधुमती तं च दृष्ट्वा कामातुराऽभवत् ॥८॥
भोजनं छादनं पानं स्वप्नं त्यक्त्वा च विह्वला ।
चकोरीव विना चंद्रं कामबाणप्रपीडिता ॥९॥
दृष्ट्वा सुशीला तं बाला वामनं ब्राह्मणं तथा ।
वारयामास तांबूलै: स्वर्णद्रव्यसमन्वितै: ॥१०॥
हरिशर्मा प्रयोगे च द्विजं दृष्ट्वा त्रिविक्रमम् ।
वेदवेदांगतत्त्वज्ञं सुतार्थेऽवरयत्तदा ॥११॥
सत्यशीलस्तु काश्यां वै गुरुपुत्रं च केशवम् ।
वरित्वा स भगिन्यर्थे ययौ गेहं मुदान्वित: ॥१२॥
माघकृष्णत्रयोदश्यां भृगौ लग्नं शुभं स्मृतम् ।
त्रयो विप्रास्तदा प्राप्ता: कन्यार्थे रूपमोहिता: ॥१३॥
तस्मिन्काले तु सा कन्या भुजगेनैव दंशिता ।
मृता प्रेतत्वमापन्ना पूर्वकर्मप्रभावत: ॥१४॥

यह नाम से वामन विख्यात था तथा रूपशील और वयस्था से युक्त था। मधुमती पुत्री ने इसको देखा और वह कामातुर हो गई। उसने भोजन पान, छादन, निद्रा सबका त्याग करके परम विह्वलता की दशा प्राप्त करली थी। वह चन्द्र के बिना चकोरी की भाँति कामदेव के बाणों से प्रपीड़ित हो गई थी ॥८॥९॥ सुशीला बाला ने उस वामन नामक ब्राह्मण को देखकर स्वर्ण द्रव्य से समन्वित ताम्बूलों से वरण किया था ॥१०॥ हरिशर्मा ने प्रयोग में त्रिविक्रम द्विज को देखकर जो कि वेद और वेदाङ्गों के तत्वों का ज्ञाता था,

उसी समय अपनी पुत्री के लिये वरण कर लिया था ॥११॥ इधर सत्यशील भ्राता ने काशी मे अपने गुरु के पुत्र केशव को अपनी भगिनी के लिए वरण करके बडे आनन्द से युक्त होकर वह घर को गया था ॥१२॥ माघ कृष्ण त्रयोदशी भृगुवार का दिन शुभ लगन निश्चित की गई थी। उस समय कन्या के लिए रूप स मोहित होते हुए तीन विप्र प्राप्त हुए थे ॥१३॥ उसी समय मे वह कन्या भुजङ्ग के द्वारा दंशित हो गई और मरकर वह प्रेतत्व को प्राप्त हो गई थी यह उसके पूर्व कर्म का विधान था जिससे उसकी दशा हुई थी ॥१४॥

तदा त ब्राह्मणा यत्न कारयामासुरुत्तमम् ।
न जीवनवती वाला गरलेन विमोहिता ॥१५॥
हरिशर्मा तु तत्सर्वं कृत्वा वदविधानत ।
आययौ मंदिर राजन्त्सुतागुणविमोहित ॥१६॥
त्रिविक्रमस्तु वहुधा दुःख कृत्वा स्मरानुग ।
कथाधारी यतिभूत्वा देशाद् शातर ययौ ॥१७॥
केशवस्तु महादुःखी प्रियास्थीति गृहीतवान् ।
तीर्थात्तीर्थांतर प्राप्त कामबाणेन पीडित ॥१८॥
भस्मग्राही वामनस्तु विरहाग्निप्रपीडित ।
तस्थौ चितायां यामात पत्नीध्यानपरायण ॥१९॥
एकदा सरयूतीरे लक्ष्मणाख्यपुरे शुभे ।
त्रिविक्रमस्तु भिक्षार्थे सप्राप्तो द्विजमंदिरे ॥२०॥
तस्मिन्दिने रामशर्मा शिवध्यानपरायण ।
यतिन वरयामास भोजनाय स्वमंदिरे ॥२१॥

उस समय उन ब्राह्मणों ने उत्तम से उत्तम यत्न किया था किन्तु सर्प के विष से विमोहित हो जाने वाली वह जीवनवती नहीं हुई ॥१५॥ हरिशर्मा ने वेद के विधान से यह सब कुछ करके हे राजन् ! सुता के गुणों से विमोहित होकर वह मन्दिर में आ गया था ॥१६॥ जो त्रिविक्रम था वह स्मरानुग होकर

अत्यन्त दु खित हुआ और कन्याधारी होकर यति हो गया तथा अन्य देश को वहाँ से चला गया था ॥१७॥ जो सत्यशील के गुरु का पुत्र केशव था वह महान् दु खित हुआ और प्रिया की अस्थियो को ग्रहण कर लिया था। वह कामदेव के बाणो से पीडित होकर एक तीर्थ से दूसरे तीर्थों मे प्राप्त हुआ था। था ॥१८॥ वामन नामक जो विप्र था उसको विरह की अग्नि को महा पीडा हुई थी और उसकी भस्म को ग्रहण कर लिया था। वह वही पर कामात हो कर पत्नी के ध्यान में परायण रहकर चिता मे स्थित हो गय, था ॥१९॥ एक समय में सरयू नदी के तट पर लक्ष्मण नाम वाले शुभ नगर मे त्रिविक्रम भिक्षा के लिए एक द्विज मन्दिर मे प्राप्त हुआ था ॥२०॥ उसी दिन शिव क ध्यान मे परायण रहने वाले रामशर्मा ने अपने मन्दिर में भोजन करने के लिए यती का वरण किया था ॥२१॥

तस्य पत्नी विशालाक्षी रचित्वा वहुभोजनम् ।
आहूय मतिन राजन्पात्रमालभमाकरोत् ॥२२॥
तस्मिन्काले च तद्बालो मृत पापवश गत ।
अरोदीत्तस्य सैरध्री विशालाक्ष्यपि भर्त्सिता ॥२३॥
न रोदन त्यक्तवती पुत्रशोकाग्नितापिता ।
रामशर्मे तदा प्राप्तो मन्त्र सजीवन शुभम् ॥२४॥
जपित्वा मार्जन कृत्वा जीवयामास बालकम् ।
विनयावनतो विप्रस्त च सन्यासिन तदा ॥२५॥
भोजन कारयित्वा तु मन्त्र सञ्जीवन ददौ ।
त्रिविक्रमस्तु त मन्त्र पठित्वा यमुनातटे ॥२६॥
प्राप्तोऽन्यत्र सा नारी दाहिता हरिशर्मणा ।
एतस्मिन्नन्तरे तत्र राजपुत्रो मृति गत ॥२७॥
दाहितस्तनय पित्रा शोकवर्त्ता तदामुना ।
जीवन प्राप्तवान्बालस्तस्य मन्त्रप्रभावत ॥२८॥

उसकी पत्नी विशालाक्षी ने बहुत प्रकार के उत्तम भोजन तैयार किए

थे। हे राजन् ! यति को आह्वान करने पात्र को आलम किया ॥२२॥ उसी समय मे उसका बालक पाप के वशगत होकर मर गया था। उसकी सैर भी न रुदन किया यद्यपि वह विशालाक्षी के द्वारा डाट भी दी गई थी ॥२३॥ वह पुत्र के शोक की अग्नि से तप्त होकर अत्यन्त दुःखित हुई और उसने रुदन करना बन्द नहीं किया था। उस समय रामशर्मा आ गया और उसने सजीवन मन्त्र का जप करके उसका मार्जन किया और बालक को जीवित कर दिया था। तब विनय से युक्त ब्राह्मण ने उस सन्यासी को भोजन कराकर सजीवन मन्त्र उसको दे दिया था। त्रिविक्रम ने यमुना के तट पर उस मन्त्र का जाप किया और वह वहाँ पहुचा जहाँ वह नारी हरिशर्मा के द्वारा दाहित हुई थी। इसी बीच मे यहाँ पर राजा का पुत्र मृत्यु को प्राप्त हो गया था ॥२४॥२५॥२६॥२७॥ शोक के करने वाले पिता ने अपने पुत्र का दाह किया और उस समय इसके द्वारा मन्त्र के प्रभाव से उसके बालक ने जीवन प्राप्त कर लिया था ॥२८॥

गुणाधिपस्य तनयो राज्ञो धर्मस्थलीपते ।
त्रिविक्रम वच प्राह वीरबाहुमहाबल ॥२९॥
जीवन दत्तवान्मह्य वरयाद्य वर मम ।
स विप्र प्राह भो राजन्केशवो नाम यो द्विज ॥३०॥
गृहीत्वास्थि गतस्तीर्थे तमन्वेषय मा चिरम् ।
वीरबाहुस्तथा मत्वा दूतमार्गेण त प्रति ॥३१॥
प्राप्तस्त कथयामास कथा प्राप्त हि जीवनम् ।
इति श्रुत्वा वचस्तस्य केशवोऽस्थिसमन्वित ॥३२॥
प्रगत्यास्थीनि सर्वाणि ददौ तस्मै द्विजातय ।
पुन सजीविता बाला केशवादीन्वचोऽब्रवीत् ॥३३॥
योग्या धर्मेण यस्याह तस्मै प्रायामि धर्मिण ।
इति श्रुत्वा वचस्तस्या मौनवतस्त्रय स्थिता ॥३४॥

धर्मस्थली के स्वामी राजा गुणाधिप का पुत्र त्रिविक्रम से बोला—वीर बाहु महाबल ने मुझे जीवन दान दिया था। अब राजा मुझसे वरदान माँग

लो। उस ब्राह्मण ने कहा—हे राजन् ! केशव नामधारी एक ब्राह्मण है। वह अस्थियों को लेकर तीर्थों मे चला गया है उसकी खोज करा दो इसमे बिलम्ब मत करना। वीर वाहु ने इसे मानकर दूतो के मार्ग से उसके पास प्राप्त हो गया और उसने सब वृतान्त कहा जिस तरह जीवन प्राप्त किया था। यह उसका वचन सुनकर केशव जोकि अस्थियो के सहित था वहाँ आकर समस्त अस्थियाँ उस ब्राह्मण को उसने दे दी थी। इनसे वह वह बाला पुन. जीवित करदी गई और वह केशव आदि सबसे बोली—॥२९॥३०॥३१॥३२॥३३॥ मैं धर्म से जिसके भी योग्य हू उसी धर्म वाले को प्राप्त होऊँगी। यह सुनकर ये तीनो ही मौन वाले स्थित हो गये थे ॥३४॥

अतस्त्वं विक्रमादित्य
धर्मज्ञ कथयस्व मे।
कस्मै योग्या च सा बाला
नाम्ना मधुमती शुभा ॥३५॥
विहस्य विक्रमादित्यो वैताल प्राह नम्रधीः।
योग्या मधुमती नारी वामनाय द्विजन्मने ॥३६॥
प्राणदाता तु यो विप्रः पितेव गुणतत्परः।
अस्थिदाता तु यो विप्रो भ्रातृतुल्यस्स वेदवित् ॥३७॥

हे धर्म के ज्ञाता ! हे विक्रमादित्य ! अब आप मुझे यह बताइये कि यह बाला किसके लिए योग्य होती है जोकि नाम से मधुमती शुभा कन्या थी ॥३५॥ सूतजी ने कहा—राजा विक्रमादित्य हँसकर नम्र बुद्धि वाला होकर वैताल से बोला—मधुमती जो कन्या थी वह द्विज वामन के लिये ही योग्य थी। जो विप्र प्राणों का दाता होता है वह तो गुण मे तत्पर पिता के समान होता है। जो अस्थियों के प्रदान करने वाला है वह वेद वित्, विप्र भ्राता के समान होता है ॥३६॥३७॥



॥ सत्यनारायणकथावर्णनम् ॥

एकदा नैमिषारण्ये ऋषय शौनकादय ।
पृच्छन्ति विनयनैव सूत पौराणिक खलु ॥१॥
भगवन्ब्रूहि लोकाना हितार्थाय चतुर्युगे ।
क पूज्य सेवितव्यश्च वाञ्छितार्थप्रदायक ॥२॥
विनायासेन वै काम प्राप्नुयुर्मानवा शुभम् ।
सत्य ब्रह्मन्वदोपाय नरणा कीर्तिकारकम् ॥३॥
नवाभोजनेत्र रमाकेलिपात्र चतुर्बाहुचामी-
कराचारुगात्रम् । जगत्राणहेतु रिपौ धूम्रकेतु
सदा सत्यनारायण स्तौमि देवम् ॥४॥
श्रीराम सहलक्ष्मण सकरुण सीतान्वित
सात्त्विक वैदेहीमुखपद्मलुब्धमधुप पौलस्त्य
सहारकम् । वन्दे वन्द्यपदाबुज सुरवर भक्ता
नुकम्पाकर शत्रुघ्नेन हनूमता च
भरतेनासेवित राघवम् ॥५॥
कलिकलुषविनाश कामसिद्धिप्रकाश सुरवर
मुखभास भूसुरेण प्रकाशम् । विबुधबुधविलास
साधुचर्याविशेष नृप तिवरचरित्र भो शृणुष्वेतिहासम् ॥६॥

इस अध्याय मे सत्य नारायण की कथा का वर्णन और उसमे नारायण के द्वारा नारद जी के लिये सत्य नारायण के व्रत की विधि का वर्णन किया जाता है । श्री व्यास देव ने कहा—एक समय नमिषारण्य मे शौनक से आदि लेकर ऋषियो ने बड ही विनय के साथ पौराणिक सूत जी से पूछा था ॥१॥ हे भगवन् ! चतुयु ग मे लोको के हित सम्पादन करने के लिए कौन पूजा के योग्य है और कौन सेवा के योग्य है जो मनोवाञ्छित अर्थ के प्रदान करने वाला हो ॥२॥ मानव बिना ही किसी विशेष परिश्रम के अपनी शुभ

कामना की प्राप्ति कर लेवें। हे ब्रह्मन् ! नरों की कीर्ति का करने वाला कोई सत्य उपाय बतलाइये ॥३॥ सूत जी ने कहा—नवीन कमल के सदृश नेत्रों वाले- रमा की केलि के पात्र, चार बाहु वाले तथा सुवर्ण के तुल्य सुन्दर शरीर वाले, इस जगत् की रक्षा के कारण स्वरूप और शत्रु के लिये धूम्रकेतु सत्य नारायण देव की मैं सदा स्तुति करता हूं ॥४॥ लक्ष्मण के साथ विद्यमान, दया से परिपूर्ण, सीता के सहित विराजमान, परम सात्विक, वैदेही के मुख रूपी पद्म के लोभी भ्रमर के समान स्थित, पुलस्त्य के नाती रावण का संहार करने वाले वन्दना के करने योग्य चरण कमल वाले, देवों में श्रेष्ठ भक्तों के ऊपर अनुकम्पा करने वाले, शत्रुघ्न, भरत और हनुमान के द्वारा सेवित राघवेन्द्र श्री राम की मैं वन्दना करता हूं ॥५॥ कलियुग के कलुष के विनाश करने वाले, कामनाओं की सिद्धि के प्रकाश रूप, सुखर मुख मास और भूसुर के द्वारा प्रकाश युक्त, देव और विद्वानों के विलास स्वरूप, साधु चर्या विशेष नृपति श्रेष्ठ के चरित्र का इतिहास श्रवण करो ॥६॥

इतिहासं तथा राज्ञो भिल्लानां वणिजोऽस्य च ।
कथांते प्रणमेद्भक्त्या प्रसाद विभजेत्ततः ॥७॥
लब्धं प्रसादं भुंजीत मानयन्न विचारयेत् ।
द्रव्यादिभिर्न मे शांतिर्भक्त्या केवलया यथा ॥८॥
विधीनानेन विप्रेन्द्र पूजयंति च ये नराः ।
पुत्रपौत्रधनैर्युक्ता भुक्त्वा भोगाननुत्तमान् ॥९॥
अन्ते सान्निध्यमामाद्य मोदन्ते ते मया सह ।
यंयं कामयते काम सुव्रती तंतमाप्नुयात् ॥१०॥
इत्युक्त्वान्तर्दधे विष्णु विप्रोपि सुखमाप्नवान् ।
प्रणम्यागाद्ययादिष्टं मनसा कौतुकाकुलः ॥११॥
अद्य भैक्ष्येण लब्धेन पूज्यो नारायणो मया ।
इति निश्चित्य मनसा भिक्षार्थी नगरं गतः ॥१२॥

विना देहीति वचनं लब्ध्वा च विपुलं धनम् ।
कौतुकायासमनसा जगाम निजमालयम् ॥१३॥

तथा राजा का भीलों का और वणिक का इतिहास श्रवण करो। कथा के अन्त में भक्ति भाव के साथ प्रणाम करना चाहिए और प्रसाद का वितरण करना चाहिए ॥७॥ जो प्रसाद प्राप्त हुआ है उसे खा लेना चाहिए इसमें किसी प्रकार का मान नहीं करे और न कोई विचार ही करना चाहिए। द्रव्य दि से मेरी शान्ति नहीं होती है जैसी कि एक मात्र भक्ति के भाव से हुआ करती है ॥८॥ हे विप्रेन्द्र ! जो मानव इस विधि विधान से पूजन किया करते हैं वे पुत्र पौत्र और धन सम्पत्ति से युक्त हो जाते हैं। व परम उत्तम सांसारिक भोगों का उपभोग करके अन्त में मेरे सान्निध्य की प्राप्ति कर मेरे साथ ही आनन्द किया करते हैं। सुव्रती दिल में जिस जिस कामना को करता है वह उस उस को ही निश्चय प्राप्त कर लिया करता है ॥९॥१०॥ इतना कहकर भगवान अन्तर्धान हो गये थे और विप्र ने भी सुख की प्राप्ति की थी। वह प्रणाम करके यथेष्ट स्थान को मन से कौतुकाकुल होता हुआ चला गया ॥११॥ उस दिन उसने मन से निश्चय किया कि आज जो भी भिक्षा में प्राप्त होगा उस द्रव्य से मैं भगवान नारायण का पूजनार्चन करूँगा। इतना मन में विचार करके भिक्षा करने के लिए वह नगर में चला गया था ॥१२॥ कुछ मुझे दो इस वचन के बिना कहे हुए ही भगवान् की कृपा से उस दिन उसे भिक्षा में बहुत अधिक धन प्राप्त हुआ। कौतुक से आयास युक्त मन से वह अपने घर को चला गया था ॥१३॥

वृत्तान्तं सर्वमाचख्यौ ब्राह्मणी सा च मोदतः ।
सादरं द्रव्यसम्भारमाहृत्य भर्तुराज्ञया ॥१४॥
आहूय बन्धुमित्राणि तथा सान्निध्यवर्तिनः ।
सत्यनारायणं देवं यजामि स्वगणैर्वृतः ॥१५॥
भक्त्या तुतोष भगवान्सत्यनारायणः स्वयम् ।
कामं दित्सुः प्रादुरासीत्कथान्ते भक्तवत्सलः ॥१६॥

वव्रे विप्रोऽभिलपितमिहामुत्र सुखप्रदम्।
भक्ति परा भगवति तथा तत्सगिना व्रतम् ॥१७॥
रथ कुञ्जर मजुल मन्दिर च हय चारु
चामी कराल कृत च।
धन दासदासीगण गा मही च लुलाया
सदुग्धा हरे देहि दास्यम् ॥१८॥
तथास्त्विति हरि प्राह ततश्चातर्दधे प्रभु ।
विप्रोऽपिकृत कृत्योऽभूत्सर्वे लोका विसिस्मिरे ॥१९॥
प्रणम्य भुवि कायेन प्रसाद प्रापुरादरात्।
स्वस्व धाम समाजग्मुर्धन्यधन्येति वादिन ॥२०॥
प्रचचार ततो लोके सत्यनारायणार्चनम्।
कामसिद्धिप्रद मुक्तिभुक्तिद कलुपापहम् ॥२१॥

उसने अपने घर मे जाकर समस्त वृत्ता त कहा और उसकी पत्नी ब्राह्मणी न भी उसका प्रसन्नता से अनुमोदन किया था। बडे आदर के साथ स्वामी की आज्ञा स द्रव्य सभारो का लाकर एकत्रित किया था ॥१४॥ फिर जो भी अपने बन्धु और मित्र थे तथा समीप मे रहने वाले थे उन सबको बुला कर कहा कि मैं अपने समस्त गणो के साथ आज भगवान सत्य नारायण देव का यजन करता हूँ ॥१५॥ इस प्रकार के भक्ति-भाव से भगवान सत्यनारायण स्वय बहुत तुष्ट हुए। कामनाओ के देने की इच्छा रखने वाले भक्तो पर प्यार करने वाले भगवान कथा की समाप्ति होने पर प्रकट हुए थे। ब्राह्मण ने इस लोक और परलोक में जो सुख प्रद अभिलषित था उसे माँग लिया था। भगवान पराभक्ति, सत्सङ्गियो का व्रत, रथ, हाथी, सुन्दर मन्दिर, अश्व, सुन्दर सुवर्ण के अलङ्कार, धन, दास, दासीगण, भूमि गौ जो दूध देने वाली है, हे हरे इन सबको प्रदान कर अपना दास्य भी मुझे दीजिए ॥१६॥१७॥ १८॥ विप्र की इस याचना के करने पर भगवान ने कहा ऐसा ही होगा।

यह कहकर भगवान अन्तर्धान हो गये थे। वह ब्राह्मण भी कृतकृत्य हो गया और समस्त लोक विस्मय करने लगे ॥१६॥ सबने शरीर से भूमि पर प्रणाम किया और बड़े ही आदर के साथ प्रसाद प्राप्त किया था। धन्य-धन्य यह कहते हुए सब अपने अपने गृहों को चले गये थे ॥२०॥ इसके पश्चात् लोक में भगवान् सत्य नारायण देवकी अर्चना का प्रचार हुआ था कि यह यजन कामनाओं की सिद्धि को प्रदान करने वाला, भोग और मोक्ष के देने वाला तथा समस्त पापों के अपहरण करने वाला है ॥२१॥



सत्यनारायणव्रते चंद्रचूडनृपकथावर्णनम् ॥

राजासीद्धार्मिकः कश्चित्केदारमणिपूरके।
चन्द्रचूड इतिख्यातः प्रजापालनतत्परः ॥१॥
शान्तो मधुरवाग्धीरो नारायणपरायणः।
बभूवुः शत्रवस्तस्य म्लेच्छा विंध्यनिवासिनः ॥२॥
तस्य तैरभवद्युद्धमतिप्रबलदारुणं।
भुशुंडी युद्धनिपुणैः क्षेपणैः परिघायुधैः ॥३॥
चन्द्रचूडस्य महती सेना यमपुरं गता।
शतं रथास्तथा नागाः सहस्रं तु हयास्तथा ॥४॥
पत्तयः पंचसाहस्रा मृताः स्वर्गपुरं ययुः।
दस्यवः पंचसाहस्रा मृताः कैतवयोधिनः ॥५॥
आक्रांतः स महाभागस्तैर्म्लेच्छैर्दभयोधिभिः।
त्यक्त्वा राष्ट्रं च नगरं सैकाकी वनमाययौ ॥६॥
तीर्थव्याजेन स नृपः पुरीं काशीं समागतः।
तत्र नारायणं देवं ददर्श सर्वगृहेगृहे ॥७॥

इस अध्याय मे सत्य नारायण व्रत म चन्द्र चूड नृप की कथा का वर्णन किया जाता है। सूत जी ने कहा—केदार मणि पूरक मे कोई परम धार्मिक राजा था जो प्रजा के पालन करने मे सदा तत्पर रहा करता था और चन्द्र चूड इस नामे प्रसिद्ध था ॥१॥ वह राजा अत्यन्त शान्त स्वभाव वाला, मधुर वाणी बोलने वाला और नारायण मे ही परायण रहने वाला था। उसके विन्ध्याचल में निवास करने वाले म्लेच्छ शत्रु हो गये थे ॥२॥ अत्यन्त प्रबल और दारुण उनके साथ उसका युद्ध हुआ था। वे भुशुण्डी के द्वारा युद्ध करने में अत्यन्त निपुण थे तथा क्षेपण और परिघो से उन्होंने राजा चन्द्रचूड की बहुत बड़ी सेना को यमपुर भेज दिया था। शत रथ, नाग और अश्व एवं सहस्र एवं पाँच सहस्र पदाति (पैदल सैनिक) उस युद्ध मे मरकर स्वर्गपुर को चल गये थे। दस्यु लोग पाँच सहस्र थे जो कैतव से युद्ध करने वाले उस युद्ध म मर गये थे ॥३॥४॥५॥ वह महाभाग राजा चन्द्रचूड दम्भ से युद्ध करने म्लेच्छो ने आक्रान्त कर लिया और वह अपना राष्ट्र तथा नगर त्याग कर अकेला ही वन म चला गया था ॥६॥ तीर्थाटन के बहाने से वह राजा काशीपुरी म आ गया था। वहाँ पर भगवान् नारायण देव को घर घर मे वन्दनीय होते उसने देखा था ॥७॥

ददर्श नगरी चैव धनधान्यसमन्विताम् ।
यथा द्वारावती ज्ञेया तथा सा च पुरी शुभा ॥८॥
विस्मितश्च द्रचूडश्च दृष्ट्वाश्चर्यमनुत्तमम् ।
सत्येन रोधिता लक्ष्मी धीनधर्मसमन्विताम् ॥९॥
दृष्ट्वा श्रुत्वा मदानन्द सत्यदेवप्रपूजनम् ।
पतित्वा तच्चरणयो प्रणनाम मुदा युत ॥१०॥
द्विजराज नमस्तुभ्य मदानन्द महामते ।
भ्रष्टराज्य च मा ज्ञात्वा कृपया मा समुद्धर ॥११॥
यथा प्रसन्नो भगवाँल्लक्ष्मीकान्तो जनार्दन ।
तथा तद्वद यद्योग्य व्रत पापप्रणाशनम् ॥१२॥

दुःखशोकादिशमनं घनधान्यप्रवर्धनम् ।
सौभाग्यसंततिकरं सर्वत्र विजयप्रदम् ॥१३॥
सत्यनारायणव्रतं श्रीपतेस्तुष्टिकारकम् ।
यस्मिन्कस्मिन्दिने भूप यजेच्चैव निशामुखे ॥१४॥

वहाँ धन-धान्य से पूर्णतया समन्वित उस नगरी को भी देखा था। जिस तरह द्वारावती नगरी है उसी तरह की वह परम शुभ नगरी थी ॥८॥ चन्द्रचूड इस परमोत्तम आश्चर्य को देखकर विस्मित हो गया था। सत्य के द्वारा प्रबुद्ध की हुई शीलधर्म से युक्त लक्ष्मी को देखकर और सदा आनन्द स्वरूप सत्यदेव के प्रपूजन को सुनकर वह उसके चरणों में गिर गया और बहुत ही आनन्द मग्न होते हुए उसको प्रणाम किया था ॥९॥१०॥ हे द्विजराज ! हे महामते ! हे सदानन्द ! आपको मेरा नमस्कार है। मैं अपने राज्य से भ्रष्ट हो चुका हूँ आप ऐसा समझकर कृपा पूर्वक मेरा उद्धार कीजिये ॥११॥ जिस प्रकार से भगवान् लक्ष्मी कान्त जनार्दन प्रसन्न हो जावें ऐसा कोई पापों के नाश करने वाला योग्य व्रत मुझे बतलाइए ॥१२॥ सदानन्द ने कहा—दुःख और शोक आदि के शमन करने वाला तथा धन-धान्य के बढ़ाने वाला एवं सौभाग्य और सन्तति के करने वाला और सर्वत्र विजय देने वाला भगवान् सत्य नारायण देव का व्रत है जो कि श्रीपति की तुष्टि करने वाला है। हे नृप ! चाहे जिस किसी दिन में निशा के प्रारम्भ में उनका यजन करना चाहिए ॥१३॥१४॥

तोरणादि प्रकर्तव्यं कदलीस्तम्भमण्डितम् ।
पञ्चभिः कलशैर्युक्तं ध्वजपञ्चसमन्वितम् ॥१५॥
तन्मध्ये वेदिका रम्या कारयेत्स व्रती द्विजैः ।
तत्र स्थाप्य शिलारूपं कृष्णं स्वर्णसमन्वितम् ॥१६॥
कुर्याद्गन्धादिभिः पूजां प्रेमभक्तिसमन्वितः ।
भूमिशायी हरिं ध्यायन्सप्तरात्रं व्यतीतयेत् ॥१७॥
इति श्रुत्वा स नृपतिः काश्यां देवमपूजयत् ।
रात्रौ प्रसन्नो भगवान्ददौ राज्ञेऽसिमुत्तमम् ॥१८॥

शत्रुपक्षक्षयकरं प्राप्य खड्गं नृपोत्तम ।
प्रणम्य च सदानन्द केदारमणिमाययौ ॥१९॥
हत्वा दस्यून्षष्टिशतास्तेषां लब्ध्वा महद्धनम् ।
हरिं प्रपूजयामास नर्मदायास्तटे शुभे ॥२०॥
पौर्णमास्यां विधानेन मासिमासि नृपोत्तम ।
अपूजयत्सत्यदेवं प्रेमभक्तिसमन्वितः ॥२१॥
तद्व्रतस्य प्रभावेन लक्षग्रामाधिपोऽभवत् ।
राज्यं कृत्वा स षष्ट्यब्दमन्ते विष्णुपुरं ययौ ॥२२॥

उस दिन तोरण आदि बनाने चाहिए और कदली के स्तम्भों से मण्डप को मण्डित करे। पाँच कलशों से उसे बनावे अर्थात् पाँच कलश वहाँ स्थापित करे। पाँच ध्वजाएँ भी वहाँ आरोपित करनी चाहिए ॥१५॥ उस व्रती को द्विजों के द्वारा उस मण्डप के मध्य भाग में अति रम्य वेदिका बनवानी चाहिए वहाँ पर स्वर्ण से समन्वित शिला रूप कृष्ण की स्थापना करे और प्रेम तथा भक्ति के भाव से युक्त होकर गन्धाक्षत पुष्पादि उपचारों से उसकी पूजा करनी चाहिए। भूमि में शयन करने वाला होकर उनका ही ध्यान करते हुए सात रात्रि वहाँ व्यतीत करनी चाहिए ॥१६॥१७॥ यह श्रवण करके उस राजा ने काशी में देव की पूजा की थी। रात्रि में प्रसन्न होकर भगवान् ने उस राजा के लिए एक अत्युत्तम तलवार दी थी। तब तो नृपश्रेष्ठ शत्रु के पक्ष का क्षय करने वाला खड्ग प्राप्त कर सदानन्द को प्रणाम करके केदार मणि को चला गया था ॥१८॥१९॥ साठसौ दस्युओं को मारकर और उनका बहुत सा धन लेकर उसने हरि का पूजन किया था जो कि नर्मदा नदी के शुभ तट पर किया गया था ॥२०॥ प्रत्येक मास की पूर्णिमा में विधि विधान के साथ वह नृपोत्तम प्रेमभक्ति के भाव से युक्त होकर भगवान् सत्यदेव की पूजा किया करता था ॥२१॥ उस सत्यदेव के व्रत के प्रभाव से वह सौ फिर एक लाख ग्रामों का स्वामी हो गया था। इस तरह परम आनन्द से

साथ उसने साठ वर्ष पर्यन्त वहाँ राज्य का शासन किया था और अन्त में वह विष्णु पुर को चला गया ॥२२॥

———

॥ सत्यनारायणव्रते भिल्लकथावर्णनम् ॥

अथेतिहासं शृणुत यथा भिल्लाः कृतार्थिनः ।
विचरन्तो वने नित्यं निषादाः काष्ठवाहिनः ॥१॥
वनात्काष्ठानि विक्रेतुं पुरीं काशीं ययुः क्वचित् ।
एकस्तृषाकुलो यातो विष्णुदासाश्रमं तदा ॥२॥
ददर्श विपुलैश्वर्यं सेवितं च द्विजैर्हरिम् ।
जलं पीत्वा विस्मितोऽभूद्भिक्षुकस्य कुतो धनम् ॥३॥
यो दृष्टोऽकिंचनो विप्रो दृश्यतेऽद्य महाधनः ।
इति संचिन्त्य हृदये स पप्रच्छ द्विजोत्तमम् ॥४॥
ऐश्वर्यं ते कुतो ब्रह्मन्दुर्गतिस्ते कुतो गता ।
आज्ञापय महाभाग श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ॥५॥
सत्यनारायणस्यास्य सेवया किं न लभ्यते ।
न किंचित्सुखमाप्नोति विना तस्यानुकम्पया ॥६॥
अहो किमिति माहात्म्यं सत्यनारायणार्चने ।
विधानं सोपचारं च ह्युपदेष्टुं त्वमर्हसि ॥७॥

इस अध्याय में सत्य नारायण व्रत में भिल्ल की कथा का वर्णन किया जाता है । सूत जी ने कहा—इसके अनन्तर अब तुम एक इतिहास का श्रवण करो जिसमें कि भिल्लवन में नित्य विचरण करते हुए काष्ठ के वहन करने वाले निषाद कृतार्थ हुए थे ॥१॥ किसी समय में वन से काष्ठों को बेचने के लिए वे काशीपुरी में गए थे । इनमें एक प्यास से से बेचैन होकर एक विष्णु दास के आश्रम में उस समय चला गया था ॥२॥ वहाँ उसने विपुल ऐश्वर्य और

ब्राह्मणो के द्वारा सेवित हरि का दर्शन किया था। इसने जल पीया और फिर यह अत्यन्त विस्मित हुआ क्योकि विचारे भिक्षुक के यहाँ इतना धन कहाँ से आ गया है ॥३॥ जो ब्राह्मण बिल्कुल गरीब पहिले देखा था वही आज बहुत धनवान दिखलाई दे रहा है। यह मन मे सोचकर उसने द्विजोत्तम से पूछा—तुमको यह इतना ऐश्वय कहाँ से और कैसे प्राप्त हो गया है ? पहिले तो तुम बहुत गरीबी मे थे। अब गरीबी कहा चली गई और कैसे दुर्गति समाप्त हो गई है ? हे महाभाग ! मुझे आप खुलासा बतलाइये। मैं तत्व पूवक इसे सुनना चाहता हूँ ॥४॥५॥ सदानन्द ने कहा—हे अङ्ग ! भगवान् सत्य नारायण देव की सेवा से इस ससार मे क्या नही प्राप्त किया जाता है। उसकी कृपा के बिना तो प्राणी कुछ भी सुख समृद्धि प्राप्त नही किया करता है ॥६॥ निषाद न कहा—अहो ! यह बताइय कि सत्य नारायण की पूजा में क्या माहात्म्य है ? उसका उपचारो के सहित पूण विधान आप मुझे बताने के लिये योग्य होते हैं ॥७॥

साधूना समचित्तानामुपकारवता सताम् ।
न गोप्य विद्यते किंचिदार्तानामार्तिनाशनम् ॥८॥
इति पृष्टो विधि वक्तुमितिहासमथाब्रवीत् ।
चन्द्रचूडो महोपाल केदारमणिपूरके ॥९॥
ममाश्रम समायात सत्यनारायणार्चने ।
विधान श्रोतुकामोऽसौ मामाह सादर वच ॥१०॥
मया यत्कथित तस्मै तन्निबोध निषादज ।
सकल्प्य मनसा काम निष्कामो वा जन क्वचित् ॥११॥
गोधूमचूर्णं पादार्धं सेटकार्धं सुचूर्णकम् ।
सस्कृत मधुगधाज्यैर्नैवेद्य विभवेऽर्पयेत् ॥१२॥
पचामृतेन सस्नाप्य चन्दनाद्यैश्च पूजयेत् ।
पायसापूपसयावदधिक्षीरमथो हरेत् ॥१३॥
उच्चावच फलै पुष्पैर्धूपदीपैर्मनोरमै ।
पूजयेत्परया भक्त्या विभवे सति विस्तरै ॥१४॥

जो परम साधु वृत्ति वाले और सम चित्त वाले महापुरुष होते हैं तथा परोपकार करने वाले सत्य पुरुष हैं उनको कुछ भी गोप्य रखने की वस्तु नहीं होती है जोकि दुखियों के दु ख दूर करने वाली वस्तु है उसे वे कभी छिपाकर नहीं रखते हैं ॥८॥ इस प्रकार से पूछा गया वह विधि और इतिहास कहने लगा। केदार मणि पूरक मे महीपाल चन्द्रचूड श्री सत्यनारायण देव की पूजा के समय मे मेरे आश्रम मे आया था। इसके विधान के श्रवण करने की कामना वाले उसने आदर के साथ मुझसे वचन बोले ॥६॥१०॥ हे निषाद पुत्र ! मैंने उससे जो कहा था वह तू भी समझ ले। मन से कुछ कामना का सङ्कल्प करके अथवा निष्काम भाव से मनुष्य किसी भी समय मे पादार्थ गेंहू का चून को सेट काद्य से सुचूर्ण को सस्कार युक्त मधु और गन्ध तथा घृत से करके नैवेद्य बनावे और विभु भगवान् सत्य देव के लिये समर्पित करे ॥११॥१२॥ पञ्चामृत से उनका स्नान कराकर चन्दन आदि से पूजा करनी चाहिए। पायस, पूआ, सयाव, दधि और क्षीर आदि का हरण करे ॥१३॥ छोटे-बड़े फल, पुष्प, धूप, प्रदीप आदि मनोरम पूजनोप चारो से जैसा भी वैभव हो उसके अनुसार विस्तार करके परम भक्ति से सत्य नारायण देव की पूजा करनी चाहिए ॥१४॥

न तुष्येद्रव्यसंभारैर्भक्त्या केवलयायया ।
भगवान्परितः पूर्णो न मानं वृणुयात्क्वचित् ॥१५॥
दुर्योधनकृता त्यक्त्वा राजपूजा जनार्दन ।
विदुरस्याश्रमे वासमातिथ्य जगृहेविभु ॥१६॥
सुदाम्नस्तडुलकणाञ्जग्ध्वा मानुष्यदुर्लभा. ।
सपदोऽदाद्धरि. प्रीत्या भक्तिमात्रमपेक्ष्यते ॥१७॥
गोपो गृध्रो वणिग्व्याधो हनुमान्सविभीषण. ।
येऽन्ये पापात्मका दैत्या वृत्रकायाधवादयः ॥१८॥
नारायणान्तिक प्राप्य मोदतेऽद्यापि यद्वशाः ।
इति श्रुत्वा नरपति. पूजासभारमादरात् ॥१६॥

कृतवान्स धन लब्ध्वा मोदते नमदातटे ।
निषाद त्वमपि प्रीत्या सत्यनारायण भज ॥२०॥
इह लोके सुख प्राप्य चान्ते सान्निध्यमाप्नुया ।
कृतकृत्यो निषादोऽभूत्प्रणम्य द्विजपु गवम् ॥२१॥

द्रव्य के अधिक सम्भारो से वे उतने सतुष्ट नही होते है जैसे कि केवल भक्ति के भाव से तुष्ट हुआ करते हैं । भगवान् तो सब प्रकार से पूर्ण हैं उनसे कभी भी मान का वरण नही करे ॥१५॥ भगवान जनार्दन ने दुर्योधन की राजपूजा का त्याग कर दिया था और विदुर के आश्रम जाकर प्रेम भाव से आतिथ्य को स्वीकार किया था ॥१६॥ सुदामा ब्राह्मण के चावलो की कनीओ को खाकर मनुष्यो को परम दुलभ सम्पत्ति हरि ने प्रीति से उसको दे दी थीवहाँ तो केवल भक्ति की ही अपेक्षा की जाती है ॥१७॥ गोप गृध्र वणिक व्याध, हनुमान विभीषण और जो अन्य पापात्मक वृत्र बाणासुरादि दत्य थे वे सब भगवान् नारायण की सन्निधि को प्राप्त करके यद्यपि आज तक भी आनन्द प्राप्त करते हैं । यह सुनकर नरपति ने पूजा के सम्भार को बडे आदर से किया था और धन का लाभ करके नमदा के तट पर सुख प्राप्त कर रहा है । हे निषाद ! तुम भी प्रीति से नारायण सत्यदेव की सेवा करो ॥१८॥१९॥२०॥ इस लोक म सुख प्राप्त करके अन्त म भगवान् के सान्निध्य को प्राप्त हुआ था । इस तरह से निषाद कृत कृत्य हुआ और उसने द्विज पुङ्गव को प्रणाम किया था ॥२१॥

एकदा नारदो योगी परानुग्रहवाञ्छया ।
पर्यटन्विविधाँल्लोकान्मर्त्यलोकमुपागमत् ॥२२॥
तत्र दृष्ट्वा जनान्सर्वान्नानाक्लेशसमन्वितान् ।
आधिव्याधियुतानार्तान्पच्यमानान्स्वकर्मभि ॥२३॥
केनोपायेन चैतेषा दु खनाशो भवेद्ध्रुवम् ।
इति सञ्चिन्त्य मनसा विष्णुलोक गतस्तदा ॥२४॥

तत्र नारायणं देवं शुक्लवर्णं चतुर्भुजम् ।
शंखचक्रगदापद्मवनमालाविभूषितम् ॥२५॥
प्रसन्नवदनं शांतं सनकाद्यैरभिष्टुतम् ।
दृष्ट्वा तं देवदेवेशं स्तोतुं समुपचक्रमे ॥२६॥
नमो वाङ्मनसातीतरूपायानंतशक्तये ।
नादि मध्यान्तदेवाय निर्गुणाय महात्मने ॥२७॥
सर्वेषामादिभूताय लोकानामुपकारिणे ।
अपारपरिमाणाय तपोधाम्ने नमोनमः ॥२८॥

एक बार देवर्षि योगिराज भगवान् नारदजी दूसरो पर अनुग्रह करने की इच्छा से अनेक लोको का पर्यटन करते हुए इस मनुष्य लोक म आये थे । ॥२२॥ वहाँ मनुष्य लोक मे समस्त मनुष्यो को अनेक प्रकार के क्लेशो से युक्त देखा था जोकि आधि और व्याधियो से पीडित थे, परम दु खी और अपने कर्मों से पच्यमान हो रहे थे ऐसे प्राणियो को देखा था । उन्होने मन में विचार किया कि कौन सा ऐसा उपाय है जिससे इनके दु खो का सर्वनाश हो । यही मन में सोचकर तब वे विष्णुलोक मे गये थे ॥२३॥२४॥ वहाँ पर उन ने शुक्ल वर्ण से युक्त चार भुजाओ वाले तथा शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म आयुधों स सुशोभित एव वनमाला धारण करने वाले प्रसन्न मुख तथा शान्त स्वरूप और सनकादि के द्वारा अभिष्टुत देवो के भी देव भगवान् नारायण का दर्शन किया और उनकी स्तुति करने लगे ॥२५॥२६॥ नारदजी ने कहा – वाणी, मन से अतीत रूप वाले, अन त शक्ति से परिपूर्ण आदि, मध्य और अन्त से रहित निर्गुण महान् आत्मा वाले आपके लिए नमस्कार है सबके आदिभूत और लोकों के उपकार करने वाले अपार परिमाण वाले तप के धाम आपके लिए मेरा बार-बार नमस्कार है ॥२७॥२८॥

इति श्रुत्वा स्तुतिं विष्णुर्नारदं प्रत्यभाषत ।
किमर्थमागतोऽसि त्वं किं ते मनसि वर्तते ॥२९॥
कथयस्व महाभाग तत्सर्वं कथयामि ते ।

नारदस्य वच श्रुत्वा साधुसाध्वित्यपूजयत् ।
शृणु नारद वक्ष्यामि व्रतमेकं सनातनम् ॥३१॥
कृते त्रेतायुगे विष्णुर्द्वापरेऽनेकरूपधृक् ।
कलौ प्रत्यक्षफलदः सत्यनारायणो विभुः ॥३२॥
चतुष्पादो हि धर्मश्च तस्य सत्यं प्रसाधनम् ।
सत्येन धार्यते लोकः सत्ये ब्रह्म प्रतिष्ठितम् ॥३३॥
सत्यनारायणव्रतमतः श्रेष्ठतमं स्मृतम् ।
इति श्रुत्वा हरेर्वाक्यं नारदः पुनरब्रवीत् ॥३४॥
किं फलं किं विधानं च सत्यनारायणार्चने ।
तत्सर्वं कृपया देव कथयस्व कृपानिधे ॥३५॥

सूतजी ने कहा—इस प्रकार से भगवान् विष्णु का स्तवन करने के पश्चात् नारदजी से विष्णु भगवान् ही बोले—हे देवर्षिवर ! आप यहाँ किस प्रयोजन से आये हैं और आपके मन में क्या बात है ? ॥२९॥ हे महाभाग ! आप मुझसे सब कहें तो मैं आपको वह सभी बतला दूँगा। यह बात नारदजी ने सुनकर भगवान् विष्णु से समस्त कारण कह दिया ॥३०॥ देवर्षि नारदजी के यह वचन सुनकर विष्णु भगवान् ने 'बहुत अच्छा'—यह कह कर उनका सत्कार किया और कहा—हे नारद ! सुनो, मैं सत्य नारायण देव का एक व्रत बतलाता हूँ जो परम सनातन अर्थात् सर्वदा चले आने वाला है ॥३१॥ कृत युग में, त्रेता में और द्वापर में अनेकों रूपों के धारण करने वाले भगवान् विष्णु हैं वे ही सत्य नारायण विभु कलियुग में प्रत्यक्ष फल प्रदान करने वाले होते हैं। ॥३२॥ धर्म के चार चरण हुआ करते हैं और उसका सत्य प्रसाधन होता है। सत्य से ही यह लोक धारण किया जाता है और सत्य में ब्रह्म ही प्रतिष्ठित है। ॥३३॥ अतएव यह सत्य नारायण देव का व्रत सबसे श्रेष्ठ कहा गया है। हरि भगवान् के इस वाक्य को सुनकर नारदजी ने फिर कहा—॥३४॥ सत्य-नारायण के अर्चन में क्या विधान है और उसका क्या फल होता है, हे देव ! हे कृपानिधे ! कृपाकर वह सभी कुछ बतलाइये ॥३५॥

नारायणार्चनं वक्तुं फलं नालं चतुर्मुखः ।
शृणु संक्षेपतो ह्यतत्कथयामि तवाग्रतः ॥३६॥
निधनोपि धनाढ्यः स्यादपुत्रः पुत्रवान्भवेत् ।
भ्रष्टराज्यो लभेद्राज्यमन्धोऽपि स्यात्सुलोचनः ॥३७॥
मुच्यते बधनाद्बद्धो निर्भयः स्याद्भयातुरः ।
मनसा कामयेद्यं यं लभते तं विधानतः ॥३८॥
इह जन्मनि भो विप्र भक्त्या च विधिनार्चयेत् ।
लभेत्कामं हि तच्छीघ्रं नात्र कार्या विचारणा ॥३९॥
प्रातः स्नायी शुचिर्भूत्वा दंतधावनपूर्वकम् ।
तुलसीमञ्जरीं धृत्वा ध्यायेत्सत्यस्थितं हरिम् ॥४०॥
नारायणसान्द्रघनावदातं चतुर्भुजं पीतमहाहवाससम् ।
प्रसन्नवक्त्रं नवकंजलोचनं सनन्दनाद्यैरुपसेवितं भजे ॥४१॥
करोमि ते व्रतं देव सायंकाले त्वदर्चनम् ।
श्रुत्वा गाथां त्वदीयां हि प्रसादं ते भजाम्यहम् ॥४२॥
इति संकल्प्य मनसा सायंकाले प्रपूजयेत् ।
पञ्चभिः कलशैर्जुष्टं कदलीतोरणान्वितम् ॥४३॥

श्री भगवान ने कहा—सत्यनारायण देव के अर्चन में जो फल होता है उस तो ब्रह्मा भी कहने में समर्थ नहीं होते हैं तो भी मैं इसे परम संक्षेप में तुम्हारे सामने बतलाता हूं। इसका तुम श्रवण करो ॥३६॥ जो अत्यन्त निर्धन हो वह भी सत्यनारायण के व्रतार्चन के प्रभाव से बहुत बड़ा धनी हो जाया करता है और जो पुत्र विहीन व्यक्ति है उसको पुत्र की प्राप्ति होती है। जिसका राज्य भ्रष्ट हो गया हो वह राज्य पा जाता है और एक अन्धा भी पुण्य पुनः नेत्रों की ज्योति प्राप्त करने वाला हो जाया करता है ॥३७॥ बद्ध बन्धन से मुक्त हो जाता है, जो भय से आतुर हो उसका भय चला जाता है। मन से जिस जिन वस्तु की भी व्रती कामना करता है उन्हें वह विधि विधान से व्रतार्चन करके प्राप्त कर लिया करता है ॥३८॥ हे विप्र ! इस जन्म में भक्तिभाव पूर्वक विधि विधान से जो अर्चना करता है वह बहुत ही शीघ्र कामनाओं का लाभ करता

है। इसमे कुछ भी विचार करने की आवश्यकता नही है ।।३६।। प्रात काल मे स्नान करने वाला पवित्र होकर तथा दन्तधावन आदि समस्त शारीरिक आवश्यक काय करके तुलसी की मञ्जरी लेकर सत्य मे स्थित हरि का ध्यान करे। ।।४०।। सघन मेघ के समान अवदात, चार भुजाओ से शोभित, पीत और वेन कीमती वस्त्र धारण करने वाले प्रसन्न मुख नवीन कमल के तुल्य नेत्रो वाले और सनकादि के द्वारा सेवित नारायण की सेवा करनी चाहिए ।।४१।। हे देव ! मै आपका व्रत करता हू और सायङ्काल में आपका अचन करूगा। आपकी गाथा का श्रवण कर मैं आपके प्रसाद का सेवन करूँगा ।।४२।। इस प्रकार से मन में सङ्कल्प करके सायङ्काल मे पूजा करनी चाहिए। मण्डप जो भगवान् का बनावे वह पाँच कलशो से युक्त हो तथा केला के तोरण से समन्वित होना चाहिए ।।४३।।

शालग्राम स्वणयुक्त पूजयेदात्मसूक्तकै ।
पचामृतेन सस्नाप्य चन्दनादिभिरचयेत् ।।४४।।
ॐनमो भगवते नित्य सत्यदेवाय धीमहि ।
चतु पदाथदात्र च नमस्तुभ्य नमोनम ।।४५।।
जप्त्वेत्यष्टोत्तरशत जुहुयात्तद्दशाशकम् ।
तपण माजन कृत्वा कथा श्रुत्वा हरेरिमाम् ।।४६।।
षडध्यायी सत्यमुख्या तत्पश्चात्तत्प्रसादकम् ।
सम्यग्विभज्यतत्सर्वं दापयेच्छ्रोतृकाय च ।।४७।।
आचार्यायादिभाग च द्वितीय स्वकुलाय स ।
श्रोतृभ्यश्च तृतीय च चतुथ चात्महेतवे ।।४८।।
विप्रेभ्यो भोजन दद्यात्स्वय भुञ्जीत वाग्यत ।
देवर्षेऽनेन विधिना सत्यनारायणाचनम् ।।४९।।

स्वण स युक्त शालग्राम की आत्म सूक्तो के द्वारा अर्थात् पुरुप सूक्तो से पूजा करनी चाहिए। पचामृत स स्नान कराकर चन्दनादि से अर्चन करना चाहिए ।।४४।। "ओ नमो भगवते नित्य सत्य देवाय धीमहि। चतु

पदार्थदात्रे च नमस्तुभ्य नमो नम ' — (अर्थात् भगवान के लिए नित्य ही नमस्कार है सत्यदेव का ध्यान करते है। चार पदार्थों के दाता आपके लिए बार बार नमस्कार है) इस मन्त्र का एक सौ आठ बार जप करे और इसका दशम भाग हवन करना चाहिये। इस हवन का दशाश तपण और इसका दशांश माजन करे और हरि भगवान की इस कथा का श्रवण करे। यह कथा छँ अध्याय वाली है जिसम सत्य ही मुख्य बताया गया है। इस कथा का श्रवण करके इसके पश्चात् उनके प्रसाद का भली भाँति वितरण करे। जो भी श्रोता वहाँ हो सबको ही प्रसाद दिलवाना चाहिए ॥४५॥४६॥४७॥ आदि भाग आचाय को देवे और द्वितीय भाग अपने कुल वालो को तथा तीसरा भाग श्रोताओ को दवे। चौथा भाग अपन लिए रक्खे ॥४८॥ ब्राह्मणो को भोजन करावे और वाग्यन (मौन) होकर स्वय भोजन करे। हे देवर्षि। इस विधि-विधान स सत्य नारायणदेव का अचन किया जाता है ॥४६॥

कारयेद्यदि भक्त्या च श्रद्धया च समन्वित ।
व्रती कामानवाप्नोति वाञ्छितानिह जन्मनि ॥५०॥
इह जन्मकृत कम परिजन्मनि पद्यते ।
परजन्मकृत कर्म भोक्तव्य सवदा नरै ॥५१॥
सत्यनारायण व्रतमिह सर्वान्कामान्ददाति हि ।
अद्यैव जगतीमध्ये स्थापयामि त्वदाज्ञया ॥५२॥
इत्युक्त्वाऽतदधे देवो नारद स्वर्गति ययौ ।
स्वय नारायणो देव काश्या पुर्यां समागम ॥५३॥

यदि इस व्रत तथा अचन को भक्ति और श्रद्धा से समन्वित होकर करै तो इस जन्म मे ही व्रत करने वाला अपने अभीष्ट सम्पूर्ण कामो को प्राप्त कर लेता है ॥५०। इस जन्म मे किये हुए कम को पर-जन्म मे प्राप्त करता है और पर-जन्म में किए हुए कर्मों के फल को मनुष्य को सवदा यहाँ भोगना पडता है ॥५१॥ यह सत्यनारायण का व्रत यहाँ समस्त कामो को दे देता है। मैं तुम्हारी आज्ञा से आज ही जगत् मे इसकी स्थापना करूँगा ॥५२॥ इतना कह

कर देव अन्तर्धान हो गये और देवर्षि नारदजी स्वर्गति को चले गये थे । स्वय नारायण देव काशीपुरी मे आ गये थे ॥५३॥



॥ शतानन्दब्राह्मणकथावर्णनम् ॥

कृपया ब्राह्मणद्वारा प्रकटीकृतवान्स्वकम् ।
इतिहासमिमं वक्ष्ये संवादं हरिविप्रयोः ॥१॥
काशीपुरीति विख्याता तत्रासीद्ब्राह्मणो वरः ।
दीनो गृहाश्रमी नित्य भिक्षुः पुत्रकलत्रवान् ॥२॥
शतानंद इति ख्यातो विष्णुव्रतपरायणः ।
एकदा पथि भिक्षार्थं गच्छतस्तस्य श्रीपतिः ॥३॥
विनीतस्यातिशान्तस्य स बभूवाक्षिगोचरः ।
वृद्धब्राह्मणवेषेण पप्रच्छ ब्राह्मणं हरिः ।
क यासीति द्विजश्रेष्ठ वृत्ति. कामेन कथ्यताम् ॥४॥
भिक्षावृत्तिरहं सौम्य कलत्रापत्यहेतवे ।
याचितुं धनिनां द्वारि व्रजामि धनमुत्तमम् ॥५॥
भिक्षावृत्तिस्त्वया दीर्घकाल द्विज सदा धृता ।
तद्वारक उपयोयं विशेषेण कलौ किल ॥६॥
ममोपदेशतो विप्र सत्यनारायण भज ।
दारिद्र्यशोकशमनं सतापहरण हरेः ।
चरणं शरणं याहि मोक्षदं पद्मलोचनम् ॥७॥
एवं संबोधितो विप्रो हरिणा करुणात्मना ।
पुनः पप्रच्छ विप्रोसौ सत्यनारायणो हि कः ॥८॥

इस अध्याय में सत्यनारायण व्रत काशीस्थ शतानन्द ब्राह्मण की कथा का वर्णन किया जाता है । श्री सूतजी ने कहा—कृपा करके ब्राह्मण के द्वारा अपने आपको प्रकट किया था । मैं अब इस इतिहास को जिसमें हरि

और विप्र का सम्वाद है कहता हूँ ॥१॥ काशीपुरी परम विख्यात है। वहाँ पर श्रेष्ठ किन्तु दीन और नित्य ही भिक्षा करने वाला पुत्र तथा स्त्री से युक्त गृहस्थ ब्राह्मण रहता था ॥२॥ इसका नाम शतानन्द प्रसिद्ध था जोकि भगवान् विष्णु के व्रत म परायण रहता था। एक दिन जब कि यह मार्ग मे भिक्षा करने के लिए जा रहा था तो अत्यन्त शान्त, विनीत उसे श्रीपति आँखो के सामने प्रत्यक्ष दिखलाई दिए। हरि ने एक वृद्ध ब्राह्मण के वेष म सामने आकर उस शतानन्द ब्राह्मण से पूछा – हे द्विजश्रेष्ठ ! आप इस समय कहाँ जा रहे हैं ? आप जो भी कुछ वृत्ति करते हो वह भी बतलाइये ॥३॥४॥ शतानन्द ने कहा—हे सौम्य ! स्त्री और सन्तति के भरण-पोषण करने के वास्ते मैं तो भिक्षा की वृत्ति किया करता हूँ। धनियो के द्वार पर धन की याचना करने के लिए कि उत्तम धन मिल जावे, इस समय जा रहा हू। नारायण ने कहा—हे द्विज ! आप ने अपने जीवन मे बहुत लम्बे समय से यह भिक्षा की वृत्ति धारण कर रक्खी है और सदा इसे ही करते रहने हो। अब इससे पीछा छुडाने का विशेष कर के इस कलियुग म एक उपाय है ॥५॥६॥ अब मेरे उपदेश से हे विप्र ! भगवान् सत्यनारायण की सेवा करो। यह द्वारिका सेवन दारिद्र्य, शोक का शमन करने वाला और सब प्रकार के सन्ताप का हरण करने वाला है। तुम सत्यनारायण देव के चरणो की शरण म चले जाओ। उनका पद्म लोचन वपु मोक्ष देने वाला है ॥७॥ इस प्रकार से भली भाँति ज्ञान करुणारमी हरि के द्वारा उस ब्राह्मण को दिया गया था। तब उस विप्र ने इस वृद्ध वेषधारी ब्राह्मण से फिर पूछा कि यह सत्यनारायण कौन हैं ॥८॥

बहु रूप सत्यसघ सर्वव्यापी निरञ्जन ।
इदानी विप्ररूपेण तव प्रत्यक्षमागत ॥९॥
दु खोदधिनिमग्नाना तरणिश्चरणौ हरे ।
कुशला शरण याति नेतरे विपर्यात्मिका ॥१०॥
आहृत्य पूजायसभारान्हिताय जगता द्विज ।
अर्चयस्तमनुध्यायस्त्वमेतत्प्रकटी कुरु ॥११॥

इति ब्रुवत विप्रोसौ ददर्श पुरुषोत्तमम् ।
जलदश्यामल चारुचतुर्वाहु गदादिभि ॥१२॥
पीतावर नवाभोजलोचन स्मितपूर्वकम् ।
वनमालामधुव्रात चु विताघ्रिसरोरुहम् ॥१३॥
निशम्य पुलकांगोसौ प्रेमपूर्णसुलोचन ।
स्तुवन्गद्गदया वाचा दडवत्पतितो भुवि ॥१४॥

वृद्ध ब्राह्मण ने कहा—यह सत्यनारायण बहुत से रूपा वाला है, सत्य प्रतिज्ञा करने वाला है सबमें व्याप्त रहने वाला है और निरञ्जन है और इस समय विप्र के रूप से तुम्हारे ही प्रत्यक्ष म आया हुआ है ॥९॥ हरि के चरण दु ख रूपी समुद्र म डूब हुओ को एक नौका क समान हैं । जो कुशल पुरुष होते हैं वे उनकी शरण मे चले जाया करत हैं। दूसरे विषयो म लिप्त रहने वाले व्यक्ति नही जाते हैं ॥१०॥ पूजा के लिए सम त सामग्री लाकर हे द्विज ! ससारी लोगो के कल्याण के लिए उनका भजन और उनका ध्यान करते हुए तुम इस सत्यनारायण के व्रताचन को प्रकट करो ॥११॥ इस प्रकार से बोलने वाले भगवान् पुरुषोत्तम का इस ब्राह्मण ने दर्शन किया था। मेघ के समान श्याम वर्ण वाले, सुन्दर चार भुजाओ से विभूषित जिनमे गदा, पद्म आदि आयुध धारण किए हुए हैं, पीताम्बर पहनने वाले, नवीन कमल क सदृश लोचन वाल, स्मित से युक्त मुख वाले, वनमाला धारी और मधु व्रात स चुम्बित चरण कमल वाले भगवान् के स्वरूप का दर्शन ब्राह्मण ने प्रत्यक्ष रूप से किया था ॥१२॥१३॥ उन भगवान के मुख से यह सुनकर इस शतानन्द का शरीर पुलकित हो गया और प्रेमावेश से नेत्रा म अश्रु भरकर आय थे। तब तो शतानन्द ने भगवान् का स्तवन किया और गद्गद वाणी से बहुत कुछ स्तुति की तथा एक दण्ड की भाँति वह भगवान् के चरणों म भूमि पर गिर गया ॥१४॥

प्रणमामि जगन्नाथ जगत्कारणकारकम् ।
अनाथनाथ शिवद शरण्यमनघ शुचिम् ॥१५॥

अव्यक्त व्यक्तता यात तापत्रयविमोचनम् ॥१६॥
नम सत्यनारायणायास्य कर्त्रेनम शुद्ध-
सत्त्वाय विश्वस्य भर्त्रे ।
करालाय कालाय विश्वस्य हर्त्रे नमस्ते
जगन्मङ्गलायात्ममूर्ते ॥१७॥
धन्योस्म्यद्यकृती धान्यो भवोद्य सफलो मम ।
वाङ्मनोगोचरो यस्त्व मम प्रत्यक्षमागत ॥१८॥
दिष्ट किं वर्णयाम्याहो न जाने कस्य वा फलम् ।
क्रियाहीनस्य मन्दस्य देहोऽय फलवान्कृत ॥१९॥
पूजन च प्रवक्तव्य लोकनाथ रमापते ।
विधिना केन कृपया तदाज्ञापय मा विभो ॥२०॥
हरिस्तमाह मधुर सस्मित विश्वमोहन ।
पूजाया मम विप्रेन्द्र बहु नापेक्षित धनम् ॥२१॥

शतानन्द ने कहा—इस जगत् के कारण को भी करने वाले, समस्त विश्व के नाथ, जो अनाथ हैं उन सब के नाथ, कल्याण के प्रदान करने वाले, शरण्य, अनघ और शुचि आपको मैं प्रणाम करता हूँ ॥१५॥ तीनो (आध्यात्मिक, आधिदैविक, आधिभौतिक) तापो के विमोचन करने वाले आप अव्यक्त स्वरूप वाले होकर भी व्यक्तता को प्राप्त हो गये हैं ॥१६॥ सत्यनारायण देव के लिए नमस्कार है। इस जगत् के कर्त्ता आपके लिए नमस्कार है। शुद्ध सत्व और विश्व के भरण करने वाले के लिए नमस्कार है। कराल काल स्वरूप एव विश्व के हरण करने वाले आपके लिये मेरा नमस्कार है। इस जगत् के मङ्गल के लिए हे आत्ममूर्ते ! आपको बार बार मेरा नमस्कार है ॥१७॥ आज मैं परम धन्य हूँ जिसने कि अब तक कुछ भी नही किया है। आज मेरा यह जन्म धारण करना भी अत्यन्त धन्य एव सफल हो गया जो आप वाणी और मन से अगोचर रहने वाले मेरे नेत्रो के समक्ष प्रत्यक्ष रूप से उपस्थित हो रहे हैं ॥१८॥ बडे ही सौभाग्य और आनन्द की बात है। मैं क्या वर्णन करूँ। मैं नही जान पाता हूँ कि यह किसका सुफल मुझे प्राप्त हुआ है। मेरा यह शरीर तो क्रिया से हीन

और परम मन्द है। हे भगवन ! आपने आज इस शरीर को फल वाला बना दिया है ॥१९॥ हे रमा के स्वामिन् ! हे लोकों के नाथ ! पूजन किस विधि से किया जाना चाहिए कृपा करके यह मुझे आज्ञा दीजिएगा। तब तो विश्व को मोहित करने वाले हरि ने मधुर स्मित के साथ उससे कहा—हे विप्रेन्द्र ! मेरी पूजा मे बहुत धन की अपेक्षा नही होनी है ॥२०॥२१॥

अनायासेन लब्धेन श्रद्धामात्रेण मायज ।
ग्राहग्रस्तोऽजामिलो वा यथाऽभून्मुक्तसकट ॥२२॥
विधान शृणु विप्रेन्द्र मनसा कामयेत्फलम् ।
पूजासभृतसभार पूजा कुर्याद्यथा विधि ॥२३॥
गोधूमचूर्णं पादार्द्धं सेटकादिप्रमाणत ।
दुग्धेन तावता युक्त मिश्रित शर्करादिभि ॥२४॥
तच्चूर्णं हरये दद्याद घृतयुक्त हरिप्रियम् ।
गोदुग्धेनैव दधिना गोघृतेन समन्वितम् ॥२५॥
गगाजलेन मधुना युक्त पञ्चामृत प्रियम् ।
पञ्चामृतेन सस्नाप्य शालग्रामोद्भवा शिलाम् ॥२६॥
गन्धपुष्पादिनैवेद्यैर्वेदवादैर्मनोहरै ।
धूपैर्दीपैश्च नैवेद्यैस्ताम्बूलादिभिरर्चयेत् ॥२७॥
मिष्टान्नपानसम्मानैर्भक्ष्यैर्भोज्यैः फलैस्तथा ।
ऋतुकालोद्भवै पुष्पै पूजयेद्भक्तितत्पर ॥२८॥

जो बिना ही किसी आयास के प्राप्त हो जावे उसी धन से केवल श्रद्धा का साधन लेकर मेरी पूजा करो। जैसे ग्राह से ग्रस्त गज अथवा अजामिल सङ्कट से मुक्त हो गया था वैसे ही सङ्कट से मुक्त हो जायगी ॥२२॥ हे विप्रेन्द्र ! अब विधान का श्रवण करो। पहिले मन से फल की कामना कर मेरी चाहिए फिर पूजा के सम्भार सम्भृत करके यथाविधि पूजा करनी चाहिए ॥२३॥ सेटकादि प्रमाण से पादार्ध गोधूम (गेहूँ) का चूर्ण उतने ही दुग्ध से युत और शर्करा आदि से मिश्रित करे और उस चूर्ण को हरि के लिए समर्पित करना

चाहिए उस घृत से युक्त भी कर लेवे जो कि हरि को अत्यन्त प्रिय होना है। गोदुग्ध, मधु गोघृत, गोदधि और गङ्गा जल से युक्त करके पञ्चामृत बनावे जो कि हरि को प्रिय है। इस पञ्चामृत के द्वारा शाल ग्रामोद्भव शिला का सस्नपन कराव ।।२४।।२५।।२६।। गन्धाक्षत पुष्प आदि, नैवेद्य और मनोहर वेदवादो से तथा धूप एव दीप से, नैवेद्य और ताम्बूल आदि के द्वारा अर्चना करनी चाहिये। ।।२७।। भक्ति भाव म तत्पर होकर मिष्टान्न पान सम्मान, भक्ष्य भोज्य, फल जो ऋतु काल क हो और पुष्पो म पूजन करना चाहिए ।।२८।।

ब्राह्मणै स्वजनैश्चैव वेष्टित श्रद्धयान्वित ।
त्वया सार्द्धं मम कथा श्रृणुयात्परमादरात् ।।२६।।
स गत्वा स्वगणानाह माहात्मय हरिसेवने ।
ते हृष्टमनस सर्वे समय चक्र रादृता ।।३०।।
सत्यनारायणे पूजा काष्ठलब्धेन यावता ।
वय कुले करिष्याम पुण्यवृक्षविधानत ।।३१।।
इतिनिश्चित्य मनसा काष्ठ विक्रीय लेभिरे ।
चतुर्गुण धन हृष्टा स्वस्व भवनमाययु ।।३२।।
मुदा स्त्रीभ्यस्समाचख्युर्वृत्तात सवमादित ।
ता श्रुत्वाहृष्टमनस पूजन चक्रुरादरात् ।।३३।।
कथान्ते प्रणमन्भक्त्या प्रसाद जगृहुस्तत ।
स्वजातिभ्य परेभ्यश्च ददुस्तच्चूर्णमुत्तमम् ।।३४।।
पूजाप्रभावतो भिल्ला पुत्रदारादिभिर्युता ।
लब्ध्वा भूमितले द्रव्य ज्ञानचक्षुर्महोत्तमम् ।।३५।।
भुक्त्वा भोगान्यथेष्ट ते दरिद्रान्धा द्विजोत्तम ।
जग्मुस्ते वैष्णव धाम योगिनामपि दुलभम् ।।३६।।

ब्राह्मण और स्वजनो से वेष्टित होकर परम श्रद्धा से अन्वित हो परम आदर से सबके साथ मेरी कथा का श्रवण करना चाहिए ।।२६।। यह सुनकर वह शतानन्द जाकर अपने लोगों से सबसे हरि के सेवन का माहात्म्य कहने

लगा। वे सभी परम प्रसन्न हुए और प्रसन्न मन वाले सबने बड़े आदर से इसके करने की प्रतिज्ञा की थी।३०। काष्ठ के बेचने पर जितना भी धन मिलेगा उससे हम सत्यनारायण की पूजा करेंगे और समस्त कुल के साथ पुण्य वृक्ष के विधान से अर्चन करेंगे।३१। ऐसा सबने मन में निश्चय करके काष्ठ को बेचकर चौगुना धन प्राप्त किया था। तब तो वे बहुत ही अधिक प्रसन्न होते हुए अपने-अपने घर को आये और बड़े ही हर्ष से यह समस्त वृत्तान्त अपनी स्त्रियों से कह दिया जो भी आदि से अब तक हुआ था। वे स्त्रियाँ भी इस वृत्तान्त को सुन कर परम प्रसन्न मन वाली हो गईं और बड़े ही आदर से उन्होंने पूजन किया था।।३२।।३३।। कथा के अंत में प्रणाम करके फिर भक्ति भाव से सबने प्रसाद ग्रहण किया। अपनी जाती वालों के लिए और जो अन्य थे उन सबके लिए यह उत्तम प्रसाद का चूर्ण (पंजीरी) दी।।३४।। पूजा के प्रभाव से भिल्ल पुत्र और दारा आदि से युक्त हो गये थे। इस भूमण्डल में द्रव्य पाकर महान् उत्तम ज्ञान चक्षु के पाने का भी लाभ लिया था।।३५।। यहाँ पर यथेष्ट भोगों का उपभोग करके हे द्विजोत्तम! वे दरिद्रान्ध योगियों के भी ऊपर स्थित वैष्णव धाम को प्राप्त हुए।।३६।।



अथ ते वर्णयिष्यामि कथां साधूपचारिताम्।
नृपोपदेशतः साधुः कृतार्थोऽभूद्वणिग्यथा।।१।।
मणिपूरपती राजा चन्द्रचूडो महायशाः।
सह प्रजाभिरानर्च सत्यनारायणं प्रभुम्।।२।।
अथ रत्नपुरस्थायो साधुर्लक्षपतिर्वणिक्।
धनैरापूर्य तरणीः सह गच्छन्नदीतटे।।३।।
ददर्श बहुलं लोकं नानाग्रामविलासिनम्।
मणिमुक्ताविरचितैर्वितानैस्समलंकृतम्   ।।४।।

वेदवादांश्चशुश्राव　　गीतवादित्रसंगतान् ।
रम्यं स्थानं समालोक्य कर्णधारं समादिशत् ॥५॥
विश्रामयात्र तरणीरिति पश्यामि कौतुकम् ।
भर्त्रादिष्टस्तथा चक्रे कर्णधारः सभृत्यकः ॥६॥
तटसीम्नि समुत्तीर्य मल्ललीलाविलासिनः ।
कर्णधारा नगा वीरा युयुधुर्मल्ललीलया ॥७॥

इस अध्याय में सत्य नारायण व्रत में साधु वणिक् की कथा का वर्णन किया जाता है । श्री सूत जी ने कहा—इसके साधु के द्वारा उपचरित्र कथा का वर्णन तुम्हें सुनाऊँगा नृप के उपदेश से वणिक साधु जिस तरह से कृतार्थ हुआ था ॥१॥ मणिपुर का स्वामी महान् यश वाला चन्द्र चूड नामधारी राजा था । वह अपनी समस्त प्रजा के जनों के साथ प्रभु सत्यनारायण देव की पूजा किया करता था ॥२॥ इसके अनन्तर रत्नपुर में रहने वाला लक्षपति वणिक् साधु था। वह धन से नौका को भरकर उस नाव के ही साथ नदी के तट पर जा रहा था ॥३॥ उसने अनेक ग्रामों के विलास वाले बहुत से लोगों को देखा था । जो कि मणि और मुक्ताओं के द्वारा बनाये हुए वितानों से विभूषित थे ॥४॥ वहाँ पर गीत वादित्र से संगत वेद वादों को उसने श्रवण किया था । उस समय उस परम रम्य स्थान को देखकर कर्ण धार से उसने कहा ॥५॥ यहाँ पर हमारी इस नौका को रोक दो । मैं इस कौतुक को देखता हूँ । स्वामी के द्वारा आज्ञा प्राप्त करके उस कर्णधार ने समस्त भृत्यों के साथ उस नौका को वहाँ रोक दिया था उस तट की सीमा पर उतरकर मल्ल लीला के विलास करने वाले नग कर्ण धार वीर मल्ललीला से युद्ध करने लगे ॥६॥७॥

स्वयमुत्तीर्य सामात्यो लोकान्पप्रच्छ सादरम् ।
यज्ञस्थानं समालोक्य प्रशस्तं समुदो ययौ ॥८॥
किमत्र क्रियते सभ्या भवद्भिर्लोकपूजितैः ।
सभ्याऊचुश्च ते सर्वे सत्यनारायणो विभुः ॥९॥
पूज्यते बन्धुभिः सार्धं राज्ञा लोकानुकंपिना ।
प्राप्तं निष्कंटकं राज्यं सत्यनारायणार्चनात् ॥१०॥

धनार्थी लभते द्रव्य पुत्रार्थी सुतमुत्तमम् ।
ज्ञानार्थी लभते चक्षुर्निभय स्याद्भयातुर ॥११॥
सर्वान्कामानवाप्नोति नर सत्यसुरार्चनात् ।
विधान तु तत श्रुत्वा चैल बद्ध्वा गलेऽमकृत् ॥१२॥
दडवत्प्रणिपत्याह काम सभ्यानमोदयत् ।
अनपत्योऽस्मि भगवन्वृथैश्वर्यो वृथोद्यम ॥१३॥
पुत्र वा यदि वा कन्या लभेय त्वत्प्रसादत ।
पताका काचनी कृत्वा पूजयिष्ये कृपानिधिम् ॥१४॥

वणिक अपने अमात्य के साथ स्वय नौका से नीचे उतर गया और आदर के साथ लोगो से पूछा । उस परम प्रशस्त यज्ञ के स्थान को देखकर आनन्द के साथ वह वहाँ गया था ॥८॥ हे सभ्यो ! लोक पूजित आप लोग यहाँ क्या करते हैं तब उन समस्त सभ्यो ने कहा—हमारे द्वारा प्रभु सत्य नारायण की अर्चना की जा रही है और लोको पर दया करने वाले राजा ने बन्धुओ के साथ इसी सत्यनारायण की पूजा के प्रभाव से यह निष्कण्टक राज्य प्राप्त किया है।।९।।१०।। सत्यनारायण के अर्चन से धन के चाहने वाला धन पुत्र की इच्छा वाला उत्तम पुत्र ज्ञान के प्राप्त करने को अभिलाषी ज्ञान चक्षु प्राप्त किया करताहै । जो भय से आतुर होता है वह निर्भर हो जाता है ॥११॥ मनुष्य सत्यनारायण देव की पूजा से समस्त कामनाओ को प्राप्त कर लेता है । इसके पश्चात् उसके विधान को सुन कर बार बार वस्त्रको गले मे बाँधकर दण्ड की भाति भूमि मे प्रणाम करके उसने बहुत अधिक उन सभ्यो को प्रसन्न किया था । हे भगवन मैं सन्तान रहित हू, उसने कहा मेरा यह ऐश्वर्य और सारा उद्यम व्यर्थ ही है ॥१२॥१३॥ उसने सत्य नारायण प्रभु से प्रार्थना की पुत्र अथवा एक कन्या ही आपके प्रसाद से मुझे प्राप्त हो जावे तो मैं सुवर्ण की पताका बनवाकर कृपा के निधि आपकी पूजा करूँगा ॥१४॥

श्रुत्वा सभ्या अब्रुवस्ते कामनासिद्धिरस्तु ते ।
हरि प्रणम्य सभ्याश्च प्रसाद भुक्तवास्तदा ॥१५॥

जगाम स्वालय साधुर्मनसा चिंतयन्हरिम् ।
स्वगृहे ह्यागते तस्मिन्नार्यो मगलपाणय ॥१६॥
मगलानि विचित्राणि यथोचितमकारयन् ।
विवेशात पुरे साधुर्महाकौतुकमगल ॥१७॥
ऋतुस्नाता सती लीलावती पर्यचरत्पतिम् ।
गर्भं धृतावती साध्वी समये सुपुवे तु सा ॥१८॥
कन्या कमलनोलाक्षी वाधवामोदकारिणीम् ।
साध परा मुदलेभे विततार धन वहु ॥१९॥
विप्रानाहूय वेदज्ञान्कारयामास मगलम् ।
लेखयित्वा जन्मपत्री नाम चक्रे कलावतीम् ॥२०॥
प्रौढा कालेन ता दृष्ट्वा विवाहार्थमचिन्तयत् ॥२१॥

उसकी इस प्रार्थना को सुनकर व सभ्य लोग बोल—तरी कामना की सिद्धि होगी। इसके अनन्तर उस वणिक् ने हरि और सभ्यो को प्रणाम करके प्रसाद को खाया था ॥१५॥ फिर वह साधु वणिक् मन मे हरि का चिन्तन करता हुआ अपने घर को चला गया। उसके घर मे आने पर मङ्गल द्रव्य हाथो ग्रहण करके नारियो ने विचित्र मङ्गल काय यथोचित किये थे। इसके पश्चात महान् कौतुक मङ्गल वाले उस साधु ने अपने अन्त पुर मे प्रवेश किया था ॥१६॥१७॥ फिर ऋतु काल का स्नान करने वाली उसकी पत्नी सती लीलावली न अपने पति की परिचर्या की थी। तब उसने गर्भ धारण किया और समय आने पर अर्थात प्रसव काल उपस्थित होने पर उस साध्वी ने कमल के सदृश चचल नेत्रो वाली और बान्धवो को आनन्द करने वाली कन्या को जन्म दिया था। साधु को महान् आनन्द हुआ और उसने उस आनन्द के समय मे बहुत सा धन वितरित किया था ॥१८॥१९॥ वेद के ज्ञाता महामनीषी विप्रो को बुलाकर उस साधु ने मङ्गल कृत्य कराया था। जन्मपत्री लिखवाकर उसने उस कन्या का कलावली नाम रक्खा था ॥२०॥ जब प्रौढा हो गई तो उसे देखकर साधु ने उसके विवाह करने के विषय म विचार किया था ॥२१॥

नगरे काचनपुरे वणिक्छखपति श्रुत ॥२२॥
कुलीनो रूपसपत्तिशीलौदायगुणान्वित ॥२३॥
वरयामास त साधु दुहितु सदृश वरम् ।
शुभे लग्ने ब्हुविधैमगलैरग्निसन्निधौ ॥२४॥
वेदवादित्रनिनदैददौ क या यथाविधि ।
मणिमुक्ताप्रवालानि वसन भूपणानि च ॥२५॥
महामोदमना साधु मगलार्थं ददौ च ह ।
प्रेम्णा निवासयामास गृहे जामातर तत ॥२६॥
त मेने पुत्रवत्साधु स च त पितृवत्सुधी ।
अतीते भूयस काले सत्यनारायणाचनम् ॥२७॥

काञ्चनपुर नगर मे शङ्ख पति नाम वाला एक प्रसिद्ध वणिक् था जो परम कुलीन और रूप सम्पत्तिशील औदाय आदि गुणो से युक्त था। साधु उसे ही पुत्री के योग्य वर समझकर वरण किया था। शुभलग्न मे और अग्नि की सन्निधि मे बहुत प्रकार के मङ्गलो के साथ तथा वेदमन्त्र और वादित्र ध्वनि के सहित यथाविधि उसको अपनी कन्या का दान साधु वणिक ने कर दिया था। उसको दहेज म मणि, मुक्ता, प्रवाल, वस्त्र और भूषण दिये थे साधु महान आनन्द मे मग्न मन वाला था उसने मङ्गल के लिए यह सभी कुछ दिया था। और इसके पश्चात अपने उस जमाई को बडे ही प्रेम से अपन ही घर रख लिया था ॥२२।२३॥२४॥२५॥२६॥ साधु उस अपने जामाता को पुत्र की तरह मानता था और वह सुधी जामाता भी साधु को अपने पिता की भाँति मानता था। बहुत सा समय व्यतीत हो गया और वह सत्यनारायण की पूजा करने के सकल्प को एकदम भूल गया था। फिर वह अपने जमाई के साथ वाणिज्य का काय करने क लिए बाहिर चला गया ॥२७॥

विस्मृत्य सह जामात्रा वाणिज्याय ययौ पुन ।
अथ साधु समादाय रत्नानि विविधानि च ॥२८॥
नौका सस्थाप्य स ययौ देशाद्देशातर प्रति ।
नगर नर्मदातीरे तत्र वास चकार स ॥२९॥

कुर्वन्क्रय विक्रयं च चिरं तस्थौ महामनाः ।
कर्मणा मनसा वाचा न कृत सत्यसेवनम् ॥३०॥
तत. कर्मविपाकेन तापमापाचिराद्वणिक् ।
कस्मिश्चिद्दिवसे रात्रौ राज्ञो गेहे तमोवृते ॥३१॥
ज्ञात्वा निद्रागतान्सर्वान्हृतं चौरैर्महाधनम् ।
प्रभाते वाचितो राजा सूतमागधवन्दिभिः ॥३२॥
प्रातः कृत्य नृपः कृत्वा सद. सप्राविशच्च सः ।
ततस्तत्र समायात. किंकरो राजवल्लभः ॥३३॥
उवाच स तदा वाक्य शृणुष्व त्व धरापते ।
मुक्तामालाश्च बहुधा रत्नानि विविधानि च ॥३४॥
मुमुषुश्चौरा गतास्सर्वे न जानीमो वय नृप ।
इति विज्ञापितो राजा पुण्यश्लोक शिखामणिः ॥३५॥
उवाच क्रोधताम्राक्षो यूय सयात मा चिरम् ।
सचौरं द्रव्यमादाय मत्पार्श्वं त्वमुपानय ॥३६॥

सूत जी ने कहा—इसके पश्चात् साधु ने अनेक प्रकार के रत्नों को लेकर नौका मे रक्खा और वह दूसरे देशो को चला गया था। एक नगर नमदा नदी के तट पर था। वहाँ पर उसने अपना निवास किया था ॥२८॥२९॥ वह महान मन वाला साधु बहुत सा रत्नो का क्रय और विक्रय करके वहाँ पर बहुत समय तक ठहर गया था किन्तु उस समय तक भी उसने कर्म, मन और वचन से भी सत्यनारायण देव का सेवन नही किया था ॥३०॥ इसके पश्चात कर्मों के विपाक होने से शीघ्र ही उस वणिक ताप को प्राप्ति की। किसी दिन रात्रि मे राजा के तम से आवृत घर मे सबको निद्रा के वशी भूत समझकर चोरो ने महान धन का हरण किया था। जब प्रातः काल हुआ तो सूत मागध और वन्दियो के द्वारा राजा वाचित किया गया था ॥३१॥३२॥ राजा ने प्रात काल का समस्त कृत्य समाप्त करके वह राजा सभा मे प्रविष्ट हुआ। वहाँ पर राजवल्लभ किङ्कर आया और उसने तब यह वचन कहा—हे धरापते ! आप

नगरे काचनपुरे वणिक्छखपति श्रुत ॥२२॥
कुलीनो रूपसपत्तिशीलौदार्यगुणान्वित ॥२३॥
वरयामास त साधु दुहितु सदृश वरम् ।
शुभे लग्ने बहुविधैर्मगलैरग्निसन्निधौ ॥२४॥
वेदवादित्रनिनदैर्ददौ कन्या यथाविधि ।
मणिमुक्ताप्रवालानि वसन भूषणानि च ॥२५॥
महामोदमना साधुर्मंगलार्थं ददौ च ह ।
प्रेम्णा निवासयामास गृहे जामातर तत ॥२६॥
त मेने पुत्रवत्साधु स च त पितृवत्सुधी ।
अतीते भूयस काले सत्यनारायणाचनम् ॥२७॥

काञ्चनपुर नगर मे शङ्ख पति नाम वाला एक प्रसिद्ध वणिक् था जो परम कुलीन और रूप, सम्पत्तिशील, औदार्य आदि गुणो से युक्त था । साधु उसे ही पुत्री के योग्य वर समझकर वरण किया था । शुभलग्न में और अग्नि की सन्निधि मे बहुत प्रकार के मङ्गलो के साथ तथा वेदमन्त्र और वादित्र ध्वनि के सहित यथाविधि उसको अपनी कन्या का दान साधु वणिक् ने कर दिया था । उसको दहेज मे मणि, मुक्ता, प्रवाल, वस्त्र और भूषण दिये थे साधु महान आनन्द मे मग्न मन वाला था उसने मङ्गल के लिए यह सभी कुछ दिया था । और इसके पश्चात् अपने उस जमाई को बडे ही प्रेम से अपने ही घर रख लिया था ॥२२।२३॥२४॥२५॥२६॥ साधु उस अपने जामाता को पुत्र की तरह मानता था और वह सुधी जामाता भी साधु को अपने पिता की भाँति मानता था । बहुत सा समय व्यतीत हो गया और वह सत्यनारायण की पूजा करने के सकल्प को एकदम भूल गया था । फिर वह अपने जमाई के साथ वाणिज्य का काय करने के लिए बाहिर चला गया ॥२७॥

विस्मृत्य सह जामात्रा वाणिज्याय ययौ पुन ।
अथ साधु समादाय रत्नानि विविधानि च ॥२८॥
नौका सस्थाप्य स ययौ देशाद्देशान्तर प्रति ।
नगर नर्मदातीरे तत्र वास चकार स ॥२९॥

कुर्वन्क्रय विक्रय च चिर तस्थौ महामना ।
कर्मणा मनसा वाचा न कृत सत्यसेवनम् ॥३०॥
तत कर्मविपाकेन तापमापाच्चिराद्वणिक् ।
कस्मिश्चिद्दिवसे रात्रौ राज्ञो गेहे तमोवृत ॥३१॥
ज्ञात्वा निद्रागतान्सर्वान्हृत चौरैर्महाधनम् ।
प्रभात वाचितो राजा सूतमागधवदिभि ॥३२॥
प्रात कृत्य नृप कृत्वा सद सम्प्राविशच्च स ।
ततस्तत्र समायात किंकरो राजवल्लभ ॥३३॥
उवाच स तदा वाक्य शृणुष्व त्व धरापत ।
मुक्तामालाश्च बहुधा रत्नानि विविधानि च ॥३४॥
मुमुपुश्चौरा गतास्सर्वे न जानीमो वय नृप ।
इति विज्ञापितो राजा पुण्यश्लोक शिखामणि ॥३५॥
उवाच क्रोधताम्राक्षो यूय सयात मा चिरम् ।
सचौर द्रव्यमादाय म पार्श्व त्वमुपानय ॥३६॥

सूत जी ने कहा—इसके पश्चात् साधु ने अनेक प्रकार के रत्नो को लेकर नौका मे रक्खा और वह दूसर देशो को चला गया था । एक नगर नमदा नदी के तट पर था । वहाँ पर उसने अपना निवास किया था ॥२८॥२९॥ वह महान मन वाला साधु बहुत सा रत्नो का क्रय और विक्रय करक वहाँ पर बहुत समय तक ठहर गया था कि तु उस समय तक भी उसने कम मन और वचन से भी सत्यनारायण देव का सेवन नही किया था ॥३०॥ इसके पश्चात कर्मों के विपाक होने से शीघ्र ही उस वणिक ताप की प्राप्ति की । किसी दिन रात्रि मे राजा के तम से आवृत घर म सबको निद्रा के वशी भूत समझकर चोरो न महान धन का हरण किया था । जब प्रात काल हुआ तो सूत मागध और वदियो के द्वारा राजा वाचित किया गया था ॥३१॥३२॥ राजा ने प्रात काल का समस्त कृत्य समाप्त करके वह राजा सभा म प्रविष्ट हुआ । वहाँ पर राजवल्लभ किङ्कर आया और उसने तब यह वचन कहा—हे धरापते ! आप

सुनिये, बहुतसी मोतियो की मालाएँ और अन्य अनेक प्रकार के रत्नो को चोरो ने हरण कर लिया है और वे सब चले गये हैं। हे नृप ! हम को कुछ भी पता नही है। इस तरह से विज्ञापित किये गये पुण्य लोको मे शिखामणि उस राजा ने क्रोध से लाल नेत्र करके कहा—तुम लोग जाओ और बिलम्ब मत करो। तुम चोरो के साथ उस सम्पूर्ण धन को लाकर मेरे पास आओ ॥३३॥३४॥३५॥३६॥

नो चेद्धनिष्ये सगणानिति दूतान्समादिशत् ।
नृपवाक्य समाकर्ण्य प्रजग्मुस्त च किंकरा ॥३७॥
बहुयत्नैर्न सशोध्य द्रव्य चौरसमन्वितम् ।
एकीभूत्वा निशि तदा महाचिंतातुरोऽभवत् ॥३८॥
हन्ता मा सगण राजा किं करोमि कुत सुखम् ।
नृपदडाच्च मे मृत्यु प्रेतत्वाय भवेदिह ॥३९॥
नर्मदाया च मरण शिवलोकप्रदायकम् ।
इत्येव समत कृत्वा नर्मदायास्तट ययु ॥४०॥
विदेशिनोऽस्य वणिजो ददर्श विपुल धनम् ।
मुक्ताहार गले तस्य लु ठित वणिजोऽस्य च ॥४१॥
चौरोऽयमिति निश्चित्य तौ बबधात्मरक्षणात् ।
सघन सह जामात्रा नृपान्तिकमुपानयत् ॥४२॥

नही तो गणो के सहित तुम को मार दिया जायगा। इस तरह से राजा ने दूतो को आज्ञा प्रदान की थी। राजा के वाक्य को सुनकर वे समस्त किंकर चोरो की खोज मे गये थे ॥३७॥ बहुत से यत्नो के करने पर भी चोरो से युक्त धन का शोध न पासके और वे सब रात्रि मे एकत्रित होकर महान् चिन्ता से आतुर हो उठे थे ॥३८॥ राजा गण के सहित हमको मार देने वाला है अब क्या किया जावे। कैसे सुख प्राप्त हो। नृप के दण्ड से हमारी मृत्यु होगी तो वह प्रेतत्व के लिये ही होगी ॥३९॥ अतएव हम नर्मदा नदी मे डूबकर मरना अच्छा है जो शिव लोक को देने वाली मौत है। इस तरह सब सलाह करके

नर्मदा के तट पर चले गये थे ॥४०॥ वहाँ उन्होने इस विदेशी वणिक का बहुत-सा धन देखा। मोतियो का हार इस वणिक के गले मे पडा हुआ उन्होने देखा था। उन्होने यही चोर है, यह कहकर अपनी आत्मा की रक्षा के लिए उस साधु वणिक को बाँध लिया था। उसको उसके जमाई और समस्त धन के साथ ले जाकर राजा के समीप पहुचा दिया ॥४१॥४२॥

प्रतिकूले हरौ तस्मिन्राज्ञापि च विचारितम् ।
धनागारे धन नीत्वा बध्नीत तौ सुदुर्मती ॥४३॥
कारागारे लोहमयै शृखलैरगपादयो. ।
इति राजाज्ञया दूतास्तथा चक्रुर्निबधनम् ॥४४॥
जामात्रा सहित साधुर्विललाप भृश मुहु ।
हा पुत्र तात तातेति जामात क्व धन गतम् ॥४५॥
क्व स्थिता च सुता भार्या पश्य धातुर्विपर्ययम् ।
निमग्नौ दु खजलधौ को वा पास्यति सकटात् ॥४६॥
मया बहुतर धातुर्विप्रिय हि पुरा कृतम् ।
तत्कर्मण प्रभावोऽय न जाने कस्य वा फलम् ॥४७॥
सम श्वशुरजामात्रौ द्वादशेपु विपादिनौ ॥४८॥

भगवान् हरि के प्रतिकूल होने पर उस राजा ने भी विचार किया कि धनागार म धन रख कर इन दोनो दुष्ट बुद्धि वालो को बाँध लिया जावे। लोहे की शृङ्खलाओ से इनको अङ्ग और पैरो म बाँधकर कारागार में डाल दिया जावे। इस तरह की जब राजा की आज्ञा हुई तो दूतो ने तदनुसार उनका निबन्धन कर दिया था ॥४३॥४४॥ जमाई के साथ उस साधु ने अत्यधिक बार-बार विलाप किया। हे पुत्र हे! तात! हे जामाता! सारा धन कहाँ चला गया? ॥४५॥ कहाँ तो अब भार्या है और कहाँ सुता है। विधाता की इस विपरीतता को देखो। हम दोनो इस समय दु ख के सागर मे निमग्न हो गये हैं। कौन है जो हमको इस महान सकट से रक्षा करेगा? ॥४८॥ मैंने पहिले कभी विधाता का कुछ अत्यधिक विप्रिय कर्म किया था आज यह उसी कर्म का

यह प्रभाव है । मैं यह नहीं जानता हूँ यह कौन से कर्म का फल मिल रहा है ॥४७॥ श्वसुर और जमाई दोनो ही द्वादशों मे समान विषाद वाले थे ॥४८॥



॥ साधुवणिज कारागारान्मुक्ति वर्णन ॥

तापत्रयहर विष्णोश्चरित तस्य ते शिवम् ।
शृण्वति सुधियो नित्य ते वसति हरे पदम् ॥१॥
प्रतिकूले हरौ तस्मिन्यास्यन्ति निरयान्वहून् ।
तत्प्रिया कमला देवी चत्वारस्तस्य चात्मजा ॥२॥
धर्मो यज्ञो नृपश्चौर सर्वे लक्ष्मीप्रियकरा ।
विप्रेभ्यश्चातिथिभ्यश्च यद्दान धर्म उच्यते ॥३॥
मातृभ्यो देवताभ्यश्च स्वधा स्वाहेति वै मख ।
धर्मस्यैव मखस्यैव रक्षको नृपति स्मृत ॥४॥
द्वयोर्हन्ता हि चोर स ते सर्वे धर्मकिंकरा ।
यत्र सत्य ततो धर्मस्तत्र लक्ष्मी स्थिरा भवेत् ॥५॥
सत्यहीनस्य तरसाधोधन यत्तद्गृहे स्थितम् ।
हृतवानवनीपाल चौरैर्भार्यातिदु खिता ॥६॥
वासोलकरणादीनि विक्रीय बुभुजे किल ।
नास्ति तत्पच्यते किंचित्तदा कष्टमगाहत ॥७॥

इस अध्याय मे साधु वणिक की भार्या के द्वारा किये हुए सत्य नारायण के व्रत के प्रभाव से साधु वणिक की कारागार से मुक्ति हो जाने का वर्णन किया जाता है । सूत जी ने कहा—तीनो तापों के हरने वाले उन विष्णु के चरित को जोकि परम शिव है जो सुन्दर बुद्धि वाले लोग सुनते हैं वे नित्य ही हरि के पद मे निवास किया करते हैं ॥१॥ जब वही भगवान् विष्णु प्रतिकूल हो जाते हैं तो प्राणी बहुत स नरकों मे निवास करते हैं । उन की प्रिया तो देवी कमला हैं और उनके चार पुत्र हैं । धर्म यज्ञ नृप और चोर ये चारो ही लक्ष्मी

ने प्रियकर होते हैं। विप्रो के लिए और अतिथियो के लिये जो दान दिया जाता है वही धर्म इस नाम से कहा जाता है ॥२॥३॥ माताओ के लिए तथा देवों के लिये स्वधा और स्वाहा इससे कर्म किया जाता है वह मख या यज्ञ कहलाता है। धर्म का और मख का रक्षक नृपति कहा गया है। दोनो का जो दमन करने वाला है वह चोर होता है। ये सभी धर्म के किंकर होते हैं। जहाँ सत्य होता है वहीं धर्म होता है और वहीं पर लक्ष्मी भी स्थित रहा करती हैं ॥४॥५॥ सत्य से हीन साधु का धन और जो उसके घर में स्थित था वह धन भवनिपाल ने हरण कर लिया और चोरो से भार्या अति दुःखित हुई थी ॥६॥ उसने अपने वस्त्र और अलङ्कार आदि बेचकर उदर पूर्त्ति की थी। वह कुछ भी परिपाक नहीं होना है। उस समय कष्ट का अवगादन किया था ॥७॥

अथैकस्मिन्दिने कन्या भोजनाच्छादन विना।
गता विप्रगृहेऽपश्यत्सत्यनारायणार्चनम् ॥८॥
प्रार्थयत जगन्नाथ दृष्ट्वा सा प्रार्थयद्धरिम्।
सत्यनारायण हरे पिता भर्ता च मे गृहम् ॥९॥
आगच्छत्वर्चयिष्यामि भवतमिति याचये।
तथास्तु ब्राह्मणैरुक्ता तत सा स्वाश्रम ययौ ॥१०॥
माता निर्भर्त्सितेयत काल कुत्र स्थिता शुभे।
वृत्तात कथयामास सत्यनारायणार्चने ॥११॥
कलौ प्रत्यक्ष फलद सर्वदा क्रियते नरे।
कर्तुमिच्छाम्यह मातरनुज्ञातु त्वमर्हसि ॥१२॥
देशमायातु जनक स्वामी च मम कामना।
रात्रौ निश्चित्य मनसा प्रभाते सा कलावती ॥१३॥
शीलापालस्य गुप्तस्य गेहे प्राप्ता धनार्थिनी।
वधो किंचिद्धन देहि येन सत्यार्चन भवेत् ॥१४॥

एक बार वह कन्या भोजनाच्छादन के बिना ही एक विप्र के घर में चली गई और वहाँ उसने सत्यनारायण की पूजा को देखा था ॥८॥ वह जगन्नाथ की प्रार्थना का जा रही थी तो उसने भी हरि से प्रार्थना की—हे सत्यनारायण

देव ! मेरे पिता और स्वामी घर आ जावें तो मैं आपका अर्चन करूँगी मैं आप से यही याचना करती हू । तब उन ब्राह्मणो ने कहा—ऐसा ही हो जायगा। ऐसा कहे जाने के पश्चात् वह अपने आश्रम को चली गई ॥६॥१०॥ तब माता ने उसको फटकार दी कि तू हेशुभे ! इतने लम्बे समय तक कहाँ रही थी। उस समय उस कन्या ने सत्यनारायण के अर्चन का सब वृत्तान्त सुना दिया था ॥११॥ यह सत्यनारायण इस कलियुग मे प्रत्यक्ष फल के देने वाले हैं और सर्वदा नरो के द्वारा यह किये जाते हैं । मैं भी इनका अर्चन करना चाहती हू । हे माता ! तुम मुझे इसके करने की आज्ञा देने के योग्य होती हो ॥१२॥ मेरे पिता और मेरे स्वामी अपने देश में आजावें यही मेरी कामना है । इस प्रकार से रात मे उस कलावती न ऐसा मन से निश्चय किया और प्रात काल में वह शीलपाल गुप्त के घर मे धन के लिये गई थी। वहाँ उसन उससे कहा—हे व धो ! कुछ धन दो जिससे मैं सत्यनारायण का अर्चन कर लू ॥१३॥१४॥

इति श्रुत्वा शीलपाल पचनिष्क धन ददौ ।
स्वत्पितुश्च ऋण शेष मयीत्येव कलावति ॥१५॥
इत्युक्त्वा सोऽनृणो भूत्वा गयाश्राद्धाय सययौ ।
सुतापि तन द्रव्येण कृत सत्याचन शुभम् ॥१६॥
लीलावती सह तया भक्त्याकार्षीत्प्रपूजनम् ।
पूजनेन विशेषेण तुष्टो नारायणोऽभवत् ॥१७॥
नर्मदातीरनगरे नृप सुष्वाप मदिरे ।
रात्रिशेषे सुपर्यंके निद्रा कुवति राजनि ।
उवाच विप्ररूपेण बोधयञ्छ्लक्ष्णया गिरा ॥१८॥
उत्तिष्ठोत्तिष्ठ राजेंद्र तौ साधू परिमोचय ।
अपराध विना बद्धौ नो चेच्छ्र न भवेत्तव ॥१६॥
इत्येव भूपतिश्चैव विप्ररूपेण बोधित ।
तदा ह्यतर्दधे विष्णुर्विनिद्रो नृपतिस्तदा ॥२०॥

विस्मित सहसोत्थाम दध्यौ ब्रह्म सनातनम् ।
सभाया मन्त्रिणे राजा स्वप्नहेतु न्यवदयत् ॥२१॥

यह सुनकर उस ग्रीलपाल ने पाँचानिष्क उसे दे दिये और कहा--हे कलावति! तुम्हारे पिता का इतना ही ऋण मुझ पर शेष रह गया था ॥१५॥ यह कह कर उऋण हो कर गया श्राद्ध करने के लिये चला गया था। उस पुत्री ने भी उस धन से सत्यनारायण का शुभ अर्चन किया था ॥१६॥ उसके साथ लीलावती ने भक्ति पूर्वक सत्यनारायण देव का पूजन किया था। इस विशेष पूजन से भगवान् नारायण तुष्ट हो गये थे ॥१७॥ उधर नर्मदा नदी के तट पर मन्दिर म राजा सो रहा था। जब रात्रि का शेषकाल था उस समय वहाँ राजा के पयङ्क पर निद्रा करने पर भगवान नारायण एक विप्र के वेष मे वहाँ आकर राजा से बाल—हे राजेन्द्र! उठ जाओ और उन दोनो साधुओ को कारागार से मुक्त करा दो। ये दोनो बिना ही किसी अपराध के बन्द किये गये हैं। यदि उन्हे मुक्त नही किया तो आपकी भलाई नही होगी ॥१८॥१९॥ इस प्रकार से वह राजा विप्र के रूप से बोधित किया गया था और फिर भगवान् अन्तर्धान हो गये। तब राजा विनिद्र हो गया अर्थात जाग गया था ॥२०॥ वह राजा बहुत ही विस्मित होकर उठ गया और सहसा उसने सनातन ब्रह्म का ध्यान किया। राजा ने सभा मे आकर मन्त्रियो से स्वप्न कारण निवेदित किया था ॥२१॥

महामन्त्री च भूपाल प्राह सत्येन भो द्विज ।
मयापि दर्शित स्वप्न बृद्धविप्रेण बोधितम् ।
अतस्तौ हि समानीय सपृच्छ विधिवन्नृप ॥२२॥
आनीय साधु पप्रच्छ सत्यमालब्य भूपति ।
कुत्रत्यौ वा कुल किं वा वसति कस्य वा पुरे ॥२३॥
रम्ये रत्नपुरे वासो वणिग्जातौ जनिर्मम ।
वाणिज्यार्थं महाराज वाणिज्य जीविकावतौ ॥२४॥
मणिमुक्तादि विक्रेतु क्रतु वा तव पत्तने ।
प्राप्तौ दूतैश्च बद्धावा त्वत्समीप मुपागतौ ॥२५॥

प्रतिकूले विधौ को वा दशा नाप्नोति वै पुमान् ।
विनापराधं राजेन्द्र मणिचौरानवादयन् ॥२६॥
आवां न चौरो राजेंद्र तत्त्वतस्त्वं विचारय ।
श्रुत्वा तन्निश्चयं ज्ञात्वा तयोर्बंधनकारणम् ॥२७॥
छेदयित्वा दृढं पाशं लोमशांतिमकारयत् ।
कारयित्वा परिष्कारं भोजयामास तौ नृपः ॥२८॥

हे द्विज ! तब महामन्त्री ने राजा से कहा—सत्यनारायण ने मुझे भी ऐसा ही स्वप्न दिया है और एक वृद्ध विप्र ने मुझे भी जगाया है। अतएव हे नृप ! उन दोनो को यहाँ लाकर विधिवत् पूछिये ॥२२॥ वहाँ बुलाकर राजा ने साधु से पूछा कि तुम सत्य का अवलम्बन करके ठीक बताओ कि आप कहाँ के दोनो रहने वाले हैं और आपका कुल कौन सा है तथा किस नगर मे निवास स्थान है ॥२३॥ साधु ने कहा—रम्यरत्नपुर मे हमारा निवास स्थान है और वणिक जाति मे हमारा जन्म हुआ है। हे महाराज ! वाणिज्य करने के लिए हम यहाँ आये थे क्योकि वाणिज्य ही हम दोनो की जीविका है ॥२४॥ मणि-मुक्ता आदि को बेचने तथा खरीदने के लिए आपके नगर में ठहरे थे कि आपके दूतो के द्वारा हमको प्राप्तकर बाँध लिया गया और आपके समीप मे पहुँचा दिया था ॥२५॥ जब विधाता प्रतिकूल होता है तो यह पुरुष किस दुर्दशा को प्राप्त नही होता है ? हे राजेन्द्र ! बिना ही किसी अपराध के हमको मणियो के चोर बता दिया था ॥२६॥ हे राजेन्द्र ! हम दोना चोर नही हैं। अब आप तत्व से स्वय विचार कर लीजिए। यह श्रवण कर उनके निश्चय को समझकर कि उन दोनो के बन्धन का कारण क्या था। राजा ने उनके दृढ पाश का छेदन कराकर लोम शान्ति कराई और परिष्कार कराके राजा ने उन दोनो का भोजन कराया था ॥२७॥२८॥

नगरे पूजयामास वस्त्राभूषणवाहनैः ।
अब्रवीत्पूजितः साधुर्भूपतिं विनयान्वितः ॥२९॥

कारागारे बहुविधं प्राप्त दुःखमतः परम् ।
आज्ञापय महाराज देशं गन्तुं कृपानिधे ॥३०॥
श्रुत्वा साधुवचो राजा प्राह कोशाधिकारिणम् ।
मुद्राभिस्तरणीं सद्य पूरयाशु मदाज्ञया ॥३१॥
जामात्रा सहितः साधुर्गीतवादित्रमङ्गलैः ।
स्वदेशं चलितोऽद्यापि न चक्रे हरिसेवनम् ॥३२॥
सत्यनारायणो देवः प्रत्यक्षफलदः कलौ ।
स एव तापसो भूत्वा चक्रे साधुविडम्बनम् ॥३३॥
धर्मं किं नौषु ते साधो मामनादृत्य यासि भो ।
प्रत्युत्तरमदात्साधुः क्षिप नौकाश्च सत्वरम् ॥३४॥
भो स्वामिन्मे धनं नास्ति लतापत्रादिपूरितम् ।
नौभिर्गच्छामि स्वस्थानं विरोधे नात्र किं फलम् ॥३५॥

इसके अनन्तर राजा ने नगर मे वस्त्र, भूषण और वाहनादि से पूजा-सत्कार किया । जब साधु इस तरह पूजित हुआ तो वह विनय युक्त हो भूपति से बोला—हे महाराज ! हमने इस कारागार मे अनेक प्रकार का दुःख प्राप्त किया था । अब आगे आप हमको आज्ञा प्रदान करें । हे कृपानिधे ! क्या अब हम अपने देश को जा सकते हैं ? ॥२६॥३०॥ यह सुनकर साधु के वचनो के उत्तर मे राजा ने कोषाधिकारी से कहा— मेरी आज्ञा से इनकी नौका को मुद्राओं से तुरन्त भर दो ॥३१॥ तब वह साधु अपने जमाई के साथ गीत-वादित्र मङ्गलों से अपने देश को चल दिया था किन्तु अभी तक भी उसने हरि का सेवन नहीं किया था ॥३२॥ सत्य नारायण देव तो इस कलियुग मे प्रत्यक्ष फल के प्रदान करने वाले हैं । वही सत्यदेव तापस बनकर आये और उस साधु का विडम्बन किया ॥३३॥ तापस ने कहा हे साधो ! आपकी नौका मे क्या है ? धर्म करो । क्या मेरा अनादर करके ही तुम जा रहे हो । तब साधु ने उत्तर दिया नौका को शीघ्र क्षिप्त करो । हे स्वामिन् ! मेरे पास धन नहीं है । यह नौका तो लता-पत्रादि से भरी हुई है । हम तो नौका से अपने स्थान को जाते हैं । विरोध से यहाँ क्या फल है ॥३४॥३५॥

इत्युक्तस्तापस प्राह तथास्त्विति वच. क्षणात् ।
धनमतर्दधे साधोर्लतापत्रावशेषितम् ॥३६॥
धन नौकासु नास्तीति साधुश्चितातुरोऽभवत् ।
किमिद कस्य वा हेतोर्धन कुत्र गत मम ॥३७॥
वज्रपाताहत इव भृश दु खितमानस ।
क्व यास्यामि क्व तिष्ठामि किं करोमि धन कुत ॥३८॥
इति मूर्छागत साधुर्विललाप पुन पुन ।
जामात्रा बोधित पश्चात्तापस त जगाम ह ॥३९॥
गले वसन मादाय प्रणनाम स तापसम् ।
को भवानिती पप्रच्छ देवो गधर्व ईश्वर ॥४०॥
देवदेवोऽथ वा कोऽपि न जाने तव विक्रमम् ।
आज्ञापय महाभाग तद्विडम्बनकारणम् ॥४१॥

इस प्रकार से कहे हुए उस तापस ने तुरन्त यह वचन कहा—ऐसा ही होवे । उस साधु का सारा धन छिप गया और वहाँ केवल लता-पत्र आदि ही अवशिष्ट रह गये थे ॥३६॥ साधु ने देखा कि नौका मे धन नहीं है तो वह बहुत ही चिन्ता तुर हो गया । यह क्या हुआ और इसका हेतु क्या है जिससे मेरा सारा धन चला गया । यह धन कहाँ चला गया है ॥३७॥ वज्रपात से आहत की भाँति वह अत्यन्त ही दु खी मन वाला हो गया था । मैं कहाँ जाऊँ, कहाँ रहूँ और अब क्या करूँ ? यह धन कहाँ गया ॥३८॥ इस प्रकार से मूर्च्छा गत होकर साधु बार-बार विलाप करने लगा । तब उसके जमाई ने उसको समझाया और फिर उसी तापस के पास गया ॥३९॥ गले से वस्त्र लगाकर उस साधु ने उस तापस को प्रणाम किया और उससे पूछा आप कौन हैं ? आप कोई देव हैं या गन्धर्व तथा ईश्वर हैं ॥४०॥ अथवा आप कोई देवदेव हैं । मैं आपके विक्रम को नहीं जानता हूं । हे महाभाग ! इस विडम्बना करने के कारण के विषय में अपनी स्पष्ट आज्ञा प्रदान करें कि ऐसा किसलिए हुआ है । ॥४१॥

आत्मा चैवात्मन शत्रुस्तथात्र च प्रियोऽप्रिय ।
त्यज मौढ्यमतिं साधो प्रवाद मा वृथा कृथा ॥४२॥
इति विज्ञापित साधुर्न बुबोध महाधन ।
पुन स तापस प्राह कृपया पूर्वकर्मत ॥४३॥
चन्द्रचूडो यदानर्चे सत्यनारायण नृप ।
अनपत्येन सुचिर पुत्रकन्यार्थिना त्वया ॥४४॥
प्रार्थित न स्मृत ह्येव इदानी तप्यसे वृथा ।
सत्यनारायणो देवो विश्वव्यापी फलप्रद ॥४५॥
तमनादृत्य दुर्बुद्धे कुत सम्यग्भवेत्तव ।
पुरा लब्धवर स्मृत्वा सस्मार जगदीश्वरम् ॥४६॥
सत्यनारायण देव तापस त ददर्शह ।
प्रणम्य भुवि कायेन परिक्रम्य पुन पुन ।
तुष्टाव तापस तत्र साधुर्गद्गदयागिरा ॥४७॥

तापस ने कहा —आत्मा ही आत्मा का शत्रु होता है और तथा वह ही उसका प्रिय या अप्रिय हुआ करता है। हे साधो ! मूढता की मति का त्याग कर दो। वृथा प्रवाद मत करो ॥४२॥ इस प्रक.र विज्ञापित किया गया भी वह मह धन साधु बोध वाला नही हुआ। फिर उस तापस ने कहा—और पूर्व क्रम से कृपा करके समझाया, चन्द्रचूड नृप ने जब सत्य नारायण देव की पूजा की थी तब बहुत समय तक सन्तान रहित तूने पुत्र या कन्या का अर्थी होकर प्रार्थना की थी क्या अभी तक तुझे उसका स्मरण नही आया ? इस समय वृथा ही इतना दु खित हो रहा है। सत्यनारायण देव विश्व-व्यापी हैं और फल के प्रदान करने वाले हैं ॥४३॥४४॥४५॥ हे दुर्बुद्धे ! उस सत्यदेव का अनादर करके कैसे तेरा कल्याण हो सकता है। पहिले प्राप्त वर का स्मरण करके जगदीश्वर का स्मरण किया ॥४६॥ उस तापस को सत्य नारायण देव देखा था तब तो उसको भूमि पर शरीर से दण्डवत् प्रणाम करके बार-बार उस तापस को गद्गद् वाणी से साधु वणिक् ने सन्तुष्ट किया था। ॥४७॥

सत्यरूप सत्यसंध सत्यनारायण हरिम् ।
यत्सत्यत्वेन जगतस्त सत्य त्वा नमाम्यहम् ॥४८॥
त्वन्मायामोहितात्मानो न पश्यत्यात्मन शुभम् ।
दु खाभोधौ सदा मग्ना दु खे च सुख मानिन ॥४९॥
ढोह धनगर्वेण मदाधीकृतलोचन ।
मा जाने स्वात्मन क्षेम कथ पश्यामि मूढधी ॥५०॥
क्षमस्व मम दौरात्म्य तपो धाम्ने हरे नम ।
आज्ञापयात्मदास्य मे येन ते चरणौ स्मरे ॥५१॥
इति स्तुत्वा लक्षमुद्रा स्थापिता स्वपुरोधसि ।
गत्वावास पूजयिष्ये सत्यनारायण प्रभुम् ॥५२॥
तुष्टो नारायण प्राह वाछा पूर्णा भवेत्तु ते ।
पुत्रपौत्रसमायुक्तो भुक्त्वा भोगास्त्वनुत्तमान् ।
अते सानिध्यमासाद्य मोदसे त्व मया सह ॥५३॥
इत्युक्त्वान्तदधे विष्णु साधुश्च स्वाश्रम ययौ ।
सप्ताहेन गृह प्राप्त सत्यदेवेन रक्षित ॥५४॥
आगत्य नगराभ्याशे प्राहिणोद्द्तमाश्रमम् ।
गृहमागत्य दूतोपि प्राह लीलावती प्रति ॥५५॥
जामात्रा सहित साधु कृतकृत्य समागत ।
सत्यनारायणार्चाया स्थिता साध्वी सकन्यका ॥५६॥

साधु वणिक ने कहा—सत्य प्रतिज्ञा करने वाले, सत्य स्वरूप से युक्त, सत्य नारायण हरि को जिसके सत्य से इस जगत् की स्थिति है उस सत्य को मैं बार-बार प्रणाम करता हूँ ॥४८॥ आपकी माया से मोहित आत्मा वाले मानव अपनी आत्मा के शुभ को नहीं देखा करते हैं और सदा दुःख के सागर में निमग्न रहकर दु ख में ही सुख के मानने वाले हैं ॥४९॥ मैं महामूढ हूँ जो धन के गर्व से मद द्वारा अन्धे नेत्रों वाला हूँ। आप मेरी इस दुरात्मता को क्षमा करें। मैं मूढ़बुद्धि वाला अपना क्षेम कैसे देख सकता हूँ ॥५०॥ मेरी इस दुरात्मता को क्षमा कर। तपस्या के धाम आपके लिए हे हरे ! परम नमस्कार है।

अब आप अपनी दासता की मुझे आज्ञा प्रदान करें जिससे मैं आपके चरणों का स्मरण करूँ ।।५१।। इस प्रकार से उस साधु ने भगवान् की स्तुति करके अपने पुरोहित के आगे एक लाख मुद्रा रख दी थी कि मैं अपने आवास में पहुंचकर सत्य नारायण प्रभु की पूजा करूँगा ।।५२।। तब तो नारायण परम तुष्ट होकर बोले—तेरी वाञ्छा पूर्ण होगी। पुत्र-पौत्र से समायुक्त होकर श्रेष्ठ भोगों को भोगकर तू अन्त में मेरे सान्निध्य में पहुँचकर मेरे ही साथ आनन्द प्राप्त करेगा। ।।५३।। यह कह कर विष्णु भगवान् अन्तर्धान हो गये और वह साधु अपने आश्रम को चला गया था। सत्यदेव के द्वारा सुरक्षित होकर एक सप्ताह में वह अपने घर में पहुच गया था ।।५४।। अपने नगर के समीप में आकर उसने शीघ्र ही दूत को आश्रम में भेजा था। वह दूत गृह में जाकर लीलावती से बोला—अपने जमाई के साथ साधु कृत कृत्य होकर आ गए हैं। उस समय में वह साध्वी अपनी कन्या के साथ भगवान् सत्य नारायण की पूजा में स्थित थी ।।५५।।।५६।।

पूजाभार सुतायै सा दत्त्वा नौकान्तिक ययौ ।
सखीगणै परिवृता कृतकौतुकमंगला ।।५७।।
कलावती त्ववज्ञाय प्रसाद सत्वरा ययौ ।
पातु पतिमुखाभोज चकोरीव दिनात्यये ।।५८।।
अवज्ञानात्प्रसादस्य नौकाशलपतेरथ ।
निमग्ना जलमध्ये तु जामाता सह तत्क्षणात् ।।५९।।
मग्न जामातर पश्यन्विललाप स मूर्च्छित ।
लीलावती तु तद्दृष्ट्वा मूर्च्छिता विललाप ह ।।६०।।
तत कलावती दृष्ट्वा पपात भुवि मूर्च्छिता ।
रम्भेव वातविहता कान्तकान्तेतिवादिनी ।।६१।।
हा नाथ प्रिय धर्मज्ञ करुणाकरकौशल ।
त्वया विरहिता पत्या निराशा विधिना कृता ।
पत्युरर्द्धं गतं कस्मादर्द्धाग जीवन कथम् ।।६२।।

तब यह समाचार सुनकर उसने समस्त पूजा का भार अपनी सुता के सुपुर्द कर दिया और वह नौका के समीप चली गई थी। वह सखीगण के साथ परिवृत होकर कौतुक मङ्गल के करने वाली हो रही थी ॥५७॥ कलावती ने भी सत्य नारायण के प्रसाद की अवज्ञा करके शीघ्रता से वहाँ गमन किया था जिस तरह दिन के अन्त में चकोरी की किरणों को पान करने की इच्छा करती है उसी तरह वह भी अपने पति के मुख कमल को देखने के लिए वहाँ चली गई थी ॥५८॥ सत्यदेव के प्रसाद की अवज्ञा करने से धनपति की नौका तुरन्त जमाई के साथ वहाँ जल में निमग्न हो गई ॥५९॥ अपने जामाता को जल में मग्न देखकर वह मूर्च्छित होकर विलाप करने लगा। और लीलावती ने उसे देखकर मूर्च्छित हो विलाप करना आरम्भ कर दिया था ।६०। इसके अनन्तर कलावती यह देखकर वायु के झोंके से हिलती कदली की भाँति "हा कान्त, हा कान्त" यह कहती हुई मूर्च्छित होकर जमीन पर गिर पड़ी ॥६१॥ हा नाथ ! हा प्रिय ! हा करुणाकर जीवन ! तुम पति के द्वारा विरहित यह विधि के द्वारा निराश कर दी गई है। जब पति का आधा अङ्ग ही चला गया है तो फिर इस अर्धाङ्ग का जीवन कैसे रह सकता है ॥६२॥

कलावती चारुवचासु कौशला
प्रवालरक्ताधितलातिकोमला ॥
सरोजनेत्रायुवरणाङ्घ्रिमुखवती
मुक्तावलीभिस्तनकुङ्कुमलाञ्छिता ॥६३॥
हा सत्यनारायण सत्यसिंधो
मग्न हि मामुद्धर तद्वियोगे ॥
श्रुत्वार्तशब्दं भगवानुवाच
वचस्तदाकाशसमुद्भवं च ॥६४॥
साधो कलावती क्षिप्रं मत्प्रसादं हि भोजयेत् ।
तत्प्रसादादिह सम्प्राप्य पतिं आप्स्यति मा शुच ॥६५॥
इत्याकर्ण्य वचः श्रुत्वा विस्मिता नगरारमा ।
नारायणस्य कृपया पतिं प्राप्ता कलावती ॥६६॥

तत्रैव साधु साह्लादो भक्त्या परमया युत ।
पूजन लक्षमुद्राभि सत्यदेवस्य चाकरोत् ॥६७॥
तेन व्रतप्रभावेन पुत्रपौत्रसमन्वित ।
भुक्त्वाभोगान्मुदा युक्तो मृत स्वर्गपुर ययौ ॥६८॥
इतिहासमिम भक्त्या शृणुयाद्यो हि मानव ।
सोऽपि विष्णुप्रियतर कामसिद्धिमवाप्नुयात् ॥६९॥
इति ते कथित विप्र व्रतानामुत्तम व्रतम् ।
कलिकाले पर पुण्य ब्राह्मणस्य मुखोद्भवम् ॥७०॥

सूतजी ने कहा—चारु कलाओ मे कुशल प्रवाल के समान लाल चरणो से अत्यन्त कोमल, कलावती अपने कमलो के सदृश नेत्रो से जल के कणो को छोडती हुई ऐसी प्रतीत होती थी मानो मुक्ता वलियो से उसके स्तन कुड्मल अर्चित हो रहे हैं ॥६३॥ कलावती ने रुदन कहते हुए कहा—हे सत्य के समुद्र सत्य नारायण देव ! पति के वियोग में मग्न मेरा उद्धार करो । इस प्रकार के आर्त्त शब्दो को सुनकर भगवान् आकाशवाणी के द्वारा उससे बोले—॥६४॥ हे साधो ! इस कलावती को शीघ्र ही मेरा प्रसाद खिलादो । इसके पश्चात् वह यहीं आकर अपने पति को प्राप्त कर लेगी कोई भी चिन्ता मत करो ।६५। इस तरह के आकाश से उद्भूद वचन को सुनकर विस्मित होकर उसने वही सब किया था और नारायण की कृपा से उस कलावती ने अपने पति को प्राप्त कर लिया था ॥६६॥ वहाँ पर ही बडे आनन्द से युक्त साधु ने परम भक्ति के भाव से समन्वित होकर एक लक्ष मुद्राओ से सत्य नारायण भगवान् का पूजन किया था ॥६७॥ उस व्रत के प्रभाव से वह पुत्रो और पौत्रो से समन्वित हो गया । बडे ही आनन्द के साथ सांसारिक उत्तम भोगो का सुख प्राप्त कर मरने के पश्चात् वह स्वर्गलोक मे चला गया था ॥६८॥ इस परम पावन इतिहास को भक्ति भाव के साथ जो भी मनुष्य श्रवण करता है वह भी भगवान् विष्णु का अधिक प्रिय हो जाता है और उसकी समस्त कामनाओ की सिद्धि वह प्राप्त कर लिया करता है ॥६९॥ हे विप्र ! मैंने यह समस्त व्रतो मे अत्यन्त उत्तम

व्रत का वर्णन तुम्हारे आगे कर दिया है। इस कलि काल में ब्राह्मण के मुख से उद्भूत यह परम पुण्य होता है ॥७०॥



॥ पाणिनिमहर्षिवृत्तान्तवर्णनम् ॥

भगवन्सर्वतीर्थाना दानाना किं परं स्मृतम् ।
यत्कृत्वा च कलौ घोरे परां निर्वृतिमाप्नुयात् ॥१॥
सामनस्य सुतः श्रेष्ठः पाणिनिर्नाम विश्रुतः ।
कणभुग्वरशिष्यैश्च शास्त्रज्ञैः स पराजितः ॥२॥
लज्जितः पाणिनिस्तत्र गतस्तीर्थान्तरं प्रति ।
स्नात्वा सर्वाणि तीर्थानि संतर्प्य पितृदेवताः ॥३॥
केदारमुदकं पीत्वा शिवध्यानरोभवत् ।
पर्णाशी सप्तदिवसाज्जलभक्षस्ततोऽभवत् ॥४॥
ततो दशदिनान्ते स वायुभक्षो दशाहनि ।
अष्टाविंशद्दिने रुद्रो वरं ब्रूहि वचोऽब्रवीत् ॥५॥
श्रुत्वामृतमयं वाक्यमस्तौद्गद्गदया गिरा ।
सर्वेशं सर्वनिगेशं गिरिजावल्लभं हरम् ॥६॥

इस अध्याय में महर्षि पाणिनि के वृत्तान्त का वर्णन किया जाता है। शौनकादि ऋषियों ने कहा—हे भगवन्! समस्त तीर्थों और अनेक दानों में सबसे परम श्रेष्ठ कौन सा तीर्थ या दान कहा गया है। जिसे करके इस महान् घोर कलियुग में मानव परम निर्वृति को प्राप्त कर लेवे ॥१॥ सूतजी ने कहा—सामन ऋषि का पुत्र परम श्रेष्ठ पाणिनि नाम वाला विश्रुत हुआ था। यह एक बार काणभुग्वर के शिष्यों के द्वारा जोकि बहुत ऊँचे शास्त्रों के ज्ञाता थे, पराजित कर दिया गया था ॥२॥ तब पाणिनि परम लज्जित होकर वहाँ से तीर्थान्तरों को चला गया था। समस्त तीर्थों में उसने स्नान किया और पितृगण तथा देवगण को संतृप्त किया था। फिर उसने केदार उदक का पान कर

शिव के ध्यान मे तत्परता की थी। सात दिन तक पत्तो का ही अशन किया और इसके अनन्तर जल का भक्षण करने वाला रह कर समय व्यतीत किया। फिर दश दिन के पश्चात् दश दिन तक केवल वायु का ही भक्षण करके रहा था। अट्ठाईसवें दिन मे रुद्रदेव सामने आकर पाणिनि से बोले—वर माग ले। ॥३॥४॥५॥ ऐसे अमृतमय रुद्र के वचनो को सुनकर उसने गद्गद् वाणी से उनका स्तवन किया जोकि सबके ईश, समस्त लिङ्गो के स्वामी और गिरिजा पार्वती के वल्लभ हर हैं ॥६॥

नमो रुद्राय महते सर्वेशाय हितैषिणे ।
नन्दीसस्थाय देवाय विद्याभयकराय च ॥७॥
पापान्तकाय भर्गाय नमोनन्ताय वेधसे ।
नमो मायाहरेशाय नमस्ते लोकशर ॥८॥
यदि प्रसन्नो देवेश विद्यामूलप्रदो भव ।
पर तीर्थं हि मे देहि द्वैमातुरपितर्नमः ॥९॥
इति श्रुत्वा महादेव. सूत्राणि प्रददौ मुदा ।
सर्ववर्णमयान्येव अइउणदिशुभानि वै ॥१०॥
ज्ञानह्रदे सत्यजले राग द्वेषमलापहे ।
य॰ प्राप्तो मानसे तीर्थे सर्वतीर्थफल भजेत् ॥११॥
मानस हि महत्तीर्थ ब्रह्मदर्शनकारकम् ।
पाणिने ते ददौ विप्र कृतकृत्यो भवान्भव ॥१२॥
इत्युक्त्वातर्दधे रुद्र पाणिनिः स्वगृह ययौ ।
सूत्रपाठ धातुपाठ गणपाठ तथैव च ॥१३॥
लिगसूत्र तथा कृत्वा पर निर्वाणमाप्तवान् ।
तस्मात्त्व भार्गवश्रेष्ठ मानस तीर्थमाचर ॥१४॥
यतो याता स्वय गङ्गा सर्वतीर्थमयी शिवा ।
गङ्गातीर्थात्पर तीर्थं न भूत न भविष्यति ॥१५॥

पाणिनि ने कहा—सबके ईश और हित चाहने वाले महान् रुद्रदेव के

लिये मेरा नमस्कार है। नन्दी पर स्थित, विद्या और अभय के करने वाले देव के लिऐ मेरा नमस्कार है। पापो के अन्तक, भर्ग, अनन्त और वेधा के लिए नमस्कार है। हे लोको के कल्याण करने वाले ! माया हरेश आपके लिए मेरा बार-बार नमस्कार है ॥७॥८॥ हे देवेश! यदि आप मुझ पर पूर्णतया प्रसन्न हैं तो आप विद्या के मूल प्रदान करने वाले हो जावें। हे द्रै मातु के पिता ! मुझे परम तीर्थ प्रदान कीजिए ॥९॥ सूतजी ने कहा—महादेवजी ने यह सुनकर प्रसन्नता से सूत्रो को प्रदान किया। वे सूत्र सर्व वर्णमय अइउण थे ॥१०॥ ज्ञान के हृद मे सत्य जिसमे जल है जोकि राग-द्वेष के मलका अपहरण करने वाला है। जो इस मानस तीर्थ में प्राप्त हो गया है उसने समस्त तीर्थों के फल को प्राप्त कर लिया है ॥११॥ मानस सबसे महान् तीर्थ है जोकि ब्रह्म के दर्शन कराने वाला है। हे विप्र ! पाणिनि के लिए उन्होने उसे दे दिया था। और कहा अब आप कृतकृत्य हो जाओ ॥१२॥ यह कहकर रुद्रदेव अन्तर्धान हो गये और पाणिनि अपने घर को चला गया था। फिर पाणिनि ने अष्टाध्यायी के सूत्रपाठ, धातुपाठ, गणपाठ तथा लिङ्ग सूत्र की रचना करके परम निर्वाण की प्राप्ति की थी। इसलिये हे भागवश्रेष्ठ ! तुम मानस तीर्थ का आचरण करो ॥१३॥ ॥१४॥ क्योंकि जिससे स्वयं गङ्गा निकली थी जोकि शिवा और सर्व तीर्थमयी है। गङ्गा एक ऐसा तीर्थ है जिससे परम तीर्थ न तो हुआ और न भविष्य में होगा ॥१५॥



॥ तोतादरीस्यवोपदेववृत्तान्तवर्णनम् ॥

तोताद्र्यां द्विजा कश्चिद्वोपदेव इति श्रुत ।
बभूव कृष्णभक्तश्च वेदवेदांगपारग ॥१॥
गत्वा वृन्दावन रम्य गोपगोपीनिषेवितम् ।
मनसा पूजयामास देवदेव जनार्दनम् ॥२॥
वर्षान्ते च हरि साक्षाद्दत्तो ज्ञानमनुत्तमम् ।
तेन ज्ञानेन मनसा हृदि भागवती कथा ॥३॥

शुकेन वर्णिता या वै विष्णुराताय धीमते ।
ता कथा वर्णयामास मोक्षमूर्ति सनातनीम् ॥४॥
कथान्ते भगवान्विष्णुः प्रादुरासीज्जनार्दनः ।
उवाच स्निग्धया वाचा वरं ब्रूहि महामते ॥५॥
नमस्ते भगवन्विष्णो लोकानुग्रहकारक ।
त्वया ततमिदं विश्वं देवतिर्यङ्नरादिकम् ॥६॥
त्वन्नाम्ना नरकार्ताश्च ते कृतार्थाः कलौ युगे ।
त्वया दत्तं भागवतं श्रीमद्व्यासेन निर्मितम् ।
माहात्म्यं तस्य मे ब्रूहि यदि दत्तो वरस्त्वया ॥७॥

इस अध्याय मे तोनादरीस्थ वोप देव के वृत्तान्त का वर्णन किया जाता है। सूतजी ने कहा—तोनादरी म वोपदेव नाम धारी कोई द्विज हुआ था। वह श्रीकृष्ण का परम भक्त था और वेदो तथा वेदो के अंगों मे पारगत था ॥१॥ वह गोपो और गोपियो से निषेवित रम्य वृन्दावन मे गया और वहा उसने देश के देव जनार्दन की मन से पूजा की थी ॥२॥ एक वर्ष के अन्त मे हरि ने साक्षात् आकर उसे उत्तम ज्ञान प्रदान किया था। उस ज्ञान से सप्रास भागवती कथा हृदय मे वर्णित हुई। शुकदेव ने जो पहले विष्णु रात (परीक्षित) से जोकि परम धीमान् था, वर्णित की थी, उसी मोक्ष की मूर्त्ति सनातनी कथा का वर्णन किया था ॥३॥४॥ कथा का जब अन्त हो गया तो उस समय में भगवान् जनार्दन विष्णु प्रादुर्भूत हुए और परम स्निग्ध वाणी से बोले—हे महामते ! वरदान माँग लो ॥५॥ वोपदेव ने कहा—हे भगवन् ! हे विष्णो ! हे लोकों पर अनुग्र करने वाले ! आपके लिए मेरा नमस्कार है। आपने ही यह सम्पूर्ण देव, तिर्यक और नर आदि से युक्त विश्व का विस्तार किया है ॥६॥ जो पुरुष नरकों म परम पीडित हो रहे थे वे आपके नाम का स्मरण करने से इस कलियुग मे कृतार्थ हो गये हैं। आपने ही श्री मद् व्यास के द्वारा निर्मित भागवत का प्रदान किया है। यदि आपने मुझे वरदान दिया है तो उस भागवत के माहात्म्य का वर्णन करिये ॥७॥

एकदा भगवान्रुद्रो भवान्या सह शङ्कर ॥८॥
बौद्धराज्ये जगत्प्राप्ते दम्भपाखण्डनिर्मित ।
दृष्ट्वा काश्या भूमितुङ्ग प्रणनाम मुदा युत ।
जय सच्चिदानन्द विभो जगदानन्दकारक ॥९॥
इति श्रुत्वा शिवा प्राह को देवोऽस्ति तवोत्तम ।
स होवाच महादेवि यत्र मत्स्याहमत्र वै ॥१०॥
तस्माद्भूमि पवित्रत्वमिह प्राप्ता वरानने ।
सर्वतीर्थाधिपत्वं च स्वयं ब्रह्म सनातनम् ॥११॥
इति श्रुत्वा शिवा देवी प्राप्तासीद्गुह्यकानयम् ।
रुद्रेण सहिता तत्र भूमिशुद्धिमकारयत् ॥१२॥
गणेशश्च गणं नाम नन्दी गुह एव च ।
रक्षार्थं स्थापितास्तत्र देवदेवेन भो द्विज ॥१३॥
शृणु देवि यथा रम्या मम स्थानमनुस्थिताम् ।
दत्तुपापा व्यासमास्थाय गत्वातेन स्वसर्गगत् ॥१४॥
अष्टाङ्गं नत उन्मील्य दृष्ट्वा त्रिदशगां शिवाम् ।
बोधयामास भगवान्पार्वतीनन्दन ॥१५॥

सबको स्थापित किया था ॥१३॥ हे देवि ! मेरे मानस मे संस्थित एक परम रम्य कथा का तुम अब श्रवण करो । यह कह कर ध्यान मे प्रास्थित हो सप्ताह म भली भाँति उसका वर्णन किया था ॥१४॥ आठवें दिन मे नत्रों को खोलकर देखा कि शिवा निद्रागत हो गई हैं । कथा के अन्त मे लोक के कल्याण करने वाले शिव ने उनको प्रबुद्ध किया था ॥१५॥

कियती ते श्रुता गाथा श्रुत्वाह जगदम्बिका ।
सुधामथनपर्यंत चरित्र शिवयेरितम् ॥१६॥
कोटरस्थ शुक श्रुत्वा चिरजीवत्वमागत ।
पार्वत्या रक्षितोसौ वै शुक परमसुन्दर ॥१७॥
स्थित्वा शिवस्य सदने मम ध्यानपरोऽभवत् ।
ममाज्ञया शुक साक्षात्त्वदीयहृदयस्थित ॥१७॥
तेन प्राप्त भागवत माहात्म्य चास्य दुर्लभम् ।
त्व वै गधर्वसनाम पित्रे विक्रमभूपत ॥१६॥
नर्मदाकूलमासाद्य श्रावयस्व कथा शुभाम् ।
हरिमाहात्म्यदान हि सर्वदानपर स्मृतम् ॥२०॥
सत्पात्राय प्रदातव्य विष्णुभक्ताय धीमते ।
बुभुक्षितान्नदान च तद्दानस्य सम न हि ॥२१॥
इत्युक्त्वादध देवो वोपदेन प्रसन्नधी ॥२२॥

तुमने कितनी गाथा का श्रवण किया था यह पूछा जाने पर जगदम्बिका ने कहा कि मैंने सुधा के मथन पर्यन्त कथा का श्रवण किया है । वहाँ कोटर में स्थित एक शुक था जोकि इस कथा को सुनकर चिरजीवत्व को प्राप्त हो गया था । यह शुक परम सुन्दर था पुन पार्वती के द्वारा रक्षित हुआ था । ॥१६॥१७॥ शिव के सदन मे रहकर यह मेरे ध्यान मे परायण हो गया और मेरी आज्ञा से शुक साक्षात् तुम्हारे हृदय मे स्थित है । उसने इस भागवत को प्राप्त कर लिया है और इसका माहात्म्य तो परम दुर्लभ वस्तु है । तू नर्मदा के तट पर जाकर विक्रम भूपति के पिता गन्धर्व सेन के लिए इस शुभ कथा

इस अध्याय में व्याकरण के महाभाष्य कार पतञ्जलि के वृत्तान्त वर्णन में सप्तशती के उत्तम चरित्र व माहात्म्य का वर्णन किया जाता है। सूतजी ने कहा—परम रम्य चित्रकूट गिरि पर जोकि नाना प्रकार की धातुओं से विचित्र था वहाँ महान् प्राज्ञ उपाध्याय पतञ्जलि निवास किया करते थे ॥१॥ पतञ्जलि समस्त वेद और उन वेदों के अङ्ग शास्त्रों के तत्त्वों के ज्ञाता थे एवं गीता शास्त्र में परायण, सत्य प्रतिज्ञा वाले विष्णु के परम भक्त और भाष्य शास्त्र के महान् पण्डित थे ॥२॥ किसी समय में शुद्ध आत्मा वाला वह तीर्थान्तर की ओर गये थे। तब काशी में कात्यायन नामधारी विद्वान के साथ उनका महान वाद अर्थात शास्त्रार्थ हुआ था ॥३॥ वर्ष के अन्त में वह विप्र देवी के भक्त के द्वारा जीत लिया गया था। वह धर्मात्मा तब तो बहुत ही लज्जित हुआ और उसने सरस्वती देवी को प्रसन्न किया था ॥४॥ पतञ्जलि ने कहा—महामूर्ति देवी के लिए नमस्कार है। सब मूर्त्ति के लिए मेरा बार-बार नमस्कार है। हे विष्णुमाये ! शिवा और सर्वाङ्गनी आपके लिये मेरा नमस्कार है ॥५॥ आप ही श्रद्धा हैं आप ही बुद्धि हैं और आप ही शिवङ्करी विद्या हैं। शान्ति और वाणी भी आप ही हैं। हे नारायणि ! आपको मेरा नमस्कार है ॥६॥ ब्राह्मण के ऐसा कहने पर अशरीरिणी वाक् बोली—हे विप्रोत्तम ! तुम एकाग्र मन वाला होकर मेरे चरित्र का जापकर। उस चरित्र के प्रभाव से सत्य और ज्ञान को प्राप्त कर लेगा। कात्यायन विप्र की उद्धत रज समान मेरी भक्ति से उसने प्राप्त किया है। हे पतञ्जर ! उसका पराजय करो ॥७॥-८॥

इति श्रुत्वा वचो देव्या विन्ध्यवासिनि मन्दिरम् ।
गत्वा तां पूजयामास तुष्टाव स्तोत्रपाठनैः ॥९॥
ज्ञान प्रमादजं विप्र प्राप्य विष्णुपरायणम् ।
कात्यायनं पराजित्य परां मुदमवापह ॥१०॥
उद्देपुंड्रं च तिलकं तुलसीकण्ठमालिकाम् ।
पुण्यमन्त्रं च शिवदं स्थापयित्वा गृहेगृहे ॥११॥

जनेजने तथा कृत्वा महाभाष्य मुदैरयत् ।
चिरजीवित्वमगमद्विष्णुमाया प्रसादत ॥१२॥
इति ते कथितो विप्र जाप्यानामुत्तमो जप ।
किमन्यच्छ्रोतुमिच्छति शौनकाद्या महर्षय ॥१३॥
सर्वे भद्राणि पश्यतु मा कश्चिद् दुखभाग्भवेत् ॥१४॥
मगल भगवान्विष्णुमंगल गरुडध्वज ।
मगल पु डरीकाक्षो मगला यतनो हरि ॥१५॥
शुचिर्यो हि नरो नित्यमितिहाससमुच्चयम् ।
शृणुयाद्धर्मकामार्थी स याति परमा गतिम् ॥१६॥

यह वचन सुनकर विन्ध्य वासिनी के मंदिर मे जाकर उसका पूजन किया था और स्तोत्र पाठ से उसको सन्तुष्ट किया था ॥६॥ विप्र ने प्रसादज ज्ञान प्राप्त कर विष्णु परायण कात्यायन को पराजित कर दिया और परम हर्ष की प्राप्ति की थी ॥१०॥ ऊर्द्ध पुण्ड्र तिलक और तुलसी कण्ठ मालिका तथा कृष्ण मन्त्र जो कि कल्याण का देने वाला है उसने घर-घर मे स्थापित कर दिया था और जन-जन म ऐसा करके महाभाष्य को कहा, विष्णु माया के प्रसाद से वह चिरञ्जीवित्व को प्राप्त हो गया था ॥११॥१२॥ हे विप्र ! जप करने के योग्यों में जो सर्वोत्तम जाप्य है वही हमने तुमसे कह दिया है। शौनकादि महर्षियो ! अब अन्य आप लोग क्या श्रवण करना चाहते है? ॥१३॥ सभी लोग भलाइयाँ देखें और कोई भी दुःख का भोगने वाला न होवे ॥१४॥ भगवान् विष्णु मङ्गल स्वरूप हैं और गरुड ध्वज भी मङ्गलमय है। पुण्डरीकाक्ष मङ्गल स्वरूप वाले हैं और हरि समस्त मङ्गलों के स्थान है ॥१५॥ जो पवित्र होकर मनुष्य इतिहास समुच्चय का नित्य श्रवण करता है, धर्म काम का इच्छुक वह परम गति को प्राप्त होता है ॥१६॥

।। जायमानैतिहासिकवृत्तान्तवर्णनम् ।।

भगवन्विक्रमाख्यानकालोऽय भवतोदित ।
शतद्वादशमर्यादा द्वापरस्य समो भुवि ।।१।।
अस्मिन्काले महाभाग लीला भगवता कृता ।
तामेता कथयास्मान्वै सर्वज्ञोऽस्ति भवान्सदा ।।२।।
नारायण नमस्कृत्य नर चैव नरोत्तमम् ।
दवी सरस्वती व्यास ततो जयमुदीरयेत् ।।३।।
भविष्याख्ये महाकल्पे प्राप्ते वैवस्वतेन्तरे ।
अष्टाविशद्वापरान्ते कुरुक्षेत्रे रणोऽभवत् ।।४।।
पाडवैर्निर्जिता सर्वे कौरवा युद्धदुर्मदा ।
अष्टादशे च दिवसे पाडवाना जयोऽभवत् ।।५।।
दिनान्ते भगवान्कृष्णो ज्ञात्वा कालस्य दुर्गतिम् ।
शिव तुष्टाव मनसा योगरूप सनातनम् ।।६।।
नम शाताय रुद्राय भूतेशाय कपर्दिने ।
कालकर्त्रे जगद्भर्त्रे पापहर्त्रे नमोनम ।।७।।

इस अध्याय मे जायमान ऐतिहासिक वृतान्त का वर्णन शौनकादि के प्रति सूत जी ने किया है। ऋषियो ने कहा—हे भगवन् ! आपने यह विक्रमाख्यान काल बताया है जो भूमि मे शतद्वादश मर्याद वाला द्वापर के समान है ।।१।। हे महाभाग ! इस समय मे भगवान ने लीला की थी। आप उसे हमको बताइये। आप सदा सब कुछ के ज्ञाता हैं ।।२।। सूतजी ने कहा—नारायण को नर और नरोत्तम को नमस्कार करके फिर देवी सरस्वती को तथा व्यास देव को नमस्कार करके जय शब्द का उच्चारण करना चाहिए ।।३।। भविष्याख्य महाकल्प मे वैवस्वत मन्वन्तर के प्राप्त होने पर अष्टविंशद् द्वापर के अन्त मे कुरुक्षेत्र मे रण हुआ था ।।४।। युद्ध दुर्मद समस्त कौरव पाण्डवो के द्वारा जीत लिए गये थे। अठारहवें दिन मे पाण्डवो की जय हुई थी ।।५।। दिन के अन्त मे भगवान कृष्ण ने काल की दुर्गति को जानकर योगरूप सनातन शिव को मन से तुष्ट

किया था ।।६।। श्री कृष्ण ने कहा—शान्त, रुद्र, कपर्दी भूतो के ईश के लिए नमस्कार है । काल के हर्त्ता, जगत् के भर्त्ता और पापो के हरण करने वाले के लिए बार-बार नमस्कार है ।।७।।

पाण्डवान्रक्ष भगवन्मद्भक्तान्भूतभीरुकान् ।
इति श्रुत्वा स्तवं रुद्रो नंदियानोपरि स्थित ।
रक्षार्थं शिविराणा च प्राप्तवाञ्छूलहस्तधृक् ।।८।।
तदा नृपाज्ञया कृष्ण स गतो गजसाह्वयम् ।
पाण्डवा पंच निर्गत्य सरस्वत्या स्तटेऽवसन् ।।९।।
निशीथे द्रौणिभोजौ च कृपस्तत्र समाययु ।
तुष्टुवुर्मनसा रुद्र तेभ्यो मार्गं शिवोददात् ।।१०।।
अश्वत्थामा तु बलवाञ्छिवदत्तमसिं तदा ।
गृहीत्वा स जघानाशु धृष्टद्युम्नपुर सरान् ।।११।।
हत्वा यथेष्टमगमद्द्रौणिस्ताभ्या समन्वित्त ।।१२।।
पार्षतस्यैव सूतश्च हतशेषो भयातुर ।
पाण्डवान्वर्णयामास यथा जातो जनक्षय ।।१३।।
आगस्कृत शिव ज्ञात्वा भीमाद्या क्रोधमूर्च्छिता ।
स्वायुधैस्ताडयामास देवदेव पिनाकिनम् ।।१४।।

हे भगवन ! भूत भीरु मेरे भक्त पाण्डवों की रक्षा करो । यह स्तव श्रवण करके नन्दी के यान वाले अर्थात नन्दी पर सवार होकर शिव हाथ मे त्रिशूल धारण करके शिविरो की रक्षा करने के लिये वहां प्राप्त हो गये थे ।।८।। उस समय नृप की आज्ञा से कृष्ण हस्तिनापुर को गय । पाँचो पाण्डव निकल कर सरस्वती नदी क तट पर निवास करते थे ।।९।। अर्ध रात्रि मे द्रौणि और भोज तथा कृप वहाँ पर आये । उन्होंने मन से रुद्र का स्तवन किया था । उनके लिए शिव मार्ग दे दिया था । अश्वत्थामा बड़ा बलवान था । उस समय मे उसने शिव की प्रदान की हुई तलवार को लेकर शीघ्र ही धृष्टद्युम्न पुर सरो का हनन कर दिया था ।।१०।।११।। द्रौणि ने यथेष्ट हनन करके वह उन दोनों से

समन्वित हो गया ॥१२॥ पार्थ का भयातुर सूत ही हत दोष रह गया था। उसने जिस तरह धन की क्षय हुआ वह सब पाण्डवों से वर्णन कर सुना दिया था। शिव को इस प्रकार से आगस्कृत जानकर भीम आदि सब क्रोध से मूर्च्छित हो गये और अपने आयुधों से वे देवों के देव पिनाकी को मारने लगे थे ॥१३॥१४॥

अस्त्रशस्त्राणि तेषां तु शिवदेहे समाविशन्।
दृष्ट्वा ते विस्मिता सर्वे प्रजघ्नुस्तलमुष्टिभिः ॥१५॥
तांश्छशाप तदा रुद्रो यूयं कृष्णप्रपूजकाः।
अतोऽस्माभी रक्षिणीया वधयोग्याश्च वै भुवि ॥१६॥
पुनर्जन्म कलौ प्राप्य भोक्ष्यते चापराधकम्।
इत्युक्त्वान्तर्दधे देवः पाडवा दुःखितास्तदा ॥१७॥
हरिं शरणमाजग्मुरपराधनिवृत्तये।
तदा कृष्णयुता सर्वे पाडवा शस्त्रवर्जिताः ॥१८॥
तुष्टुवुर्मनसा रुद्रं तदा प्रादुरभूच्छिवः।
वरं वरयत प्राह कृष्णः श्रुत्वाब्रवीदिदम् ॥१९॥
शस्त्राण्यस्त्राणि यान्येव त्वदङ्गे क्षपितानि वै।
पाडवेभ्यश्च देहि त्वं शापस्यानुग्रहं कुरु ॥२०॥
इति श्रुत्वा शिवः प्राह कृष्णदेव नमोऽस्तु ते।
अपराधो न स्वामिन्मोहितोऽहं तवाज्ञया ॥२१॥

उनके अस्त्र और शस्त्र शिव के देह में प्रवेश कर गये थे। वे सब यह देख कर परम विस्मित हुए और तल मुष्टियों से हनन करने लगे ॥१५॥ तब उनको रुद्र देव ने शाप दिया था। तुम कृष्ण के प्रपूजक हो अतएव हमारे द्वारा रक्षा करने के योग्य हो और भूमण्डल में वध के योग्य होते हो ॥१६॥ और फिर कलियुग में जन्म प्राप्त करके अपराध को भोगोगे। यह कहकर देव वहाँ पर ही अन्तर्धान हो गये थे। उस समय पाण्डव लोग परम दुःखित हुए थे ॥१७॥ वे अपने अपराध की निवृत्ति के लिये हरि की शरण में आये थे। तब कृष्ण से युक्त होकर समस्त पाण्डव शस्त्रों से रहित हो मन से रुद्र की स्तुति करने

लगे । उस समय मे रुद्र प्रादुर्भूत हुए । उन्होने कहा—वरदान मागलो ! तब श्री कृष्ण ने सुनकर यह कहा ॥१८॥१९॥ जो भी आपके अङ्ग मे शस्त्र और अस्त्र क्षपित हुए है आप उन्हे पाण्डवो को दे देवें और शाप जो आपने दिया है उसका अनुग्रह करें ॥२०॥ यह श्रवण कर शिव ने कहा—हे कृष्ण देव ! आपको मेरा नमस्कार है । हे स्वामिन ! इसमे मेरा कुछ भी अपराध नही है, मैं तो आपकी माया से ही मोहित हो गया था ॥२१॥

तद्वशेन मया स्वामिन्दत्तः शापो भयकर ।
नान्यथा वचन मे स्यादंशावतरण भवेत् ॥२२॥
वत्सराजस्य पुत्रत्व गमिष्यति युधिष्ठिर. ।
बलखानिरिति स्यात. शिरीषाख्यपुराधिप. ॥२३॥
भीमो दुर्वचनाद्दुष्टो म्लेच्छयोनौ भविष्यति ।
वीरणो नाम विख्यात· स वै वनरसाधिपः ॥२४॥
अर्जुनाशश्च मद्भक्तो जनिष्यति महामति· ।
पुत्र· परिमलस्यैव ब्रह्मानन्द इति स्मृत. ॥२५॥
कान्यकुब्जे हि नकुलो भविष्यति महाबलः ।
रत्नभानुसुतो सौ वै लक्ष्मणो नाम विश्रुतः ॥२६॥
सहदेवस्तु बलवाञ्जनिष्यति महामति. ।
भीष्मसिंह सुतो जातो देवसिंह इति स्मृतः ॥२७॥
धृतराष्ट्राश एवासौ जनिष्यत्यजमेरके ।
पृथिवीराज इति म द्रौपदी तत्सुता स्मृता ॥२८॥

हे स्वामिन्! उसके वश में आकर ही मैंने ऐसा भयङ्कर शाप दिया था । मेरा कहा हुआ वचन तो अब अन्यथा नहीं होगा अंशावतरण होगा ॥२२॥ युधिष्ठिर वत्सराज के पुत्रत्व को प्राप्त होगा। शिरीषाख्य पुर का स्वामी बलखानि इस नामसे प्रसिद्ध होगा । यह भीम दुर्वचन से दुष्ट म्लेच्छ योनि में उत्पन्न होगा और वीरण इस नाम से विख्यात होकर यह वनरस का अधिप होगा ॥२३॥२४॥ अर्जुन का अंश मेरा भक्त महामति जन्म लेगा । यह परिमल का पुत्र होगा

जो ब्रह्मानन्द इस नाम से विख्यात होगा ।।२५।। कान्यकुब्ज मे नकुल महाबल होगा। यह रत्न भानु का पुत्र लक्ष्मण इस नाम वाला प्रसिद्ध होगा ।।२६।। सहदेव बडा बल वाला महामति जन्म ग्रहण करेगा और भीष्म सिंह का पुत्र होगा जिसका नाम देवसिंह होगा ।।२७।। यह धृतराष्ट्र का ही अंश अजमेर मे जन्म ग्रहण करेगा। पृथ्वीराज इस नाम से होगा और द्रौपदी इसकी सुता होगी ।।२८।।

वेला नाम्ना च विख्याता तारकः कर्ण एव हि ।
रक्तबीजस्तथा रुद्रो भविष्यति महीतले ।।२९।।
कौरवाश्च भविष्यन्ति महायुद्धविशारदाः ।
पाडुपक्षाश्च ते सर्वे धर्मिणो बलशालिनः ।।३०।।
इति श्रुत्वा हरिः प्राह विहस्य परमेश्वरम् ।
मया शक्त्यवतारेण रक्षणीया हि पांडवाः ।।३१।।
महावती पुरी रम्या मायादेवीविनिर्मिता ।
देशराजसुतस्तत्र ममांशो हि जनिष्यते ।।३२।।
देवकीजठरे जन्मोदयसिंह इति स्मृतः ।
आल्हादो मम धामांशो जनिष्यति गुरुर्मम ।।३३।।
हत्वाग्निवंशजान्भूपान्स्थापयिष्यामि वै कलिम् ।
इति श्रुत्वा शिवो देवस्तत्रैवांतरधीयत ।।३४।।

यह वेला इस नाम से विख्यात होगी। तारक कर्ण ही होगा। तथा रक्त बीज रुद्र महीतल मे होगा। और कौरव महायुद्ध मे परम पण्डित होंगे। वे सब पाण्डुपक्ष धर्मी और बलशाली होंगे ।।२९।। ३०।। सूतजी ने कहा—यह सुनकर हरि हँसकर परमेश्वर से बोले—मेरे द्वारा शक्ति के अवतार से समस्त पाण्डव रक्षा करने के योग्य हैं ।।३१।। मायादेवी के द्वारा विनिर्मित महावती नाम वाली परम रम्यपुरी होगी और वहाँ पर देवराज का पुत्र मेरा ही अंश जन्म ग्रहण करेगा ।।३२।। देवकी के उदर मे जन्म लेकर उदयसिंह नाम से कहा जायगा। मेरे धाम का अंश आह्लाद मेरा गुरु जन्म लेगा ।।३३।। अग्नि

वश में उत्पन्न हुए भूपो को मारकर कलि को स्थापित करूंगा । यह सुनकर देव शिव वहाँ पर ही अन्तर्धान हो गये थे ॥३४॥

★★★★

॥ भरतखडस्थाष्टादशराज्यस्थान ॥

प्रात काले च सप्राप्ते पाडवा पुत्रशोकिन ।
प्रेतकार्याणि ते कृत्वा भीष्मान्तिकमुपाययु ॥१॥
राजधर्मान्मोक्षधर्मा दानधर्मान्विभागश ।
श्रुत्वायजन्नश्वमेधस्त्रिभिरुत्तमकर्मभि ॥२॥
षट्त्रिंशदब्दराज्य हि कृत्वा स्वर्गपुर ययु ।
जनिष्यन्ते तदशा वै कलिधर्म विवृद्धये ॥३॥
इत्युक्त्वा स मुनि सर्वान्पुन सूतो वदिष्यति ।
गच्छध्व मुनय सर्वे योगनिद्रावशो ह्यहम् ।
चक्रतीर्थे समाधिस्थो ध्यायेऽह त्रिगुणात्परम् ॥४॥
इति श्रुत्वा तु मुनयो नैमिषारण्यवासिन ।
योगसिद्धि समास्थाय गमिष्यन्त्यात्मनोन्तिके ॥५॥
द्वादशाब्दशये कालेऽतीते ते शौनकादय ॥६॥
उत्थाय देवखाते च स्नानध्यादिका क्रिया ।
कृत्या सूतान्तिक गत्वा वदिष्यति पुनर्वच ॥७॥

इस अध्याय म भरत खडस्य अठारह राज्यो के स्थानों के विभाग का वर्णन किया जाता है । सूतजी ने कहा—प्रात काल होन पर पुत्र के शोक वाले पाण्डव लोग प्रेत का कम करके भीष्म पितामह के समीप में गये थे ॥१॥ उन्होने विभाग पूवक राजधम मोक्षधम और दान धर्मों का सुनकर उत्तम कर्म वाले तीन अश्व मधा के द्वारा यजन किया था ॥२॥ छत्तीस वर्ष पर्यन्त राज्य का शासन करके वे सब स्वर्गपुर को चले गये थे । फिर वे सब अपने वशों मे कलियुग क धर्म की विशेष वृद्धि क लिए उत्पन्न होगे ॥३॥ श्री व्यासदेव श्री न

कहा—उसने मुनि से यह कहकर पुन सू त सबको कहेगा । सब मुनि लोग अब जाग्रो । इस समय में योग निद्रा के वशीभूत हो रहा हू । चक्रतीथ मे समाधि म स्थित होकर मैं त्रिगुण से पर का ध्यान कर रहा हूँ ॥४॥ यह सुनकर नैमिषारण्य के निवासी सब मुनिगण योग सिद्धि मे समास्थित होकर आत्मा के समीप में जायेंगे ॥५॥ बारह सौ वर्ष काल के व्यतीत हो जाने पर वे शौनकादि ऋषिगण उठे और उठकर देवखात मे स्नान ध्यान आदि क्रिया करके सूतजी के समीप मे जाकर फिर वचन बोलेगे ॥६॥७॥

विक्रमाख्यानकालोऽय द्वापरे च शिवाज्ञया ।
विनीतान्भगवन्भूमो तदा तान्नृपतीन्वद ॥८॥
स्वर्गते विक्रमादित्ये राजानो बहुधाऽभवन् ।
तथाष्टादश राज्यानि तेषा नामानि मे शृणु ॥९॥
पश्चिमे सिंधुन द्य ते सेतुबन्धे हि दक्षिणे ।
उत्तरे बदरीस्थाने पूर्वे च कपिलान्तिके ॥१०॥
अष्टादशैव राष्ट्राणि तेषा मध्ये बभूविरे ।
इद्रप्रस्थ च पाचाल कुरुक्षेत्र च कापिलम् ॥११॥
अन्तर्वेदी व्रजश्चैवाजमेर मरुधन्व च ।
गौर्जर च महाराष्ट्र द्राविड च कलिगकम् ॥१२॥
आवत्य चोडुप वग गौड मागधमेव च ।
कौशल्य च तथा ज्ञेय तेषा राजा पृथक्पृक् ॥१३॥
नानाभाषा स्थितास्तत्र बहुधर्मप्रवर्तका ।
एवमब्दशत जात ततस्ते वै शकादय ॥१४॥

ऋषियो ने कहा—द्वापर में शिव की आज्ञा से यह विक्रमाख्यान का काल है । हे भगवन् ! उस समय में भूमि मे जो विनीत नृपति थे उनको बतलाइये ॥८॥ सूतजी ने कहा—राजा विक्रमादित्य क स्वर्ग मे चले जाने पर बहुत से राजा हुए थे । तथा उनके अष्टादश राज्य हुए थे । अब आप लोग उनके नामो का श्रवण करो ॥९॥ पश्चिम मे सिन्धु नदी के अन्त मे, दक्षिण मे

सेतुबन्ध मे, और उत्तर मे बदरी स्थान म तथा पूर्व मे कपिल के समीप मे उनके मध्य मे अष्टादश ही राष्ट्र हुए थे। उनके नाम इन्द्रप्रस्थ, पाचाल, कुरु, क्षेत्र, कापिल, अ तर्भेदी, व्रजय्या, अजमेर, मरुध व, गोर्जर, महाराष्ट्र, द्राविड कलिङ्ग, आवत्य, चोडुप, वग, गोड, मागध और कौशल्य है। इनके पृथक् २ राजा हुए थे ॥१०॥११॥॥१२॥१३॥ उन राज्यो मे अनेक प्रकार की भाषायें थी और वहाँ पर बहुत से धर्मों के प्रवर्त्तक हुए थे। इस प्रकार से एक सौ वर्ष हो गये। इसके बाद वे शकादि हो गये ॥१४॥

श्रुत्वा धर्मविनाश च बहुवृ दै समन्विता ।
केचित्तीर्त्वा सिंधुनदीमार्य्यदेश समागता. ॥१५॥
हिमपर्वतमार्गेण सिंधुमार्गेण चागमन् ।
जित्वार्य्याल्लुंठयित्वा तान्स्वदेश पुनराययु ॥१६॥
गृहीत्वा योषितस्तेषा पर हर्षमुपाययु ।
एतस्मिन्नन्तरे तत्र शालिवाहनभूपति ॥१७॥
विक्रमादित्यपौत्रश्च पितृराज्य गृहीतवान् ।
जित्वा शकान्दुराधर्षाश्चीनतैत्तिरिदेशजान् ॥१८॥
वाह्लीकान्कामरूपाश्च रोमजान्खुरजाञ्छठान् ।
तेषा कोशान्गृहीत्वा च दडयोग्यानकारयत् ॥१९॥
स्थापिता तेन मर्य्यादा म्लेच्छार्याणा पृथक्पृथक् ।
सिंधुस्थानमिति ज्ञ`य राष्ट्रमार्य्यस्य चोत्तमम् ॥२०॥

धर्म के विनाश को सुनकर बहुत से वृद्धों से समन्वित होकर कुछ सिंधु नदी को पारकर आर्यदेश मे आ गये थे ॥१५॥ वे हिमालय पर्वत के मार्ग से और सिंधु मार्ग के द्वारा आये थे। आर्यों को जीतकर उन्हें लूटकर वे फिर अपने देश को पुन आ गये थे ॥१६॥ उनकी स्त्रियों को ग्रहण करके वे परम हर्ष को प्राप्त हुए थे। इसी बीच में वहाँ पर शालिवाहन भूपति हुआ था जो कि राजा विक्रमादित्य का पौत्र था इसने अपने पिता के राज्य को ग्रहण किया था। चीन और तैत्तिर देश में होने वाले दुर्धर्ष शकों को इसने

जीत लिया था ॥१७॥१८॥ वाह्लिक, कामरूप, रोमज, खुरज शठों पर भी इसने विजय प्राप्त की थी। उन सबके कोशों को ग्रहण करके उन्हें इसने दण्ड के योग्य कर दिया था ॥१९॥ उसने म्लेच्छार्यों की पृथक्-पृथक् मर्यादा स्थापित की थी। प्रार्य का उत्तम राष्ट्र सिन्धु स्थान इस नाम से जानना चाहिये। ॥२०॥

म्लेच्छस्थानं परं सिन्धोः कृतं तेन महात्मना ।
एकदा तु शकाधीशो हिमतुंग समाययौ ॥२१॥
हूणदेशस्य मध्ये वै गिरिस्थं पुरुषं शुभम् ।
ददर्श बलवान्राजा गौरांगं श्वेतवस्त्रकम् ॥२२॥
को भवानिति तं प्राह स होवाच मुदान्वितः ।
ईशपुत्रं च मां विद्धि कुमारीगर्भसंभवम् ॥२३॥
म्लेच्छधर्मस्य वक्तारं सत्यव्रतपरायणम् ।
इति श्रुत्वा नृपः प्राह धर्मः को भवतो मतः ॥२४॥
श्रुत्वोवाच महाराज प्राप्ते सत्यस्य संक्षये ।
निर्मर्यादे म्लेच्छदेशे मसीहोऽहं समागतः ॥२५॥
ईशामसी च दस्यूनां प्रादुर्भूता भयंकरी ।
तामहं म्लेच्छतः प्राप्य मसीहत्वमुपागतः ॥२६॥
म्लेच्छेषु स्थापितो धर्मो मया तच्छृणु भूपते ।
मानसं निर्मलं कृत्वा मलं देहे शुभाशुभम् ॥२७॥
नैगमं जपमास्थाय जपेत निर्मलं परम् ।
न्यायेन सत्यवचसा मनसैक्येन मानवः ॥२८॥

उस महात्मा ने सिन्धु से परे म्लेच्छों का स्थान किया था। एकबार शकों के अधीश हिमतुङ्ग में आया था ॥२१॥ हूण देश के मध्य में गिरि में स्थित शुभ पुरुष को देखा था जोकि बलवान् राजा गौर अङ्ग वाला और श्वेत वस्त्र वाला था ॥२२॥ उसने आनन्द से युक्त होकर उससे कहा—आप कौन हैं? उसने उत्तर दिया कि कुमारी के गर्भ से उत्पन्न मुझको ईश का पुत्र जानिए।

॥२३॥ मैं म्लेच्छो के धर्म का वक्ता हूँ और सत्य व्रत का परायण हू । यह उत्तर सुनकर राजा ने कहा--आपका धर्म क्या अभिमत है ? २४॥ उसने यह बात सुनकर कहा—हे महाराज! सत्य का सक्षय प्राप्त होने पर तथा म्लेच्छ देश के मर्यादा से रहित हो जाने पर मसीह मैं आया था ॥२५॥ दस्युओ को भय करने वाली ईशामसी प्रादुर्भूत हुई है । उसको मैंने म्लेच्छ से प्राप्त किया था अतः मैं मसीहत्व को प्राप्त हो गया हूँ ॥२६॥ हे भूपते ! मैंने म्लेच्छो मे इस धर्म को स्थापित किया है सो आप सुनिए और अपने मन को निर्मल करके तथा देह मे शुभाशुभ मल को हटाकर नैगम अर्थात् निगमोक्त जप मे आस्थित होकर परम निर्मल का जाप करना चाहिए । मानव को न्याय, सत्य वचन और मन की एकाग्रता से इसे करना चाहिए ॥२७॥२८॥

> ध्यानेन पूजयेदीशं सूर्यमंडलसंस्थितम् ।
> अचलोऽयं प्रभुः साक्षात्तथा सूर्योचलः सदा ॥२९॥
> तत्वानां चलभूतानां कर्षणः स समंततः ।
> इति कृत्येन भूपाल महीसा विलयं गता ॥३०॥
> ईशमूर्तिहृ दि प्राप्ता नित्यशुद्धा शिवंकरी ।
> ईशामसीह इति च मम नाम प्रतिष्ठितम् ॥३१॥
> इति श्रुत्वा स भूपालो नत्वा तं म्लेच्छपूजकम् ।
> स्थापयामास तं तत्र म्लेच्छस्थाने हि दारुणे ॥३२॥
> स्वराज्यं प्राप्तवान्राजा हयमेधमचीकरत् ।
> राज्यं कृत्वा स षष्टयब्दं स्वर्गलोकमुपाययौ ॥३३॥
> स्वर्गते नृपतौ तस्मिन्यथा चाभीत्तथा शृणु ॥३४॥

सूर्य मण्डल में संस्थिति करने वाले ईश को ध्यान से पूजना चाहिए । यह साक्षात् अर्थात् प्रभु अचल है वैसे ही सर्वदा सूर्य भी अचल एवं स्थिर है ॥२९॥ चलभूत चलायमान स्वभाव वाले तत्वों का यह सभी ओर से कर्षण करने वाला है। हे भूपाल! इस कृत्य से मसीहा विलय को प्राप्त हो गई ॥३०॥ ईश की मूर्ति हृदय में प्राप्त हो गई जोकि नित्य शुद्ध और शिव करने वाली थी । तब से

ईशा मसीह यह मेरा नाम प्रतिष्ठित हो गया था ॥३१॥ यह श्रवण करके उस भूपाल ने उस म्लेच्छो के पूजक को नमस्कार करके उसको उस दारुण म्लेच्छो के स्थान मे स्थापित कर दिया था ॥३२॥ फिर राजा अपने राज्य मे प्राप्त हो गया था और उसने अश्व मध यज्ञ किया था। साठ वर्ष पर्यन्त वह राज्य के सुखो का उपभोग करके अन्त म स्वर्गलोक मे चला गया था ॥३३॥ उस राजा के स्वग म चले जाने पर जैसा भी कुछ हुआ था उसे अब श्रवण करो ॥३४॥

॥ शालिवाहनवशीयनृपतिवर्णन ॥

शालिवाहनवशे च राजानो दश चाभवन् ।
राज्य पचशताब्द च कृत्वा लोकान्तर ययु ॥१॥
मर्य्यादा क्रमतो लीना जाता भूमडले तदा ।
भूपतिर्दशमो यो वै भोजराज इति स्मृत ।
दृष्ट्वा प्रक्षीणमर्य्यादा वली दिग्विजय ययौ ॥२॥
सेनया दशसाहस्त्र्या कालिदासेन सयुत ।
तथान्यैर्ब्राह्मणै सार्द्ध सिंधुपारमुपाययौ ॥३॥
जित्वा गाधारजान्म्लेच्छान्काश्मीरान्नारवान्छठान् ।
तेपा प्राप्य महाकोश दण्डयोग्यानकारयत् ॥४॥
एतस्मिन्नन्तरे म्लेच्छ आचार्य्येण समन्वित ।
महामद इति ख्यात शिष्यशाखासमन्वित ॥५॥
नृपश्चैव महादेव मरुस्थलनिवासिनम् ।
गगाजलैश्च सस्नाप्य पचगव्यसमन्वितै ।
चदनादिभिरभ्यर्च्य तुष्टाव मनसा हरम् ॥६॥

इस अध्याय म शालि वाहन वश में होने वाले राजाओ का वर्णन किया जाता है। श्री सूत जी ने कहा – राजा शालि वाहन के वश मे दश राजा हुए थे। उन सबने पाच सौ वर्ष पय त राज्य शासन किया था और अन्त मे दूसरे

लोक मे चले गये थे ॥१॥ उस समय मे इस भूमण्डल मे क्रम से मर्यादा लीन हो गई थी। जो इनमे दशम राजा हुआ है वह नाम से भोजराज प्रसिद्ध हुआ थी। उसने प्रक्षीण मर्यादा को देखकर परम बलवान् उसने दिग्विजय करने को गमन किया था ॥२॥ दश सहस्र सेना के साथ तथा कविश्रेष्ठ कालिदास को साथ मे लेकर एव अ य ब्राह्मणो के सहित वह सिन्धु के पार मे प्राप्त हुआ था ॥३॥ वहाँ उस दिग्विजय मे उसने गान्धारज, म्लेच्छ, काश्मीर, नारव और शठो को जीतकर उनका बहुत बडा कोश प्राप्त करके उन सबको दण्ड के योग्य करा दिया था ॥४॥ इस बीच में आचार्य से समन्वित म्लेच्छ जो महामद इस नाम से प्रसिद्ध था, शिष्यो की शाखाओ से समन्वित हो गया था ॥५॥ और नृप ने मरुस्थल मे निवास करने वाले महादेव को पञ्चगव्य से युक्त गङ्गा के जलो से स्नान कराके तथा चन्दन आदि से अभ्यर्चना करके मन से हर को तुष्ट अर्थात् स्तुत किया था ॥६॥

नमस्ते गिरिजानाथ मरुस्थलनिवासिने ।
त्रिपुरासुरनाशाय बहुमायाप्रवर्त्तिने ॥७॥
म्लेच्छैर्गुप्ताय शुद्धाय सच्चिदानन्दरूपिणे ।
त्व मा ही किंकर विद्धि शरणार्थमुपागतम् ॥८॥
इति श्रुत्वा स्तव देव शब्दमाह नृपाय तम् ।
गतव्य भोजराजेन महाकालेश्वरस्थले ॥९॥
म्लेच्छैस्सुदूषिता भूमिर्वाहीका नाम विश्रुता ।
आर्य्यधर्मो हि नैवात्र वाहीके देशदारुणे ॥१०॥
बभूवात्र महामायी योऽसौ दग्धो मया पुरा ।
त्रिपुरो बलिदैत्येन प्रेषित पुनरागत ॥११॥
अयोनि स वरो मत्त प्राप्तवान्दैत्यवर्द्धन ।
महामद इति ख्यात पैशाचकृतितत्पर ॥१२॥
नागन्तव्य त्वया भूप पैशाचे देवधूर्तके ।
मत्प्रसादेन भूपाल तव शुद्धि प्रजायते ॥१३॥

इति श्रुत्वा नृपश्चैव स्वदेशान्पुनरागमत् ।
महामदश्च तैः सार्द्धं सिंधुतीरमुपापयौ ॥१४॥

भोजराज ने कहा—हे गिरिजा नाथ ! मरुस्थल मे निवास करने वाले, बहुत सी माया मे प्रवृत्त होने वाले, म्लेच्छो से रक्षित, शुद्ध और सच्चिदानन्द रूप वाले त्रिपुर असुर के नाशक आपके लिए मेरा नमस्कार है। आप मुझे अपना एक किङ्कर समझिये। मैं आपके शरण मे उपस्थित हुआ हूँ ॥७॥८॥ सूतजी ने कहा—देव ने इस प्रकार से राजा का स्तवन सुनकर राजा के लिये यह शब्द कहा भोजराज को महा कालेश्वर के स्थल में जाना चाहिए ॥९॥ वाहिक नाम से प्रसिद्ध भूमि म्लेच्छो के द्वारा दूषित हो गई है। यहाँ पर आर्य धर्म सर्वथा नहीं है। यह वाहीक देश बहुत ही दारुण है ॥१०॥ यहाँ महामायी हुआ था जिसको मैंने पहिले दग्ध कर दिया था। वह त्रिपुर दैत्य के द्वारा भेजा गया यहाँ फिर आ गया है ॥११॥ क्योंकि उसने जोकि दैत्यो के बढ़ाने वाला था, मुझसे वरदान प्राप्त कर चुका है। पैशाच कृतियो के करने मे तत्पर वह महामद इस नाम से प्रसिद्ध है ॥१२॥ हे भूप ! धूर्तों के देश मे जोकि पैशाचिक है तुमको यहाँ नही आना चाहिए। हे भूपाल ! मेरे प्रसाद से तेरी बुद्धि शुद्ध हो जायगी ॥१३॥ इस प्रकार से कह जाने पर वह राजा पुनः अपने देशों मे आ गया था और महामद उनके साथ सिन्धु के तीर पर आ गया था ॥१४॥

उवाच भूपतिं प्रेम्णा मायामदविशारदः ।
तव देवो महाराज मम दासत्वमागतः ॥१५॥
ममोच्छिष्ठं सभुं जीयाद्यथा तत्पश्य भो नृप ।
इति श्रुत्वा तथा दृष्ट्वा परं विस्मयमागतः ॥१६॥
म्लेच्छधर्मे मतिश्चासीत्तस्य नृपस्य दारुणे ॥१७॥
तच्छ्रुत्वा कालिदासस्तु रुषा प्राह महामदम् ।
माया ते निर्मिता धूर्त नृपमोहनहेतवे ॥१८॥
हनिष्यामि दुराचारं वाहीकं पुरुषाधमम् ।
इत्युक्त्वा स द्विजः श्रीमान्नवार्णजपतत्परः ॥१९॥

जप्त्वा दशसहस्र तद्दशाश जुहाव　　स ।
भस्म भूत्वा स मायावी म्लेच्छदेवत्वमागत ॥२०॥
भयभीतास्तु तच्छिष्या देश वाहिकमाययु ।
गृहीत्वा स्वगुरोर्भस्म मदहीनत्वमागतम् ॥२१॥

मायामद के परम पण्डित उसने प्रेम के साथ राजा से कहा—हे महाराज ! आपके देव मेरी दासता को प्राप्त हो गये है ॥१५॥ हे नृप ! मेरा उच्छिष्ठ (भूठा) जैसे ही खालो वैसे ही उसे देख लो । यह सुनकर तथा देखकर वह परम विस्मय को प्राप्त हुआ था । उस राजा की दारुण म्लेच्छ धर्म म वृद्धि हो गई थी ॥१६॥१७॥ यह श्रवण करके कालिदास ने क्रोध मे भरकर उस महामद से कहा—हे धूर्त ! तू ने नृप से मोह न करने क लिए माया रची है ॥१८॥ दुष्ट आचार वाले पुरुषो मे अधम वाहीक को मैं मार डालूंगा । यह कहकर उस श्री मान् ब्राह्मण ने नवार्ण मन्त्र के जप मे तत्परता की थी ॥१९॥ उसने नवार्ण मन्त्र का दश सहस्र जाप किया और उसका दशांश भाग का उसने हवन किया था । वह मायावी भस्म होकर म्लेच्छ देवत्व को प्राप्त हो गया था । ॥२०॥ भय से भीत होकर उसके शिष्य वाहीक देश म आ गये थे । उन्होने अपने गुरु की भस्म को ग्रहण कर लिया था और वे मद हीनता को प्राप्त हो गए थे ॥२१॥

स्थापित तैश्च भूमध्ये तत्रोपुर्मदतत्परा　　।
मदहीन पुर जात तेषा तीर्थं सम स्मृतम् ॥२२॥
रात्रौ [illegible] देवरूपश्च बहुमायाविशारद　　।
पैशाच देहमास्थाय भोजराज हि सोऽब्रवीत् ॥२३॥
आर्य्यधर्मो हि ते राजन्सर्वधर्मोत्तम स्मृत　।
ईशाज्ञया करिष्यामि पैशाच धर्मदारुणम् ॥२४॥
लिगच्छेदी शिखाहीन श्मश्रु धारी स दूषक　।
उच्चालापी सर्वभक्षी भविष्यति जनो मम ॥२५॥
विना कौल च पशवस्तेषा भक्ष्या मता मम ।
मुसलेनैव सस्कार कुशैरिव भविष्यति ॥२६॥

तस्मान्मुसलवन्तो हि जातयो धर्मदूपका ।
इति पैशाचधर्मश्च भविष्यति मया कृत ॥२७॥
इत्युक्त्वा पययौ देव स राजा गेहमाययौ ।
त्रिवर्णे स्थापिता वाणी सास्कृती स्वर्गदायिनी ॥२८॥

उन्होने भूमध्य म उस भस्म को स्थापित कर दिया था और मद तत्पर होकर वे वहाँ पर ही बस गये थे। वह मदहीनपुर हो गया जोकि उनका तीथ के समान कहा जाता है ॥२२॥ उस बहुत माया के पण्डित ने देवरूप होकर रात्रि मे पैशाचिक देह धारण किया और वह भोजराज से बोला—॥२३॥ हे राजन्! तुम्हारा यह आर्य धम समस्त धर्मों म अति उत्तम है। ईश की आज्ञा से पैशाच दारुण धर्म को मैं करूँगा ॥२४॥ मेरे मनुष्य लिङ्ग के छेदन करने वाले अर्थात् खतना कराने वाले शिखा (चोटी) से रहित अर्थात् बिना चोटी वाले और दाढ़ी रखने वाले दूपक, ऊँचे स्वर से आलाप करने वाले और सभी कुछ खाने वाले होंगे ॥२५॥ कौल के बिना समस्त पशु उनके भक्ष्य पदार्थ हैं ऐसा मेरा मत है। मुसल से ही कुशो की भाँति उनका सस्कार होगा ॥२६॥ इससे मुसल वाली धम की दूपक उनकी जातियाँ हैं। मेरे द्वारा किया हुआ इस प्रकार का पैशाच धम होगा ॥२७॥ यह कहकर वह देव चला गया और राजा अपने स्थान मे आ गया था। उसने तीनो वर्णों मे स्वर्ग प्रदान कराने वाली सास्कृती भाषा को स्थापित किया था ॥२८॥

शूद्रेपु प्राकृती भाषा स्थापिता तेन धीमता ।
पचाशदब्दकाल तु राज्य कृत्वा दिव गत ॥२९॥
स्थापिता तेन मर्य्यादा सवदेवोपमानिनी ।
आर्य्यावर्त पुण्यभूमिर्मध्य विंध्यहिमालयो ॥३०॥
आर्य्यवर्णा स्थितास्तत्र विंध्यान्ते वर्णसकरा ।
नरा मुसलवन्तश्च स्थापिता सिंधुपारजा ॥३१॥
बर्वरे तुपदेशे च द्वीपे नानाविधे तथा ।
ईशामसीहधर्माश्च सुरै राज्ञे व सस्थिता ॥३२॥

उस धीमान् ने शूद्रो प्राकृती भाषा को ही स्थापित किया था अर्थात् संस्कृत भाषा न बोलकर केवल प्राकृत भाषा ही बोला करते थे क्योंकि उनके लिए राजा ने इसी भाषा की स्थापना की थी। इस राजा ने पचास वर्ष के काल पर्यन्त राज्य का शासन किया था। इसके पश्चात् वह दिवगत हो गया था ॥२६॥ इस राजा ने समस्त देवो की उपमानिनी मर्यादा की स्थापना की थी। विन्ध्य और हिमाचल के मध्य मे आर्यावर्त्त परम पुण्य की भूमि है अर्थात् सबसे अधिक पवित्र भूमि है ॥३०॥ वहा पर आर्यवर्ण स्थित है और विन्ध्य के अन्त में वर्ण सङ्कर हैं। मुसलवान् नर सिन्धु पारज स्थापित हैं ॥३१॥ बर्बर में तुप देश मे तथा नाना प्रकार के द्वीप में ईसामसीह धर्म सुरो के द्वारा आज्ञा से राजा के द्वारा ही संस्थित हैं ॥३२॥

॥ भोजराजवंश्यानेकभूपालराज्यवर्णनम् ॥

स्वर्गते भोजराजे तु सप्तभूपास्तदन्वये ।
जाताश्चाल्पायुषो मन्दास्त्रिशताब्दान्तरे मृता ॥१॥
बहुभूपवती भूमिस्तेषा राज्ये बभूव ह ।
वीरसिहश्च यो भूप सप्तम सप्रकीर्तित ॥२॥
तदन्वये त्रिभूपाश्च द्विशताब्दान्तरे मृता ।
गगासिहश्च यो नृपो दशम स प्रकीर्तित ॥३॥
कल्पक्षेत्रे च राज्य स्व कृतवान्धर्मतो नृप ।
अन्तर्वेद्या कान्यकुब्जे जयचन्द्रो महीपति ॥४॥
इद्र प्रस्थेनगपालस्तोमरान्वयसभव ।
अन्ये च बहवो भूपा बभूवुर्ग्रामराष्ट्रपा ॥५॥
अग्निवशस्य विस्तारो बभूव बलवत्तर ।
पूर्वे तु कपिलेस्थाने वाहीकान्ते तु पश्चिमे ॥६॥
उत्तरे चीनदेशान्त सेतुबधे तु दक्षिणे ।
पष्ठिलक्षाश्च भूपाला ग्रामपा बलवत्तरा ॥७॥

इस अध्याय मे भोजराज के वश मे होने वाले अनेक भूपालो के राज्य का वर्णन किया जाता है । सूतजी ने कहा—भोजराज के स्वर्गवासी हो जाने पर उनके वश मे सात राजा हुए थे किन्तु अल्प आयु वाले और मन्द थे जोकि सभी तीन सौ वर्ष के अन्तर में ही मर गए थे ॥१॥ उनके राज्य में यह यह भूमि बहुत भूपो वाली हो गई थी । वीरसिंह नामधारी जो राजा था वह सातवाँ राजा हुआ है ॥२॥ उनके वश मे तीन भूप हुए जो दो सौ वर्ष के अन्तर मे मृत हो गए थे । गङ्गासिंह जो राजा था वह दशवाँ राजा कहा गया है ॥३॥ राजा ने कल्पक्षेत्र मे धर्म से अपना राज्य किया था । अन्तर्वेदी मे कान्य कुब्ज मे जयचन्द्र नामक राजा हुआ था ॥४॥ इन्द्रप्रस्थ मे अनङ्ग पाल राजा था जो तोमर वश मे पैदा हुआ था । इनके अतिरिक्त बहुत से भूप हुए थे जोकि ग्राम राष्ट्रप थे ॥५॥ अग्नि वश का विस्तार अधिक बलवान् हुआ था । पूर्व मे तो कपिल स्थान मे और पश्चिम मे वाह्लीकान्त मे, उत्तर मे चीन देश के अन्त मे और दक्षिण मे सेतुबन्ध के अन्त में साठ लाख भूपाल अधिक बलवान् ग्रामप हुए हैं ॥६॥७॥

अग्निहोत्रस्यकर्तारो गोब्राह्मणहितैषिणः ।
बभूवुर्द्वापरसमा धर्मकृत्यविशारदा ॥८॥
द्वापरास्यसम काल सर्वत्र परिवर्तते ।
गेहेगेहे स्थित द्रव्य धर्मश्चैव जनजने ॥९॥
ग्रामेग्रामे स्थितो देवो देशेदेशे स्थितो मख ।
आर्यधर्मकरा म्लेच्छा बभूवु सर्वतोमुखा ॥१०॥
इति दृष्ट्वा कलिर्घोरो म्लेच्छया सह भीरुक ।
निलाद्रौ प्राप्य मतिमान्हरि शरणमाययौ ॥११॥
द्वादशाब्दमिते काले ध्यानयोगपरोऽभवत् ।
ध्यानेन सच्चिदानद दृष्ट्वा कृष्ण सनातनम् ॥१२॥
तुष्टाव मनसा तत्र राधया सहित हरिम् ।
पुराणमजर नित्य वृ दावननिवासिनम् ॥१३॥

ममांशो भूमिमासाद्य क्षयिष्यति महाबलान् ।
म्लेच्छवंशस्य भूपालान्स्थापयिष्यति भूतले ॥२०॥
इत्युक्त्वा भगवान्साक्षात्तत्रैवान्तरधीयत ।
कलिस्तु म्लेच्छया सार्धं परमानन्दमाप्तवान् ॥२१॥

कलि ने कहा—आप तो समस्त पापों के हरण करने वाले हैं और हरि मङ्गल कालों के करने वाले होते हैं। आप सत्य युग में गौर वर्ण वाले थे, त्रेता में रक्त रूप आपका था तथा द्वापर में पीत वर्ण आपने धारण किया था और अब मेरे समय में आप कृष्ण रूप में हैं। मेरे पुत्र म्लेच्छक कहे गये हैं वे भी इस समय आर्य धर्म में आ गये हैं ॥१५॥१६॥ हे स्वामिन्! मेरे द्यूत, मद्य सुवर्ण और स्त्री हास्य ये चार ही तो घर हैं सो अग्निवंश में होने वाले क्षत्रियों ने ये मेरे समस्त विनाशीत कर दिये हैं ॥१७॥ हे जनार्दन! मैं इस समय देह त्याग ने वाला, कुल का त्याग कर देने वाला और अपने राष्ट्र को छोड़ देने वाला होकर आपके चरण-कमल का आश्रय लेकर आपकी ही शरण में स्थित हो गया हूं ॥१८॥ यह इस प्रकार की आर्त्त स्तुति को सुनकर भगवान् कृष्ण ने हँसकर उससे कहा—हे कलि! मैं तेरी रक्षा करने के लिए महावती में जन्म ग्रहण करूँगा ॥१९॥ मेरा अंश भूमि में प्राप्त होकर महान् बल वालों का क्षय करेगा। फिर म्लेच्छ वंश के राजाओं को भूतल में स्थापित करेगा ॥२०॥ इतना कहकर साक्षात् भगवान् वहीं पर अन्तर्धान हो गये थे। कलि ने फिर म्लेच्छा के साथ परम आनन्द की प्राप्ति की थी ॥२१॥

एतस्मिन्नन्तरे विप्र यथा जातं शृणुष्व तत् ।
आभीरी वाक्सरे ग्रामे व्रतपा नाम विश्रुता ॥२२॥
नवदुर्गाव्रतं श्रेष्ठं नववर्षं चकार ह ।
प्रसन्ना चण्डिका प्राह परं वरय शोभने ॥२३॥
साह तां यदि मे मातर्वरो देयस्त्वयेश्वरि ।
रामकृष्णसमौ बालौ भवेयातां ममान्वये ॥२४॥

तथेत्युक्त्वा तु सा देवी त त्रैवान्तरधीयत ।
वसुमान्नाम नृपतिस्तस्या रूपेण मोहित ॥२५॥
उद्वाह्य धर्मतो भूप स्वगेहे तामवासयत् ।
तस्या जातौ नृपात्पुत्रौ देशराजस्तु तद्वर ॥२६॥
आवार्यो वत्सराजश्च शतहस्तिसमो वले ।
जित्वा तौ मागधान्दशान्राज्यवतौ वभूवतु ॥२७॥
शतयत्त स्मृतो म्लेच्छ शूरो वनरसाधिप ।
तत्पुत्रो भीमसनाशो वीरणोभूच्छिवाज्ञया ॥२८॥
तालवृक्षप्रमाणेन चोध्ववेगो हि तस्य गे ।
तालनो नाम विख्यात शतयत्तेन वै कृत ॥२९॥
ताभ्या नृपाभ्यात यु द्धमभवल्लोमहर्षणम् ।
युद्धन हीनता प्राप्तस्तालनो वलवत्तर ॥३०॥
तदा मैत्री कृता ताभ्या तालनेन समन्विता ।
जयचद्रपरीक्षार्थे त्रय शूरा समाययु ॥३१॥

हे विप्र! इस अन्तर मे जैसा भी कुछ हुआ था तुम उसका श्रवण करो। वाक्सर ग्राम मे वतपा नाम से प्रसिद्ध एक आभीरी हुई थी। उसने परम श्रेष्ठ नवदुर्गा व्रत नौ वष पय त किया था। तब तो चण्डिका दवी प्रसन्न होकर उससे बोली—हे शोभने ! तू जो चाहे माँग ल ॥२२॥ जो राजा जयचन्द्र के पक्ष मे है वे भी उसके भय से भूमिराज के लिए उसक मान से सत्कृत दण्ड देते हैं। ॥२३॥ उसने कहा—हे माता ! यदि आप हे ईश्वरि! प्रसन्न होकर मुझे वरदान दना चाहती हैं तो मैं यही वरदान मागती हू कि राम कृष्ण के समान मेरे वश मे बालक जन्म ग्रहण करें॥२४॥ ऐसा ही होगा यह कहकर वह दवी वहाँ पर ही अन्तर्धान हो गई थी। वसुमान् नाम वाला एक राजा था जो उसके रूप से मोहित हो गया था॥२५॥ उस राजा ने उसके साथ विवाह कर लिया और उसे अपने घर मे लाकर रख दिया था। उस राजा से दो पुत्र उत्पन्न हुए। देशराज तो उसका वर था। उनके नाम आवार्य और वत्सराज थे। यह वत्सराज

सौ हाथियो के समान बल वाला था। उन दोना ने मागध देशो को जीतकर वे ाज्य वाले हो गए थे ॥२६॥२७॥ वनरसाधिप शूर शतयत्त म्लेच्छ कहा गया है। उसका पुत्र भीमसेन का अ दा शिव की आज्ञा से वीरण हुआ था ॥२८॥ ताल के वृक्ष के प्रमाण से उसका ऊर्ध्व वेग था। अतएव वह तालन, इस नाम से विख्यात हुआ था जोकि शतयत्त ने किया था ॥२९॥ उन दोनो राजाओ का बड़ा भीषण रोमाञ्चकारी युद्ध हुआ था। अधिक बलवान् तालन उस युद्ध से हीनता को प्राप्त हो गया था ॥३०॥ तब उन दोनो ने मैत्री करली थी और तालन से युक्त होकर वे तीनो शूरवीर जयचन्द्र की परीक्षा के लिए आये थे ॥३१॥

॥ जयचन्द्र तथा पृथ्वीराज की उत्पत्ति ॥

इ द्रप्रस्थेऽनगपालोनपत्यश्च महीपति ।
पुत्रार्थं कारयामास शैव यज्ञ विधानत ॥१॥
कन्यके च तदा जाते शिवभागप्रसादत ।
चद्रकातिश्च ज्येष्ठा वै द्वितीया कीर्तिमालिनी ॥२॥
कान्यकुब्जाधिपायैव चद्रकान्ति पिताददत् ।
देवपालाय शुद्धाय राष्ट्रपालान्वयाय च ॥३॥
सोमेश्वराय भूपाय चपहानिकुलाय तु ।
अजमेराधिपायैव तया वै कीर्तिमालिनीम् ॥४॥
जयशर्मा द्विज. कश्चित्समाधिस्थो हिमालये ।
दृष्ट्वा भूपोत्सव रम्य राज्यार्थे स्वमनोऽदधत् ॥५॥
त्यक्त्वा देह स शुद्धात्मा चद्रकात्या सुतोभवत् ।
जयचद्र इति ख्यातो बाहुशाली जितेन्द्रिय ।
रत्नभानुश्च सजज्ञे शूरस्तस्यानुजो बली ॥६॥
स जित्वा गौडवगादीन्मरुदेशान्मदोत्कटान् ।
दड्यान्कृत्वा गृह प्राप्य भ्रात्राज्ञातत्परोऽभवत् ॥७॥

इस अध्याय मे जयचन्द्र पृथ्वीराज की उत्पत्ति के साथ आर्य देश के सम दो भागो के आधिपत्य के वृत्तान्त का वर्णन किया जाता है। सूत जी ने कहा—इन्द्रप्रस्थ मे जो अनङ्ग पाल राजधा था वह सन्तान हीन था। उसने पुत्र की प्राप्ति करने के लिये एक शैव यज्ञ को विधि-विधान के साथ कराया था ॥१॥ शिवभाग के प्रसाद से उस समय उसके दो कन्याएँ उत्पन्न हुई थीं। जो उन दोनो कन्याओं मे ज्येष्ठ थी उसका नाम चन्द्रकान्ति था और जो दूसरी छोटी थी उसका नाम कीर्तिमालिनी था ॥२॥ पिता ने कान्यकुब्ज देश के राजा को चन्दकान्ति का दान किया था। जो शुद्ध, राष्ट्रपाल के वंश वाला, देवपाल चाप हानि कुल वाला अजमेर का अधिप सोमेश्वर राजा था उसको कीर्ति-मालिनी का दान किया था ॥३॥४॥ उस समय मे कोई जय शर्मा नाम का ब्राह्मण हिमालयमे समाधि मे स्थित था उसने इस परम रम्य भूप के उत्सव को देखकर राज्य के प्राप्त करने का मन में विचार किया था ॥५॥ उसने अपने देह का त्याग कर शुद्धात्मा वह चन्दकान्ति का पुत्र रूप मे उत्पन्न हुआ था। वह जयचन्द इस नाम से ख्यात हुआ जोकि बाहुशाली और इन्द्रियों को जीतने वाला था। उसका छोटा भाई बलवान और शूर रत्न भानु उत्पन्न हुआ था। उसने गौडवगादि मदोत्कट मरुदेशो को जीतकर उन्हे दण्ड देने के योग्य बनाकर गृह मे आया और अपने भाई की आज्ञा मे तत्पर होकर रहने लगा ॥६॥७॥

गर्गासिहस्य भगिनी नाम्ना वीरवती शुभा।
रत्नभानोश्च महिषी बभूव वरवर्णिनी ॥८॥
नकुलांशस्तदा भूमौ तस्या जातः शिवाज्ञया।
लक्षणो नाम बलवान्खड्गयुद्धविशारदः।
स समाव्दान्तरे प्राप्ते पितुस्तुल्यो बभूव ह ॥९॥
अयश्च कीर्तिमालिन्या पुत्रा जाता मदोत्कटाः।
धुंधकारश्च प्रथमस्ततः कृष्णकुमारकः।
पृथिवीराज एवासौ ततोनुज इति स्मृतः ॥१०॥

द्वादशाब्दवयः प्राप्तः सिंहखेलस्ततोऽभवत् ।
श्रुत्वाचानगपालश्च तस्मै राज्यं स्वयं ददौ ।
गत्वा हिमगिरिं रम्यं योगध्यानपरोभवत् ॥११॥
मथुरायां धुंधकारोऽजमेरे च ततोनुजः ।
राजा बभूवनीतिज्ञस्तौ सुतौ पितुराज्ञया ॥१२॥
प्रद्योतश्चैव विद्योतः क्षत्रियौ चंद्रवंशजौ ।
मन्त्रिणौ तस्य भूपस्य बलवंतौ मदोत्कटौ ॥१३॥
प्रद्योततनयो जातो नाम्ना परिमलो बली ।
लक्षसेनाधिपः सो हि तेन राज्ञैव संस्कृतः ॥१४॥

गङ्गासिंह भगिनी नाम से वीरवती थी और बहुत अच्छी थी। वह वर वर्णिनी रत्नभानु राजा की पट्टाभिषिक्ता रानी हुई थी ॥८॥ उसमें शिव की आज्ञा से भूमि में नकुल का अंश उत्पन्न हुआ था। लक्षण नाम वाला अति बलवान खड्गयुद्ध में विशारद वह हुआ था। वह सात वर्ष के अन्तर में अपने पिता ही के समान हो गया था ॥९॥ कीर्त्ति मालिनी में मद से उत्कट तीन पुत्र उत्पन्न हुए थे। सबसे प्रथम धुन्धकार था। इसके पश्चात कृष्ण कुमार हुआ। यह पृथ्वी राज ही था। इसके पश्चात अनुज कहा गया है ॥१०॥ जब बारह वर्ष की इसकी अवस्था हुई थी तभी वह सिंहों से खेल करने वाला था। अनङ्गपाल ने यह श्रवणकर उसके लिये स्वयं राज्य दे दिया था। वह फिर हिमालय पर्वत पर जाकर योग के द्वारा ध्यान में अवस्थित हो गया था ॥११॥ मथुरा में धुन्धकार और अजमेर में ततोनुज राजा हुआ था। यह बड़ा नीतिज्ञ था। ये दोनों पुत्र पिता की आज्ञा के पालक हुए थे ॥१२॥ प्रद्योत और विद्योत ये दो चन्द्रवंश में उत्पन्न क्षत्रिय थे जोकि उस राजा के अति बलवान महोत्कट मन्त्री हुए थे ॥१३॥ प्रद्योत के बलवान् परिमल नामक पुत्र समुत्पन्न हुआ था। वह एक लाख सेना का स्वामी था जोकि उसी राजा के द्वारा संस्कार युक्त किया गया था ॥१४॥

विद्योताद्भीष्मसिंहश्च गजसेनाधिपोऽभवत् ।
स्वर्गतेऽनगपाले तु भूमिराजो महीपतिः ॥१५॥

दृष्ट्वा तान्विप्रियान्सर्वान्निजराज्यान्निराकरोत् ।
प्रद्योताद्याश्च चत्वार स्वशूरैर्द्विशतैर्युता ॥१६॥
कान्यकुब्जपुर प्राप्य जयचद्रमवर्णयन् ।
जयचद्र महीपाल त्वन्मातृष्वसृजो नृप ॥१७॥
मातामहस्य ते राज्य प्राप्तवान्निर्भयो वली ।
न्यायेन कथितोऽस्माभिरर्द्धराज्य हि ते स्मृतम् ॥१८॥
सर्वराज्य कथ भु क्षे श्रु त्वा तेन निराकृता ।
भवन्त शरण प्राप्ता यथायोग्य तथा कुरु ॥१६॥
इति श्रु त्वा महीपालो जयचद्र उवाच तान् ।
अश्वसैन्ये मदीये चाधिकारी ते सुतो भवेत् ॥२०॥
नाम्ना परिमल शूरस्त्वमन्मत्री भवाधुना ।
विद्योतश्च तथा मत्री गजसैन्ये हि भीष्मक ॥२१॥

विद्योत से भीष्म सिंह गजो की सेना का स्वामी हुआ था । राजा अनङ्ग पाल जिस समय मे स्वग वासी हो गये थे तो फिर उनके राज्यासन पर भूमि नामधारी महीपति बैठा था ॥१५॥ उसने अपन जो विप्रिय लोग थे उन सबकोअपने राज्य से निराकृत कर दिया था । प्रद्योतादि चार थे किन्तु अपने शूरो के साथ दो सौ से युक्त थे ॥१६॥ का यकुब्ज पुर में जाकर ये जयच द का वगन करते थे । हे जय चन्द महीपाल ! तुम्हारी मौसी का पुत्र नृप है । उसने तुम्हारे माता मह का ही राज्य प्राप्त किया है और अब वह वलवान् निभय हो गया है । यह हमने न्याय युक्त बात वह दी है । इसका आधा राज्य आपका कहा गया हैं ॥१७॥१८॥ वह सम्पूण राज्य को कैसे भ गता है, यह कहा तो इसे श्रवण कर उसने निराकृत कर दिया था । अब हम सब आपके शरण मे प्राप्त हुए हैं । आप जैसा भी उचित हो वैसा ही करिये ॥१९॥ यह सुनकर राजा जयचद उनसे बोला--मेरे अश्वा की सेना मे तुम्हारा पुत्र अधिकारी होगा ॥२०॥ परिमल नाम वाला जो शूरवीर है वह इस समय मेरा मन्त्री हो जावे । और विद्योत भी उसी प्रकार का मन्त्री होगा तथा भीष्मक गजो की सेना मे होगा ॥२१॥

वृत्त्यर्थं च मया वो वै पुरी दत्ता महावती ।
महीपतेश्च भूपस्य नगरी सा प्रियकरी ॥२२॥
इति श्रुत्वा तु ते सर्वे तथा मत्वा मुमोदिरे ।
महीपतिस्तु बलवान्दुःखात्सत्यज्य तां पुरीम् ॥२३॥
कृत्वौर्वीया पुरीमन्या तत्र वासमकारयत् ।
अगमा मलना चैव भगिन्यौ तस्य चोत्तमे ॥२४॥
अगमा भूमिराजाय चान्या परिमलायसा ।
दत्ता भ्राता विधानेन परमानदमापतु ॥२५॥
विवाहान्ते च भूराजा दुर्गमन्यमकारयत् ।
कृत्वा च नगरी रम्या चतुर्वर्णनिवासिनीम् ॥२६॥
देहली सुमुहूर्तेन दुर्गद्वारे सुरोपिता ।
गता सा योजनान्ते वै वृद्धिरूपा सुकालत ॥२७॥

आप लोगो की वृत्ति के लिये मैंने आपको महावती पुरी देदी है। और महीपती राजा की वह नगरी बहुत ही प्रियङ्करी थी ॥२२॥ यह श्रवण कर वे सब वैसा ही मानकर बहुत ही प्रसन्न हुए थे। महीपति तो बलवान् था किन्तु दुख से उसने उस पुरी का त्याग कर दिया था ॥२३॥ उसने अन्य पुरी को औवीर्या बनाकर वहाँ पर उसने अपना निवास किया था। उसकी अगमा और मलिना ये अति श्रेष्ठ भगिनी हुई थी ॥२४॥ भाई ने अगमा को भूमिराज के लिए दान किया था और दूसरी को परिमल के लिये दे दिया था। विधान पूवक दिये जाने पर वे दोनो परम आनन्द को प्राप्त हुई थी ॥२५॥ विवाह के अन्त मे भूराजा ने अन्य दुर्ग बनवाया था। और उसने चारो वर्णों के निवास किये जाने वाली परम सुन्दर नगरी का निर्माण किया था ॥२६॥ अच्छे मुहूर्त्त में दुर्ग के द्वार पर देहली को सुरोपित किया था। वही सुकाल के अन्त मे योजनान्त में वृद्धि रूप हो गई थी ॥२७॥

विस्मित स नृपो भूत्वा देहली नाम चाकरोत् ।
देहलीग्राम इति च प्रसिद्धोऽभून्नृपाज्ञया ॥२८॥

त्रिवर्षांते च भो विप्रा जयचन्द्रो महीपतिः ।
लक्षषोडशसैन्याढ्यस्तत्र पत्रमचोदयत् ॥२६॥
किमर्थं पृथिवीराज मद्दायं मे न दत्तवान् ।
मातामहस्य वै दायं चार्द्धं मे च समर्पय ॥३०॥
नो चेन्मच्छस्त्रकठिनैः क्षयं यास्यन्ति सैनिकाः ।
इति ज्ञात्वा महीराजो विंशल्लक्षाधिपो बली ॥३१॥
दूतं वै प्रेषयामास राजराजो मदोत्कटः ।
जयचन्द्र महीपाल सावधानः शृणुष्व तत् ॥३२॥
यदा निरा कृता धूर्ता मया ते चन्द्रवंशिनः ।
ततः प्रभृति सेनाङ्गं विंशल्लक्षं समाहृतम् ॥३३॥
त्वया षोडशलक्षं च युद्धसैन्यं समाहृतम् ।
सर्वे वै भारते भूपा दण्डयोग्याश्च मे सदा ॥३४॥

उस राजा ने विस्मित होकर उसका नाम देहली ही रख दिया था। वह राजा की आज्ञा से देहली ग्राम ऐसा प्रसिद्ध हो गया था ॥२८॥ हे विप्रगण ! तीन वर्ष के अन्त में राजा जयचन्द्र सोलह लाख सेना से युक्त हो गया था और उसने एक पत्र प्रेरित किया था ॥२६॥ पत्र में यह आशय था कि हे पृथ्वीराज ! किस लिये तुमने मेरा दाय मुझे नहीं दिया है। मेरे मातामह का दाय तुम्हारे पास है उसका आधा भाग मुझे दे दो ॥३०॥ यदि तुमने मेरा आधा भाग नहीं दिया तो मेरे कठिन शस्त्रों के द्वारा तुम्हारे सैनिक क्षय को प्राप्त हो जावेंगे। यह जानकर बीस लाख सेना के स्वामी महा बलवान् महीराज ने अपना महोत्कट राजदूत भेजा था। उसने दूत से कहलवाया था कि हे महीपाल जयचन्द्र ! तुम सावधान होकर यह सुनलो ॥३१॥३२॥ जब से मैंने चन्द्रवंश में होने वाले धूर्त्तों का निराकरण किया था तभी से लेकर मैंने बीस लाख सेना एकत्रित करली है॥३३॥ आपने भी सोलह लाख सेना बना ली है जोकि युद्ध करने में समर्थ है। भारत में समस्त भूप सदा मेरे दण्ड के योग्य हैं।३४।

भवान्न दण्ड्यो बलवान्करं मे दातुमर्हति ।
नो चेन्मत्कठिनैर्बाणैः क्षयं यास्यन्ति सैनिकाः ॥३५॥

इति ज्ञात्वा तयोर्घोर वैर चासीन्महीतले ।
भूमिराजश्च वलवाञ्जयचन्द्रभयार्दित ॥३६॥
जयचद्रश्च वलवान्पृथिवीराजभीरुक ।
जयचन्द्रश्चायदेशमर्द्धराष्ट्रमकल्पयत् ॥३७॥
पृथिवीराज एवासौ तदार्द्धं राष्ट्रमानयत् ।
एव जात तयोर्वैरमग्निवशप्रणाशनम् ॥३८॥

आपको मैंने कभी दण्ड देने के योग्य नही बनाया था। आप बलवान् हैं किन्तु अब आप मुझे वर देने के योग्य हैं। अगर ऐसा नही किया तो मेरे कठिन वाणो से तुम्हारे समस्त सैनिक क्षय को प्राप्त हो जायगे ॥३५॥ यह जानकर उन दोनो म इस भूमण्डल मे बडा घोर वैर हो गया था। और भूमिराज बलवान था किन्तु जयचन्द के भय से सदा अर्दित रहा करता था ॥३६॥ जय चन्द ने आय और बलवान् जयचन्द पृथ्वीराज से डरा हुआ रहता था। जय चन्द ने आय देश को अध राष्ट्र बना दिया था ॥३७॥ पृथ्वीराज ही यह था कि उस समय म आधा राष्ट्र ने लिया था। इस प्रकार उन दोनो का यह वैर था जो अग्नि वश का नाश करने वाला हुआ था ॥३८॥

॥ सयोगित स्वयवर वर्णन ॥

एकदा रत्नभानुर्हि महीराजेन पालिताम् ।
दिश याम्या स गो जित्वा तथा कोशानुपाहरत् ॥१॥
महीराजस्तु तच्छ्रुत्वा पर विस्मयमागत ।
रत्नभानोश्च तिलको बभूव बहुविस्तर ॥२॥
तिलका नाम विख्याता या तु वीरवती शुभा ।
श्रेष्ठा द्वादशराज्ञीना जननी लक्षणस्य वै ॥३॥
जयचद्रस्य भूपस्य योषित षोडशाभवन् ।
तासा न तनयो ह्यासीत्पूर्वकर्मविपाकत ॥४॥

गौडभूपस्य दुहिता नाम्ना दिव्यविभावरी ।
जयचद्रस्य महिषी तद्दासी सुरभानवी ॥५॥
रूपयौवन सयुक्ता रतिकेलिविशारदा ।
दृष्ट्वा ता स नृप कामी बुभुजे स्मरपीडित ॥६॥
तस्या जाता सुता देवी नाम्ना सयोगिनी शुभा ।
द्वादशाब्दवय प्राप्ता सा बभूव वरागना ॥७॥

इस अध्याय में जयचन्द्र की सुता सयोगिनी के स्वयम्बर मे पृथ्वीराज की प्रतिमा का सयोगिनी के द्वारा वर्णन किया जाता है । सूत जी ने कहा—एक बार रत्न भानु ने महीराज के द्वारा पालित याम्य दिशा को जीतकर उनके समस्त कोशो का हरण कर लिया था ॥१॥ महीराज ने यह सुनकर बहुत अधिक विस्मय किया था और रत्नभानु का तिलक विस्तार वाला हो गया था ॥२॥ जो शुभवीर वती थी वह तिलका के नाम से विख्यात हुई थी । वह बारह रानियो मे सब से श्रेष्ठ थी और लक्षण की माता थी ॥३॥ जय चन्द राजा की सोलह स्त्रियाँ थी । उनमे से किसी के भी पूव कर्म के विपाक के कारण पुत्र नही था ॥४॥ गौड देश की पुत्री जिसका नाम विभावरी था राजा जयचन्द्र की महिषी थी और उसकी दासी का नाम सुरभानवी था ॥५॥ यह सुरभानवी दासी रूप और यौवन से सम्पन्न थी । तथा रति की कीडा करने मे बडी कुशल भी थी । राजा ने उसको देखा और वह उस पर आसक्त हो गया था । उस कामी ने काम से पीडित होकर उसका उपभोग किया था ॥६॥ उस दासी मे परम शुभ सयोगिनी नाम वाली पुत्री ने जन्म ग्रहण किया था । जब वह बारह वर्ष की अवस्था वाली हुई तो वराङ्गना हो गई थी ॥७॥

तस्या. स्वयवरे राजाह्वयद्भूपान्महाद्युमान् ।
भूमिराजस्तु बलवाञ्छ्रुत्वा तद्रूपमुत्तमम् ॥८॥
विवाहार्थे महश्चासीच्चद्रभट्टमचोदयत् ।
मन्त्रिप्रवर भो मित्र चद्रभट्ट मम प्रिय ॥९॥

कान्यकुब्जपुरी प्राप्य मन्मूर्ति स्वर्णनिर्मिताम् ।
स्थापय त्व सभामध्ये यद्वृत्तात तु मे वद ॥१०॥
इति श्रुत्वा चद्रभट्टो भवानीभक्तितत्पर ।
गत्वा तत्र भृगुश्रेष्ठ यथा प्रोक्तस्तथाकरोत् ॥११॥
स्वयवरे च भूपाश्च नानादेश्या समागता ।
त्यक्त्वा सयोगिनी तान्वै नृपमूर्तिविमोहिता ॥१२॥
पितर प्राह कामाक्षी यस्य मूर्तिरिय नृप ।
भविष्यति स मे भर्ता सर्वलक्षणलक्षित ॥१३॥
जयचद्रस्तु तच्छ्रुत्वा चद्रभट्टमुवाच तम् ।
यदि ते भूपतिश्चैव सर्वसैन्यसमन्वित ॥१४॥

उस सयोगिनी का स्वयम्बर राजा ने किया था उसम राजा ने महान् शुभ राजाओं का आह्वान किया था । भूमिराज बडा ही बलवान् राजा था । उसन भी उस सयोगिनी के उत्तम रूप के विषय में सुना था । उसके मन मे उसके साथ विवाह करने की इच्छा हुई और उसने चन्दभट्ट को प्रेरित किया था कि हे मन्त्रि प्रवर ! भो मित्र ! हे चन्दभट्ट ! तुम मेरे प्रिय हो ॥८॥९॥ कान्यकुब्ज पुरी म जाकर स्वर्ण से बनाई हुई मरी मूर्ति की स्थापना करो और सभा के बच मे रखकर तुम मुझे इस वृत्तान्त को बता देना ॥१०॥ यह सुन कर भवानी की भक्ति मे तत्पर चन्द्रभट्ट ने यह सुनकर हे भृगु श्रेष्ठ ! वह वहा पर गया और जैसा उससे कहा गया था वैसा ही उसने किया था ॥११॥ उस स्वयवर में अनेक देश के राजा लोग आये थे । सयोगिनी ने उन सबको त्याग दिया और वह उस नृप मूर्ति पर मोहित हो गई थी ॥१२॥ उसका माप्नी न कहा हे नृप ! जिसकी यह मूर्ति है वही समस्त लक्षणो से लक्षित मेरा पति होगा ॥१३॥ यह सुनकर जयचन्द्र ने चन्दभट्ट से कहा कि यदि तुम्हारा राजा सब प्रकार की सेना से समन्वित है तो मुझे बताओ ॥१४॥

सञ्जयेद्योगिनीमेता तर्हि मेऽतिप्रियो भवेत् ।
चद्रभट्टस्तु तच्छ्रुत्वा तत्तु सर्वमवर्णयत् ॥१५॥

पृथिवीराज एवासौ श्रुत्वा सैन्यमचोदयत् ।
एकलक्षा गजास्तस्य सप्तलक्षास्तुरगमा ॥१६॥
रथा पचसहस्राश्च धनुर्बाणविशारदा ।
लक्षा. पदातयो ज्ञेया द्वादशेव महावला ॥१७॥
राजानस्त्रिशतान्येव महीराजपदानुगा ।
सार्द्धं द्वाभ्या च वन्धुभ्या कान्य कुब्जे नृपोऽगमत्॥१८॥
धुन्धुकारश्च तद्वन्धुर्गजानीकपतिस्सदा ।
हयानीकपति कृष्ण कुमारो वलवत्तर ॥१९॥
पदातीना नृपतय पतयस्तत्र चाभवत् ।
महान्कोलाहलो जात स्थली शून्यामकारयन् ॥२०॥
विंशत्कोशप्रमाणेन स्थित तस्य महावलम् ।
जयचद्रस्तु सज्ञाय महीराजस्य चागमम् ॥२१॥

समस्त सैन्य से समन्वित होकर इस योगिनी को सम्यक् प्रकार से वह जीत लेता है तो मेरा अत्यन्त प्रिय हो जायगा । चन्द्रभट्ट ने यह सुनकर वह सब आकर वर्णन कर दिया था ॥१५॥ यह पृथ्वीराज ही था जिसने उसे सुनकर सेना को प्रेरित किया था । उसके एक लाख हाथी थे और सात लाख अश्व थे ॥१६॥ पाँच सहस्र रथ थे और धनुर्बाण मे विशारद महाबल वाले बारह लाख पदाति थे ॥१७॥ तीन सौ राजा महीराज के पदानुग थे अर्थात् अनुयायी थे । राजा दो भाइयो के साथ कान्य कुब्ज देश मे गया था ॥१८॥ धुन्धकार नाम का उसका भाई सदा हाथिया की सेना के अधिपति रहा करता था । अधिक बल वाला कृष्ण कुमार अश्वो की सेना के पति था ॥१९॥ वहाँ पर पदातियो के स्वामी भी राजा ही थे । उस समय महान् कोलाहल हो गया था और स्थली को शून्य कर दिया था ॥२०॥ उसकी बडी सेना तीस कोश प्रमाण की भूमि मे स्थित थी । तब जयचन्द्र को ज्ञात हो गया था कि महीराज का आगमन हो गया है ॥२१॥

स्वसैन्य कल्पयामास लक्षषोडशसमितम् ।
एकलक्षा गजा स्तस्य सप्तलक्षा पदातय ॥२२॥

वाजिनश्चाष्टलक्षाश्च सर्वयुद्धविशारदा ।
द्विशतान्येव राजान प्राप्तास्तत्र समागमे ॥२३॥
आगस्कृत महीराज मत्वा ते शुल्कवशिन ।
युद्धार्थिन स्थितास्तत्र पुरमागस्कृत ह्यभूतद् ॥२४॥
ईशनद्या परे कूले तद्दोला स्थापिता तदा ।
नाना वाद्यानि रम्याणि तत्र चक्रुर्महारवम् ॥२५॥
रत्नभानुर्गजानीके रूपानीके . हि लक्षण ।
ताभ्या सेनापतिभ्या तौ सगुप्तौ वलवत्तरौ ॥२६॥
प्रद्योतश्चैव विद्योतो रत्नभानु ररक्षतु ।
भीष्म परिमलश्चैव लक्षण चन्द्रवशज ॥२७॥
भूपा दातिसैन्ये च सस्थिता मदविह्वला ।
ततोऽभासीन्महद्युद्ध दारुण सैन्यसक्षयम् ॥२८॥

राजा जयच द्र ने भी उस समय मे अपनी सोलह लाख सेना को सज्जित किया था । उसकी सेना मे एक लाख हाथी और सात लाख पैदल सैनिक थे । आठ लाख अश्व थे जोकि सब प्रकार के युद्ध मे निपुण थे । दो सौ राजा लोग थे जो वहाँ उस समागम मे आये थे ॥२२॥२३॥ पृथ्वीराज को अपराधी मानकर शुल्क वश वाले वे युद्ध करने की इच्छा वाले वहाँ स्थित हुए थे । उस समय वह पुर भी आगस्कृत हो गया था । २४॥ ईशानदी के दूसरे तट पर उस समय उसकी दोलास्थापित की गई थी । अनेक प्रकार के सुन्दर वाद्यो की वहाँ पर महान ध्वनि हुई थी ॥२५॥ गजो की सेना मे रत्नभानु और रूपानीक मे लक्षण इन दोनो सेनापतियो के द्वारा वे दोनो बलवान् सरक्षित थे ॥२६॥ प्रद्योत और विद्योत न रत्नभानु की रक्षा की थी । चन्द्र वश मे जन्म लेने भीष्म और परिमल ने लक्षण की रक्षा की थी ॥२७॥ पदातियो को सेना मे मद से विह्वल भूप सस्थित हो रहे थे । इसके पश्चात् जब दोनो ही ओर की सेनायें एकत्रित हो गई थी तो सैन्य का सक्षय करने वाला बडा दारुण युद्ध होने लगा ॥२८॥

हया हयैर्मृ ता जाता गजाश्चैव गजैस्तथा ।
पदातय पदातैश्च मृताश्चान्ये क्रमाद्रणे ॥२६॥
भूपैश्च रक्षिता सर्वे निर्भया रणमाययु ।
यावत्सूर्य स्थितो व्योम्नि तावद्युद्धवतत ॥३०॥
एव पचदिन जात युद्ध वीरजनक्षयम् ।
गजा दशसहस्राणि हया लक्षाणि संक्षिता ॥३१॥
पचलक्ष महीभतु ह ताम्तत्र पदातय ।
राजानो द्व शते तत्र रथाश्च त्रिशत तथा ॥३२॥
कान्यकुब्जाधिपस्यैव गजा नवसहस्रका ।
सहस्र क रथा ज्ञ याश्त्रिलक्ष च पदातय ३३॥
एकलक्ष हयास्तत्र मृता स्वगपुर ययु ।
पष्ठाहे समनुप्राप्ते पृथिवीराज एव स ॥३४॥
दु खितो मनसा देव रुद्र तुष्टाव भक्तिमान् ।
सतुष्टस्तु महादेवो मोहयामास तद्बलम् ॥३५॥

अश्वो से अश्व और गजो के द्वारा गज तथा पैदल सैनिको से पदाति सैनिक क्रम से उस रण मे मृत हो गये थे ॥२६॥ भूपो के द्वारा सुरक्षित सभी निर्भय हाकर उस रण मे आ गए थे। जब तक सूय आकाश मे रहता था तब तक बराबर युद्ध होता रहता था। इस प्रकार से पाँच दिन व्यतीत हो गये थे और वीर लोगो के क्षय करने वाला युद्ध बराबर होता रहा था। दश सहस्र हाथी एक लाख घोडे उस युद्ध में सक्षीण हुए थे ॥३०॥३१॥ पृथ्वीराज के पाँच लाख पदल वहाँ पर हत हो गये थे। दो सौ राजा और तीन सौ रथ हत हो गये थे ॥३२॥ और जो काय कुब्ज देश का राजा था उसके भी नौ हजार हाथी, एक सहस्र रथ तीन लाख पदाति (पदल सनिक) और एक लाख अश्व मर गये और स्वग लोक मे प्राप्त हो गए थे। जब छठा दिन हुआ तो वह पृथ्वीराज मन मे बहुत दु खित हुआ था और भक्तिमान् उसने मन स रुद्रदेव की स्तुति की थी। उस स्तवन से सन्तुष्ट होकर महादेव ने उसके बल को मोहित कर दिया था ॥३३॥३४॥३५॥

प्रसन्नस्तु महीराजो गत सयोगिनी प्रति ।
दृष्ट्वा तत्सुन्दर रूप मुमोह वसुधाधिप ॥३६॥
सयोगिनी नृप दृष्ट्वा मूर्च्छिता चाभवत्क्षणात् ।
एतस्मिन्नतरे राजा तद्दोलामनयद्बलात् ॥३७॥
जगाम देहली भूप सर्वसैन्यसमन्वित ।
योजनान्ते गते तस्मिन्योधिनाम्ते मदोद्भटा ॥३८॥
दृष्ट्वानैव तदा दोला प्रजग्मुर्वेगयत्तरा ।
श्रुत्वा कोलाहल तेषा महीराजो नृपोत्तम ॥३९॥
मद्धसैन्य च सस्थाप्य स्वय गेहमुपागमत् ।
उभौ ददभ्रातरौ वीरौ चार्द्धसैन्यसमन्वितौ ॥४०॥
सूकरक्षेत्रमासाद्य युद्धाय समुपस्थितौ ।
एतस्मिनन्तरे सर्वे प्रद्योतादिमहाबला ॥४१॥
स्वसैन्यै सह सप्राप्य महद्युद्धमकारयन् ।
हया हयैश्च सजग्मुर्गजा अथ गजै सह ॥४२॥

तब तो पृथ्वीराज प्रसन्न होकर सयोगिनी के पास गया और उसके परम सुन्दर रूप- लावण्य को देखकर वह राजा मोहित हो गया था ॥३६॥ सयोगिनी भी राजा को देखकर उसी समय मूर्च्छित हो गई थी । इसी बीच मे राजा ने उसकी पालकी को बल से प्राप्त कर लिया था ॥३७॥ समस्त सेना स समन्वित होकर राजा देहली को चला गया था । योजन के अन्त मे उसके चले जाने पर मदोद्भटो को होश हुआ ॥३८॥ उसी समय वहाँ सयोगिनी की दोला को न देखकर बडे वेग से वे पीछे चले थे । उनके कोलाहल को सुनकर नृपोत्तम महीराज ने वहाँ उनसे भिडने के लिए अपनी आधी सेना सस्थापित करके स्वय अपने घर को चला गया था । उसके दोनो वीर भाई आधी सेना स समन्वित थे ॥३९॥४०॥ सूकर क्षेत्र में पहुँच कर वे दोनो युद्ध करने के लिए समुपस्थित हो गये थे । इसी अन्तर म प्रद्योत आदि जो महान् बलवान् थे वे सभी अपनी सेनाओ के साथ वहाँ प्राप्त हो गये थे और उन्होने महान् युद्ध

किया था। घोडो से घाडे और हाथियो से हाथी वहाँ पर भिड गये थे ।।४१।।४२।।

सकुनश्च महानासीद्दारुणो लोमहर्षण ।
दिनान्ते सक्षय यात तयोश्चैव महद्बलम् ।।४३।।
भलभीता परे तत्र ज्ञात्वा रात्रिं तमोवृताम् ।
प्रदुद्रुवुभयाद्वीरा हतशेषास्तु देहलीम् ।।४४।।
प्रद्योताद्याश्च ते वीरा देहली प्रति सययु ।
पुनस्तयोमहद्युद्ध ह्यभवल्लोमहर्षणम् ।।४५।।
धु धुकारश्च प्रद्योत हृदि बाणैरताडयत् ।
निभिश्च विषनिघूर्णैमूर्छित स ममार च ।।४६।।
भ्रातर निहत दृष्ट्वा विद्योतश्च महाबल ।
आजगाम गजारूढो धु धुकारमताडयत् ।।४७।।
त्रिभिश्च तोमरै सोऽपि मूर्छितो भूमि मागमत् ।
मूर्छित भ्रातर दृष्ट्वा धु धुकार महाबलम् ।।४८।।
तदा कृष्णकुमारोऽसौ गजस्थस्त्वरितो ययौ ।
रूपाविष्टश्च त वीर भल्लेनैवमताडयत् ।।४९।।

वह बहुत ही दारुण और रोमाञ्चकारी महान युद्ध हुआ था। दिन के अ त म उन दोनो का ब न सक्षय को प्राप्त हो गया था ।।४३।। वहाँ पर अन्धकार आवृत रात्रि को देखकर दूसरे भय से भीत होकर हत शेष वीर देहली को भाग गये थ ।।४४।। प्रद्योत आदि वे वीर देहली की ओर चल दिए थे। फिर उनका महान लोमहर्षण युद्ध हुआ था ।।४५।। धुधकार ने प्रद्योत के हृदय मे बाणो के प्रहार किए थ और इस प्रकार से विष के बुझे हुए तीन बाणों से वह मूर्च्छित होकर मृत हो गया था ।।४६।। अपने भाई को मरा हुआ देखकर महान बलवान विद्योत आया था और गजारुढ उसने धुधकार को ताडित किया। वह भी तीन तोमरा के द्वारा मूर्च्छित हो गया और भूमि म गिर पड़ा था। महान बलशाली अपने भाई धुधकार को मूर्च्छित देखकर तब कृष्ण कुमार

ज पर स्थित होकर तुरन्त ही गया था। और रूपाविष्ट ने उस वीर को भाले के द्वारा ताडित किया ॥४७॥४८॥४९॥

भल्लेन तेन सभिन्नो मृत. स्वर्गपुर ययौ ।
विद्योते निहते तस्मिन्सर्वसैन्यचमूपतौ ॥५०॥
रत्नाभानुर्महावीरोऽयुध्यत्तेन समन्वित ।
एतस्मिन्न तरे राजा सहस्र गजसयुत. ॥५१॥
लक्षण सहित ताभ्या क्रुद्ध त समयुध्यत ।
शिवदत्तवरो राजा भीष्म परिमल रुषा ॥५२॥
रुद्रास्त्रैर्मोहयामास लक्षण बलवत्तरम् ।
मूर्छितास्तान्समालोक्य रत्नभानुः शरैर्निजै ॥५३॥
धुधुकार महीराज वैष्णवै. सममोहयन् ।
कृष्णको रत्नभानुश्च युयुधाते परस्परम् ॥५४॥
उभौ समबलौ वीरौ गजपृष्ठस्थितौ रणे ।
अन्योन्यनिहतौ नागौ खड्गहस्तौ महीतले ॥५५॥
युयुधाते बहून्मार्गान्कृतवतौ सुदुर्जयौ ।
प्रहरान्त रण कृत्वा मरणायोपजग्मतु ॥५६॥

इस तरह भाले से वह सभिन्न होकर मृत हो गया और स्वर्गलोक को चला गया था। समस्त सैन्य के चमूपति उस विद्योत के मर जाने पर तब महावीर रत्न भानु ने उससे समन्वित होकर युद्ध किया था। इस बीच मे एक सहस्र गजो से सयुक्त होकर राजा ने उन दोनो से क्रुद्ध उससे लक्षण के सहित युद्ध किया था। शिव से वरदान प्राप्त करने वाले राजा ने भीष्म परिमल को रोष से रुद्रास्त्रो के द्वारा बलवत्तर लक्षण को मोहित कर दिया था। उन सबको मूच्छित देखकर रत्न भानु ने अपने शरो से जोकि वैष्णव शर थे धुन्धकार महीराज को सम्मोहन करते हुये कृष्णक और रत्न भानु आपस मे युद्ध कर रहे थे ॥५०॥ ॥५१॥५२॥५३॥५४॥ ये दोनो वीर समान बल वाले थे और रण भूमि मे दोनो हा हाथियो के पीठ पर सवार थे। अन्योन्य के नाग निहत हो गये तो खड्ग हाथ मे लेकर भूमि तल मे युद्ध कर रहे थे और बहुत समार्गो में यद्ध

किया था, दोनो ही सुदुर्जय थे। एक प्रहर के अन्त तक इन्होंने युद्ध किया और अन्त मे मृत्यु को प्राप्त हो गये थे ॥५५॥५६॥

हते तस्मिन्महावीर्ये कान्यकुब्जा भयातुरा ।
मूर्छितास्त्रीन्समादाय पचलक्षबलैर्यु ता ॥५७॥
रण त्यक्त्वा गृह जग्मुर्नृ पशोकपरायणा ।
रत्नभानौ च निहते हतोत्साहाश्च भूमिपा ॥५८॥
स्वस्व निवेशन जग्मुर्महीराजभयातुरा ।
देवानाराधयामासुर्यथेष्ट ते गृहे गृहे ॥५९॥
महीराजस्तु बलवान्सप्तलक्षबलान्वित ।
धु धुकारेण सहितो बधु कृत्योर्ध्वमाचरत् ॥६०॥
तथा भीष्म परिमलो लक्षण पितर स्वकम् ।
गगाकूल समागम्य चोर्ध्वदैहिकमाचरत् ॥६१॥
भूमिराजस्य विजयो जयचद्रयशो रणे ।
प्रसिद्धमभवद्भू मौ गेहेगेहे जनेजने ॥६२॥
जयचद्र कान्यकुब्जे देहल्या पृथिवीपति ।
उत्सव कारयित्वा तु परमानन्दमाययौ ॥६३॥

उस महावीर के मर जाने पर कान्य कुब्ज महान् भय से आतुर हो गए थे। उन तीनो को मूर्च्छित दशा मे लेकर पाँच लाख बल से युक्त नृप के शोक मे परायण वे रणभूमि को छोडकर घर को चले गये थे। रत्नभानु के मर जाने पर राजा लोग हतोत्साह हो गये थे ॥५७॥५८॥ महीराज के भय से आतुर वे सब अपने २ घरो मे चले गये थे। उन्होने यथेष्ट घर घर मे देवो की आराधना की थी ॥५९॥ महीराज तो बलवान् था जो सात लाख सेना के बल से युक्त था। उसने धुधकार के सहित बन्धु कृत्य की अर्घ्व क्रिया की थी ॥६०॥ उसी प्रकार से भीष्म परिमल और लक्षण ने अपने पिता की गङ्गा के तट पर आकर उसकी अर्घ्व दैहिक क्रिया की थी ॥६१॥ भूमिराज का विजय रण मे जयचन्द्र का यश भूमि पर प्रसिद्ध हो गया था घर घर में और जन-जन में

प्रसिद्ध था ॥६२॥ कान्य कुब्ज मे जयचन्द्र और देहली म पृथ्वीराज ने उत्सव कराके परम आनन्द को प्राप्त किया था ॥६३॥

॥ इन्द्र का वडवादान ॥

भीष्म सिंहस्थिते गगाकूले शक्रप्रपूजक ।
शक्र सूर्यमय ज्ञात्वा तपसा समतोपयत् ॥१॥
मासाते भगवानिद्रो ज्ञात्वा तद्भक्तिमुत्तमाम् ।
वर वरय च प्राह श्रुत्वा शूरोऽब्रवीदिदम् ॥२॥
देहि मे वडवा दिव्या यदि तुष्टो भवान्प्रभु ।
इति श्रुत्वा तदा तस्मै वडवा हरिणी शुभाम् ॥३॥
ददौ स भगवानिद्रस्तत्रैवान्तर्हितोभवत् ॥४॥
तस्मिन्काले परिमल पितृशोकपरायण ।
पार्थिवं पूजयामास महादेवमुमापतिम् ।
परीक्षार्थे शिव साक्षात्सर्परोगेण त ग्रसत् ॥५॥
व्यतीते पचमे मासे नृप शक्तिविवर्जित ।
न तत्याज महापूजा महाक्लेशसमन्वित ॥६॥
मरणाय ययौ काशी स्वपत्न्या सहितो नृप ।
उवास वटमूलाते रात्रौ रोगप्रपीडित ॥७॥

इस अध्याय मे भीष्मराज की तपस्या से सन्तुष्ट इन्द्रदेव के द्वारा उसके लिये वडवा के दान का वर्णन किया जाता है। सूतजी ने कहा—गङ्गा के तट पर भीष्मसिंह के स्थित होने पर शक्र की पूजा करने वाले उसने शक्र को सूयमय जानकर तप के द्वारा उसको सन्तुष्ट किया था ॥१॥ एक मास के अन्त में भगवान् इन्द्र ने उसकी सर्वोत्तम भक्ति को समझकर, आकर उससे कहा—वरदान माँग ले, यह सुनकर उस शूर ने यह कहा ॥२॥ यदि आप मुझ पर पूर्ण रूप सन्तुष्ट एव प्रसन्न होकर मुझे वरदान देना चाहते हैं तो दिव्य वडवा

मुझे प्रदान कीजिए। यह श्रवण करके उस समय उस इन्द्र ने परम शुभहरिणी वडवा को उसे दे दिया था ॥३॥ उस समय मे परिमल अपने पिता के शोक मे परायण था। उसने पार्थिव विधि से उमा के पति महादेव की पूजा की थी। परीक्षा के लिये शिव ने उसे साक्षात् सर्प रोग से ग्रस लिया था ॥४॥५॥ पाँचवाँ मास व्यतीत हो जाने पर राजा शक्ति से वर्जित होगया था किन्तु महान् क्लेश से युक्त होकर भी उसने उस महा पूजा का त्याग नही किया था ॥६॥ अपनी पत्नी के साथ राज मरण के लिये काशीपुरी मे चला गया था। वहाँ वटमूल के अन्त मे रात्रि मे रोग से प्रपीडित होकर रह गया था ॥७॥

एतस्मिन्नन्तरे कश्चित्पन्नगो मूलसस्थित ।
शब्द चकार मधुर श्रुत्वा रुद्राहिरााययौ ॥८॥
रुद्राहिं पन्नग प्राह भवान्निदय मन्दधी ।
शिवभक्त नृपमिम पीडयेत्प्रत्यह खल ॥९॥
मूर्खोऽय भूपति साक्षादारनाल पिबेन्नहि ।
इति श्रुत्वा स रुद्राहिराह रे पन्नगाधम ॥१०॥
राज्ञो देहे पर हर्यं प्रत्यह प्राप्तवाहनम् ।
स्वगेह दु खतस्त्याज्य कथ त्याज्य मया शठ ॥११॥
मूर्खोत्र भूपतिर्यो वै तैलोष्ण यन्न दत्तवान् ।
इत्युक्त्वान्तर्गतो देहे श्रुत्वा सा मलना सती ॥१२॥
चकार पन्नगोक्त तद्गतरोगो नृपोऽभवत् ।
तैलोष्णं बिलमापूर्ये चखान च सती स्वयम् ॥१३॥
ततो जात स्वय लिंगमगुष्ठाभ सनातनम् ।
ज्योतीरूप चिदानद सर्वलक्ष्मसमन्वितम् ॥१४॥

इसी बीच मे कोई पन्नग मूल मे सस्थित था उसने अपना शब्द किया था। उस मधुर शब्द को सुनकर रुद्र का अहि [सर्प] वहाँ आगया था ॥८॥ उस रुद्र के सर्प को देखकर उस पन्नग ने उससे कहा—आप बहुत निर्दयी और मन्द बुद्धि वाले है। शिव के भक्त इस नृप खल की भाँति नित्य ही पीडा दिया करते हैं ॥९॥ रे अधम पन्नग ! यह राजा बडा मूर्ख है क्योकि आर नाल को

यह नही पीता है, यह उस रुद्र के सर्प ने पन्नग की बात सुनकर कहा था ॥१०॥ राजा के शरीर मे मैंने नित्य परम हर्ष प्राप्त किया है। अपना घरलो वडे ही दुःख से त्याज्य होता है। हे शठ ! मेरे द्वारा यह कैसे त्यागा जा सकता है ॥११॥ यह भूपति मूर्ख है जिसने कि तैलोष्ण नही दिया था। यह कहकर वह देह मे अन्तर्गत होगया था । उस मलना सती ने यह श्रवण किया था ॥१२॥ उसने सब सुनकर उस पन्नग के द्वारा कहा हुआ किया तो नृप गत रोग होगया था अर्थात् उसकी समस्त पीडा शान्त हो गई थी । उष्ण तैल से बिल को आपूरित करके सती ने स्वय खोदा था। तब तो वहा से अणुश्राभ एक सनातन लिङ्ग उत्पन्न हुआ था । यह लिङ्ग ज्योति रूप चिदानन्द और समस्त लक्षणो से समन्वित था ॥१३॥१४॥

निशीथे तम उद्भूते दिक्षु सूर्यत्वमागतम् ।
दृष्ट्वा स विस्मितो राजा पूजयामास शङ्करम् ॥१५॥
महिम्नस्तवपाठैश्च तुष्टाव गिरिजापतिम् ।
तदा प्रसन्नो भगवान्वर ब्रूहि तमब्रवीत् ॥१६॥
श्रुत्वाह नृपतिर्दे यदि तुष्टो महेश्वर ।
श्रीपतिर्मे गृह प्राप्य वसेन्मत्प्रियकारक ॥१७॥
तथेत्युक्त्वा महादेवो लिंगरूपत्वमागत ।
प्रत्यह भारमेक च सुवर्णं सुपुवे तनो ॥१८॥
तदा मलस्तु सतुष्ट प्राप्तो गेह महावतीम् ।
भीष्मसिंहेन सहित परमानदमाययौ ॥१९॥
तत प्रभृति वर्षाते जयचद्रपुरी ययौ ।
दृष्ट्वा परिमल राजा कृतकृत्यत्वमागत ॥२०॥
दिष्ट्या ते सक्षितो रोगो दिष्ट्या ते दर्शित मुखम् ।
भवान्निजपुरी प्राप्य सुखी भवतु मा चिरम् ॥२१॥

आधी रात मे अन्धकार के उत्पन्न होने पर दिशाओ मे सूर्यत्व आगया था। उस राजा को यह देखकर बहुत विस्मय हुआ और उसने शङ्कर की पूजा की थी ॥ १५ ॥ महिम्न स्तोत्र के पाठों के द्वारा उसने गिरिजा के पति का

स्तवन किया था। तब तो भगवान् शङ्कर परम प्रसन्न होकर उससे बोले—वर माँग लो ॥१६॥ यह सुनकर राजा ने देव से कहा—हे महेश्वर ! यदि आप मुझ पर परम प्रसन्न हैं तो यह वरदान दीजिए कि श्रीपति स्वयं मेरे घर में प्राप्त होकर मेरे प्रिय के करने वाले हो जावें ॥१७॥ ऐसा ही होगा—यह कह कर फिर महादेव लिङ्ग रूपत्व में प्राप्त होगये थे। वे प्रतिदिन एक भार सुवर्ण अपनी तनु से प्रसूत किया करते थे ॥१८॥ तब तो मल परम सन्तुष्ट होकर महावती को अपने घर में प्राप्त होगया था। भीष्मसिंह के साथ वह परम आनन्द को प्राप्त हुआ था ॥१९॥ तब से लेकर वर्ष के अन्त में जयचन्द्र की पुरी को गया। राजा ने परिमल को देखा और वह कृतकृत्यत्व को प्राप्त हुआ था ॥२०॥ उसने कहा—बड़े हर्ष की बात है कि तुम्हारा रोग नष्ट होगया और तुम्हारा सुख मैंने देख लिया है। आप अपनी पुरी में जाकर सुखी रहो, अधिक काल तक न रहो और जब भी मेरा कोई विघ्न आवे तो उस समय तुम मेरा समाचरण करना ॥२१॥

यदा मे विघ्न आभूयात्तदा त्वं मां समाचर ।
इति श्रुत्वा परिमलो गत्वा स्थानमवासयत् ॥२२॥
तदा तु लक्षणो वीरो भगवन्तमुमापतिम् ।
जगन्नाथमुपागम्य समभ्यर्चापरोऽभवत् ॥२३॥
पक्षमानान्तरे विष्णुर्जगन्नाथ उमापतिः ।
वरं ब्रूहि वत्सश्चेति लक्षणं प्राह हर्षितः ॥२४॥
इत्युक्तः स तु तं देवं नत्वोवाच विनम्रधीः ।
देहि मे वाहनं दिव्यं सर्वशत्रुविनाशनम् ॥२५॥
इति श्रुत्वा जगन्नाथः शक्तिमैरावताद्गजात् ।
समुत्पाद्य ददौ तस्मै दिव्यामैरावतीं मुदा ॥२६॥
आरुह्यैरावतीं राजा लक्षणो गेहमाययौ ।
स वै परिमलो राजा जगाम च महावतीम् ॥२७॥
एतस्मिन्नन्तरे वीरास्तालनाद्या मदोत्कटाः ।
महावतीं पुरीं प्राप्य ददृशुस्तं महीपतिम् ॥२८॥

यह श्रवण करके परिमल ने जाकर अपने स्थान मे निवास बनाया था ॥२२॥ उस समय वीर लक्षण जगन्नाथ पुरी में जाकर उमापति भगवान् की समभ्यर्चना मे तत्पर हो गया था ॥२३॥ एक पक्ष मात्र के बीच मे ही उमापति जगन्नाथ विष्णु आकर हर्ष से उस लक्षण से कहने लगे—वर माग ले ॥२४॥ जब उससे ऐसा कहा गया तो विनम्र बुद्धि वाले उसने देव को नमस्कार करके कहा—हे देव ! आप मुझे समस्त शत्रुओ के नाश करने वाला कोई एक परम दिव्य वाहन प्रदान करें ॥२५॥ यह सुनकर जगन्नाथ ने ऐरावत हाथी से शक्ति का समुत्पादन करके प्रसन्नता से उनको दिव्य ऐरावती शक्ति प्रदान की थी ॥२६॥ राजा लक्षण तब तो उस ऐरावती पर सवार होकर अपने घर को चला गया था। और वह राजा परिमल महावती को चला गया था ॥ २७ ॥ इस बीच मे तालन आदि जो वीर थे बडे मदोत्कट हुए थे। उन्होने महावती पुरी मे जाकर उस राजा ने वहाँ देखा था ॥२८॥

तेन सार्द्धं च महती प्रीतिं कृत्वा न्यवासयन् ।
मासान्ते च पुनस्ते वै राजानो विनयान्विताः ॥२६॥
ऊचुस्तं शृणु भूपाल वय गच्छामहे पुरीः ।
तदा राजापि तान्प्राह सर्वान्क्षितिपतीनय ॥
दत्वाधिकार पुत्रेभ्यस्तदाऽऽयास्यामि वोऽन्तिकम् ॥३०॥
तथेत्युक्तास्तु ते राज्ञा स्वगहे पुनराययुः ।
सानुजो देशराजस्तु द्विजेभ्यः स्वपुर ददौ ॥३१॥
पुत्रेभ्यस्तालनो वीरो ददौ वाराणसीं पुरीम् ।
अलिकोल्लामतिः कालः पत्रः पुष्पोदरी वरी ॥३२॥
करीनरी सुललितस्तेषां नामानि वै क्रमात् ।
द्वौ द्वौ पुत्रौ स्मृतौ तेषा पितुस्तुल्यपराक्रमौ ॥३३॥
स वै पुत्राज्ञया शूरस्तालनो राक्षसप्रियः ।
यातुधानमय देवं तुष्टाव म्लेच्छपूजनैः ॥३४॥
तथा वसुमतः पुत्रौ भूपती देशवत्सजौ ।
शक्र सूर्यं समाराध्य कृतकृत्यौ बभूवतुः ॥३५॥

उसके साथ बडी भारी प्रीति करके वहा पर ही निवास बना लिया था। मास के अंत मे फिर वे विनय से युक्तत्व राजा लोग कहने लगे—हे भूपाल ! सुनिये, अब हम पुरियो को जाते हैं । तब तो वह राजा भी उन समस्त क्षिति के स्वामियो से बोला—मैं अपने पुत्रो को अधिकार देकर तब आपके समीप मे आऊगा ॥२६॥३०॥ ऐसा ही हो—यह कहकर वे समस्त राजा लोग अपने घर मे फिर आगये थे। अपने अनुज के सहित देशराज ने तो द्विजो के लिये अपने पुर को दे दिया था ॥३१॥ वीर तालन ने पुत्रो के लिये वाराणसी पुरी दे दी थी । उनके नाम अलिकोल्लामति काल पत्र पुष्पोदरी वरा करी नरी और सुललित ये क्रम से थे । उनके दो दो पुत्र बनाये गये हैं जो पराक्रम मे अपने पिताओ के ही समान थे ॥३२॥३३॥ राक्षसो को प्यारे शूर तालन ने पुत्र की आज्ञा से म्लेच्छ पूजनो के द्वारा यातुधानमय देव की स्तुति की थी ॥३४॥ तथा वसुमान् के पुत्र राजा देशवत्सज ने अर्थात् इन दोनो ने इन्द्र और सूर्य की आराधना की थी और ये कृतकृत्य होगये थे ॥३५॥

सिंहिनी नाम वडवा या तु दत्ता भयानका ।
आरुह्य बलवाञ्छूरो गमनाय मनो दधौ ॥३६॥
पचशब्द महानागमिन्द्रदत्त मनोरमम् ।
देशराजस्तमारुह्य गमनाय मनो दधे ॥३७॥
हय पपीहक नाम सूर्यदत्त नरस्वरम् ।
वत्सराजस्तमारुह्य गमनाय मनो दधे ॥३८॥
अथ शूरा समागम्य नगरी ते महावतीम् ।
ऊपुस्तत्र महात्मानो बहुमानेन सत्कृता ॥३९॥
सेनापर्ष्टिसहस्र तत्तेषा स्वामी स तालन ।
मन्त्रिणौ भ्रातरौ तौ च नृपतेश्चन्द्रवशिन ॥४०॥
तैर्वीरै रक्षितो राजा कृतकृत्यत्वमागत ॥४१॥

सिंहिनी नाम वाली वडवा पर जो भयानक दी गई थी बलवान् शूर [चढ]कर जाने के लिए मन वाला हुआ था अर्थात् उसने वडवा पर चढकर जाने [का] मन किया था ॥३६॥ इन्द्रदेव के द्वारा दिया हुआ पञ्च शब्द महानाग था

जो बहुत सुन्दर था देशराज ने उस पर सवार होकर गमन करने के लिये मन मे विचार किया था ॥ ३७ ॥ सूर्यदेव के द्वारा दिया हुआ नभस्तर पपीहक नाम वाला अश्व था । वत्सराज ने उस पर आरोहण करके गमन करने का मन किया था ॥३८॥ तीनो शूर वे महावती नगरी मे आकर बहुमान से सत्कार किये गये महात्मा वहा निवास करने लगे थे ॥३९॥ वह साठ हजार सेना थी जिसका स्वामी वह तालन हुआ था और चन्द्रवश वाले राजा के वे दोनो भाई मन्त्री हुए थे ॥४०॥ उन वीरो के द्वारा रक्षा किया गया राजा सफलता को प्राप्त हुआ था ॥४१॥

॥ देशराजवत्सराजविवाह ॥

कालिय तौ पराजित्य भ्रातरौ नृपसेवकौ ।
गतौ गोपालके राष्ट्रे भूपतिर्दलवाहन. ॥१॥
सहस्रचडिकाहोमे नानाभूपसमागमे ।
गृहीतौ महिषौ ताभ्या भूपैरन्यैश्च दुर्जयौ ॥२॥
पूर्वं हि नृपकन्याभ्या प्रत्यह वधन गतौ ।
तौ सपूज्य विधानेन ददौ ताभ्या च कन्यके ॥३॥
देवकी देशराजाय ब्राह्मी तस्यानुजाय वै ।
ददौ दुर्गाज्ञया राजा रूपयौवनशालिनीम् ॥४॥
लक्षावृत्ति तथा वेश्या गीतनृत्यविशारदाम् ।
कन्ययोश्च सखी रम्या मेघमल्लाररागिणीम् ॥५॥
शत गजान्रथान्पच हयाश्चैवसहस्रकान् ।
चत्वारिशच्छिविका प्रददौ दलवाहन. ॥६॥
बहुद्रव्ययुता कन्या दासदासीसमन्विताम् ।
उदूह्य वेदविधिना प्रापतुश्च महावतीम् ॥७॥

इस अध्याय मे देशराज,वत्सराज के विवाह के वृत्तान्त का वर्णन किया जाता है । सूतजी ने कहा—नृप के सेवक उन दोनो भाइयो ने कालिय को पराजित करके गोपालक राष्ट्र मे गये थे जहा दलवाहन भूपति था ॥१॥ वहा सहस्र चण्डी के होम म जिसमे कि अनेक भूपो का समागम हुआ था उन दोनो

ने महिषो को ग्रहण किया था जो कि महिष अन्य राजाओ के द्वारा बहुत ही दुर्जय थे ॥२॥ पहिले नृप की कन्याओ के द्वारा प्रतिदिन बन्धन को प्राप्त हुए थे फिर उन दोनो का भली भाँति पूजन करके उन दोनो के लिये दोनो कन्याऐं विधि विधान से दान कर दीं थीं ॥३॥ देव की नाम वाली कन्या तो देशराज को दे दी और उसके छोटे भाई को ब्राह्मी नाम वाली कन्या का दान कर दिया था। राजा ने रूप और यौवन से सम्पन्न कन्या को दुर्गादेवी की आज्ञा से दे दिया था ॥ ४ ॥ लक्षावृत्ति नाम धारिणी वेश्या को जो गान और नृत्य करने मे बडी पण्डित थी और मेघ मल्लार के राग गाने वाली थी एव परम सु दर थी अपनी दोनो कन्याओ की सखी बनाकर दे दिया था ॥५॥ एक सौ हाथी, पाँच रथ, एक सहस्र अश्व बालीस शिविका (पालकी) भी दलवाहन राजा ने दहेज मे दिये थे ॥६॥ बहुत अधिक धन से युक्त तथा दास और दासियों से समन्वित कन्या का वेद की विधि से विवाह करके वे दोनो महावती नगरी मे प्राप्त होगये थे ॥७॥

मलना तां वधू दृष्ट्वा तस्यै ग्रैवेयक ददौ ।
ब्राह्म्यै षोडशशृङ्गार तथा द्वादशभूषणम् ॥८॥
राजा च परमानन्दी देशराजायशूरिणे ।
ददौ दशपुर रम्य नानाजननिषेवितम् ॥९॥
ऊषतुस्तत्र तौ वीरौ राजमान्यौ महाबलौ ।
एतस्मिन्नन्तरे जातो देवसिंहो हराज्ञया ॥१०॥
जाते तस्मिन्कुमारे तु देवकी गर्भमादधौ ।
दासश्रुता पतेर्देवी सुषुवे पुत्रमूर्जितम् ॥११॥
गौराग कमलाक्ष च दीप्यमान स्वतेजसा ।
तदानदमयो देव शक्र सुरगणै सह ॥१२॥
शङ्खशब्द चकारोच्चैर्जयशब्द पुन पुन ।
दिश प्रफुल्लिताश्चास-ग्रहा सर्वे तथा विधि ॥१३॥
आयाता बहवो विप्रा वेदशास्त्रपरायणा ।
चक्रुस्ते जातकर्मास्य नामकर्म तथाविधम् ॥१४॥

मलना ने उस परम सुन्दरी वधू को देखकर उसे ग्रैवेयक (गरदन में पहिनने का आभूषण) दिया था । ब्राह्मी को सोलह शृङ्गार तथा बारह भूषण दिये थे ।।८।। और राजा ने परम आनन्द वाला होकर देशराज शूरि के लिये नाना प्रकार के जनो से निवेवित परम सुन्दर दशपुर दे दिया था ।।९।। वहा पर वे दोनो वीर जो महान् बलवान् थे, राजा के प्रतिमान्य होते हुए रहा करते थे । इसी बीच मे शिव की आज्ञा से देवसिंह ने जन्म धारण किया था ।।१०।। उस कुमार के उत्पन्न हो जाने पर देवकी ने गर्भ धारण किया था । पति की दास श्रुता देवी ने एक अजित पुत्र का प्रसव किया था ।।११।। वह पुत्र गौर अङ्ग वाला, कमल के सदृश नेत्रो वाला और अपने तेज से दीप्यमान था । तब तो इन्द्रदेव देवो के सहित परम आनन्द से पूर्ण होगये थे ।।१२।। शङ्ख की ध्वनि की थी और वार-बार जय शब्द हो रहा था । समस्त दिशाऐं उस समय बहुत ही प्रफुल्लित थी तथा स्वर्ग मे समस्त ग्रह भी प्रफुल्लित हो रहे थे ।।१३।। उस आनन्द के समारोह के अवसर पर बहुत से वेदो और शास्त्रो मे पूर्ण परायण विप्र आये और उन्होने इस कुमार का जातकर्म एव नाम कर्म किया था ।।१४।।

रामांश त शिशु ज्ञात्वा प्रसन्नवदन शुभम् ।
भाद्रकृष्णतिथौ षष्ठ्या चन्द्रवारेऽरुणोदये ।।१५।।
सञ्जात कृत्तिकाभे च पितृवशयशस्कर ।
आह्लादनाम्ना ह्यभवत्प्रश्रितश्च महीतले ।।१६।।
मासान्ते च सुते जाते ब्राह्मी पुत्रमजीजनत् ।
धर्मजाश तथा गौर महाबाहु सुवक्षसम् ।।१७।।
तदा च ब्राह्मणा सर्वे दृष्ट्वा बाल शुभाननम् ।
प्रसन्नवदन चारु पद्मचिह्नपदस्थितम् ।।१८।।
तैर्द्विजैश्च कृतो नाम्ना बलखानिर्महाबल ।
वर्षान्ते वत्सजे जाते मूलगडान्तसभव. ।।१९।।

चामुण्डो देवकिसुतो निजवशभयङ्कर ।
जनितार ततस्त्याज्य इत्यूचुर्द्विजसत्तमा ।
न तत्याज सुत राजा बालत्वेऽपि दयापर ॥२०॥
त्रिवर्षांते गते तस्मिन्बलखानौ सुते शुभे ।
शूद्र्या जात शिखण्डयशो रूपणो नाम विश्रु त ॥२१॥

उस शिशु को राम का अश प्रसन्न मुख वाला तथा शुभ जानकर जोकि भाद्रपद मास के कृष्णपक्ष की षष्ठी तिथि मे चन्द्रवार के दिन कृत्तिका नक्षत्र मे अरुणोदय के समय मे समुत्पन्न हुआ था पिता के वश के यश को बढाने वाला था। उसका नाम आह्लाद हुआ था जो महीतल प्रथित था ।१५।१६। मास के अन्त मे सुत के उत्पन्न होने पर ब्राह्मी ने भी पुत्र को जन्म दिया था। यह धर्मज का अ श गौर वर्ण वाला महान बाहुओ से युक्त और सुन्दर वक्ष स्थल वाला था ॥१७॥ उस समय समस्त ब्राह्मणो ने शुभ मुख वाले प्रसन्न मुख से युक्त पद मे पद्म का चिन्ह धारण करने वाले सुन्दर बालक को देखकर उसका नाम महाबल वाला बलखानि यह नाम रक्खा था। वर्ष के अन्त मे वत्सज के उत्पन्न होने पर मूलगण्डान्त म जन्म लेने वाला चामुण्ड देवकी का पुत्र अपने वश मे भय करने वाला है। तब ब्राह्मणो ने पिता से कहा—यह तो त्यागने के योग्य है। बच्चे के बालकपन दया मे परायण राजा ने पुत्र का त्याग नही किया था ॥१८॥१९॥२०॥ तीन वर्षों के अन्त मे जबकि वह बलखानि सुत शुभ हो गया तो शूद्रा में शिखण्डी का अ श उत्पन्न हुआ था जिसका नाम रूपण प्रसिद्ध था ॥२१॥

वत्सराजो ययौ देशे गुर्जरे च मदालसाम् ।
स सुता च स मादाय दिने तस्मिन्समागत ॥२२॥
प्राप्ते तस्मिन्वत्सराजे जम्बुक स्ववनैर्वृ त ।
सप्तलक्षैश्च सप्राप्तो बाहुशाली मर्तोद्रिम ॥२३॥
ररोध नगरी सर्वां राज्ञ परिमलस्य वै ।
त्रिलक्षैश्च माहावत्यै सार्द्धं तौ जग्मतु पुरात ॥२४॥

माहिष्मतं सप्तलक्षैः सार्द्धं युद्धमभून्महत् ।
त्रिरात्रं दारुणं घोरं यमराष्ट्रविवर्द्धनम् ॥२५॥
शिवस्य वरदानेन भ्रात्रोर्जातः पराजयः ।
वद्धा तौ जम्बुको राजा लुंठयित्वा महावतीम् ॥२६॥
वश्या लक्षारतिं तस्य स हयं तद्गजं तथा ।
ग्रैवेयकं तथा हारं मणिरत्नविभूषितम् ॥२७॥
गृहीत्वा नगरीं सर्वां भस्मयित्वा गृहं ययौ ।
ये गुप्ता भूतले शूरास्ते शेषाश्च तदाऽभवन् ॥२८॥

वत्सराज गुजर (गुजरात) देश मे गया था और उस दिन में वह मदालसा सुता को लेकर आया था ॥२२॥ उस वत्सराज के आ जाने पर जम्बुक नामधारी अपनी सेनाओ से युक्त होकर जोकि संख्या मे सात लाख थी वहाँ प्राप्त हो गया था। यह बाहुदानी और यतेंद्रिय वीर था ॥२३॥ इसने राजा परिमल की नगरी को घेर लिया था। वे दोनो तीन लाख माहावत्यो के साथ पुर से गये थे ॥२४॥ उनका माहिष्मत सात लाखों के साथ महान् युद्ध हुआ था। यह युद्ध तीन रात्रि तक बहुत ही घोर, दारुण और यमराष्ट्र के वधन करने वाला हुआ था ॥२५॥ भगवान् शिव के वरदान के कारण दोनो भाइयो का पराजय हो गया था। जम्बुक राजा ने उन दोनो को बाँधकर तथा महावती की लूट करके, उसकी लक्षारति वेश्या को उस अश्व को, उस गज को और मणि तथा रत्नो से विभूषित ग्रैवेयक हार को ग्रहण करके एवं समस्त नगरी को भस्म कराकर वह अपने घर को चला गया था। जो शूर भूतल मे छिपकर रक्षित रह गये थे वे ही उस समय मे शेष रहे थे ॥२६॥२७॥२८॥

दुर्गेषु यानि रत्नानि तानि प्राप्य मुदा ययौ ।
लुंठिते नगरे तस्मिन्देवकी गर्भमुत्तमम् ॥२९॥
कृष्णांशः सप्तमास्यं हि चादधाद्व्रतप्रिया ।
ज्ञात्वा कुलाधमं पुत्रं चामुंडं देवकी सती ॥३०॥

कल्पक्षेत्र समागम्य कालिंद्या तमपातयत् ।
योजनान्ते गते तस्मिन्महीराजपुरोहित ॥३१॥
सामन्तो नाम त गृह्य श्वशुरालयमाययौ ।
जातस्तु दशमासान्ते रात्रौ घोरतमोवृते ॥३२॥
भाद्रकृष्णाष्टमीसौम्ये ब्राह्मनक्षत्रसयुते ।
प्रादुरासीज्जगन्नाथो देवक्या च महोत्तम ॥३३॥
श्यामाग. स च पद्माक्ष इन्द्रनीलमणिद्यु ति ।
विमानाना सहस्राणा प्रकाश. समजायत ॥३४॥
विस्मिता जननी तत्र दृष्ट्वा बाल तमद्भुतम् ।
नगरे च महाश्चर्यं जात सर्वे समाययु ॥३५॥

दुर्गों मे जितने भी रत्न वहाँ उस समय मे थे उन सबको प्राप्त करके वह प्रसन्नता से गया था । उस नगर के लुण्ठित हो जाने पर देवतो की प्रिया देवकी ने सप्तमास्य कृष्ण का म दा उत्तम गर्भ धारण किया था सती देवकी ने कुल का अधम चामुण्ड पुत्र को जानकर उसने कल्पक्षेत्र मे आकर उसको कालिन्दी (यमुना) नदी मे गिरा दिया था । एक योजन पर्यन्त उसके नदी मे बहकर चले जाने पर महीराज के पुरोहित ने जिसका नाम सामन्त था उसे ग्रहण कर लिया और वह अपनी श्वशुराल में आ गया था । दश मासो के अन्त हो जाने पर जबकि घोर अन्धकार से समावृत रात्रिका समय था उस वक्त मे भाद्रपद मास की कृष्ण पक्ष की सौम्य अष्टमी तिथि के दिन जोकि ब्राह्म नक्षत्र से युक्त थी महान् उत्तम जगत् का नाथ देवकी मे प्रादुर्भूत हुआ था ॥२९॥३०॥३१॥ ॥३२॥३३॥ इसका अङ्ग श्याम वर्ण का था, नेत्र पद्म के समान सुन्दर थे और इन्द्र नीलमणि के समान द्युति थी । उस समय सहस्रों विमानों का प्रकाश उत्पन्न हो गया था ॥३४॥ बालक की माता इस प्रकार के परम अद्भुत शिशु को देखकर अत्यन्त विस्मय से भर गई थी और समस्त नगर मे महान् आश्चर्य छा गया था । सभी लोग उसे देखने के लिए आये थे ॥३५॥

उदय किमहो जातो देवाना सूर्यरूपक ।
इत्याश्चर्य्यजुजा तेपा वागुवाचाशरीरिणी ॥३६।

कृष्णांशो भूतले जातः सर्वानन्दप्रदायकः ।
स नाम्नोदयसिंहो हि सर्वशत्रुप्रकाशहा ॥३७॥
इत्याकाशवचः श्रुत्वा ते परं हर्षमाययुः ।
यस्मिन्काले सुतो जातस्तदा च मलना सती ॥३८॥
श्यामांगं सुन्दरं बालं सर्वलक्षणलक्षितम् ।
सुषुवे परमोदारं फाल्गुनांशशिवाज्ञया ॥३९॥
तदा तु नगरी सर्वा हर्षभूता बभूव ह ।
षष्ठाहनि सुते जाते ब्रह्मानन्दगुणाकरे ॥४०॥
ब्राह्मी तु सुषुवे पुत्रं पार्षदांशं महाबलम् ।
श्यामांग कमलाक्षं च दृढस्कन्धं महाभुजम् ॥४१॥
ब्राह्मणाश्च तदागत्य जातकर्म ह्यकारयन् ।
सुखखानिर्द्विजैर्नाम्ना कृतस्तु गणकोत्तमैः ॥४२॥

सबको आश्चर्य हो रहा था कि क्या यह देवों का सूर्य रूप वाला कोई उत्पन्न हुआ है या सूर्य का ही यह उदय हो गया है, इस प्रकार के आश्चर्य करने वाले उन सबके आगे बिना शरीर वाली आकाश से एक वाणी ने कहा—॥३६॥ यह कृष्ण का अंश इस भूतल मे उत्पन्न हुआ है जोकि सबको आनन्द के प्रदान करने वाला है। यह नाम से उदयसिंह हैं जोकि समस्त शत्रुओं के प्रकाश का हनन करने वाला है ॥३७॥ इस प्रकार की आकाश से होने वाली वाणी को सुनकर वे सब परम हर्षित हुए थे। जिस समय मे यह सुत उत्पन्न हुआ था उसी समय मे सती मलना ने एक श्याम अङ्ग वाला, अति सुन्दर, समस्त शुभ लक्षणों से समन्वित, परम उदार फाल्गुनांश बालक को शिव की आज्ञा से प्रसव किया था ॥३८॥३९॥ उस समय मे समस्त नगरी हर्ष से भर गई थी। सुत के जन्म के छठवें दिन मे जोकि ब्रह्मानन्द गुण का आकार था ब्राह्मी ने पार्षद का अंश महान् बल वाला पुत्र को उत्पन्न किया था। यह पुत्र भी श्याम अङ्ग वाला, कमलाक्ष, दृढ स्कन्द वाला और महाभुज था ॥४०॥४१॥ उस समय मे ब्राह्मणों ने आकर इसका जात कर्म कराया था। उत्तम गुणों के कारण

ब्राह्मणों ने इसका नामकरण करके इसका सुखखानि नाम रखा था ।।४२।।

क्रमेण वर्द्धिता बाला सर्वलोकशिवकरा ।
तेषां काली महच्छ्रेष्ठा पितृमातृप्रियकरी ।।४३।।
तृतीयाब्दे वय प्राप्ते कृष्णांशेबलवत्तरे ।
शक्रस्तद्दर्शनकाङ्क्षी हयारूढो जगाम ह ।।४४।।
क्रीडन्स चन्दनारण्ये कृष्णांशो भ्रातृभि सह ।
नभस्थ पुरुष दृष्ट्वा सहस्राक्ष जहास वै ।।४५।।
अश्विनी हरिणी दिव्या उच्चै श्रवसमन्तिके ।
गत्वा गर्भमुमादाय स्वगेह पुनरराययौ ।।४६।।
वर्षांतरे च सुषुवे कपोत तनय शुभम् ।
पञ्चाब्दे च समायाते विद्याध्ययनमास्थिता ।।४७।।
ब्राह्मण शिवशर्माणं सर्वविद्याविशारदम् ।
स्वभक्त्या सेवन कृत्वा ते चक्रुर्वेदपाठिकाम् ।।४८।।
अष्टाब्दे चैव कृष्णांशो नामपत्रादिका क्रियाम् ।
लिखता बालकाना च कृष्णांश श्रेष्ठतामगात् ।।४९।।

क्रम से ये बालक बडे होने लगे जोकि समस्त लोकों के कल्याण के करने वाले थे । उनकी काली महान श्रेष्ठ और पिता माता की प्रियङ्करी थी । ।।४३।। बलवत्तर अर्थात् अधिक बलवान् कृष्णांश से तीन वर्ष की अवस्था पा जाने पर वहा पर इन्द्रदेव उसके दर्शन करने की इच्छा वाला होकर अश्व पर सवारी करके गया था ।।४४।। वह कृष्णांश बालक चन्दन के वन में अपने भाइयों के साथ क्रीडा करते गए आकाश मे स्थित सहस्र नेत्रों वाले पुरुष को देखकर बहुत हँसा था ।।४५।। दिव्य हरिणी अश्विनी उच्चै श्रवा के पास गई और उससे गर्भ धारण करके फिर अपने घर को चली आई थी ।।४६।। एक वर्ष के पश्चात् शुभ तनय कपोत का उसने प्रसव किया था । पाँच वर्ष के हो जानेपर ये विद्या के अध्ययन करने मे आस्थित हुए थे ।।४७।। समस्त विद्याओं के महान् पण्डित शिवशर्मा नामक ब्राह्मण की अपनी भक्ति से सेवा करके इन्होंने वेदों

को पाठिका की थी ।।४८।। आठ वर्ष की अवस्था मे कृष्णाश ने नाम तथा पत्र आदि लिखने की क्रिया को पूर्ण कर लिया था । जो बालक लिखने वाले थे उन सबम कृष्णाश ने श्रेष्ठता प्राप्त की थी ।।४६।।

।। कृष्णाशचरित्रवर्णनम् ।।

नवमाब्द वय प्राप्ते कृष्णाशो बलवत्तर ।
पठित्वान्वीक्षिकी विद्या चतु षष्टिकलास्तथा ।।१।।
धर्मशास्त्र तथैवापि सर्वश्रेष्ठो बभूव ह ।
तस्मिन्काले भृगुश्रेष्ठ महीराजो नृपोत्तम ।।२।।
करार्थं प्रेषयामास स्वसन्य च महावतीम् ।
ते वै लक्ष महाशूरा सर्वशस्त्रास्त्र धारिण ।।३।।
ऊचु परिमल भूप शृणु चन्द्रकुलोद्भव ।
सर्वे च भारत वर्षे ये राजानो महाबला ।।४।।
षडश करमादायास्मद्राजाय ददति वै ।
भवान्करे हि तस्यैव योग्यो भवति साप्रतम् ।।५।।
अद्यप्रभृति चेद्राज्ञे तस्मै दद्या कर न हि ।
महीराजस्य रौद्रास्त्रै क्षय यास्यति सैनिकै ।।६।।
ये भूपा जयचद्रस्य पक्षगास्ते हि तद्भयात् ।
ददते भूमिराजाय दड तन्मानसत्कृता ।।७।।

इस अध्याय मे कृष्णाश के चरित्र का तथा राजाओ को करद बनाने के वृत्तान्त का वर्णन किया जाता है । श्री सूतजी ने कहा—जब कृष्णाश की नौ वर्ष का आयु हो गई तो वह अधिक बलवान् हो गए थे । उन्होंने आन्विक्षिकी विद्या, चौसठ कलायें, धर्मशास्त्र यह सब पढ तथा सीख लिया था और वह सवश्रेष्ठ हो गये थ उस समय मे हे भृगुश्रेष्ठ ! नृपो म उत्तम महीराज न अपनी सेना महावती पुरी में कर ग्रहण करन के लिए भेजी

थी। उस सेना मे एक लाख महान् शूरवीर थे जो समस्त शस्त्र और अस्त्रों के धारण करने वाले थे ॥१॥२॥३॥ उन्होने वहाँ आकर परिमल राजा से कहा— हे चन्द्रकुल मे समुत्पन्न होने वाले राजन् ! सुनो, इस समस्त भारतवर्ष मे जो भी महा बलवान् राजा लोग हैं वे सब छटवा भाग कर लेकर हमारे महाराज को दिया करते हैं आप भी उसी प्रकार से इस कर के अब देने के योग्य हैं ॥४॥५॥ यदि अब से लेकर जो भी हमारे महाराज को कर नही देंगे तो वे महीराज महाराज के रौद्र अस्त्रों के द्वारा सैनिको से क्षय को अवश्य ही प्राप्त हो जायेंगे ॥६॥७॥

इति श्रुत्वा स नृपतिस्तस्मै राज्ञे महात्मने ।
करं षडंशमादाय ददौ प्रीतिसमन्वितः ॥८॥
दशलक्षमितं द्रव्यं गृहीत्वा ते समाययुः ।
महीराजः प्रसन्नात्मा पूर्ववैरमपाहरत् ॥९॥
तदा ते लक्षशूराश्च कान्यकुब्जमुपाययुः ।
जयचंद्रं तु नत्वोचुः शृणु लक्षणकोविद ॥१०॥
पृथ्वीराजो महाराजो दंड त्वत्तः समिच्छति ।
इत्युक्तस्तैर्वैष्णवाक्षी लक्षणस्तानुवाच ह ॥११॥
मद्देशे मंडलिकाश्च बहवः संति साम्प्रतम् ।
भूमिराजो माडलिको मयि जीवति मा भवेत् ॥१२॥
इत्युक्त्वा वैष्णवास्त्रं तान्क्रुद्धः स च समादधत् ।
तदस्त्रज्वालत सर्वे भयभीता. प्रदुद्रुवुः ॥१३॥
महीराजस्तु तच्छ्रुत्वा महद्भयमुपागमत् ।
दशाब्दं च वयः प्राप्ते कृष्णांशे मल्लकोविदे ॥१४॥

यह उन सैनिको से श्रवण कर उस राजा परिमल ने छटवा भाग कर लाकर महात्मा महीराज के लिये प्रीति से युक्त होकर दे दिया था ॥८॥ उन्होने दश लाख प्रमाण का द्रव्य लेकर फिर वे वहाँ से चले आये थे और महीराज परम आत्मा वाले हो गये तथा उन्होने पहिला जो वैर था वह भी

दूर कर दिया था ॥६॥ फिर उस समय वे एक लाख शूरवीर कान्य कुब्ज देश मे चले आये थे। उन्होने जयचन्द्र को नमस्कार करके कहा—हे लक्षणों के ज्ञाता विद्वन्! सुनिये ॥१०॥ महाराज—पृथ्वीराज आप से दण्ड लेने की इच्छा करते हैं। इस प्रकार उनके द्वारा कहा गया वह वैष्णव अस्त्र वाला लक्षण उनसे बोला—॥११॥ मेरे देश मे इस समय बहुत से मण्डलिक हैं। मेरे जीवित रहते हुए भूमिराज माण्डलिक नहीं होगा ॥१२॥ यह कहकर उसने क्रुद्ध होकर उनके प्रति वैष्णवास्त्र को आरम्भ किया था। उस अस्त्र की ज्वालाओं से समस्त भयभीत होकर वहाँ से भाग गये थे ॥१३॥ महीराज को यह वृत्तान्त श्रवण कर बड़ा भारी भय उपस्थित हो गया था। मल्लो के परम पण्डित कृष्णांश जब दश वर्ष की अवस्था मे प्राप्त हो गये तो उस समय में वहाँ बहुत से मल्ल विद्या के विद्वान आये थे ॥१४॥

नानामल्लाः समाजग्मुस्तेन राज्ञैव सत्कृताः।
तेषां मध्ये स कृष्णांशो बाहुशाली बभूव ह ॥१५॥
उर्वीमाधिपते पुत्र षोडशाब्दवया बली।
शतमल्लैश्च सहित. कदाचित्स समागतः ॥१६॥
पितृष्वसृपतिं भूप नत्वा नाम्नाऽभयो बली।
उवाच शृणु भूपाल कृष्णोऽयं मदमत्तर. ॥१७॥
तेन सार्द्धं भवेन्मल्लयुद्धं मम नृपोत्तम।
इति वज्रसमं वाक्यं श्रुत्वा राजा भयातुर ॥१८॥
उवाच श्यालज प्रेम्णा भवान्युद्धविशारद.।
अष्टाब्दोऽयं सुत. स्निग्धो मम प्राणसमो भुवि ॥१९॥
क्व भवान्वज्रसदृश. क्व सुतोऽयं सुकोमल.।
अन्यैर्मल्लैर्मदीयैश्च सार्द्धं योग्यो भवान्रणे ॥२०॥
इति श्रुत्वा नृप श्यालो महीपतिरिति स्मृतः।
स समाह रुषाविष्टो बालोऽयं बलवत्तर. ॥२१॥

उसी राजा के द्वारा सत्कार पाने वाले वहाँ बहुत सारे मल्ल उपस्थित

हुए थे । उन सबके मध्य मे कृष्णाश ही बाहुशाली हुए थे ॥१५॥ उर्वीयाधिपति का पुत्र जो सोलह वर्ष की अवस्था वाला अत्यन्त बलवान् था, किसी समय मे एक सौ मल्लो के सहित वहाँ पर आ गया था ॥१६॥ पितृष्वसा के (भूआ के) पति राजा को प्रणाम करके अभय नामधारी जो बलि था, वह बोला—हे भूपाल ! सुनिये, यह कृष्ण अधिक मद वाला है । हे नृपोत्तम ! उसके साथ मेरा मल्ल युद्ध होना चाहिए । इस प्रकार के वज्र के समान वचनो को श्रवण कर राजा भय से आतुर हो गया था ॥१७॥१८॥ फिर उस राजा ने अपने साले के पुत्र से प्रेम-पूर्वक कहा— आप तो मल्ल युद्ध के महा पण्डित हैं । यह आठ वर्ष का स्नेह पात्र भूमि मे प्राण के समान प्रिय पुत्र है । कहाँ तो आप वज्र के तुल्य शरीर वाले हैं और कहाँ यह अत्यन्त कोमल मेरा पुत्र है । आप दोनो मे बहुत बडा अन्तर है । मेरे अन्य बहुत से मल्ल उपस्थित हैं उनके साथ मल्ल युद्ध करने के लिए आप योग्य होते हैं ॥१९॥२०॥ यह सुनकर वह राजा महीपति नाम से कहा जाता है, वह श्याल था, उससे उसने क्रोध से आविष्ट होकर कहा कि यह बालक अधिक बलवान् है ॥२१॥

शृणु तत्कारण भूप यथा ज्ञातो मया शिशु ।
आगस्कृत महीराज मत्वा सतिलक सुतम् ॥२२॥
पडिताश्च समाहूय मुहूर्त पृष्टवान्मुदा ।
गणेशो नाम मतिमाञ्ज्योतिश्शास्त्रविशारद ॥२३॥
लक्षण वचन प्राह महीराजमनुत्तमम् ।
शिवदत्तातरो राजन्नुनेर इव साप्रतम् ॥२४॥
कृष्णाशस्तस्य योग्योऽय देशराजसुतोऽपर ।
नान्योऽस्ति भूतले राजन्सत्य सत्य ब्रवीम्यहम् ॥२५॥
तच्छ्रुत्वा लक्षणो वीर पूर्व वह्निमती प्रति ।
मल्लग्राम दक्षिणे च भूमिग्राम तु पश्चिमे ॥२६॥
उत्तरे नैमिषारण्य स्वकीय राष्ट्रमादधत् ।
अत श्रेष्ठ समारोप्य राज्यकृत्ये मया श्रुत ॥२७॥

नागोत्सवे च भूपाल पचम्या च नभस्सिते ।
दृश्यमात्र कुमाराग तस्माद्योग्यो ह्यय सुत ॥२८॥

हे भूप ! मैंने जिस तरह से उस बालक को समझा है वह कारण आप श्रवण करिये। सतिलक ने सुत महीराज को भागस्कृत मानकर उसने पण्डितो को बुलाकर बडी प्रसन्नता से मूहूर्त पूछा था। गणेश नामधारी एक परम बुद्धिमान् और ज्योतिष शास्त्र का महा पण्डित था। उसने श्रेष्ठ महीराज के विषय म लक्षण से यह वचन कहे थे—हे राजन् ! यह शिव के दिए हुए वरदान वाला है और इस समय कुबेर के समान स्थित है ॥२२॥२३॥२४॥ यह कृष्णाश उसके योग्य है और यह देशराज का अवर पुत्र है। हे राजन् ! भूतल मे अन्य नही है यह मैं परम सत्य कह रहा हूँ ॥२५॥ यह श्रवण कर वीर लक्षण ने पूर्व मे महिष्मती के प्रति, दक्षिण मे कलक्षेत्र, पश्चिम में भूमिग्राम और उत्तर मे नैमिषारण्य अपना राष्ट्र धारण किया था। अत मैंने यह श्रेष्ठ कुमार कान्य कुब्ज मे श्रवण किया था ॥२६॥२७॥ हे भूपाल ! नागोत्सव मे नभस्सित पञ्चमी में कुमाराङ्गदस्य मात्र है। इससे यह सुत योग्य है ॥२८॥

इति श्रुत्वा स कृष्णाशो वाक्छरेण प्रपीडित ।
अभय भुजयो शीघ्र गृहीत्वा सोऽयुधद्बली ॥२६॥
क्षणमात्र रण कृत्वा भूमिमध्ये तमक्षिपत् ।
अभयस्य भुजो भग्नस्तत्र जातो बलेन वै ॥३०॥
मूर्च्छित स्वसुत ज्ञात्वा खड्गहस्तो महीपति ।
प्रेषयामास तान्मल्लान्कृष्णाशस्य प्रहारणे ॥३१॥
रुपाविष्टाश्च ताञ्ज्ञात्वा कृष्णाशो बलवत्तर ।
तानेकैव समाक्षिप्य विजयी स बभूव ह ॥३२॥
पराजिते मल्लबले खड्गहस्तो महीपति ।
मरणाय मति चक्रे कृष्णाशस्य प्रभावत ॥३३॥
ज्ञात्वा तमीदृश भूप वारयामास भूपति ।

नवाब्दागे च कृष्णांशे चाह्लादाद्या कुमारका ।
मृगयार्थे दधुश्चित्तं तमूचुर्भूपतिं प्रियम् ॥३५॥

यह सुनकर वह कृष्णांश वचन रूपी शरों से अत्यन्त पीड़ित हो गया और भुजाओं में अभय को शीघ्र ग्रहण करके वह बली युद्ध करने लगा था। ॥२९॥ एक क्षण भर ही में युद्ध करके उसको भूमि के मध्य में फेंक दिया था। वहाँ पर बल के कारण अभय की भुजा भग्न हो गई थी ॥३०॥ अपने पुत्र को मूर्च्छित जान कर हाथ में खड्ग लेने वाले महीपति ने कृष्णांश के प्रहरण करने के बाथ में अन्य मल्लों को भेजा था ॥३१॥ रोष में भरे हुए उन्हें जानकर अधिक बलवान् कृष्णांश ने उनमें से एक-एक को समाक्षिप्त करके वहीं विजयी हो गया था ॥३२॥ समस्त मल्लों के बल के पराजित हो जाने पर खड्गधारी महीपति ने कृष्णांश के प्रभाव से मरने के लिए अपनी बुद्धि बनाली थी ॥३३॥ उस भूप को ऐसे विचार समझकर राजा ने उसका वारण किया था अर्थात् मरने से रोका था। अभय को रोग रहित स्वस्थ बनाकर प्रेम के साथ घर में वास करा दिया था ॥३४॥ कृष्णांश के नौ वर्ष हो जाने पर आह्लाद आदि कुमारों ने मृगया करने का मन में विचार किया था और वे सब उस प्रिय भूपति से बोले ॥३५॥

नमस्ते तात भूपाग्र्य सर्वानन्दप्रदायक ।
अस्मभ्यं त्वं हयान्देहि मत्प्रियान्वरुणावर ।३६॥
इति श्रुत्वा वचस्तेषां तथेत्युक्त्वा महीपतिः ।
भूतले वासिनोऽश्वान्वै दिव्याश्चाद्वे चतुरो वरान् ॥३७॥
ददौ तेभ्यो मुदा युक्तो हरिणीगर्भसम्भवान् ।
त्वन्मुखेन श्रुतं सूत हरिणी वडवा यथा ॥३८॥
भीष्मसिंहाय सम्प्राप्ता शक्राद्वेवशतो मुने ।
इदानीं श्रोतुमिच्छामि पुनो जातास्तुरगमा ॥३९॥
दिव्यांगा भूपणापन्ना नभस्यानिलगामिनः ।
देवराजेन भूपेन पुरा धर्मयुतेन वै ॥४०॥

सेवन भास्करस्यैव कृत च द्वादशाब्दिकम् ।
सेवान्ते भगवान्सूर्यो वर ब्रूहि तमब्रवीत् ॥४१॥
प्राह देव नमस्तुभ्य यदि देयो वरस्त्वया ।
हय दिव्यमय देहि नभस्थलजलातिगम् ॥४२॥

हे तात ! हे भूपा म श्रेष्ठतम ! हे सबको आनन्द प्रदान करने वाले ! हे तात ! आपको हमारा नमस्कार है। हे करुणा करने वाले ! आप हमको हमारे प्रिय अश्व दीजिए ॥३६॥ उनके इन वचनो का श्रवण कर राजा ने कहा—ऐसा ही होगा। भूतल मे वास करने वाले दिव्य तथा श्रेष्ठ चार अश्वो को राजा ने हर्ष से युक्त होकर उन्हें दे दिया था जोकि हरिणी के गर्भ से उत्पन्न हुए थे।३७।३८। ऋषियो ने कहा–हे सूत जी ! आपके ही मुख से सुनी है कि हरिणी वड्वा सूर्यदेव से भीष्म सिंह को प्राप्त हुई थी। हे मुने ! अब हम यह सुनना चाहते हैं कि तुरङ्गम कैसे उत्पन्न हुए थे ॥३९॥ जो तुरङ्गम दिव्य अङ्गो वाले भूषणो से सम्पन्न और आकाश तथा जल सर्वत्र गमन करने वाले थे ॥४०॥ सूत जी ने कहा— राजा देवराज ने धर्मयुक्त होकर पहिले भगवान् भास्कर की सेवा की थी और यह सेवन लगातार बारह वर्ष पर्यन्त किया था। सेवा के अन्त मे भगवान् सूर्यदेव ने उनसे कहा था कि मनोवाञ्छित वरदान माग लवे ॥४१॥ उसने इसके उत्तर मे कहा—हे देव ! यदि आपको वरदान देना ही है तो मुझे एक दिव्य अश्व प्रदान कीजिए जो आकाश स्थल और जल सर्वत्र गमन करने वाला हो ॥४२॥

तथेत्युक्त्वा रवि साक्षाद्दौ तस्मै पपिहवम् ।
लोकान्पाति पपीशं यस्तस्येद नाम चोत्तमम् ॥४३॥
अत पपीहको नाम लोकपालनकर्मवान् ।
स हयो मदमत्तश्च हरिणी दिव्यरूपिणीम् ॥४४॥
बुभुजे स्मरवेगेन तस्या जातास्तुरगमा ।
मनोरथश्च पीताग वरान कृष्णारुपक ॥४५॥
एरगर्भे समुद्भूतौ शैव्यसुग्रीववाहकौ ।
यस्मिन्दिने समुद्भूतौ जिष्णुविष्णुकलाशत ॥४६॥

तदा जातौ हरिण्याश्च मेघपुष्पवलाहकौ ।
विन्दुलश्च सुवर्णाग श्वेतागो हरि नागर ॥४७॥
दिव्यागास्ते हि चत्वार पूर्व जाता महावला ।
पश्चादशावताराश्च जातास्तेषा महात्मनाम् ॥४८॥
इति ते कथित विप्र शृणु तत्र कथा शुभाम् ।
भूतले ते हया सर्वे प्राप्ताश्चोपरिभूमिगा ॥४६॥

भगवान् रवि ने कहा—ऐसा ही होवे और उसे पापिहृत् दे दिया था । जो लोको की रक्षा करता है इसलिए वह पपी जानने के योग्य है और उसका यह उत्तम नाम इसीलिए था ॥४३॥ अतएव पपीहृत नामधारी लोको के पालन का धर्म करने वाला था । वह अश्व बड़ा मदमत्त था उसने दिव्य रूप वाली हरिणी का उपभोग किया था । कामदेव के वेग स उसके द्वारा उपभोग करने से उस हरिणी मे तुरङ्गम उत्पन्न हुए थे । मनोरम, पाताग कराल और कृष्ण रूपक ये उन तुरङ्गमो के नाम थे ॥४४॥४५॥ एक गभ मे दीव्य सुग्रीव थर दार उत्पन्न हुए थे । ये उसी दिन हुए थे जिस दिन म जिष्णु विष्णु बलाहा से समुद्भूत हुए थे ॥४६॥ उस समय मे हरिणी के मेघपुष्प और बलाहक, बिन्दुल, सुवर्णाङ्ग, श्वेताङ्ग हरिनागर ये दिव्य अङ्ग वाले महा बलशाली चार पहिले उत्पन्न हुए थे फिर उन महात्माओ के द शावतार हुये थे । हे विप्र ! यह तुमको सब बतला दिया है । अब यहाँ पर शुभ कथा और श्रवण करो । भूतल म ये अश्व सब ऊपर भूमि पर गमन करने वाले प्राप्त हुये थे ॥४७॥ ॥४८॥४६॥

देवसिहाय बलिने ददौ चाश्व मनोरथम् ।
आह्लादाय कराल च कृष्णाशायैव विन्दुलम् ॥५०॥
ब्रह्मानदाय पुत्राय प्रददौ हरिनागरम् ।
ते चत्वारो हयारूढा मृगयार्थं वन ययु ॥५१॥
हरिणी वडवां शुभ्रा वनराजि समाहृत् ।
तदनु प्रययौ वीरो वन सिंहनिषेविनम् ॥५२॥

आह्लादेनैव शार्दूलो हतः प्राणिभयकरः ।
दर्वासिहेन सिंहश्च सूकरो बलखानिना ॥५३॥
ब्रह्मानदेन हरिणो हतस्तत्र महावने ।
मृगाः शतं हतास्तैश्च तान्गृहीत्वा गृहं ययुः ॥५४॥
एतस्मिन्नन्तरे देवी शारदा च शुभानना ।
मृगी स्वर्णमयी भूत्वा तेषामग्रे प्रधाविता ॥५५॥
दृष्ट्वा तां मोहिताः सर्वे स्वैः स्वैर्बाणैरताडयन् ।
शरास्तु सक्षयं जग्मुर्मृग्यंगे बलवत्तराः ॥५६॥

बलवान् देवसिंह के लिये मनोवाञ्छित अश्व दे दिया था । आह्लाद के लिये करात नामक अश्व और कृष्णांश के लिये बिन्दुल दिया था ॥५०॥ ब्रह्मानन्द पुत्र के लिये हरिनागर नाम वाला अश्व दिया था । इस तरह वे चारों ही कुमार अपने अपने प्राप्त हुये अश्वों पर समारोहण करके मृगया खेलने के लिये वन में चले गये थे ॥५१॥ परम शुभ्र हरिणी नाम वाली जो वडवा थी उस पर बलखानि ने आरोहण किया था । उसके पीछे वीर सिंहों से सेवित वन में चला गया था ॥५२॥ आह्लाद ने ही समस्त प्राणियों को भय देने वाला शार्दूल मार दिया था । देवसिंह ने सिंह की शिकार की और बलखानि के द्वारा एक सूकर हत किया गया था ॥५३॥ उस महान् वन में ब्रह्मानन्द ने एक हरिण का वध किया था । इस तरह उन्होंने सौ मृग मारे थे तथा उन मृत शिकारों को लेकर वे घर को चले गये थे ॥५४॥ इसी बीच में देवी शारदा शुभ आनन वाली स्वर्णमयी मृगी होकर उनके आगे दौड़ी थी ॥५५॥ उस सुनहरी मृगी को देखकर सभी लोग मोहित हो गये थे और सभी ने अपने बाणों से उस पर प्रहार किया था । किन्तु उनके समस्त शर क्षय को प्राप्त हो गये थे जो कि अधिक बल वाले थे । वे सभी मृगी के अङ्ग में क्षीण हो गये थे ॥५६॥

आह्लादाद्याश्च ते शूरा विस्मिताश्च बभूविरे ।
तस्मिन्काले स कृष्णांशो बाणेनैव ह्यताडयत् ॥५७॥

तदा च पीडिता देवी भयभीता ययौ वनम् ।
कृष्णाश क्रोधताम्राक्षस्तत्पश्चात्प्रययौ बली ।।५८।।
वनांतरं च सम्प्राप्य देवी धृत्वा स्वकं वपुः ।
तमुवाच प्रसन्नाक्षी परीक्षा ते मया कृता ।।५९।।
यदा ते च भयं भूयात्तदा त्वं मां सदा स्मर ।
साधयिष्यामि ते कार्यं कृष्णाशो हि भवान्विभुः ।।६०।।
इत्युक्त्वान्तर्हिता देवी शारदा सर्वमङ्गला ।
कृष्णाशस्तु ययौ गेहं तैश्च सार्द्धं मुदा युतः ।।६१।।
तदा पराक्रमं तेषां दृष्ट्वा राजा सुखोऽभवत् ।
गृहे गृहे च सर्वेषां लक्ष्मीर्देवी समाविशत् ।।६२।।

आह्लाद आदि जो शूर थे वे सब बहुत ही विस्मित हो गये थे । उस समय मे उस कृष्णाङ्ग ने एक ही बाण से उसे ताडित कर दिया था । तब तो वह देवी पीडित होकर भय से भीत होती हुई वन मे चली गई थी । क्रोध से लाल ताम्र जैसे नेत्रो वाली बली कृष्णाश भी उसके पीछे ही चला गया था ।।५७।। ।।५८।। दूसरे वन मे जाकर देवी ने अपना शरीर धारण करके प्रसन्न नेत्रो वाली होकर उससे बोली—मैंने तेरी यह परीक्षा की थी ।।५९।। जब कभी भी तुझे कुछ भय उत्पन्न हो तो उसी समय तू मेरा सदा स्मरण कर लेना । मैं तेरे काम का साधन करूँगी क्योकि कृष्णाश विभु भगवान् ही हैं ।।६०।। यह कहकर सर्व मङ्गला वह शारदा देवी अन्तर्धान होगई थी तब वह कृष्णाश बडी प्रसन्नता से उन्हीं साथियो के साथ मे घर चला गया था । उस समय मे उन सबके पराक्रम को देखकर राजा बहुत ही सुखी हुआ था । उन सबके घर घर मे लक्ष्मीदेवी ने समावेश किया था ।।६१।।६२।।



॥ महींराजपराजयादिवृत्तान्त ॥

दशाब्दे च वय प्राप्ते विष्णो शक्त्यवतारके ।
वसंतसमये रम्ये ययुस्ते प्रमदावनम् ॥१॥
ऊपुस्तत्र व्रताचारे माधवे कृष्णवल्लभे ।
स्नात्वा च सागरे प्रात पूजयामासुरम्बिकाम् ॥२॥
ऋतुकालोद्भवै पुष्पैर्धूपैर्दीपैर्विधानत ।
जप्त्वा सप्तशतीस्तोत्र दध्यु सर्वकरी शिवाम् ॥३॥
कदमूलफलाहारा जीवहिंसाविवर्जिता ।
तेषा भक्ति समालोक्य मासान्ते जगदम्बिका ॥४॥
ददौ तेभ्यो वर रम्य तच्छृणुध्व समाहिता ।
आह्लादाय सुरत्व च बलत्व बलखानये ॥५॥
बालशत्व च देवाय ब्रह्मशत्व नृपाय च ।
कृष्णांशायैव योगत्व दत्त्वा चान्तर्दधे शिवा ॥६॥
कृताकृत्यास्तदा ते वै स्वगेह पुनराययु ।
तपा प्राप्त वरे रम्ये मलना पुत्रमूर्जितम् ॥७॥

इस अध्याय में कृष्णांश के द्वारा किये गये महीराज के पराजय आदि का वर्णन किया गया है। श्रीसूतजी ने कहा—विष्णु की शक्ति के अवतार के दश वर्ष की अवस्था प्राप्त हो जाने पर परम रम्य वसन्त के समय में वे प्रमदा वन को गये थे ॥१॥ वहाँ पर कृष्ण वल्लभ माधव व्रताचार में रहने लगे थे। प्रातःकाल में सागर में स्नान करके अम्बिका देवी की पूजा किया करते थे ॥२॥ ऋतु काल में उत्पन्न होने वाले पुष्पों के द्वारा, धूपों से और दीपों से विधि पूर्वक सप्तशती स्तोत्र का पाठ करके उन्होंने सब कुछ पूर्ण करने वाली शिवा का ध्यान किया था ॥३॥ कन्द, मूल और फलों का आहार करते हुए वे सब जीवों की हिंसा से रहित थे। इस तरह की उनकी भक्ति को भावना समझकर एक मास के अन्त में जगदम्बिका ने उनके लिये परम रम्य वरदान दिया था। सब आप लोग बहुत समाहित होकर उसका श्रवण करो। आह्लाद को अम्बिका ने सुरत्व का वर दिया था, बलखानि के लिए बलत्व का

वर प्रदान किया था ।।४।।५।। देव के लिये काव का ज्ञान प्राप्त करने का और नृप के लिये ब्रह्मज्ञत्व का वर दिया था। जो कृष्णांश था उसे देवी ने योगत्व प्रदान करके वह शिवा वहाँ पर ही अन्तर्हित होगई थी ।।६।। तब वे सब कृत-कृत्य होकर अपने घर को फिर आ गये थे। उनके रम्य वर के प्राप्त होने पर मलना ने एक परम अजिन, श्यामाङ्ग, शुभ लक्षणों से युक्त सात्यकि का अंश पुत्र का प्रसव किया था ।।७।।

श्यामांग सात्यकेरंश सुषुवे शुभलक्षणम् ।
स ज्ञेयो रणजिच्छूरो राजन्यप्रियकारक ।।८।।
आषाढे मासि सम्प्राप्ते कृष्णांशो हयवाहन ।
उर्वीया नगरी प्राप्त एकाकी निर्भयो बली ।।९।।
दृष्ट्वा स नगरी रम्या चतुर्वर्णनिषेविताम् ।
द्विजशाला ययौ शूरो द्विजधेनुप्रपूजक ।।१०।।
दत्त्वा स्वर्ण द्विजातिभ्य सतर्प्य द्विजदेवता ।
महीपतिगृह रम्य जगाम बलवत्तर ।।११।।
नत्वा स मातुल धीमास्तथान्यांश्च सभासद ।।१२।।
तदा नृपाज्ञया शूरा बधनाय समुद्यता ।
खड्गहस्ता समाजग्मुर्यथा सिंह गजा शशा ।।१३।।
मोहित त नृप कृत्वा दुष्टबुद्धिर्महीपति ।
कृत्वा लोहमय जाल तस्योपरि समादधे ।।१४।।

वह पुत्र रणजित् शूर जानना चाहिए जो कि राजन्यों का प्रिय करने वाला था ।।८।। आषाढ के मास मे प्राप्त होने पर कृष्णांश अश्व पर सवार होकर एकाकी (अकेला) निडर और बलवान् उर्वीया नगरी मे पहुच गया था ।।९।। उसने उस नगरी को जो कि अत्यन्त रम्य और चारों वर्णों के लोगो से सेवित थी, देखा था। वह शूर वहा द्विजशाला मे द्विज और धेनुओं का पूजने वाला प्राप्त हुआ था ।।१०।। वहाँ द्विजाति गण के लिये स्वर्ण का दान करके और द्विजो के देवों का भली-भाँति तर्पण करके अधिक बलशाली वह रम्य गृह को चला गया था ।।११।। वह धीमान् मातुल को नमस्कार करके तथा अन्य

सभासदो को प्रणाम करके तब शूर ब धन के लिये समुद्यत हुए थे। खडग हाथा मे लेकर जैसे शश सिंह पर आया करते हैं उसी भाँति आये थे। दुष्ट बुद्धि महीपति ने उस राजा को मोहित करके लोहमय जाल करके उसके ऊपर समाधान किया था ॥१२॥१३॥१४॥

एतस्मिन्नतरे वीरो बोधितो देवमायया ।
आगस्कृतान्रिपून्ज्ञात्वा खडग हस्त समावधीत् ॥१५॥
हत्वा पचशत शूरो हयारूढो महाबली ।
उर्वीया नगरी प्राप्य जलपाने मनो दधौ ॥१६॥
कूपे दृष्ट्वा शुभा नार्यो घटपूर्तिकरीस्तदा ।
उवाच मधुरं वाक्य देहि सु दरि मे जलम् ॥१७॥
दृष्ट्वा ता सु दर रूप मोहनायोपचक्रिरे ।
भित्वा तामा तु तै कुम्भान्पाययित्वा हय जलम् ॥१८॥
वन गत्वा रिपु जित्वा बद्धा तमुभय बली ।
चण्डिकापार्श्वमागम्य तद्वधाय मनोदधे ॥१९॥
श्रु त्वा स वरुण वाक्य त्यक्त्वा स्वनगर ययौ ।
नृपातिनमुपागम्य वर्णयामास कारणम् ॥२०॥
श्रुत्वा परिमनो राजा द्विजा तिभ्यो ददौ धनम् ।
समाघ्राय म कृष्णाश कृतकृत्योऽभवन्नृप ॥२१॥

इस अन्तर म देवो की माया से वीर बोधित हागया था उसने आग स्कृत शत्रुओ को जानकर खडग हस्त म लकर मार दिया था ॥१५॥ शूर ने पाच सौ को मार कर अश्व पर आरूढ हो उर्वीय नगरी मे पहुचकर जलपान करने म मन लगा दिया था ॥१६॥ कूप पर घटा की पूर्ति करने वाली मन्दी स्त्रियो को देखा था और उ हे देखकर मधुर वाणी म कहा—हे सुन्दरि ! मुझे पीने के लिये जल दे दो ॥१७॥ उन स्त्रियो ने वह परम सुन्दर रूप देखा और वे सब मोहन होने के लिय विवश हो गई थी। उनके घटा को फोडकर, अश्व को जल पिलवा कर, वन म जाकर, शत्रु को जीतकर और बली ने उन दोना का बाँधकर चण्डिका के समीप म जाकर उसने उसके वध करने का मन म

विचार किया था ॥१८॥१९॥ उसने करुणा से भरे हुए वचनो को सुनकर उसे त्यागकर वह अपने नगर को चला गया था। राजा के पास पहुचकर उसने समस्त कारण का वर्णन कर दिया था ॥२०॥ राजा परिमल ने यह सब श्रवण करके उसने ब्राह्मणो को बहुत धन दान मे दिया था। उसने कृष्णांश का शिर सूघकर राजा बहुत ही कृतकृत्य हुआ था ॥२१॥

संप्राप्तैकादशाब्दे तु कृष्णांशे युद्धदुर्मदे।
महीपतिर्निरुत्साहः प्रययौ देहली प्रति ॥२२॥
बलिं यथोचितं दत्त्वा भगिन्यै भयकातरः।
रुरोद बहुधा दुःखं देशराजात्मजप्रजम् ॥२३॥
अगमा भगिनी तस्य दृष्ट्वा भ्रातरमातुरम्।
स्वपतिं वर्णयामास श्रुत्वा राजाब्रवीदिदम् ॥२४॥
अद्याहं स्वबले. सार्द्धं गत्वा तत्र महावतीम्।
हनिष्यामि महादुष्टं देशराजसुतं रिपुम् ॥२५॥
इत्युक्त्वा धुन्धुकारं च समाहूय महाबलम्।
सैन्यमाज्ञापयामास सप्तलक्षं तनुत्यजम् ॥२६॥
केचिच्छूरा हयारूढा उष्ट्रारूढा महाबला।
गजारूढा रथारूढा सययुश्च पदातय. ॥२७॥
देवसिंहस्तु कालज्ञ. श्रुत्वा चागमनं रिपो.।
नृपपार्श्वं समागम्य सर्वं राज्ञे न्यवेदयत् ॥२८॥

जब यह कृष्णांश ग्यारह वर्ष की आयु मे प्राप्त हुआ जो कि युद्ध मे दुर्मद था, महीपति उत्साह हीन होकर देहली की ओर चला गया था ॥२२॥ भगिनी को यथोचित बली देकर भय से कातर होता हुआ देशराज के पुत्र से उत्पन्न दुःख के विषय मे अत्यधिक रुदन किया था। उसकी अगमा भगिनी थी। उसने अपने भाई को आतुर देखकर अपने पति से वर्णन किया था। यह सुनकर राजा ने कहा—आज ही मैं अपने बल के साथ वहाँ महावती मे जाकर उस देशराज के पुत्र शत्रु को मार डालूंगा जो कि महान् दुष्ट है ॥२३॥२४॥ ॥२५॥ इतना कहकर उसने धुन्धकार को बुलाकर महान् बल वाली सेना को

आज्ञा दे दी थी जो अपने शरीर की परवाह न कर मरने मारने वाली सख्या मे सात लाख थी ॥२६॥ उस सेना मे कुछ शूर तो हयो पर आरूढ होने वाले थे, कुछ महान् बल वाले ऊँटो पर समारोहण किये हुए थे । हाथियो पर आरूढ और रथों पर चढ़े हुए तथा पैदल सैनिक सब के सब चल दिये थे ॥२७॥ देवसिंह तो वरदानी काल का ज्ञाता था उसने शत्रु का आगमन श्रवण करके राजा के समीप म पहुचकर सभी वृत्तान्त राजा को वर्णित कर दिया था ॥२८॥

श्रुत्वा परिमलो राजा विह्वलोऽभूद्भयातुर ।
वलखानिस्तमुत्थाय हर्षयुक्त इवाह च ॥२९॥
अद्याह च महीराज घुंधुकार ससैन्यकम् ।
जित्वा दड्य च भवत करिष्यामि तवाज्ञया ॥३०॥
इत्युक्त्वा त नमस्कृत्य सेनापतिरभून्मुने ।
तदा तु विर्भया वीरा दृष्ट्वा राजानमातुरम् ॥३१॥
चतुर्लक्षवलै सार्द्धं त युद्धाय समाययु ।
शिशपाख्य वन घोर छेदयित्वा रिपोस्तदा ॥३२॥
ऊषुस्तत्र रणे मत्ता शवशत्रुभयङ्करा ।
एतस्मिन्नन्तरे तत्र धुन्धुकारादयो बला ॥३३॥
श्रुत्वा नानाहत शब्द युद्धाय समुपाययु ।
पूर्वाह्णे तु भृगुश्रेष्ठ सन्नद्धास्ते शतघ्निपा ॥३४॥
शतघ्नीभिस्त्रिसाहस्रै पञ्चसाहस्रका ययु ।
द्विसहस्रशतघ्नीभि महिला अन्द्रवशिन ॥३५॥

परिमल राजा ने जब यह सुना तो वह भय से विह्वल हो गया था । बलखानि [illegible] उसे उठाकर हर्ष से युक्त होकर कहा—आज मैं महीराज को घुंधकार और उसकी समस्त सेना के साथ जीतकर आपकी आज्ञा से उसे दण्ड [illegible] योग्य कर दूंगा ॥२९॥३०॥ यह कहकर उसको नमस्कार करते हे मुने ! वह सेनापति हो गया था । तब तो वीर राजा को आतुर देखकर [illegible] होगये थे । [illegible] सब चार लाख सेना के साथ युद्ध के लिये चले आये थे । उस समय मे [illegible] नामक घोर रिपु के वन का छेदन करके वहीं रण मे मत्त होकर समस्त

शत्रुओ के लिये बहुत भयङ्कर वहाँ पर रह गये थे । इसी अन्तर मे धुन्धकार आदि का बल बहुत अधिक कोलाहल करता हुआ वहाँ युद्ध करने के लिये आ गया था। हे भृगुश्रेष्ठ ! पूर्वाह्न मे तो ये शतघ्निय सन्नद्ध हुए थे ॥३१॥३२॥ ॥३३॥३४॥ तीन सहस्र शतघ्नियो से पाँच सहस्र शतघ्नी वाल युद्ध के लिये चले गये थे । दो सहस्र शतघ्नियो के सहित चन्द्रवंशी लोग थे ॥३५॥

सैन्य षष्टिसहस्र च स्वर्गलोकमुपाययौ ।
तदर्द्धं च तथा सैन्य महीराजस्य संक्षिप्तम् ॥३६॥
दुद्रुवुर्भीरुका शूरा बलखानेर्दिशो दश ।
रथा रथै रण हन्युर्गजाश्चैव गजैस्तथा ॥३७॥
हया हयैस्तथा उष्ट्रा उष्ट्रैश्च समाहनन् ।
एव सुतुमुले जाते दारुणे रोमहर्षणे ॥३८॥
हाहाभूतान्स्वकीयांश्च सैन्यान्दृष्ट्वा महाबलान् ।
अपराह्णे भृगुश्रेष्ठ पञ्च शूरा समाययु ॥३९॥
ब्रह्मानद शरै शत्रूननयद्यमसादनम् ।
देवसिंहस्तथा भल्लैराह्लादस्तत्र तोमरै ॥४०॥
बलखानि स्वखगेन कृष्णाशस्तु तथैव च ।
द्विलक्षान्क्षत्रियाञ्जघ्नु सर्वसैन्यै समतत ॥४१॥
दृष्ट्वा पराजित सैन्य धुन्धुकारो महाबल ।
आह्लाद च स्वभल्लेन गजारूढ समावधीत् ॥४२॥

इस प्रकार से साठ हजार सैन्य स्वर्गलोक को पहुँच चुकी थी। और उसकी आधी सेना महीराज की सक्षिप्त होगई थी ॥३६॥ बलखानि के डरे हुए शूर दशो दिशाओ मे भागने लगे थे । रथो के द्वारा रथ, गजो के द्वारा गज, अश्वो के द्वारा अश्व और ऊटो के द्वारा ऊट मारे गये थे। इस तरह वहाँ उस समय मे परम दारुण एव तुमुल तथा रोमाञ्चकारी युद्ध हुआ था ॥३७॥३८॥ महान् बलवान् हाहाभूत अपने सैनिको को देखकर हे भृगुश्रेष्ठ ! अपराह्न काल मे

पांच शूर आये थे ।।३६।। ब्रह्मानन्द ने शरों के द्वारा शत्रुओं को यमराज के घर में पहुंचा दिया था। उसी प्रकार से देवसिंह ने भल्लों से और आह्लाद ने वहीं तोमरों के द्वारा शत्रु को यमपुर निवासी बनाया था ।।४०।। बलखानि ने अपने खड्ग के द्वारा तथा कृष्णांश ने भी खड्ग से चारों ओर सम्पन्न सैन्यों से दो लाख क्षत्रियों का वध किया था ।।४१।। महान् बल वाले धुन्धकार ने सेना को पराजित होती हुई देखकर गजारूढ होकर अपने भाल से आह्लाद का वध किया था ।।४२।।

आह्लादे मूर्च्छिते तत्र देवसिंहो महाबल ।
भल्लेन भ्रातरं तस्य दर्शयामास वेगत ।।४३।।
स तीक्ष्णव्रणमासाद्य गजस्थ ममुमोह वै ।
आगता शतराजानो नानादेश्या महाबला ।।४४।।
गजाश्वरथाणि तेषां तु छित्वा खड्गेन वत्सज ।
स्वखड्गेन शिरांस्येषां पातयामास भूतले ।।४५।।
हते शत्रुसमूहे तु तच्छेषास्तु प्रदुद्रुवु ।
महीराजस्तु बलवान्दृष्ट्वा भग्न स्वसैन्यकम् ।।४६।।
आजगाम गजारूढ शिवदत्तवरो बली ।
रौद्रेणास्त्रेण हृदये चाबध्नीद्वत्सज रिपुम् ।।४७।।
आह्लाद च तथा वीर देव परिमलात्मजम् ।
मूर्च्छयित्वा महावीरान्द्रुतसैन्यमुपागमत् ।।४८।।
पूजयित्वा शतघ्नीश्च महाधममकारयत् ।
रागगास्त्वरितो गत्वा रात्र सर्वमवर्णयत् ।।४६।।

खडे हुए थे। बनशाली महीराज ने अपनी सेना को भङ्ग होती हुई देखा था ॥४६॥ तब शिव के द्वारा दत्त वर वह बलवान् हाथी पर आरूढ होकर वहाँ आ गया था और उसने रौद्र अस्त्र के द्वारा वत्सज शत्रु के हृदय मे प्रहार करके उसे मार डाला था ॥४६॥४७॥ तथा आह्लाद और वीर परिमलात्मज देव को मूच्छित करके एव महावीरो को मूच्छित करके वह शत्रु की सेना म आ गया था ॥४८॥ शतघ्नियो की पूजा करके उसने महान् वध कराया था। रोपण ने बहुत ही शीघ्र जाकर यह समस्त वृत्तान्त राजा को वर्णन करके सुना दिया था ॥४६॥

एतस्मिनन्तरे वीर सुखखानिर्महाबल ।
कपोत हयमारुह्य नभोमार्गेण चागमत् ॥५०॥
मूर्च्छयित्वा महीराज स्वबधू श्च सवाहनान् ।
कृत्वा नृपातमागम्य बधनाय समुद्यत ॥५१॥
तदोत्थाय महीराजो महादेवेन बोधित ।
पुनस्तान्स्वशरै रौद्रै र्मूर्च्छयामास कोपवान् ॥५२॥
सुखखान्यादिकाञ्छूरान्सबध्य निगडैर्दृढै ।
नृप परिमल प्राप्य पुन युद्धमचीकरत् ॥५३॥
हाहाभूत स्वसैन्य च दृष्ट्वा स उदयो हरि ।
नभोमार्गे हय कृत्वा ता शतघ्नीरनाशयत् ॥५४॥
महीराजगज प्राप्य बद्धा त निगडैर्बली ।
आह्लादपार्श्वमागम्य भ्रात्रे भूप समर्पयत् ॥५५॥
तदा तु पृथिवीराजो लज्जितस्तेन निर्जित ।
पञ्चकोटिधन दत्त्वा स्वगेह पुनराययौ ॥५६॥

इस बीच म महान् बलवान् वीर सुखखानि अपने कपोत नामक अश्व पर समारोहण कर आकाश के मार्ग से वहाँ आगया था ॥५०॥ उसने महीराज को मूर्च्छित करके और अपने बन्धुओ को वाहन से युक्त करके वह राजा के पास बन्धन के लिये समुद्यत होगया था ॥५१॥ उस समय मे महादेव ने महीराज को उठाकर बोधित किया था और उसने फिर अपने रौद्र शरो से क्रोधित होकर

उन्हे मूच्छित किया था ॥५२॥ सुखखानि आदि शूरो को दृढ निगडो से बाँध कर राजा परिमल के पास जाकर उसने पुन युद्ध किया था ॥५३॥ उदय हरि ने हाहाकार से युक्त अपनी सेना को देखकर अपने अश्व को आकाश के मार्ग मे करके उन शतघ्नीयो का नाश कर दिया था ॥५४॥ महीराज के पास जो कि एक गज पर सवार था, बली उसने उसको निगडो से बाँध लिया था और आह्लाद के समीप मे आकर राजा को भाई के लिये सौप दिया था ॥५५॥ तब तो पृथ्वीराज उसके द्वारा निर्जित होता हुआ बहुत लज्जित हुआ था । उसने पाँच करोड का धन देकर अपना छुटकारा कराया और फिर अपने घर मे आगया था ॥५६॥

देवसिंहाज्ञया शूरो वलखानिर्हि वत्सज. ।
तद्द्रव्यैर्नगरी रम्या कारयामास सुन्दरीम् ॥५७॥
शिरीषाख्य पुर नाम तेन वीरेण वै कृतम् ।
सर्ववर्णसमायुक्त द्विक्रोशायामससितम् ॥५८॥
तत्रैव न्यवसद्वीरो वत्सजः स्वकुलै. सह ।
त्रिंशत्क्रोशे कृत राष्ट्र तत्रैव वलखानिना ॥५९॥
श्रुत्वा परिमलो राजा तत्रागत्य मुदान्वित. ।
आघ्राय वत्सज शूर देवराजसुत तथा ॥६०॥
ब्रह्मानदेन सहितः स्वगेह पुनराययौ ॥६१॥

देवसिंह की आज्ञा से वत्सज शूर बलखानि ने उस धन से अपनी नगरी को परम रम्य एव सुन्दरी करवाली थी ॥५७॥ उस वीर ने उस पुर का नाम शिरीष रक्खा था । वह पुर ऐसा था जिसमे समस्त वर्णों के लोग निवास करते थे और दो कोश के आयाम वाला था ॥५८॥ वहीं पर ही वीर वत्सज अपने कुलो के साथ निवास करता था । वहीं पर ही बलखानि ने तीस कोश में राष्ट्र बनाया था ॥५९॥ राजा परिमल ने इसे सुनकर बहुत ही हर्ष हुआ और मुदान्वित होकर वहाँ आया था । शूर वत्सज तथा देवराज के पुत्र को उसने मस्तक पर आघ्राण किया था ॥६०॥ फिर ब्रह्मानन्द के सहित वह अपने गृह को चला गया था ॥६१॥

।। कृष्णांश के पास राजाओं का आगमन ।।

द्वादशाब्दे हि कृष्णांशे यथाजातं तथा शृणु ।
इषशुक्लदशम्यां च राज्ञां जातः समागमः ।।१।।
कान्यकुब्जे महारम्ये नानाभूपाः समाययुः ।
श्रुत्वा पराजयं राज्ञो महीराजस्य लक्षणः ।।२।।
कृष्णांशदर्शने वाञ्छा तस्य चासीत्तदा मुने ।
पितृव्यं भूपतिं प्राह द्रष्टुं यास्यामि तं शुभम् ।।३।।
जितो येन महीराजः सर्वलोकप्रपूजितः ।
इति श्रुत्वा वचस्तस्य जयचंद्रो महीपतिः ।
भ्रातृजं प्रणतं प्राह शृणु शुक्लयशस्कर ।।४।।
राजराजपदं ते हि कथं संहर्तुमिच्छसि ।
इत्युक्त्वा जयचंद्रस्तु तदाज्ञां नैव दत्तवान् ।।५।।
राजानस्ते च सहिताः स्वसैन्यैः परिवारिताः ।
कृष्णांशं द्रष्टुमिच्छन्तः संययुश्च महीपतिम् ।।६।।
शिरीषाख्यपुरस्थं च ज्ञात्वा कृष्णांशमुत्तमम् ।
महीपतिं पुरस्कृत्य समाजग्मुर्नृपास्तदा ।।७।।

इस अध्याय मे कृष्णांश के समीप मे राजाओं के मण्डल के आगमन का वृत्तान्त वर्णित किया गया है। श्रीसूतजी ने कहा—बारह वर्ष की आयु हो जाने पर कृष्णांश के विषय मे जो कुछ हुआ था उस विषय मे अब श्रवण करो। इस मास की अर्थात् आश्विन मास की शुक्लपक्ष की दशमी मे राजाओं का एक समागम हुआ था ।।१।। महान् रमणीक कान्य कुब्ज देश मे अनेक राजा लोग आये थे। लक्षण ने महीराज राजा का पराजय सुना था और तभी से उसकी कृष्णांश के दर्शन करने की इच्छा होगई थी। हे मुने! उसने अपने पितृव्य (चाचा) भूपति से कहा कि मैं उस शुभ को देखने के लिये जाऊँगा ।।२।।३।। जिसने समस्त लोकों के द्वारा प्रपूजित महीराज को जीत लिया है उसे अवश्य ही देखना चाहता हूँ। यह सुनकर महीपति जयचन्द्र उस प्रणत

भाई के पुत्र से बोला—हे सुव्रत यशस्कर ! सुनो, तू अपने राजराज के पद को कैसे संहृत करना चाहता है। यह कहकर जयचन्द्र ने उस समय उसे जाने की आज्ञा नहीं दी थी ॥४॥५॥ वे राजा लोग अपनी-अपनी सेनाओं के सहित परिवारित होकर कृष्णांश के दर्शन की इच्छा करते हुए महीपति के पास गये थे ॥६॥ शिरीष नाम वाले पुर में स्थित उत्तम कृष्णांश को जानकर उस समय महीपति को आगे करके नृप आये थे ॥७॥

ददृशुस्त महात्मानं पुंडरीकनिभाननम् ।
प्रसन्नवदनाः सर्वे प्रशशंसु समंततः ॥८॥
तदा महीपतिः क्रुद्धो वचनं प्राह भूपतीन् ।
यस्येयं च कृता श्लाघा युष्माभिर्दूरवासिभिः ।
पितरौ तस्य वलिनौ माहिष्मत्या मृतिं गतौ ॥९॥
जम्बुको नाम भूपालो नार्मदेयैः समन्वितः ।
बद्धा तौ प्रययौ गेहं लुंठयित्वा धनं बहु ।
शिलापत्रे समारोप्य तयोर्गात्रमचूर्णयत् ।
शिरसी च तयोश्छित्त्वा वटवृक्षे समारुहत् ॥१०॥
अद्यापि तौ स्थितौ वीरौ हा पुत्रेति प्रभाषिणौ ।
प्रेतदेहे च पितरौ यस्य प्राप्तौ महाबलौ ।
तस्योदयो वृथा ज्ञेयो वृथाकीर्ति प्रियंकरी ॥११॥
इति श्रुत्वा स कृष्णांशो भूपतान्प्राह नम्रधीः ।
गतौ मत्पितरौ सार्द्धं गुर्जरं यत्र वै रणं ॥१२॥
म्लेच्छैर्नरानर्न सार्द्धं तन्नृपेण रणोऽभवत् ।
देशराजो वत्सराजो युद्धं कृत्वा भयङ्करम् ।
म्लेच्छैस्तैश्च हतौ तत्र श्रुतेयं विश्रुता यथा ॥१३॥
मातुलेनाद्य कथितं नवीनं मरणं तयोः ।
सेत्स्यत्य वचनं तस्य पौरुषं मम पश्यत ॥१४॥

वहाँ पर पुण्डरीक के समान मुख वाले उस महात्मा को देखा था और

सब बडे ही प्रसन्न वदन वाले हुए तथा सब ओर से उसकी प्रशसा करने लगे थे ॥८॥ तब महीपति ने अत्य त क्रुद्ध होकर राजाओ से कहा—दूर के निवास करने वाले आप लोगों ने जिसकी यह श्लाघा की है उसके बली माता पिता माहिष्मती मे मृत्यु को प्राप्त हो गये थे ॥९॥ जम्बुक नाम वाला राजा नाम दीपो से युक्त था। उन दोनो को बाँधकर और बहुत सा धन लूटकर अपने घर चला गया था। शिला पत्र पर समारोपित करके उन दोनो के शरीर का चूर्ण कर दिया था। उन दोनो के मस्तक काटकर उसने वट के वृक्ष पर टाग दिये थे ॥१०॥ आज भी वे दोनो वीर वहाँ पर स्थित हैं और हा पुत्र—ऐसा कहा करते हैं। जिसके पिता प्रेत देह मे महान् बली होकर भी प्राप्त होगये हैं उसका जो कुछ भी उदय है वह व्यर्थ ही जानना चाहिए। उसकी प्रियङ्करी कीर्त्ति भी वृथा ही है ॥११॥ यह सुनकर वह कृष्णांश नम्र होकर राजाओ से बोला—मेरे पितर साथ मे गुर्जर देश मे गये थे जहाँ कि रण हुआ था। मनुष्यो के खाने वाले म्लेच्छो के साथ उस राजा से युद्ध हुआ था देशराज वत्सराज भयङ्कर युद्ध करके उन म्लेच्छो के द्वारा हत हुए थे। वहाँ पर यह कथा परम प्रसिद्ध सुनी गई है ॥१२॥१३॥ आज मातुल ने उन दोनो का मरण एक नया ही कहा है। यदि उसका वचन सत्य ही है तो अब मेरा पौरुष देख लो ॥१४॥

इत्युक्त्वा तान्स कृष्णांशो मातरं प्राह सत्वरम्।
हेतुं च वर्णयामास भाषितं च महीपतेः ॥१५॥
श्रुत्वा वज्रसमं वाक्यं रुरोद जननी तदा।
नोत्तरं प्रददौ माता पतिदुःखेन दुःखिता ॥१६॥
ज्ञात्वा पितृवधं श्रुत्वा जम्बुकं शिवकिंकरम्।
मनसा स च कृष्णांशस्तुष्टाव परमेश्वरीम् ॥१७॥
जय जय जय जगदम्ब भवानि ह्यखिललोक
सुरपितृमुनिस्थानि।
त्वया ततं सचराचरमेव विश्वं पातमिदं हृतमेव ॥१८॥

इति ध्यात्वा स कृष्णाश सुष्वाप निजसद्मनि ।
तदा भगवती तुष्टा तालन वलवत्तरम् ।
मोहयित्वाशु तत्पार्श्वे प्रेषयामास सर्वगा ॥१६॥
चतुर्लक्षवलं. सार्द्ध तालन. शीघ्रमागतः ।
स्वसैन्य चोदयामास चैकलक्ष महावलम् ॥२०॥
वलखानिस्तदा प्राप्तश्चैकलक्षवलान्वित. ।
अनुज तत्र सस्थाप्य शिरीषाख्ये महावलः ॥२१॥

उनसे यह कहकर कृष्णाश ने शीघ्र ही माता से उसका हेतु और महोत्सव का भावित कहा था ॥१५॥ उस समय उसकी माता वज्र के समान इस वाक्य को सुनकर रुदन करने लगी थी । माता ने कोई इसका उत्तर पति के दुःख से अत्यन्त पीडित होकर नहीं दिया था ॥१६॥ अपने पिता के वध को जानकर तथा जम्बुक को शिव का किङ्कर श्रवण करके वह कृष्णाश मन से परमेश्वरी की स्तुति करने लगा था ॥१७॥ हे जगत् की अम्बा ! हे भवानि ! हे समस्त लोक-सुर-पितृ और मुनियो की खानि ! आपकी जय हो, जय हो। आपने ही यह सचराचर विश्व को रचा है और इसकी पूर्ण रक्षा भी की है तथा सहार भी किया है ॥१८॥ यह ध्यान करके वह कृष्णाश अपने घर मे सो गया था । तब भगवती प्रसन्न होकर अधिक बलवान् तालन को मोहन करके सर्वगा ने शीघ्र ही उसके पास मे भेज दिया था ॥१९॥ चार लाख सेना के साथ तालन शीघ्र ही वहाँ आगया था। और महान् बलवान् एक लक्ष अपनी सेना को प्रेरित किया था ॥२०॥ उस समय बलखानि भी एक लाख सेना से समन्वित होकर प्राप्त होगया था । महाबल ने अपने छोटे भाई को शिरीषाख्यपुर म सस्थापित किया था ॥२१॥

सज्जीभूतान्समालोक्य तानुद्याने ससैन्यकान् ।
भीत. परिमलो राजा कृष्णाश प्रति चाययौ ॥२२॥
विह्वल नृपमालोक्य कृष्णाशोऽऽश्वासयन्मुदा ॥२३॥
लक्षसैन्य तदीय च गृहीत्वा चाधिपोऽभवत् ।
शतघ्न्य. पञ्चसाहस्रा नानावर्णा. सुवाहना. ॥२४॥

पताका पञ्चसाहस्रा साहस्र काष्ठकारिण ।
गजा दशसहस्राश्च रथा पञ्चसहस्रका ॥२५॥
त्रिलक्षाश्च हया सव उष्ट्रा दशसहस्रका ।
शेषा पदातयो ज्ञेयास्तस्मिन्सैन्ये भयानके ॥२६॥
तालनश्च समायात सर्वसेनाधिपोऽभवत् ।
देवसिंहो रथाना च सर्वपामीश्वरोऽभवत् ॥२७॥
बलखानिर्हयाना च सर्वपामधिपोऽभवत् ।
आह्लादश्च गजाना च सर्वपामधिपोऽभवत् ।
पत्तीना चैव सर्वपा कृष्णांशश्चाधिपोऽभवत् ॥२८॥

मड्डुधारी तदा देवो वीणाधारी च तालन ।
वत्सज कास्यधारी च वलखानिमहाबल ॥३२॥
मातुरग्रे स्थिता स्ते वै ननृतु प्रेमविह्वला ।
मोहिता देवकी चासीन्न ज्ञात तत्र कारणम् ॥३३॥
मोहिता मातर दृष्ट्वा पर हर्षमुपाययु ।
तदा ता कथयामासुर्वय ते तनया हि भो ॥३४॥
नत्वा ता प्रययु सर्वे पुरी माहिष्मती शुभाम् ।
नगर मोहयामासुर्वाद्यगानविशारदा ॥३५॥

उन्होंने मलना को प्रणाम करके और राजा ने अनेक प्रकार के दान देकर वे सब सेना से समन्वित् दक्षिण दिशा में आ गये थे ॥२९॥ उन युद्ध करने की इच्छा रखने वालों का मार्ग में एक पल ही प्रतीत हुआ था। वहाँ पर उस घोर वन को काटकर जो कि अनेक प्रकार की काँटेदार झाड़ियों से युक्त था उसमें उन्होंने अपनी सेना को निवास दिलाया था और वे महान् बल वाले निर्भय थे ॥३०॥ देवसिंह के मत से ही वे उस समय सब योगी होगये थे। कृष्णांश तो नर्तक होगया था और आल्हाद ने डमरू से प्यार किया था ॥३१॥ देव मड्डूधारी तालन वीणा लेने वाला, वत्सज कास्यधारी और बलखानि भी कास्य धारण करने वाला होगया था जो कि महान बलवान् था ॥३२॥ वे सब माता के आगे स्थित होगये थे और प्रेम मे विह्वल होकर नाचने लगे थे। देवकी मोहित होगई किन्तु इसका कारण नहीं जाना था ॥३३॥ माता को मोहित देखकर सब को परम हर्ष हुआ था। उस समय में उन्होंने कहा कि हम आपके पुत्र हैं ॥३४॥ उनको सब नमस्कार करके शुभ माहिष्मती पुरी को प्रस्थान कर गये थे। वाद्य और गान के पण्डितों ने उस सम्पूर्ण नगर को मोहित कर लिया था ॥३५॥

दूत्या सार्द्धं रिपोर्गेह ययुस्ते नायतत्परा ।
नृत्यगानमुवाद्यैश्च राजस्ते मोहने रता ॥३६॥
विसना महिषी कृत्वा कृष्णांश सर्वमोहन ।
आनयास्तत्र यत्रास्तौ तत्सुता विजयैषिणी ॥३७॥

दृष्ट्वा सा सुंदरं रूपं श्यामांगं पुरुषोत्तमम् ।
मुमोह वशमापन्ना मैथुनार्थं समुद्यता ॥३८॥

दृष्ट्वा तथा गतां नारीं कृष्णांशःश्लक्ष्णया गिरा ।
शत्रोर्भेदं च पप्रच्छ कामिनीं मदविह्वलाम् ॥३९॥

साह भो देवकीपुत्र यदि पाणिं ग्रहीष्यसि ।
तर्हि ते कथयिष्यामि पितृर्भेदं हि दारुणम् ॥४०॥

तथेत्युक्त्वा स बलवांस्तस्याःपाणिं गृहीतवान् ।
ज्ञात्वा भेदं रिपोः सर्वं तामास्वास्य ययौ मुदा ॥४१॥

एतस्मिन्नन्तरे राज्ञी बाधिता प्राह योगिनम् ।
देशराजप्रियाहारं नवलक्षस्य मूल्यकम् ।
तुभ्यं दास्यामि संतुष्टा नृत्यगानविमोहिता ॥४२॥

इति श्रुत्वा वत्ससुतस्तां प्रशस्य गृहीतवान् ।
प्रययौ वधुभि सार्द्धं जम्बुको यत्र तिष्ठति ॥४३॥
ननर्त तत्र कृष्णांशो बलखानिरगायत ।
आह्लादस्तालनो देवो दध्मुर्वाद्यगतोर्मुदा ॥४४॥
मोहितोऽभून्नृपस्तत्र कालिय स्वजनै सह ।
काम वरय कृष्णांग यत्र ते हृदये स्थितम् ॥४५॥
इति श्रुत्वा वच शत्रोर्बलखानिर्महाबल ।
तमाह भो महीपाल लक्षावर्तिर्वरांगना ।
स्वविद्या दर्शयेन्मह्य तदा तृप्ति व्रजाम्यहम् ॥४६॥
इति श्रुत्वा तथा मत्वा लक्षावर्ति नृपोत्तम ।
सभाया नर्तयामास देशराजप्रिया तथा ॥४७॥
सा वेश्या सुतमाह्लाद ज्ञात्वा योगित्वमागतम् ।
रुरोद तत्र दु खार्ता नेत्रादश्रूणि मुञ्चती ॥४८॥
रुदिता ता समालोक्य रुदन्नाह्लाद एव स ।
स्वभुजौ ताडयामास तत्प्रियार्थे महाबल ॥४९॥
कृष्णांशस्तत्र त हार तस्या कठ प्रदत्तवान् ।
उवाच क्रोधताम्राक्षस्तामाश्वास्य पुन पुन ॥५०॥

यह सुनकर वत्स सुत ने उसकी बडी प्रशसा करके उसको ग्रहण कर लिया था और वधुओ के साथ वहाँ गया जहाँ पर जम्बुक रहता था ॥४३॥ कृष्णांश वहाँ पर नाचा और बलखानि ने गान किया था। आह्लाद-तालन देव ने बडे आनन्द से वाद्यो की गति से बजाया था ॥४४॥ वहाँ पर कालिय नृप मोहित होगया था जोकि अपने जनो के साथ था। हे कृष्णांग ! जो भी इच्छा हो वरदान माँग ले और अपने दिल के अनुसार माँगले ॥४५॥ महान् बलवान् बलखानि शत्रु के यह वचन सुनकर उससे बोला—हे महीपाल ! लक्षावर्ति वराङ्गना मुझको अपनी विद्या को दिखावे तब ही मैं पूर्ण तृप्ति को प्राप्त होऊगा ॥४६॥ यह सुनकर और इस बात को मानकर नृप लक्षावर्ति को सभा में नचाया था जो कि देशराज की प्रिया थी। उस वेश्या ने योगित्व को

प्राप्त हुए आह्लाद सुत को जान लिया था और वह नेत्रों से आँसुओं को टपकाती हुई दुःख से आर्त्त होकर रोने लगी थी ॥४७॥४८॥ रोती हुई उसको देखकर वह आह्लाद भी रोने लगा था। महाबल ने उस प्रिया के लिये अपनी भुजाओं का ताडन किया था। कृष्णांश ने वहाँ पर उस हार को उसके कण्ठ में डाल दिया था। क्रोध से लाल आँखें करके उसका बार-बार आश्वासन करके बोला ॥४९॥५०॥

अहं चोदयसिंहोऽद्य पितुर्वैरार्थमागतः ।
हनिष्यामि रिपुं भूप सात्मजं सबलं तथा ॥५१॥
इति श्रुत्वा वचस्तस्य कालियो बलवत्तरः ।
पितुराज्ञां पुरस्कृत्य शतव्यूहसमन्वितः ॥५२॥
तेषां च वधनायैव कपाटं समरुद्ध सः ।
तान्दृष्ट्वा समनुज्ञाय पाशहस्तान्सशस्त्रकान् ॥५३॥
स्वस्वं खड्गं समाकृष्य क्षत्रियास्ते समाघ्नत ।
शतशूरे हते तैश्च कालियो भयकातरः ॥५४॥
त्यक्त्वा तात प्रदुद्राव ते तु गेहाद्बहिर्ययुः ।
स्वसैन्यं शीघ्रमासाद्य युद्धाय समुपस्थितः ।
शिबिराणि कृतान्येव नर्मदाकूलमास्थितैः ॥५५॥
दृष्ट्वा तु नर्मदासेतुं नरमात्रं सुपुष्टिदम् ।
स्वसैन्यं तारयामास चतुरङ्गसमन्वितम् ॥५६॥

थे । शीघ्र ही अपनी सेना को प्राप्त कर युद्ध के लिये समुपस्थित होगये । नर्मदाकूल में आस्थितों के द्वारा शिविर बनाये हुए थे ॥५५॥ नलमात्र सुपुष्टि देने वाला नर्मदा का सेतु बनाकर अपनी सेना को जो कि चतुरङ्ग समन्वित थी उतार दिया था ॥५६॥

रुरोध नगरी सर्वां बलखानिर्बलैर्युतः ।
शतघ्नीरग्रतः कृत्वा महाशब्दकरीस्तदा ।
माहिष्मत्याश्च हर्म्याणि पातयामास भूतले ॥५७॥
नराश्च स्वकुले. सार्द्धं मुख्यद्रव्यसमन्विताः ।
विन्ध्याद्रेश्च गुहा प्राप्य तत्रोषुर्भयकातरा· ॥५८॥
कालियस्तु गजानीके पञ्चशब्दगजे स्थितः ।
हस्तिपा दशसाहस्रा युद्धाय समुपाययु ॥५६॥
तस्यानुजः सूर्यवर्मा त्रिलक्षैस्तुरगैर्युतः ।
तु दिलश्च रथैं सार्द्धं रथस्थश्च सहस्रकैः ॥६०॥
रङ्कणो वङ्कणश्चोभौ चतुर्लक्षपदातिभिः ।
जग्मतुस्तौ महाम्लेच्छौ म्लेच्छभूपसहस्रकैः ।
दाक्षिणात्यग्रामपास्ते तौ पुरस्कृत्य समयु ॥६१॥
उभे सेने समासाद्य युद्धाय समुपस्थिते ।
तयोश्च तुमुल युद्धमभवल्लोमहर्षणम् ॥६२॥
नियामे रुधिरैस्तेषा नदी प्रावर्तत द्रुतम् ।
दृष्ट्वास्नजा नदी घोरा मासकर्दमवाहिनीम् ।
बलखानिरमेयात्मा खड्गपाणिर्नरोयया ॥६३॥

सेना से युक्त बलखानि ने सम्पूर्ण नगरी को घेर लिया था उस समय महान् शब्द के करने वाली शतघ्नी [तोपें] आगे करके माहिष्मती के महलों को भूमि पर गिरा दिया ॥५७॥ और मनुष्य अपने कुलों के साथ मुख्य द्रव्य से युक्त होकर विन्ध्याचल की गुहा में जाकर भयभीत होकर निवास करने लगे थे ॥५८॥ कालिय गजों की सेना में पच शब्द गज पर स्थित होकर

और दश सहस्र हस्तिप युद्ध के लिये आये थे ॥५९॥ उसका छोटा भाई सूर्य वर्मा तीन लाख अश्वो से युक्त होकर आया था जो एक सहस्र रथस्थो के साथ तुन्दिल से युद्ध किया था। रक्रण और वक्रण ये दोनो महाम्लेच्छ चार लाख पदातियो के साथ थे एक सहस्र म्लेच्छ राजाओं के साथ गये थे। दाक्षिणात्य ग्रामप जो थे वे उन दोनो को आगे करके गये थे ॥६०॥६१॥ दोनो सेनाएँ वहाँ प्राप्त होकर युद्ध करने के लिये पूर्णतया तयार होगई थी। उन दोनो सेनाओ का एक बड़ा ही भीषण एव रोमाञ्चकारी तुमुल शब्द हुआ था ॥६२॥ तीन प्रहर मे उनके रुधिर से शीघ्र ही एक नदी बनकर बहने लगी थी। उस खून से समुत्पन्न बहुत ही घोर नाम के कीच के वाहिनी नदी को देखकर अमेयात्मा बलखानि हाथ मे खड्ग लेकर वहाँ गया था ॥६३॥

भल्लहस्तस्तदा देवो मनोरथहये स्थित ।
बिंदुलस्थश्च कृष्णांश. खड्गेनैव रिपूहनम् ॥६४॥
आह्लादश्च गदाहस्त पोथयामास वाहिनीम् ।
रूपणो नाम शूद्रश्च शक्तिहस्तोऽन्यहन्रिपून् ।
तालनो हस्तित्रिंशो माहिष्मत्या हनन्ययौ ॥६५॥
एव महाभये जाते रणे तस्मिन्महाबले ।
दुद्रुवु सर्वतो वीरा पाहिपाहीत्यथाब्रुवन् ॥६६॥
प्रभग्न स्वबल दृष्ट्वा कालियो बलखानिकम् ।
गजस्थस्ताडयामास स्वबाणैस्त महाबल ॥६७॥
हरिणी वडवा तस्य ज्ञात्वा स्वामिनमातुरम् ।
गजोपरि समास्थाय स्वपादैस्तमपातयत् ॥६८॥
पतिते कालिये वीरे पञ्चशब्दो महागज ।
शृङ्खलैस्ताडयामास शूरास्तान्मदमत्तवान् ॥६९॥
मूर्च्छिते पञ्चशूरे तु रूपणो भयकातर ।
देवकी वर्णयामास यथाजात गजेन वै ॥७०॥

हाथ मे भाला लेकर उस समय मे देव मनोरथ अश्व पर चढकर स्थित था कृष्णाश विन्दुल नामक अश्व पर सवार था जिसने खड्ग से ही रिपुओं का हनन किया था ।।६४।। आह्लाद ने हाथ में गदा लेकर सेना को पोषित किया था । रूपण नाम वाला शूद्र जो था उसने अपने हाथ मे शक्ति को ग्रहण करके शत्रुओं का हनन किया था । तालन हस्ति निविष्ट होकर माहिष्मती नगरी मे हनन करता हुआ गया था ।।६५।। इस प्रकार से वह महान् बल वाला बडा ही भयानक युद्ध होने पर सभी ओर से वीर लोग बचाओ-बचाओ की ध्वनि करते हुए भागने लगे थे ।।६६।। उस समय म कालिय ने अपनी सेना को भग होते हुए देखकर बलखानि पर हाथी पर स्थित होकर महान् बलवान् ने अपने बाणो के द्वारा ताडन किया था ।।६७। उसकी हरिणी नाम वाली बडवाने अपने स्वामी को भय से आतुर देखकर गज क ऊपर समास्थित होकर अपने पादा से उसको गिरा दिया था ।।६८।। कालिय वीर के गिर जाने पर पच-शब्द नामक महा गज ने शृङ्खलाओं से उन मध्यस्त शूरो की ताडना की थी ।।६६।। पञ्चशूर के मूच्छित होने पर रूपण भय से कातर हो गया था और गज से यथा जात को उसने देवकी को वर्णन किया था ।।७०।।

तदा तु दु खिता देवी दोलामारुह्य सत्वरा ।
त गज च समासाद्य वर्णयामास कारणम् ।।७१।।
गजराज नमस्तुभ्य शक्रदत्त महाबल ।
एते पुत्रास्तु ते वीरपालनीया यथा पितु ।।७२।।
इति श्रुत्वा दिव्यगजो देवमायाविशारद ।
देवकी शरण प्राप्य क्षमस्वागस्कृत मम ।।७३।।
इत्युक्ते गजराजे तु कृष्णाशो बलवत्तर ।
त्यक्त्वा मूर्च्छा ययौ यत्राह्लादश्च मूर्च्छित ।।७४।।
तमुत्थाप्य वरस्पर्शैर्बलखानिसमन्वित ।
पितुर्गज महामत्तमाह्लादाय प्रदत्तवान् ।
वरालमश्व दिव्याग रूपणाय तदा ददौ ।।७५।।

मूर्च्छितं कालिय शत्रुं वद्धा स निगडैर्दृढै ।
सेनान्त प्रेपयामास वलखानिर्महावल ॥७६॥
सूर्यवर्मा तदा ज्ञात्वा वद्धं वधु च कालियम् ।
प्रययौ शत्रुसेनान्त क्रोधेन स्फुरियाधर ॥७७॥

उस समय देवकी बहुत दु खित होकर शीघ्र ही स्वय दोला पर आरूढ होकर उस कारण गज के समीप पहुच कर उसका स्तवन करने लगी थी।।७१।। हे गजराज ! हे शक्रदत्त महावल ! तुम्हारे लिये मेरा नमस्कार है । हे वीर ! ये तेरे पुत्र है इनका पालन तुमको पिता के समान ही अवश्य करना चाहिए । ।।७२।। यह सुनकर वह देवमाया का पण्डित दिव्य गज देवकी को अपने शरण मे प्राप्त करके कहने लगा मेरे अपराध को क्षमा कर दो ।।७३।। उस गजराज के ऐसा कहने पर अधिक बलवान् कृष्णाश मूर्छा का त्याग कर वहाँ पहुँचा था जहाँ पर आह्लाद मूर्च्छित हो गया था ।।७४।। बलखानि से समन्वित होकर करके स्पर्श से उसे उठाकर महामत्त पिता के गज को आह्लाद के लिये उसने दे दिया था । और करान्न अश्व को रूपण के लिए आरोहण करने को दिया था ।।७५।। तब उस मूर्च्छित कालिय को निगडो से खूब मजबूती के साथ बाँध कर उसने महा बलवान् बलखानि ने उसे सेना के समीप मे भेज दिया था । ।।७६।। तब सूर्यवर्मा ने अपने बन्धु कालिय को बँधा हुआ देखकर क्रोध से होटो को फडकाते हुए वह शत्रु सेनान्त के पास चला गया था ।।७७।।

तमायान्त समालोक्य ते वीरा युद्धदुर्मदा ।
रथस्थ मडलीकृत्य स्वस्वमस्त्र समाक्षिपन् ॥७८॥
कु ठितेऽस्त्रे तदा तेपा विस्मितास्तेऽभवन्सुखे ।
चिन्ता च महती प्राप्ता कथ वध्यो भवेदयम् ॥७९॥
तस्यास्त्रैस्ते महावीरा व्रणार्तिभयपीडिता ।
त्यक्त्वा युद्ध पुनर्गत्वा रण चक्रु पुन पुन ॥८०॥
एव कति दिनान्येव वभूव रण उत्तम ।
आह्लादो वत्सजो देवस्तालनो भयसयुत ।
कृष्णाश शरण जग्मुस्तेन वीरेण मोहिता ॥८१॥

कृष्णास्तु त तथा दृष्ट्वा देवी विश्वविमोहिनीम् ।
तुष्टाव मनसा वीरो रात्रिसूक्त पठन्हृदि ॥८२॥
तदा तुष्टा जगद्धात्री दुर्गा दुर्गार्तिनाशिनी ।
मोहयित्वा तु त वीर तत्रैवातरधीयत ॥८३॥
निद्रया मोहित दृष्ट्वा कृष्णाशस्तु महाबल ।
बबध निगडैस्त च देवकयन्ते समागमात् ॥८४॥

उन युद्ध दुर्मद वीरो ने उसे आते हुये देखकर रथ म स्थित को मण्डल से घेरकर उस पर अपने २ अस्त्रो की बौछार करने लगे थे ॥७८॥ उस समय उनके अस्त्रो के कुण्ठित हो जाने पर वे सब बहुत ही विस्मित हो गये थे और उन्हे बहुत बडी चिन्ता हो गई थी कि यह कैसे वध के योग्य होगा ॥७६॥ उनके अस्त्रो से न महावीर प्राणो की आर्त्ति से भय पीडित हो गये थे । युद्ध को छोडकर फिर बारबार युद्ध करने लगे थे ॥८०॥ इस तरह से कितने ही दिनो तक वह उत्तम रण होने लगा था आह्लाद वत्सज देव और तालन सभी भय से युक्त हो गय थे । तब वे सब कृष्णाश की शरण म गय क्योकि उस समय मे उस वीर के द्वारा मोहित हो गये थे ॥८१॥ कृष्णाश ने उसको उस प्रकार का देखकर मन से विश्व मोहिनी देवी का स्तवन किया था और वीर ने हृदय मे रात्रिसूक्त का पाठ किया था ॥८२॥ तब जगत् की धात्री दु खो के नाश करने वाली दुर्गा प्रसन्न हो गई और उस वीर को मोहित करके वहा पर ही अन्तर्धान हो गई थी ॥८३॥ जब वह निद्रा से मोहित हो गया तो महान् बलवान् कृष्णाश ने उसे देखकर निगडो से उसे दृढता से बाँधकर देवकी के समीप मे ले गया था ॥८४॥

तु दिलश्च तथा ज्ञात्वाभातृशोकपरिप्लुत ।
आजगाम हयारूढ खड्गहस्तो महाबल ।
रिपुसैन्यस्य मध्ये तु बहूशूरानताडयत् ॥८५॥
माहिष्मत्याश्च ते शूरा रकणेन समन्विता ।
तत्सैन्य भञ्जयामासुस्तालनेन प्रपालितम् ॥८६॥

प्रद्रुत स्व बल दृष्ट्वा तालन परिघायुध ।
शिरासिपोथयामास म्लेच्छाना च पृथक्पृथक् ॥८७॥
वकण च तथा हत्वा खड्गेनैव च रकणम् ।
तु दिल च तथा वद्ध्वा दिनान्ते शिविर ययौ ॥८८॥
कालिये च रिपौ वद्धे सुवद्धे सूर्यवर्मणि ।
तु दिले च तथा बद्धे रकणे वकणे हते ॥८९॥
सहस्र म्लेच्छराजानो हतशेषा बलान्विता ।
पक्षमात्रमहोरात्र युद्ध चक्रु समतत ॥९०॥
प्रत्यह तालनो वीर सेनापतिरमर्षण ।
षष्टि भूपाञ्जघानाशु शत्रुसैन्यभयकर ॥९१॥

तुन्दिल ने उस प्रकार का ज्ञान करके भाई के शोक से परिप्लुत होकर हाथ मे खड्ग धारण करते हुए घोडे पर सवार होकर वह महा बलवान् वहाँ आ गया था। शत्रु की सेना के मध्य मे उसने बहुत से रिपुशूर वीरो का हनन किया था ॥८५॥ माहिष्मती नगरी उन शूरो ने रङ्कण से युक्त होकर तालन के द्वारा रक्षित उस सेना का भञ्जन कर दिया था ॥८६॥ जब तालन देखा कि उसकी सेना के लोग भागने लगे तो उसने परिघ नाम का आयुध लेकर म्लेच्छो के मस्तको को अलग अलग करके काट दिया था ॥८७॥ वङ्कण और रङ्कण को भी उसने अपने खड्ग से मार गिराया। और तुं दिल को बाँधकर दिन के अ त मे शिविर मे चला गया था ॥८८॥ कालिय और सूर्यवर्मा शत्रुओ के बद्ध हो जाने पर तथा तुन्दिल के भी बँध जाने पर और रङ्कण एव वङ्कण के मारे जाने पर एक सहस्र म्लेच्छ राजा लोगो ने जोकि मरने से बचे हुए थे और सेना से समन्वित थे एव पक्ष भर पर्यन्त चारो ओर से युद्ध डटकर किया था। ॥८९॥९०॥ प्रतिदिन वीर तालन और अमर्षण सेनापति साठ भूपो को शीघ्र ही मार देता था क्योंकि यह शत्रु की सेना के लिए महान् भयङ्कर था ॥९१॥

भयभीता रिपो शूरा हता भूपा हतौजस ।
हतशेषा ययुर्गेहमर्द्धसैन्या भयातुरा ॥९२॥

जम्बुकस्तु तथा श्रुत्वा दुःखितो गेहमाययौ ।
व्रतं ह्यनशनं कृत्वा रात्रौ शोचन्नशेत सः ॥९३॥
निशीथे समनुप्राप्ते तत्सुता विजयैषिणी ।
पूर्णा तु सा कला ज्ञेया राधाया व्रजवासिनी ॥९४॥
आश्वास्य पितरं तं च ययौ मायाविशारदा ।
रक्षकाञ्छिविराणां च मोहयित्वा ममाययौ ॥९५॥
भ्रातरो तत्र गत्वासौ यत्र सर्वानबोधयत् ।
कृत्वा सा राक्षसी मायां पंचवीरानमोहयत् ॥९६॥
निरस्त्रकवचान्बंधून्प्रतिदोला समारुहत् ।
पितु रंतिकमासाद्य तस्मै भ्रातृन्ददौ मुदा ॥९७॥
प्रभाते बोधिताः सर्वे स्नानध्यानादिकाः क्रियाः ।
कृत्वा ययू रिपोः शाला दृष्टवन्तो न तास्तदा ॥९८॥

भय से डरे हुये शत्रु के शूर मारे गये थे क्योंकि वे सब भूप हत ओज वाले हो गये थे । जो भी कुछ मरने से शेष रह गये थे वे भयातुर अर्ध सैन्य अपने घर में चले गये थे ॥९२॥ जम्बुक ने इस प्रकार का वृत्तान्त सुना तो वह परम दुःखित होकर घर में आ गया था । उसने अनशन व्रत किया और वह इसी चिन्ता को करता हुआ रात में भी नहीं सोया था ॥९३॥ अर्धरात्रि के प्राप्त होने पर उसकी पुत्री विजयैषिणी राधा की व्रज में निवास करने वाली पूर्ण कला ही जाननी चाहिए ॥९४॥ माया में परम पण्डिता वह अपने पिता को आश्वासन देकर चली गई थी । वह शिविरों के रक्षकों को मोहित करके आ गई थी ॥९५॥ वहाँ जाकर इसने जहाँ भाई थे उन सबको बोधित किया था । उसने राक्षसी माया को फैलाकर पचवीरों को मोहित कर दिया था । ॥९६॥ निरस्त्र कवच वाले बन्धुओं को प्रत्येक दोला में चढ़ा दिया था । पिता के समीप में आकर उसके लिये प्रसन्नता भाइयों को दे दिया था ॥९७॥ प्रातःकाल में जबकि सब जगे तो स्नान ध्यान आदि समस्त क्रियाओं से निवृत्त होकर शाला को उन्होंने देखा तो उस समय में उनको वहाँ नहीं देखा था ॥९८॥

कराया करती थी ॥१०२॥ उस ऐलीविली ने यह मनुष्यों को मोहित करने वाली माया की है। उस अधम पुरुष के पास जाकर हम काय को सिद्धि को प्राप्त कर लेंगे। यह सुनकर चारो आह्लाद के बिना उस वन मे गए थे ॥१०३॥ (गान, नृत्य और वाद्यो से दिन म उसे मोहित करके रात्रि मे उन्होने उस धूर्त माया विशार के वहा पास म ही निवास किया था ॥१०४॥) वह पहिले जन्म मे विन नामधारी महान् असुर दैत्य था। उसने शिव की पूजा करते हुए वाण की कन्या उषा के प्राप्त करने की इच्छा की थी। पञ्चपुत्री वह वगवान् अब एलविली के नाम वाला उत्पन्न हुआ था ॥१०५॥

तयोर्मध्ये प्रमाणोऽस्य विवाहो मे यदा भवेत् ।
तदाहं त्वा भजिष्यामि सत्यव वोढाहित पतिम् ॥१०६॥
हते तस्मिन्महाधूर्ते गत्वा सग्राममूर्द्ध नि ।
जम्बुकस्य ययुर्दुर्गं दृष्ट्वा ते त समारुहन् ।
हत्वा तत्र स्थितान्वीरान्स्यतच्च परिस्वाकृता ॥१०७॥
तदा तु जम्बुको राजा शिवदत्तवरो वली ।
जित्वा पञ्च महावीरान्वद्ध्वा तान्निगडैर्दृढै ।
गैव यज्ञ च कृतवास्तेषा नाम्नोपवृ हितम् ॥१०८॥
रूपेणस्तु तथा ज्ञात्वा देवकी प्रत्यवर्णयत् ।
तदा तु दु खिता देवी भवानी भयहारिणीम् ।
मनसा च जगामाशु शरण्या शरण सती ॥१०६॥
तदा तुष्टा जगाद्धात्री स्वप्नाते तामवर्णयत् ।
अहो देवकि कल्याणि पुत्रशोक त्याजधुना ॥११०॥
यदा तु जम्बुको राजा शिवदत्तवरो वली ।
होम कर्ता स मदात्मा तेषा च वलिहे तवे ॥१११॥
मोहयित्वा तदाहं त मोचयित्वा च ते सुतान् ।
विजय ते प्रदास्यामि मा च शोके मन कृथा ॥११२॥

उन दोनो के मध्य म यह प्रमाण है कि जब मेरा विवाह हो जावेगा तो उस उद्वाहित पति का त्याग करके मैं तेरा ही सेवन करूँगी ॥१०६॥ उस

महाधूर्त के मारे जाने पर सग्राम के मूर्धा मे जाकर जम्बुक के दुग मे चले गये थे। वे वहा उसको देखकर उन्होने उस पर चढाई कर दी थी। वहाँ पर स्थित वीरो को मारकर शतघ्नियो को परिखाकुल बना दिया था ॥१०७। उस समय मे राजा जम्बुक जाकि शिव का दसवर और बली था पाचो महावीरो को जीत उ हे निगडो से दृढता के साथ बाँध दिया था और उसने उनके नाम से उग्र हिन शैव यज्ञ किया था ॥१०८॥ रूपण को जब इसका ज्ञान प्राप्त हुआ तो उसने देवकी का स्तवन किया था। तब दु खित देवी ने भय के हरण करने वाली भवानी को मन से ध्यान किया था जोकि बडी शरण्य है और सती शरण्यो की शीघ्र ही रक्षिका होती हैं ॥१०९॥ तब तो वह जगदम्बा प्रसन्न हुई और उसने स्वप्नान्त मे उससे कहा—हे देवकि। हे कल्याणि। अब तुम पुत्र के शोक को त्याग दो। जबकि राजा जम्बुक शिव के वरदान पाने वाला बलवान् होम के करने वाला है और वह महात्मा उनकी बलि के लिये ही यह यज्ञ कर रहा है ॥११०॥१११॥ उस समय मे मैं उसको मोहित करके तुम्हारे पुत्रो को छुड-वाकर विजय तुझे दूँगी मन मे शोक मत करो ॥११२॥

इति श्रुत्वा सती देवी नमस्कृत्य महेश्वरीम् ।
पूजयामास विधिवद्धूपदीपोपहारकैः ॥११३॥
एतस्मिन्नन्तरे राजा देवमायाविमोहित ।
सुष्वाप तत्र होमान्ते ते च जाता ह्यबधना ॥११४॥
तैर्बद्धो जम्बुको राजा निगडैरायसैर्दृढै ।
ते त बद्ध्वा ययु शीघ्र देवकी प्रति निर्भया ॥११५॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र कालियाद्याश्च ये सुता ।
त्रिलक्ष सैन्यमादाय युद्धाय समुपाययु ॥११६॥
पुनर्युद्धमभूद्घोर सेनयोरुभयोस्तदा ।
तालनाद्याश्च चत्वारो हत्वा ता रिपुवाहिनीम् ॥११७॥
श्रीखण्डमन्वोष्ठीकृत्य स्वशस्त्रैजघ्नुरूर्जिता ।
एव दिनानि कतिचित्तत्र जातो महारण ॥११८॥

कालियो दुःखितो भूत्वा सस्मार मनसा हरम् ।
मोहन मन्त्रमासाद्य मोहयामास तान्रिपून् ॥११९॥

सती देवी ने यह श्रवण करके महेश्वरी को नमस्कार किया और धूप, दीप तथा उपहारों के द्वारा विधिपूर्वक पूजा की थी ॥११३॥ इसी बीच मे देवमाया से विमोहित होकर राजा जम्बुक आ गया था और वहाँ पर होम के मग्न मे वे सब बन्धन से रहित हो गये थे ॥११४॥ फिर उनके द्वारा लोहे के निगडों से वह राजा जम्बुक दृढता से बाँध लिया गया। वे उसको बाँधकर निर्भय होकर शीघ्र ही देवकी के पास मे चले गये थे ॥११५॥ इस अन्तर मे कालिय आदि तीन पुर तीन लाख सेना लेकर युद्ध करने के लिये उपस्थित हो गये थे ॥११६॥ उस समय मे फिर दोनो सेनाओं का महान् घोर युद्ध हुआ था। तालन आदि चारो ने शत्रु की सेना को मारकर अर्जित उन्होने तीनों शत्रुओं को कोष्ठकी कृत करके अपने शस्त्रों से मार डाला था। इस प्रकार कुछ दिनो तक वहाँ पर महायुद्ध हुआ था ॥११७॥११८॥ कालिय ने अत्यन्त दुःखित होकर भगवान् हरि का स्मरण मन से किया और मोहन मन्त्र शिव से प्राप्तकर उससे उन शत्रुओं का मोहन कर दिया था ॥११९॥

एतस्मिन्नन्तरे देवी देवकी पतिदेवता ।
पातिव्रत्यस्य पुण्येन सुतान्तिकमुपागता ॥१२०॥
बोधयित्वा तु कृष्णाख्यं पञ्चाब्दगजस्थितम् ।
पुनरुद्दधार जननी गर्वविभ्रमविमोहिनीम् ।
तदा तुष्टा स्वयं देवी बोधयामास तान्मुदा ॥१२१॥
आह्लाद सूर्यवर्माणं कालियं च ततोऽनुजः ।
जघानयमगानिस्त लुन्दिना जम्बुकात्मजम् ॥१२२॥
ते तु पूर्वभवे विप्र जरासंधः सगालिय ।
द्विविदो यादवः शूरः सूर्यवर्मोऽपि पाण्डवः ॥१२३॥
निधनन्तु दिनो ज्ञाता शृगालः स च जम्बुकः ।
निरवर्तन्त सर्वे कृपाश्रमनर्हीनके ॥१२४॥

हतेषु शत्रुपुत्रेषु देवकी जम्बुक रिपुम् ।
खड्गेन तर्जयामास पतिशोकपरायणा ॥१२५॥
कृष्णाश. शिरसी पित्रोर्गृहीत्वा स्नेहकातर ।
जम्बुकस्यैव हृदये स्थापयामास विह्वल ॥१२६॥

इस बीच मे पति के देवता वाली देवी देवकी अपने पातिव्रत्य के पुण्य से पुत्रो के समीप मे उपगत हो गई थी, उसने कृष्णाश को बोधित करके जोकि पञ्चशब्द गज पर स्थित था, फिर विश्व विमोहिनी जननी की उसने स्तुति की। तब देवी स्वयं प्रसन्न होकर आई और उसने सबको बोधित प्रसन्नता मे किया था ॥१२०॥१२१॥ फिर आह्लाद ने सूर्यवर्मा को, उसके अनुज ने कालिय को और बलखानि ने जम्बुक के पुत्र उस तुन्दिल को मार दिया था ॥१२२॥ हे विप्र ! वे पूर्वजन्म मे वह कालिय जरासन्ध था और सूर्यवर्मा शूर द्विविद वाला था जिसने यहाँ आकर जन्म ग्रहण किया था ॥१२३॥ त्रिशिरा न तुन्दिल होकर जन्म लिया था तथा शृगाल ने जम्बुक राजा का जन्म प्राप्त किया था। ये समस्त भूप इस महीतल मे नित्य ही वैर के करने वाले हुए थे। ॥१२४॥ शत्रु के पुत्रो के हत हो जाने पर पति क शोक मे परायण देवकी ने जम्बुक शत्रु को खड्ग से स्वय तर्जित किया था ॥१२५॥ कृष्णाश ने स्नेह म कातर होकर पितरो के शिरा को ग्रहणकर विह्वल हो जम्बुक के ही हृदय पर स्थापित कर दिया था ॥१२६॥

विहस्यतो तदा तत्र प्रोचतुर्वचन प्रियम् ।
चिर जीव हि कृष्णाश गया कुरु महामते ।
इति वाणी समोजाता [बलिनो. प्रेतदेहयो ॥१२७॥
खड्गहस्ता च सा देवी शिलायत्रे तु त रिपुम् ।
सस्थाप्य चोदयामास स्वपुत्रान्हर्षसयुता ॥१२८॥
हे पुत्रा. स्वपितु. शत्रु जम्बुक पुरुषाधमम् ।
खण्डखण्ड च तिलश कृत्वानन्दसमन्विता ॥१२९॥
सचूर्णयत तदग्रय तत्तैलैर्मर्दनिर्गितं ।
स्नास्याम्यह तयेत्युक्त्वा रुरोद जननी भृशम् ॥१३०॥

तथा कृत्वा तु ते पुत्रा महिषी ससुता तदा ।
बलखानियुतास्तत्राहूय चक्रुश्च तत्क्रियाम् ॥१३१॥
तदा परिमल राज्ञी दृष्ट्वा स्वामिनमातुरम् ।
मरणायोन्मुख विप्र पचतत्वमगमन्मुन ॥१३२॥
तत्सुता खड्गमानीय बलखानिभुज प्रति ।
छित्वा मूर्छयित्वा त तत्पक्षानन्वधावत ॥१३३॥

वे दोनों तब हँसकर वहाँ पर प्रिय वचन बोले—हे कृष्णांश ! तू चिरकाल तक जीवित रह। हे महान् मति वाले ! अब तू गया कर दे। उन दोनों धनी प्रेत की देह से उस समय यही वाणी प्रकट हुई थी ॥१२७॥ हाथ में खड्ग लेने वाली उस देवी ने शिलायन्त्र में उस शत्रु को संस्थापित करके हर्ष से युक्त होकर उसने अपने पुत्रों को प्रेरित किया था। हे पुत्रो ! अपने पिता के शत्रु पुरुष से प्रथम इस जम्बुक को तिल के समान खण्ड खण्ड करके आनन्द से समन्वित हो जाओ ॥१२८।१२९॥ उसके गात्र को अच्छी तरह चूर्णित कर डालो। उसके मह्निर्मित तैल से मैं स्नान करूँगी—इतना कहकर वह जननी बहुत अधिक रुदन करने लगी ॥१३०॥ उन पुत्रों ने उसी प्रकार से करके उस सुता को महिषी करके बलखानि से युक्त वहाँ बुलाकर उसकी क्रिया की थी ॥१३१॥ तब राज्ञी ने परिमल को मरणोन्मुख आतुर स्वामी देखकर, हे मुने ! वह पञ्चत्व को प्राप्त हो गई थी। उसकी पुत्री ने खड्ग लाकर बलखानि की भुजा को काटकर और उसको मूर्च्छित करके वह उसके पक्ष के पीछे दौड़ गई थी ॥१३२॥१३३॥

तालन देवसिंह च रामांशच तथाविधम् ।
हत्वान्यांश्च तथा सागमच्छत्सुनकातरा ॥१३४॥
कृष्णांश मोहयित्वाशु मायया च समाहरत् ।
गते तस्मिन्ते पुरे बलखानिस्मर्पित ।
तन्निद्रांशा समाहृत्य चितायां च समाक्षिपत् ॥१३ ॥

तदा वाणी समुत्पन्ना वलखाने शृणुष्व भो ।
अवध्या च सदा नारी त्वया वध्या ह्यधर्मिण ॥१३६॥
फलमस्य विवाहे स्वे भोक्तव्य पापकर्मण ।
इति श्रुत्वा तदा दुःखी वलखानिर्ययौ पुरम् ॥१३७॥
ततस्तु सैनिकाः सर्वे महाहर्षसमन्विता ।
शतोष्ट्रभारवाह्यानि लुण्ठयित्वा धनानि च ॥१३८॥
महावती समाजग्मु कृतकृत्यत्वमागता ।
हृतशेषैश्चार्द्धसैन्यै सहिता गेहमाययु ॥१३९॥

तालन, देवसिंह और रामांश को उस प्रकार का करके तथा कुल वानर अन्य शत्रुओं को चले गए थे ॥१३४॥ कृष्णांश को माया से मोहित करके शीघ्र माया से समाहित कर लिया था। वहाँ पर एक सौ शूरों के हत हो जाने पर बलखानि अमर्षित हो गया था। और उसका शिर लाकर उसने चिता में फैंक दिया था ॥१३५॥ उस समय में आकाश से वाणी का प्रादुर्भाव हुआ था। हे बलखानि! सुनो, नारी सदा वध के योग्य नहीं होती है। तूने इसका वध किया है अतः तू अधर्मी है। अब इस पाप कर्म का फल तुझे अपने विवाह में भोगना ही चाहिए। यह श्रवण करके बलखानि उस समय बहुत ही दुःखित हुआ और पुर को चला गया था ॥१३६॥१३७॥ इसके अनन्तर समस्त सैनिक महान् हर्ष से समन्वित होकर सौ ऊँटों के वहन के योग्य भार के बराबर धनों को लूटकर महावती को चल गए थे और कृतकृत्यता को प्राप्त हो गए थे। जो मरने न बच गये थे व शेष अर्ध सैन्यों के साथ घर को आ गये थे ॥१३८॥१३९॥


BHARATIYA VIDYA BHAVAN BOMBAY-7 LIBRARY

[प्रथम खण्ड समाप्त]